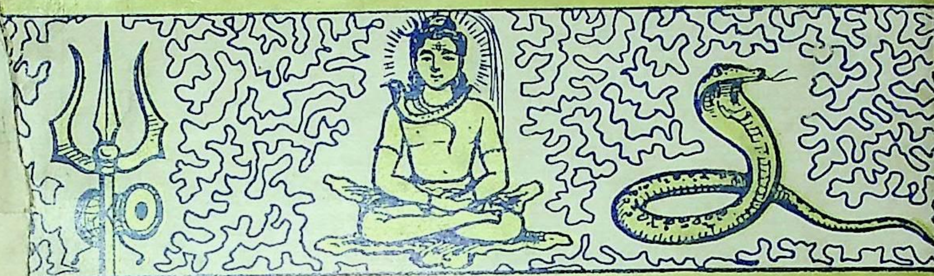
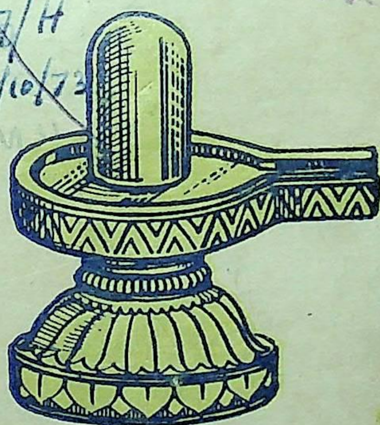
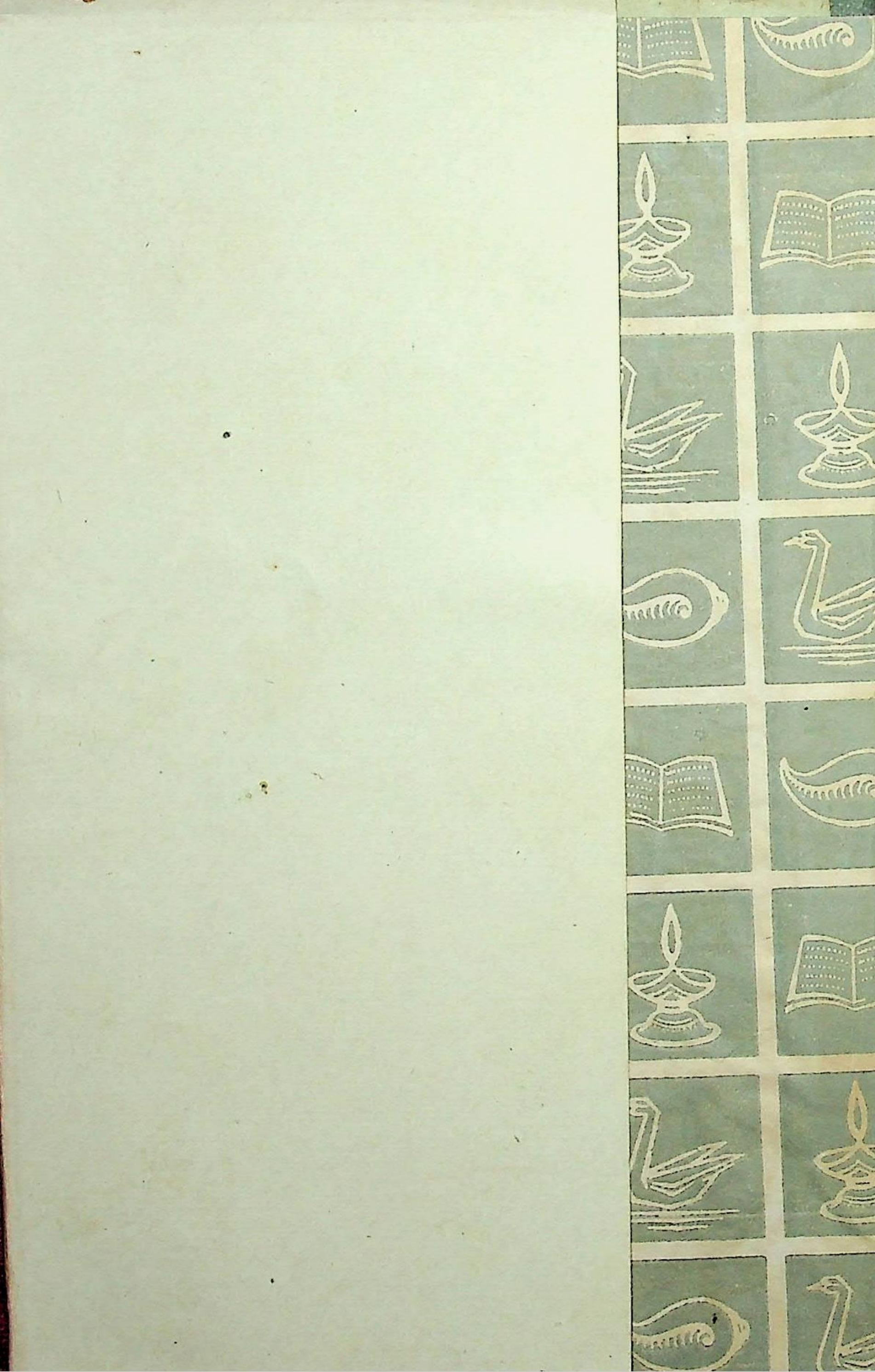
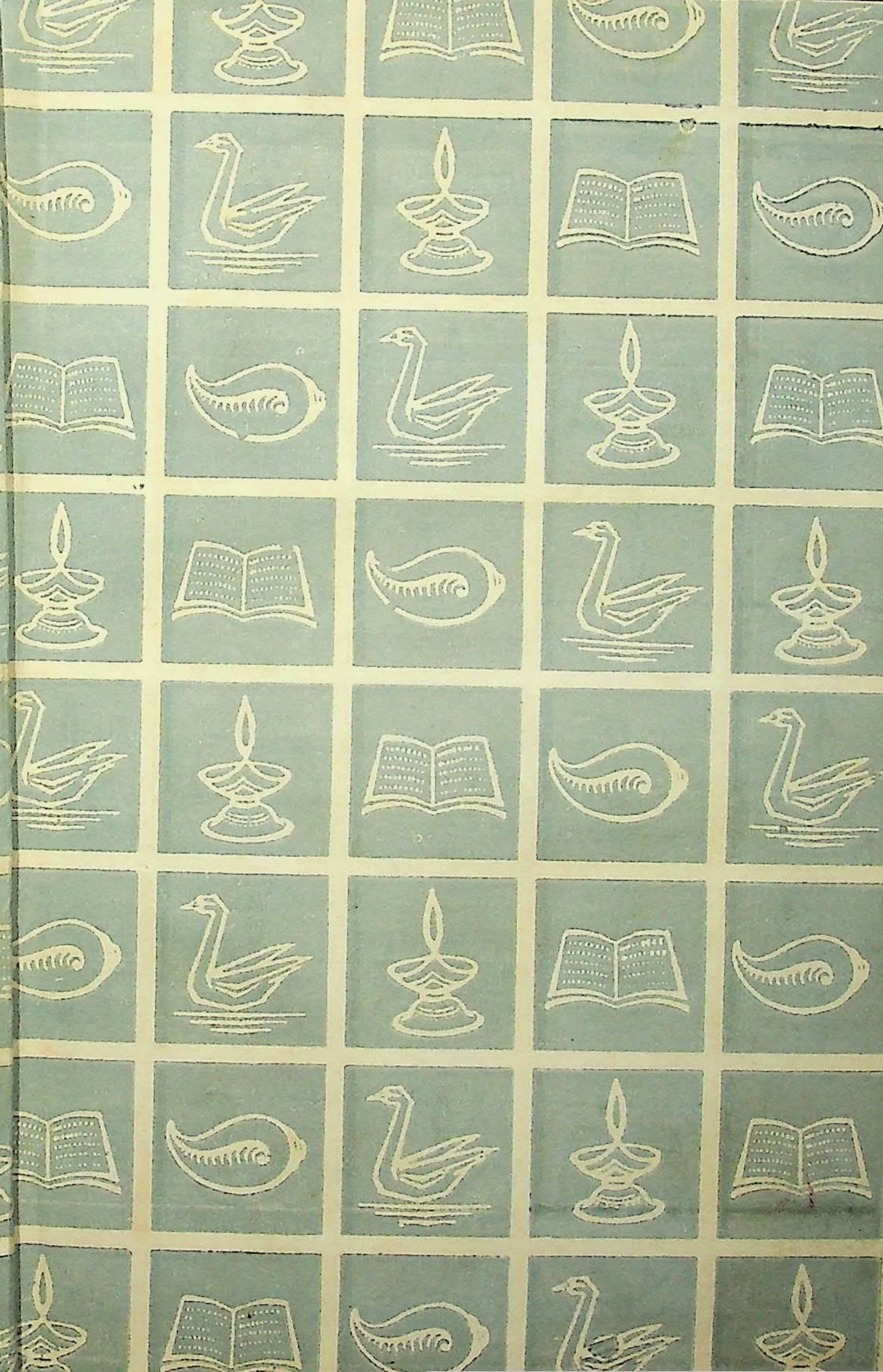




लिंग पुराण

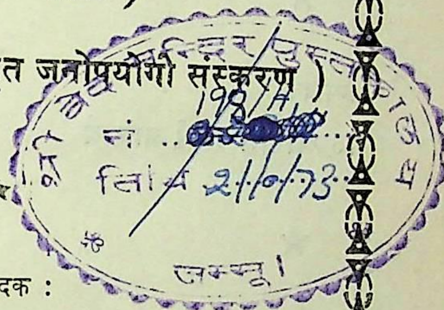




लिङ्ग पुराण

(द्वितीय खंड)

(सरल भाषानुवाद सहित जनोपयोगी संस्करण)

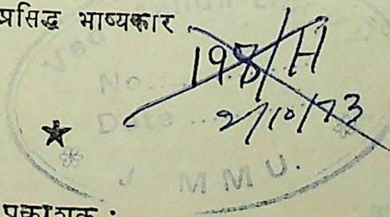


सम्पादक :

वेदमूर्ति तपोनिष्ठ

पं० श्रीराम शर्मा आचार्य

चारों वेद, १०८ उपनिषद्, षट-दर्शन
२० स्मृतियों और १८ पुराणों
के प्रसिद्ध भाष्यकार



प्रकाशक :

संस्कृति संस्थान

बरेली (उ० प्र०)

प्रकाशक :

डा० चमनलाल गौतम

संस्कृति संस्थान

बरेली (उ० प्र०)



सम्पादक :

पं० श्रीराम शर्मा आचार्य





द्वितीय जनोपयोगी संस्करण

१९७१



मुद्रक :

हर्ष गुप्त

राष्ट्रीय प्रेस, मथुरा।



मूल्य ७.५० पैसे

भूमिका

"लिङ्ग पुराण" के द्वितीय खण्ड में शिव-तत्त्व की गम्भीर आलोचना की गई है। इस समग्र जगत के परम कारण को 'शिव' का नाम देकर उनकी विविध 'मूर्त्तियों' (रूपों) द्वारा सृष्टि की उत्पत्ति, विकास और संहार का वर्णन दार्शनिक दृष्टि से किया गया है। संसार के समस्त मनीषियों की तरह भारतीय विद्वान भी जगत के निर्माता अथवा 'कारण परमात्मा को 'एक' और 'अद्वितीय' ही मानते हैं। पर वह परमात्म-शक्ति किस प्रकार अव्यक्त से व्यक्त रूप में प्रस्फुटित होती है और इस बहुरूपात्मक संसार को प्रकट करने का मूल-स्रोत बन जाती है, इस विषय में भारतीय तत्त्व-ज्ञाताओं के अतिरिक्त और सब देशों के 'धर्मज्ञ' मौन ही रह जाते हैं। यह ज्ञान केवल भारतीय दार्शनिकों के ही हिस्से में आया है कि वे अव्यक्त से व्यक्त—सूक्ष्म से स्थूल के परिवर्तन की स्पष्ट रूप से व्याख्या करके संसार को चमत्कृत कर चुके हैं। जैसे-जैसे समय बीतता जाता है और विज्ञान प्रकृति की तह में पहुंचता जाता है, वैसे-वैसे ही भारत के योग-शक्ति सम्पन्न मनीषियों की व्याख्या यथार्थ सिद्ध होती जा रही है। यह बात दूसरी है कि प्रत्येक सम्प्रदाय के मनीषियों की शब्दावली एक दूसरे से भिन्न है और जब वे अपने पक्ष को निर्बल पड़ता देखते हैं, तो वाद विवाद में विजयी होने के लिए कुछ सत्य-असत्य मिश्रित तर्क भी उपस्थित करने लग जाते हैं।

'शिव' के सर्व तत्त्वात्मक रूप का विवेचन करते हुये लिङ्ग पुराणकार ने कहा है कि "एक 'शिव' ही पञ्च ब्रह्माओं के रूप में प्रकट होते हैं। उनमें से एक समस्त लोकों का संहार करने वाला, एक रक्षा करने वाला और एक सब का निर्माण करने वाला होता है। परमेष्ठी शिव की प्रथम मूर्ति 'क्षेत्रज्ञ' है। इनका नाम ईशान है और ये प्रकृति के भोक्ता हैं। द्वितीय 'मूर्ति' स्थाणु की है, जो 'तत्पुरुष' कही जाती है। उसे परमात्मा की अधिकरणभूत जाननी चाहिए। 'अघोर' नाम वाली तीसरी मूर्ति 'बुद्धि' की कही जाती है। चौथी 'वामदेव' अहङ्कारात्मक

कही गई हैं, जिसके वह समस्त जगत में व्याप्त है। पाँचवी मूर्ति 'सद्यो-जाता' नाम वाली है जो मनस तत्त्वात्मक होने से सम्पूर्ण प्राणियों में स्थित रहा करती है। इनमें से ईशान को आकाश का, तत्पुरुष को वायु का, अघोर को अग्नि का, वामदेव को जल का तथा सद्योजात को भूमि का उत्पन्न करने वाला कहा गया है। इस प्रकार इस पञ्च भूतात्मक दृश्य जगत के जनक परमात्मा शिव ही हैं।"

भारतीय दार्शनिकों ने दैवी सत्ता को दो विभागों में बाँटा है और भिन्न-भिन्न नामों से उसकी विस्तारपूर्वक व्याख्या की है। इन विभागों को कहीं सत् और असत्, कहीं क्षर और अक्षर, कहीं अव्यक्त और व्यक्त, कहीं विद्या और अविद्या आदि नामों से पुकारा गया है। पर सब का अन्तिम निष्कर्ष यही है कि विश्व का मूल कारण एक ही अव्यक्त तत्त्व है जो सृष्टि क्रम के नियमानुसार स्वयम् ही व्यक्त रूप ग्रहण करता रहता है। उसका व्यक्त रूप ग्रहण करना ही 'एक से बहुत' होता है, क्योंकि दृश्य पदार्थों की आकृति और गुणों में विविधता दिखलाई पड़ने के कारण मानव बुद्धि उसमें भिन्नता की कल्पना ही करती है। पर साथ ही विचारक-गण यह भी जानते और कहते रहते हैं कि इन भिन्न-भिन्न रूपों का आधार केवल हमारी दृष्टि और भावना है, अन्यथा जगत में एक तत्व से अतिरिक्त सत्य कुछ भी नहीं है। इसी सिद्धान्त के आधार पर वेदान्त के 'ब्रह्म सत्य जगत मिथ्या' वाली मान्यता का जन्म होता है। इसी कारण ब्रह्मवादी व्यक्ति संसार के समस्त पदार्थों और व्यवहारों को 'माया' बतलाने लगते हैं। 'लिंग पुराण' के लेखक ने इस सिद्धान्त को साम्प्रदायिक रूप देते हुए लिखा है—

'महा मनीषीगण' तो यही कहते हैं कि शिव के अतिरिक्त अन्य कोई भी वस्तु है ही नहीं। उसी को शब्द ब्रह्मादि जौर परब्रह्मात्मक कहा जाता है। कुछ लोग उन्हीं शिव को अनादि निधन अर्थात् आदि तथा अन्त से रहित महान् देव-प्रभु और प्राणियों की इन्द्रियों तथा अन्तः-करण से ग्रहण किये जाने वाले शब्दादिक त्रिषयो के रूप में मानते हैं। अपर-ब्रह्म और परब्रह्म भी उन्हीं को कहा जाता है। अन्य लोग शङ्कर

को विद्या और अविद्या रूप वाला कहते हैं। 'विद्या' शब्द का आशय समस्त लोकों के धाता-विधाता तथा आदि देव महेश्वर से ही है। कुछ मुनिगण उसे योग द्वारा ग्रहण किया करते हैं और कुल आगमों के आधार पर उसका ज्ञान प्राप्त करते हैं। जो आत्माकार से संवित्ति होती है उसे बुधजनों द्वारा 'विद्या' के नाम से पुकारा जाता है और जो विकल्प से सर्वथा रहित तत्व होता है उसे परम' शब्द द्वारा कथित किया जाता है। इन दो के अतिरिक्त उस ईश का तीसरा रूप कुछ भी नहीं होता। सम्पूर्ण लोकों का विधाता (रचयिता) और धाता (पोषक) एवं परमेश्वर तथा तेईस तत्त्वों का समुदाय, ये सब कुछ शिव के लिए ही कहा गया है। इन तीनों का समुदाय ही शङ्कर का स्वरूप होता है 'अशांकर' अर्थात् शङ्कर से भिन्न तो कुछ है ही नहीं।"

इस प्रकार लिङ्ग पुराण' में जो कुछ कहा गया हैं वह चाहे अन्य विचार वालों को 'शैव-सम्प्रदाय' का मत ही जान पड़े, पर तत्वतः वह समस्त विद्वानों द्वारा स्वीकृत ब्रह्म की एकता का सिद्धान्त ही है। यह बात कुछ आगे चल कर ब्रह्मा, विष्णु आदि देवताओं द्वारा की गई भगवान् शिव की स्तुति में और भी स्पष्टता से वर्णित की गई हैं—

ब्रह्मादि देवों ने कहा—जो यह भगवान् रुद्र हैं वही ब्रह्मा विष्णु तथा महेश्वर हैं, और वही स्कन्द, इन्द्र और चौदह भुवन हैं। अश्विनी-कुमार, गृह, तारा, नक्षत्र, अन्तरिक्ष, दिशायें, पञ्चभूत, सूर्य, सोम, आठ ग्रह, प्राण, काल, यम, मृत्यु, अमृत, परमेश्वर, भूत भव्य और वर्तमान आदि सम्पूर्ण विश्व एवं समस्त जगत भगवान् शिव का ही स्वरूप है। उस सत्य-रूप के लिए हमारा सब का नमस्कार और प्रणाम है। हे महेश्वर देव! आप ही आदि हैं तथा भूर्भुव स्वः भी आप ही हैं। आप अन्त में विश्वरूप हैं और सर्वदा इस जगत के शीर्ष हैं। आप अद्वितीय ब्रह्म हैं जिसके कि प्रकृति और पुरुष तथा ब्रह्मा-विष्णु-महेश आदि विभिन्न रूप होते हैं। अर्थात् ये समस्त रूप उसी अद्वितीय एक शक्ति के हैं। हे सुरेश्वर! आप ही सब के आधार शान्ति, पुष्टि, तुष्टि हुत अहुत, विश्व अविश्व, दत्त अदत्त हो। आप कृत-अकृत, पर अपर, ध्रुव, सत्पुरुष

के परायण और असत्पुरुषों के परायण शङ्कर हो। हमने इस शिव स्वरूप का अमृत पान किया है, उससे हम मुक्त हो गये।"

इस प्रकार 'लिङ्ग पुराण' ने भगवान् शिव के विश्व रूप की बहुत स्पष्ट रूप में व्याख्या को करके यह समझा दिया है कि अनेक देवी-देवताओं की उपासना का विधान और प्रचार होने पर भी सब का मूल एक ही है। अगर मनुष्य अपनी रुचि तथा योग्यता के अनुरूप किसी विशेष सम्प्रदाय का अनुगमन करते हैं तो इसमें कोई दोष नहीं। प्रत्येक सामान्य मनुष्य की यह सामर्थ्य नहीं कि वह परमात्मा के विराट स्वरूप के रहस्य को समझ सके और संसार के समस्त क्रिया-कलापों में पर-मात्म-शक्ति के अस्तित्व को पहिचान सके! इस लिये यदि वह किसी सीमित रूप में ही भगवान् की उपासना करता है, तो इसे अनुचित नहीं कहा जा सकता। इस दृष्टि से विचार करने पर सम्प्रदायों को भी उप-योगी समझा जा सकता है, पर तभी तक जब तक कि वे हानिकारक प्रथाओं तथा रूढ़ियों से बची रहें और विभिन्न सम्प्रदायों के बीच विष के बीज न बोयें।

अगर हम संसार की सञ्चालक शक्ति को शिव के नाम से पुका-रते हैं और उनके आदर्श को ध्यान में रख कर त्याग, तपस्या, परोपकार का जीवन बताते हैं, तो इसे प्रशंसनीय ही माना जायगा। इसी प्रकार यदि दूसरा व्यक्ति उस 'शक्ति' को विष्णु के नाम से यदि करता है और उनके गुणों को हृदयंगम करके समस्त प्राणियों के प्रति प्रेम, भक्ति और मित्रता का भाव रखता है तो उसको भी धन्य कहा जायगा। शुभ कर्म हम किसी भी नाम से करें उनको वन्दनीय ही मानना चाहिए। पर यदि ये व्यक्ति 'शिव' और 'विष्णु' के नाम को लेकर आपस में बुरा-भला कहने लग जायें और परोपकार तथा सेवा को भुला बैठें तो निस्स-न्देह यह एक शोचनीय बात होगी और उसे निन्दा के योग्य बताया जायगा। 'लिङ्ग पुराण' की यह विशेषता है कि उसने सर्वत्र शिव की महिमा गाते हुए अन्य देवताओं की निन्दा नहीं की है और शिव की उपा-सना के जितने विधान बतलाये हैं उनमें कोई अकल्याणकारी बात नहीं कही है।

—श्रीराम शर्मा, आचार्य

विषय-सूची

लिंग पुराण

(द्वितीय खंड)

५७--शिवपूजन विधि और दीपक दान का पुण्य

कथं पूज्यो महादेवो मर्त्यैर्मंदैर्महामते ।
कल्पायुषैरल्पवीर्यैरल्पसत्त्वैः प्रजापतिः ।१।
संवत्सरसहस्रैश्च तपसा पूज्य शंकरम् ।
न पश्यंति सुराश्चापि कथ देवं यजति ते ।२।
कथितं तथ्य मेवात्र युष्माभिर्मुनिपुंगवाः ।
तथापि श्रद्धया दृश्यः पूज्यः संभाष्य एव च ।३।
प्रसङ्गाच्चैव संपूज्य भक्तिहीनैरपि द्विजाः ।
भावानुरूपफलदो भगवानिति कीर्तितः ।४।
उच्छिष्टः पूजयन्याति पैशाचं तु द्विजाधमः ।
संक्रुद्धो राक्षसं स्थानं प्राप्नुयान्मूढधीर्द्विजाः ।५।
अभक्ष्यभक्षी संपूज्य याक्षं प्राप्नोति दुर्जनः ।
गानशीलश्च गांधर्वं नृत्यशीलस्तथैव च ।६।
ख्यातिशीलस्तथा चांद्रं स्त्रीषु सक्तो नराधमः ।
मदार्तः पूजयन् रुद्रं सोमस्थानमवाप्नुयात् ।७।

इस अध्याय में उच्छिष्टादिक पूजन से उन्यासी प्रकार का लिङ्ग होता है उसके पूजा और दर्शन का फल तथा दीपदान का फल निरूपित किया जाता है। ऋषियों ने कहा—हे महामतिमान् ! मन्द मनुष्यों के द्वारा शिव का पूजन किस प्रकार से करना चाहिए ? क्योंकि कल्पायु वाले सहस्रों वर्षों तक तप के द्वारा शिव का पूजन करके भी देवगण शङ्कर का दर्शन प्राप्त नहीं किया करते हैं तो फिर अल्प वीर्य वाले और अत्यल्प सत्त्व वाले विचारे मानव कैसे उनका यजन कर सकते हैं तथा अत्यन्त कल्याण प्राप्त करते हैं ? ।१।२। सूतजी ने कहा—हे मुनि-

श्रेष्ठो ! आप लोगों ने यह पूर्णतया सत्य कहा है तो भी श्रद्धा एक ऐसी वस्तु है कि उसके द्वारा भगवान् शिव मानवों के दर्शन के योग्य-पूज्य और सम्भाष्य हो जाया करते हैं ।३। हे द्विजो ! भक्ति से रहित लोगों के द्वारा भी प्रसङ्ग वश भली-भाँति पूज्य होकर भगवान् शङ्कर भावानुरूप फल के प्रदान करने वाले हो जाते हैं—ऐसा बताया गया है ।४। नीच द्विज उच्छिष्ट होते हुए शिव का पूजन करके पैशाच पद को प्राप्त करता है और मूढ़ बुद्धि वाला संक्रुद्ध होकर राक्षसों का स्थान पाया करता है ।५। जो अभक्ष्य पदार्थों का भक्षण करने वाला है वह दुर्जन पूजन करके यक्ष पद को प्राप्त करता है । गायन के तथा नृत्य के स्वभाव वाला द्विजाधम गान्धर्व स्थान को पाता है । स्त्रियों में आसक्त अधम मनुष्य ख्याति के शील वाला चान्द्र स्थान को प्राप्त करता है । जो मदार्त्त होता है वह रुद्र का पूजन करता हुआ सोम के स्थान की प्राप्ति किया करता है ।६।७।

गायत्र्या देवमभ्यर्च्य प्राजापत्यमवाप्नुयात् ।
ब्राह्मं हि प्रणवेनैव वैष्णवं चाभिनद्य च ।८।
श्रद्धया सकृदेवापि समभ्यर्च्य महेश्वरम् ।
रुद्रलोकमनुप्राप्य रुद्रैः सार्धं प्रमोदते ।९।
संशोध्य च शुभ लिंगममरासुरपूजितम् ।
जलैः पूतैस्तथा पीठे देवमावाह्य भक्तितः ।१०।
दृष्ट्वा देवं यथा न्याय गणिपत्य च शंकरम् ।
कल्पिते चासने स्थाप्य धर्मज्ञानमये शुभे ।११।
वैराग्यैश्वर्य संपन्ने सर्वलोकनमस्कृते ।
ओंकारपद्ममध्ये तु सोमसूर्याग्निसंभवे ।१२।
पाद्यमाचमनं चार्घ्यं दत्वा रुद्राय शंभवे ।
स्नापयेद्दिव्यतोयैश्च घृतेन पयता तथा ।१३।
दध्ना च स्नापयेद्रुद्रं शोधयेच्च यथाविधि ।
ततः शुद्धांबुना स्नाप्य चदनाद्यैश्च पूजयेत् ।१४।

गायत्री के द्वारा जो देव की अभ्यर्चना करता है वह प्राजापत्य पद

की प्राप्ति करता है। प्रणव के द्वारा पूजन करके ब्राह्म तथा वैष्णव पद को प्राप्त होता है।८। श्रद्धा से एक बार भी महेश्वर भगवान् का पूजन करके रुद्र लोक की प्राप्ति करता है और वहाँ रुद्रों के साथ प्रमोद वाला हुआ करता है।९। सुर और असुरों के द्वारा पूजित शिवलिंग का संशोधन करके अर्थात् पूत जल से भली-भाँति शुद्धि करके फिर पीठ पर देव की भक्ति से उनका आवाहन करे ।१०। यथा न्याय देव का दर्शन कर शंकर को प्रणाम करे ओर कल्पित आसन पर उनकी स्थापना करनी चाहिए। वह आसन धर्म और ज्ञान से परिपूर्ण एवं शुभ होना चाहिए तथा वैराग्य एवं ऐश्वर्य से सम्पन्न हो और सर्व लोकों के द्वारा नमस्कृत होवे। सोम सूर्याग्नि सम्भव पद्म का आसन ऐसा होवे जिसके मध्य में ओंकार होवे और उसी पर स्थापना करे।११।१२। आसन पर संस्थापित करने के पश्चात् शम्भु रुद्र के लिए अर्घ्य-पाद्य और आचमन सर्मपित करे। तथा दिव्य भागीरथी आदि के जलों से स्नान करावे। घृत-दूध और दधि से रुद्र का स्नपन करावे और विधि के अनुसार शोधन करना चाहिए। इन सब स्नपनों अनन्तर शुद्ध जल से पुनः स्नान करा कर चन्दनादि के द्वारा पूजन करे।१३।१४।

रोचनाद्यैश्च संपूज्य दिव्यपुष्पैश्च पूजयेत् ।
बिल्वपत्रैरखडैश्च पद्मैर्नानाविधस्तथा ।१५।
नीलोत्पलश्च राजीवैर्न द्यावर्तैश्च मल्लिकैः ।
चपकैर्जातिपुष्पैश्चवकुलः करवीरकैः ।१६।
शमीपुष्पैर्बृ हत्पुष्पैरुन्मतागस्त्यजंरपि ।
अपामार्गकदबैश्च भूषणैरपि शोभनैः ।१७।
दत्वा पंचविधं धूप पायसं च निवेदयेत् ।
दधिभक्तं च मध्वाज्यपरिप्लुतमतः परम् ।१८।
शुद्धान्न चैव मुद्गान्न षड्विध च निवेदयेत् ।
अथ पंचविध वापि सघृत विनिवेदयेत् ।१९।
केवलं चापि शुद्धान्नमाढक तंडुलं पचेत् ।
कृत्वा प्रदक्षिण चांते नमस्कृत्य मुहुर्मुहुः ।२०।

स्तुत्वा च देवमीशानं पुनः संपूज्य शंकरम् ।
ईशानं पुरुषं चैव अघोर वाममेव च ।२१।
सद्योजातं जपश्चापि पचभिः पूजयेच्छिवम् ।
अनेन विधिना देवः प्रसीदति महेश्वरः ।२२।

रोचना आदि से भली-भाँति पूजन करके पुनः दिव्य रूपों के द्वारा पूजन करना चाहिए । अखण्डित विल्व के पत्रों से तथा नाना प्रकार के पद्मों से नीलोत्पल-राजीव-नद्यावर्त्त-मल्लिक-चम्पक-जातिपुष्प-वकुल-करवीर के पुष्प शमी के पुष्प-वृहत्पुष्प-उन्मत्त (धतूरा) पुष्प आगस्त्य के पुष्प-अपामार्ग और कदम्व के पुष्पों से भगवान का अर्चन करना चाहिए । तथा फिर सुन्दर भूषणों से देव को समलङ्कृत करे ।१५।१६।४७। इसके उपरान्त पाँच प्रकार का धूप समर्पित करके भगवान् को पायस समर्पित करना चाहिये । इसके अनन्तर दधिभात और मधु तथा घृत से परिप्लुत शुद्ध अन्न और छै प्रकार का मुद्‌गान्त निवेदित करना चाहिए । इसके अनन्तर पाँच प्रकार का घृत के सहित समर्पित करे ।१८।१९। अथवा केवल शुद्ध अन्न एक आटक तन्दुल का पाक करे । अन्त में प्रदक्षिणा करे और बारम्बार नमस्कार करे ।२०। ईशानदेव का स्तवन करके फिर शंकर का पूजन करे और ईशान-पुरुष अघोर-वाम और सद्योजात इनका जप करते हुए पाँचों से शिव का पूजन करना चाहिए । इस विधि से महेश्वर देव परम प्रसन्न होते हैं ।२१।२२।

वृक्षाः पुष्पादिपत्राद्यैरुपयुक्ताः शिवार्चने ।
गावश्चैव द्विजश्रेष्ठाः प्रयांति परमां गतिम् ।२३।
पूजयेद्यः शिवं रुद्रं शर्वं भवमजं सकृत् ।
स याति शिवसायुज्यं पुनरावृत्तिवर्जितम् ।२४।
अर्चितं परमेशानं भवं शर्वमुमापतिम् ।
सकृत्प्रसंगाद्वा दृष्ट्वा सर्वपापैः प्रमुच्यते ।२५।
पूजित वा महादेव पूज्यमानमथापि वा ।
दृष्ट्वा प्रयाति व मर्त्यो व्रह्मलोकं न सशयः ।२६।
श्रुत्वानुमोदयेच्चापि स याति परमां गतिम् ।

यो दद्याद्घृतदीपं च सकृल्लिंगस्य चाग्रतः ।२७।
स तां गतिमवाप्नाति स्वाश्रमैर्दुर्लभां स्थिराम् ।
दीप वृक्ष पार्थिव वा दारवं वा शिवालये ।२८।

शिवार्चन में पुष्प और पत्र आदि से जो वृक्ष उपयुक्त होते हैं तथा जो गौएँ हैं, जिनके दूध-घृत आदि का उपयोग शिवार्चन में हुआ करता है वे सब हे द्विजगण ! परमगति को प्राप्त हो जाते हैं ।२३। जो शिव-रुद्र-भव और अज का पूजन एक बार भी करता है वह शिव के सायुज्य को प्राप्त कर लेता है जहाँ पहुंच कर पुनरावृत्ति नहीं हुआ करती है ।२४। परमेशान-भव-शर्व और उमापति का अर्चन चाहे वह प्रसंग से एकबार ही किया गया हो, इनका दर्शन करके मनुष्य सब तरह के पापों से मुक्त हो जाता है ।२५। महादेव का पूजन करने से अथवा पूज्यमान शिव का दर्शन करने से एक मनुष्य ब्रह्मलोक को प्राप्त हो जाता है—इसमें संशय नहीं है ।२६। शिवार्चन के विषय में श्रवण करके जो अनुमोदन करता है वह परम गति को प्राप्त हो जाता है । जो एकबार भी लिंग के आगे घृत का दीपक रखता है वह उस स्थिर उत्तम गति को प्राप्त करता है जो अपने वर्णाश्रम के धर्मों के द्वारा अत्यन्त दुर्लभ होती है । शिवालय में दीप वृक्ष-पार्थिव अथवा काष्ट का दीप देता है वह अगले सौ कुल को शिवलोक में प्रतिष्ठित किया करता है ।२७।२८।

दत्त्वा कुलशतं साग्रं शिवलोके महीयते ।
आयसं ताम्रजं वापि रौप्यं सौवर्णिकं तथा ।२९।
शिवाय दीप यो दद्याद्विधिना वापि भक्तितः ।
सूर्यायुतसमैः श्लक्ष्णैयांनैः शिवपुरं व्रजेत् ।३०।
कार्तिके मासि यो दद्याद्घृतदीप शिवाग्रतः ।
संपूज्यमान वा पश्येद्विधिना परमेश्वरम् ।३१।
स याति ब्रह्मणो लोकं श्रद्धया मुनिसत्तमाः ।
आवाहनं सुसान्निध्यं स्थापनं पूजन तथा ।३२।
संप्रोक्तं रुद्रगायत्र्या आसन प्रणवेन वै ।
पंचभिः स्नपनं प्रोक्तं रुद्राद्यैश्च विशेषतः ।३३।

एवं सपूजयेन्नित्यं देवदेवमुमापतिम् ।
ब्रह्माण दक्षिणे तस्य प्रणवेन समर्चयेत् ।३४।
उत्तरे देवदेवेश विष्णुं गायत्रिया यजेत् ।
वह्नौ हुत्वा यथान्यायं पंचभिः प्रणवेन च ।३५।
स याति शिवसायुज्यमेवं संपूज्य शंकरम् ।
इति संक्षेपतः प्रोक्तोलिंगार्चनविधिक्रमः ।३६।
व्यासेन कथितः पूर्वं श्रुत्वा रुद्रमुखात्स्वयम् ।३७।

आयस (लोहे का निर्मित ताम्रज-रौप्य (चांदी का)-तथा सुवर्ण का बना हुआ दीप शिव के लिए विधि के सहित समर्पित करता है तथा भक्ति-भाव से देता है वह दश सहस्र सूर्य के समान श्लक्ष्ण यानों के द्वारा शिवपुर को चला जाया करता है ।३०। कार्त्तिक के मास में जो कोई घृत का का दीपक भगवान् शिव के आगे जाकर रखता है अथवा विधि विधान से सम्पूज्य मान परमेश्वर का दान दर्शन किया करता है वह पुरुष हे मुनिगण ! निश्चय ही ब्रह्मलोक को श्रद्धा से प्राप्त हो जाता है । शिव का आवाहन-सन्निधीकरण-स्थापन तथा पूजन रुद्र गायत्री के द्वारा कहा गया है और आसन प्रणव के द्वारा तथा विशेष रूप से रुद्रादि पाँच प्रणवों के द्वारा स्नपन कहा गया है ।३१।३२।३३। इस प्रकार एवं विधि से देवों के देव उमापति का नित्य ही पूजन करना चाहिए । उनके दक्षिण में प्रणव के द्वारा ब्रह्मा का पूजन करे ।३४। उत्तर भाग में गायत्री के द्वारा देव देवेश विष्णु का यजन करना चाहिए । विधि के अनुसार पाँच प्रणवों के द्वारा अग्नि में हवन करे । इस विधि से भगवान् शंकर का पूजन करके मानव शिव के सायुज्य की प्राप्ति किया करता है । यह हमने संक्षेप से शिव के लिंग की अर्चना की विधि का क्रम बता दिया है । पहिले स्वयं रुद्र के मुख से श्रवण करके विस्तार के साथ कह दिया था ।३५।३६।३७।

५८ – पशुपाश से मुक्तिदाता लिंगपूजा व्रत

व्रतमेतत्त्वया प्रोक्त पशुपाशविमोक्षगम् ।
व्रतं पशुयतं लैंग पुरा देवैरनुष्ठितम् ।१।

वक्तुमर्हसि चास्माकं यथापूर्वं त्वया श्रुतम् ।
पुरा सनत्कुमारेण पृष्टः शैलादिरादरात् ।२।
नन्दी प्राह वच स्तस्मै प्रवदामि समासतः ।
देवैर्दैत्यैस्तथा सिद्धै गंधर्वैः सिद्धचारणैः ।३।
मुनिभिश्च महाभागैरनुष्ठितमनुत्तमम् ।
व्रत द्वादशलिंगाख्यं पशुपाशविमोक्षणम् ।४।
भोगदं यागदं चैव कामदं मुक्तिदं शुभम् ।
अवियोगकरं पुण्यं भक्तानां भयनाशनम् ।५।
षडङ्गसहितान् वेदान्मथित्वा तेन निर्मितम् ।
सर्वदानोत्तमं पुण्य मश्वमेघायुताधिकम् ।६।
सर्वमंगलदं पुण्य सर्वशत्रु विनाशनम् ।
संसारार्णवमग्नानां जंतूनामपि मोक्षदम् ।७।

इस अध्याय में शिव के द्वारा कहा हुआ पशु पाश का विमोचन करने वाले लिंग पूजा के व्रत का भली-भाँति निरूपण किया गया है। ऋषियों ने कहा—हे सूतजी ! आपने यह पशु-पाश के विमोक्षण करने वाला पशुपत व्रत बतलाया है जो कि पहिले लैंग पशुपत व्रत देवों ने किया था ।१। आपने जैसा भी पूर्व में श्रवण किया था वह पर्वानुक्रम के अनुसार अब हमको बताने के योग्य होते हैं। सूतजी ने कहा—पहिले सनत्कुमार ने आदर के साथ शैलादि से पूछा था ।२। नन्दी ने उनसे जो वचन कहे थे उन्हें मैं संक्षेप में तुमको बताता हूं। देवों ने-दैत्यों ने सिद्ध और गन्धर्वों ने-सिद्ध चारणों ने तथा महाभाग मुनियों ने उस परमोत्तम व्रत को किया था। पशुपाश से विमुक्त कराने वाला द्वादश लिंग नाम वाला व्रत होता है ।३।४। यह व्रत भोगों का देने वाला-कामद-शुभ मुक्तिद अवियोग के करने वाला परम पुण्य और भक्तों के भय का नाश करने वाला है ।५। छै अंगों के सहित वेदों का मथन करके उसने इसका निर्माण किया है। यह समस्त दानों से उत्तम दश सहस्र अश्वमेधों के पुण्य से अधिक पुण्य युक्त होता है ।६। यह व्रत समस्त मंगलों का प्रदान करने वाला परम पुण्य और सब शत्रुओं का नाश

करने वाला होता है। जो जन्तु इस संसार रूपी सागर में मग्न हो रहे हैं उनको भी मोक्ष प्रदान करने वाला है।७।

सर्वव्याधिहरं चैव सर्वज्वरविनाशनम्।
देवैरनुष्ठितं पूर्वं ब्रह्मणा विष्णुना तथा।८।
कृत्वाऽकनीयसं लिंग स्नाप्य चंदनवारिणा।
चैत्रमासादि विप्रेंदाः शिवलिंगव्रत चरेत्।९।
कृत्वा हैमं शुभ पद्मं कर्णिकाकेसरान्वितम्।
नवरत्नैश्च खचितमष्टपत्र यथाबिधि।१०।
कर्णिकायां न्यसेल्लिग स्फाटिकं पीठसंयुतम्।
तत्र भक्त्या यथान्यायमर्चयेद्विल्वपत्रकैः।११।
सितैः सहस्रकमलै रक्तैर्नीलोत्पलैरपि।
श्वेतार्कर्णिकारैश्च करवीरैबकैरपि।१२।
एतैरन्यैर्यथालाभ गायत्र्या तस्य सुव्रताः।
संपूज्य चौव गंधाद्यैर्धूपैर्दीपैश्च मंगलैः।१३।
नीराजनाद्यैश्चन्यैश्च लिंगमूर्ति महेश्वरम्।
अगरुं दक्षिणे दद्यादघोरेण द्विजोत्तमाः।१४।

यह पाशुपत व्रत समस्त व्याधियों के हरण करने वाला तथा समस्त ज्वरों के विनाश करने वाला है। इस महाव्रत को पहिले देवों ने ब्रह्मा-ने तथा विष्णु ने किया था।८। एक विशाल लिंग की रचना करके फिर चन्दन जल के द्वारा स्नपन कराना चाहिए : हे विप्र वृन्द ! इस व्रत अर्थात् शिव लिंग व्रत को चैत मास के आदि में करना चाहिये।९। सुवर्ण का अत्यन्त शुभ कर्णिका और केसरों से समन्वित पद्म की रचना करे और उसे आठ पत्रों वाला यथा विधि नौ प्रकार के रत्नों से रचित कराना चाहिये।१०। स्फटिक की पीठ से संयुक्त लिंग को कर्णिका में व्यस्त करना चाहिए। वहाँ पर भक्ति के भाव से यथा विधि विल्व पत्रों के द्वारा अर्चन करना चाहिए।११। श्वेत सहस्र कमलों से रक्त तथा नील कमलों से श्वेत अर्क के कर्णिकारों से करवीर और बकों से तथा अन्यों के द्वारा यथा लाभ गायत्री से उसका पूजन करना चाहिए

इस प्रकार से गन्धादि धूप और दीपादि के मंगल उपचारों के द्वारा भली-भांति पूजन करके तथा अन्य नीराजन आदि लिंग मूर्त्ति महेश्वर का अर्चन करे। हे द्विजोत्तमो ! इसके उपरान्त अघोर मन्त्र के द्वारा दक्षिण भाग से अगरु देना चाहिये ।१२।१३।१४।

पश्चिमे सद्यमंत्रेण दिव्यां चैव मनः शिलाम् ।
उत्तरे वामदेवेन चन्दन वापि दापयेत् ।१५।
पुरुषेण मुनिश्रेष्ठा हरितालं च पूर्वतः ।
सितागरूद्भव विप्रा स्तथा कृष्णागरूस्वम् ।१६।
तथा गुग्गुलुधूपं च सौगंधिकमनुत्तमम् ।
सितारं नाम धूपं च दद्यादीशायं भक्तितः ।१७।
महाचरुर्निवेद्यः स्यादाढकान्नमथापि वा ।
एतद्वः कथितं पुण्यं शिवलिंगमह व्रतम् ।१८।
सर्वमासेषु सामान्यं विशेषोपि च कीर्त्यते ।
वैशाखे वज्रलिग च ज्येष्ठे मारकतं तथा ।१९।
आषाढे मौक्तिकं लिंग श्रावरो नीलनिर्मितम् ।
मासि भाद्रपदे लिगं पद्मरागमयं शुभम् ।२०।
आश्विने चव विप्रेन्द्राः गोमेदकमयं शुभम् ।
प्रवालेनैव कार्तिक्यां तथा वै मार्गशीर्षके ।२१।
वैडूर्यनिर्मितं लिंग पुष्परागेण पुष्यके ।
माघे च सूर्यकान्तेन फाल्गुने स्फाटिकेन च ।२२।

पश्चिम में सद्य मन्त्र के द्वारा दिव्य मैनसिल तथा उत्तर में वामदेव मन्त्र के द्वारा चन्दन देना चाहिये ।१५। हे मुनिश्रेष्ठो ! याजक पुरुष को पूर्व में हरिताल देवे और श्वेत चन्दन से समुत्पन्न एवं कृष्ण अगरु से निर्मित तथा गूगल की अत्युत्तम धूप जो कि अति सुगन्धि से युक्त हो, और सितार नामक धूप ईश को आघ्राण करने के लिये भक्ति पूर्वक देनी चाहिये ।१६।१७। इसके अनन्तर महाचरु को निवेदन करना चाहिये अथवा आढक अन्न निवेदित करे। यह परम पुण्य शिव लिंग का महाव्रत मैंने आपको बतला दिया है ।१८। यह समस्त मासों में

साधारण होता है। इसकी जो कुछ विशेषता होती है वह भी बतलाई जाती है। वैशाख मास में वज्र लिंग और ज्येष्ठ मास में मरकतमणि से निर्मित लिंग का पूजन करना चाहिये।१९। आषाढ़ मास में मुक्ताओं से निर्मित लिंग का यजन करे और श्रावण में नीलमणि के लिंग का अर्चन करना चाहिये। भाद्रपद मास में पद्मराग के शुभ शिव लिंग के पूजन का विशेष फल होता है।२०। आश्विन में हे विप्रगण! गोमेद नामक रत्न से निर्मित शिव लिंग का पूजन करे। कार्त्तिक मास में प्रवाल (मूंगा) के लिंग का तथा मार्गशीर्ष में वैडूर्य रचित लिंग का यजन करना चाहिये। पौष मास में पुण्य राग रत्न द्वारा निर्मित लिंग का और माघ में सूर्यकान्त मणि के लिंग का एवं फागुन में स्फटिक रत्न से विरचित लिंग का यजन करने से विशेष फल प्राप्त होता है।२१।२२।

सर्वमासेषु कमलं हैममेकं विधीयते।
अलाभे राजतं वापि केवलं कमलं त वा।२३।
रत्नानामप्यलाभे तु हेम्ना वा राजतेन वा।
रजतस्याप्यलाभे तु ताम्रलोहेन कारयेत्।२४।
शैलं वा दारुजं वापि मृन्मय वा यवेदिकम्।
सर्वगंधमयं वापि क्षणिकं परिकल्पयेत्।२५।
हैमंतिके महादेवं श्रीपत्रेणैव पूजयेत्।
सर्वमासेषु कमलं हैममेकमथापि वा।२६।
राजतं वापि कमलं हैम कर्णिकमुत्तमम्।
राजतस्याप्यभावे तु बिल्वपत्रैः समर्चयेत्।२७।
सहस्रकमलालाभे तदर्धेनापि पूजयेत्।
तदर्धार्धेन वा रुद्रमष्टोत्तरशतेन वा।२८।

समस्त मासों में कमल और एक हेम निर्मित शिव लिंग के पूजन का विधान होता है। यदि सुवर्ण निर्मित का लाभ न हो सके तो चाँदी से बनाये हुये लिंग का या केवल कमल का ही अर्चन करे।२३। कोई भी उपर्युक्त रत्नों की प्राप्ति न होवे तो रजत का और चांदी का भी

लाभ न होवे तो ताम्र अथवा लौह निर्मित लिङ्ग का ही पूजन करना चाहिये ।२४। अथवा शैल-दारुज (काष्ठ से निर्मित मृन्मय (मिट्टी से रचित) सर्व वेदिक-सर्व गन्धमय अथवा क्षणिक लिङ्ग की रचना कर लेनी चाहिये ।२५। हेमन्त ऋतु में विल्वदल के द्वारा ही महादेव का पूजन करना चाहिये । समस्त मासों में कमल अथवा एक हेम लिंग का यजन करे । रजत अथवा कमल उत्तम हैम कर्णिका से युक्त का पूजन करना चाहिये । यदि राजत का भी अभाव हो तो बिल्व पत्रों से अर्चन करे ।२६।२७। एक सहस्र कमलों का लाभ न हो सके तो इससे आधी संख्या से और इतने भी न मिलें तो इसकी भी आधी संख्या वाले कमलों से अथवा अष्टोत्तरशत से ही रुद्र की अर्चना करनी चाहिये ।२८।

बिल्वपत्रे स्थिता लक्ष्मीर्देवी लक्षणसंयुता ।
नीलोत्पलेम्बिका साक्षादुत्पले षण्मुखः स्वयम् ।२९।
पद्माश्रितो महादेवः सर्वदेवपतिः शिवः ।
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन श्रीपत्रं न त्यजेद्बुधः ।३०।
नीलोत्पलं चोत्पलं च कमलं च विशेषतः ।
सर्ववश्यकरं पद्मं शिवा सर्वार्थसिद्धिदा ।३१।
कृष्णागरुसमुद्भूतं सर्वपापनिकृंतनम् ।
गुग्गुलु प्रभृतीनां च दीपानां च निवेदनम् ।३२।
सर्वरोगक्षयं चैव चंदनं सर्वसिद्धिदम् ।
सौगंधिकं तथा धूपं सर्वकामार्थसाधकम् ।३३।
श्वेतागरूद्भवं चैव तथा कृष्णागरूद्भवम् ।
सौम्यं सीतागरधूपं च साक्षान्निर्वाणसिद्धिदम् ।३४।
श्वेतार्ककुसुमे साक्षाच्चतुर्वक्त्रः प्रजापतिः ।
कर्णिकाराय कुसुमे मेधा साक्षाद्व्यवस्थिता ।३५।

विल्व पत्र में लक्षण से समन्वित लक्ष्मी देवी स्थित रहती है । नीलोत्पल में साक्षात् अम्बिका विराजमान रहती हैं । उत्पल में षण्मुख विराजमान रहा करते हैं । पद्म में समस्त देवों के स्वामी महादेव विद्यमान हैं । इसलिए समस्त प्रयत्नों के साथ श्रीपत्र अर्थात् बिल्वपत्र को

बुद्धिमान् याजक के द्वारा कभी नहीं त्यागना चाहिये ।२९।३०। नीलोत्पल-उत्पल और विशेषकर कमल तथा पद्म सबको वश्य करने वाला होता है । शिला समस्त अर्थों से प्रदान करने वाली बताई गई है ।३१। कृष्णागरु से समुद्भूत धूप समस्त पापों का छेदन करने वाला होता है । गुग्गुलु आदि दीपों का निवेदन भी पाप नाशक होता है ।३२। समस्त सिद्धियों का प्रदान करने वाला चन्दन होता है और सम्पूर्ण रागों का क्षय करने वाला होता है । सौगन्धिक अर्थात् सुगन्ध से समन्वित धूप समग्र काम तथा अर्थों का साधक होता है ।३३। श्वेत अगरु से उत्पन्न किया हुआ तथा कृष्ण अगरु से बनाया हुआ और सौम्य सितारी धूप साक्षात् निर्वाण के देने वाला होता है अर्थात् इससे निर्वाण की सिद्धि होती है ।३४। श्वेत आक के पुष्प में साक्षात् चतुर्मुख प्रजापति स्थित रहा करते हैं । कर्णिकार के पुष्प में साक्षात् मेधा व्यवस्थित है ।३५।

करवीरे गणाध्यक्षो बके नारायणः स्वयम् ।
सुगंधिषु च सर्वेषु कुसुमेषु नागात्मजा ।३६।
तस्मादेतैर्यथालाभं पुष्पधूपादिभिः शुभैः ।
पूजयेद्देवदेवेशं भक्त्या वित्तानुसारतः ।३७।
निवेदयेत्ततो भक्त्या पायसं च महाचरुम् ।
सघृतं सोपदंशं च सर्वद्रव्यसमन्वितम् ।३८।
शुद्धान्नं वापि मुद्गान्नताढकं चार्धकं तु वा ।
चामरं तालवृंतं च तस्मै भक्त्या निवेदयेत् ।३९।
उपहाराणि पुण्यानि न्यायेनैवार्जितान्यपि ।
नानाविधानि चार्हाणि प्रोक्षितान्यंभसा पुनः ।४०।
निवेदयेच्च रुद्राय भक्तियुक्तेन चेतसा ।
क्षीराद्वै सर्वदेवानां स्थित्यर्थममृतं ध्रुवम् ।४१।
विष्णुना जिष्णुना साक्षादन्ने सर्व प्रतिष्ठितम् ।
भूतानामन्न दानेन प्रीतिर्भवति शंकरे ।४२।

करवीर के पुष्प में गणों के स्वामी विराजमान हैं और बक पुष्प में स्वयं नारायण स्थित होते हैं । जितने भी अन्य सुगन्धित पुष्प हैं उन

सब में नगात्मजा देवी समास्थित रहा करती हैं।३६। अतएव इन पुष्पों के द्वारा जो भी जिस समय में प्राप्त हो सकें लाभानुसार पुष्प दीप आदि शुभ उपचारों से अपने वित्त के अनुकूल भक्ति-भाव पूर्वक देवदेवेश का पूजनार्चन करना चाहिये।३७। इसके अनन्तर भक्ति से पायस और महाचरु का समर्पण करना चाहिये। घृत के सहित तथा उपदंश से समन्वित एवं अन्य समस्त द्रव्यों से संयुत शुद्धान्न अथवा मुद्गान्न एक आढक अथवा आधा आढक देव की सेवा में समर्पित करे। फिर चामर और ताल वृन्त महेश्वर को भक्ति के साथ निवेदित करे।३८।३९। पवित्र उपहार जो न्यायपूर्वक अर्चित किये गये हों और अनेक प्रकार के हों तथा अर्पण करने के योग्य हों, फिर शुद्ध जल से प्रोक्षित हों, उन्हें भक्ति युक्त चित्त से भगवान् रुद्र के लिए समर्पित करे। भगवान् विष्णु ने तो सब देवों की स्थिति के लिए क्षीर सागर से अमृत को उद्धृत किया था।४०।४१। अब अन्न का माहात्म्य बताते हुए कहते हैं कि अन्त में सभी प्रतिष्ठित होते हैं। प्राणियों को अन्न का दान करने से शङ्कर में प्रीति होती है।४२।

तस्मात्संपूजयेद्देवमन्ने प्राणाः प्रतिष्ठिताः।
उपहारे तथा तुष्टिर्व्यंजने पवनः स्वयम्।४३।
सर्वात्मको महादेवो गंधतोये ह्यपांपतिः।
पीठे वै प्रकृतिः साक्षान्मनदाद्यैर्व्यवस्थिता।४४।
तस्माद्देवं यजेद्भक्त्या प्रतिमासं यथाविधि।
पौर्णमास्यां व्रतं कार्यं सर्वकामार्थसिद्धये।४५।
सत्यं शौचं दया शान्तिः सन्तोषो दानमेव च।
पौर्णमास्याममावास्यामुपवासं च कारयेत्।४६।
संवत्सरांते गोदानं वृषोत्सर्गं विशेषतः।
भोजयेद्ब्राह्मणान्भक्त्या श्रोत्रियान् वेदपारगान्।४७।
तल्लिंग पूजितं तेन सर्वद्रव्यसमन्वितम्।
स्थापयेद्वा शिवक्षेत्रे दापयेद्ब्राह्मणाय वा।४८।
य एवं सर्वमासेषु शिवलिंगमहाव्रतम्।

कुर्याद्भक्त्या मुनिश्रेष्ठाः स एव तपतां वरः ।४९।

इसलिए अन्न का समर्पण करके ही देव का पूजन करना चाहिये। अन्न में प्राण प्रतिष्ठित होते हैं। उसी प्रकार से उपहार में तुष्टि होती है। व्यञ्जन में पवन स्वयं है ।४३। महादेव सर्वात्मक हैं, गन्ध-तोय में अपांपति है। पीठ से महद् आदि से व्यवस्थित साक्षात् प्रकृति है ।४४। इसलिए इस प्रकार से भक्ति-भाव से प्रतिमास में यथा विधि यजन करना चाहिये और समस्त कार्यों की सिद्धि के लिए पौर्णमासी में व्रत करना चाहिये ।४५। व्रत में सत्य-शौच-दया-शान्ति-सन्तोष और दान के नियमों का पालन करे तथा पौर्णमासी और अमावास्या में उपवास करे ।४६। जब एक सम्वत्सर पूरा हो जावे तो उसके अन्त में गो-दान करे और विशेष रूप से वृष का उत्सर्ग करे अर्थात् साँड बनाकर छोड़ना चाहिये। जो वेदों के पारगामी अर्थात् पूर्ण पण्डित हों और श्रोत्रिय हों ऐसे ब्राह्मणों को भक्तिपूर्वक भोजन कराना चाहिये ।४७। उसके द्वारा समस्त द्रव्यों से समन्वित समर्पित उस शिव लिंग को किसी शिव के क्षेत्र में अर्थात् देवालय में स्थापित कर देवे अथवा किसी यजन करने वाले योग्य ब्राह्मण को दे देना चाहिये ।४८। हे श्रेष्ठ मुनिवृन्द ! जो इस रीति एवं विधि-विधान से समस्त मासों में भक्तिपूर्वक इस शिव लिंग के महा-व्रत को किया करता है वह ही तपस्या करने वालों में परमश्रेष्ठ होता है ।४९।

सूर्यकोटिप्रतीकाशैर्विमानै रत्नभूषितैः ।
गत्वा शिवपुरं दिव्यं नेहायाति कदाचन ।५०।
अथवा ह्येकमासं वा चरेदेवं व्रतोत्तमम् ।
शिवलोकमवाप्नोति नात्र कार्या विचारणा ।५१।
अथवा सक्तचित्तश्चेद्यान्यान् सञ्चिन्तयेद्वरान् ।
वर्षमेकं चरेदेवं तांस्तान्प्राप्य शिवं व्रजेत् ।५२।
देवत्वं वा पितृत्वं वा देवराजत्वमेव च ।
गाणपत्यपदं वापि सक्तोपि लभते नरः ।५३।
विद्यार्थी लभते विद्यां भोगार्थी भोगमाप्नुयात् ।
द्रव्यार्थी च निधिं पश्येदायुः कातमश्चिरायुषम् ।५४।

यान्यांश्चिन्तयते कामांस्तांस्तान्प्राप्येह मोदते ।
एकमासव्रता देव सोंते रुद्रत्वमाप्नुयात् ।५५।
इदं पवित्रं परमं रहस्यं व्रतोत्तमं विश्वसृजापि सृष्टम् ।
हिताय देवासुरसिद्धमर्त्यविद्याधराणां परमं शिवेन ।५६।

वह अति श्रेष्ठ तपस्वी करोड़ों सूर्यों के समान तेज वाले तथा विविध रत्नों से समलङ्कृत विमानों के द्वारा अन्त में दिव्य शिवलोक में चला जाता है जहाँ से फिर इस संसार में कभी वापिस नहीं आता है ।५०। अथवा एक ही मास पर्यन्त इस परम उत्तम महाव्रत को इस विधि से कोई करता है तो उसे भी निश्चित शिवलोक की प्राप्ति होती है—इसमें कोई विचार एवं संशय करने की आवश्यकता नहीं है ।५१। अथवा शिव लिंग की समाराधना में आसक्त चित्त वाला पुरुष अन्य सकाम श्रेष्ठ पुरुषों को इस महाव्रत को बताकर उनसे कराता है और पूर्ण वर्ष पर्यन्त इस प्रकार से समाचरण किया करता है तो वह पुरुष भी उन सबको प्राप्त कराकर स्वयं भी शिव के सान्निध्य को प्राप्त किया करता है ।५२। सक्त नर भी देवत्व अर्थात् देवता का पद-पितृत्व-देवराज का स्थान और गाणपत्य को प्राप्त कर लेता है ।५३। जो कोई विद्या की चाहना करने वाला है वह लिंग व्रत के प्रभाव से विद्या की प्राप्ति करता है और जो सांसारिक भोगों के उपभोग करने की कामना करता हैं वह भोगों को प्राप्त कर लेता है । द्रव्य की इच्छा रखने वाला पुरुष निधि को पा लेता है तथा जिसकी अपनी आयु के बढ़ाने की कामना होती है वह चिरायुता का लाभ पाता है ।५४। जिन-जिन कामनाओं की पूर्ति मन मे सोचता है उन-उन कामनाओं को करके यहाँ लोक में प्रसन्न होता है । यह एक मास के व्रत का ही इतना फल होता है और अन्त में वह रुद्रत्व फी प्राप्ति करता है ।५५। यह परम उत्तम परम रहस्य (गोप्य व्रत है जिसको विश्व के स्रष्टा ने सृष्ट किया है । इसे परम भगवान् शिव ने देव-असुर-सिद्ध-विद्याधर और मनुष्यों के हित के लिए ही बनाया है । यह परम पवित्र है ।५६।

॥ ५६–शिवमहापंचाक्षर–मंत्रविधि निरूपण ॥

सर्वव्रतेषु संपूज्य देवदेवमुमापतिम् ।
जपेत्पंचाक्षरी विद्यां विधिनैव द्विजोत्तमाः ।१।
जपादेव न सन्देहो व्रतानां व विशेषतः ।
समाप्तिर्नान्यथा तस्माज्जपेत्पंचाक्षरी शुभाम् ।२।
कथं पञ्चाक्षरी विद्या प्रभावो वा कथं वद ।
क्रमोऽायं महाभाग श्रोतुं कौतूहलं हि नः ।३।
पुरा देवेन रुद्रेण देवदेवेन शंभुना ।
पार्वत्याः कथितं पुण्यं प्रवदामि समासतः ।४।
भगवन्देवदेवेश सर्वलोकमहेश्वर ।
पञ्चाक्षरस्य माहात्म्यं श्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः ।५।
पञ्चाक्षरस्य माहात्म्यं वर्षकोटिशतैरपि ।
न शक्यं कथितुं देवि तस्मात्संक्षेपतः शृणु ।६।
प्रलये समनुप्राप्ते नष्टे स्थावरजंगमे ।
नष्टे देवासुर चैव नष्टे चोरगराक्षसे ।७।

इस अध्याय में शुभ पञ्चाक्षर विधि शिव के द्वारा बताई हुई विनियोग आदि के सहित निरूपित की जाती है। सूतजी ने कहा—हे द्विजोत्तमगण ! समस्त व्रतों में देवों के देव उमा के पति शिव का भली-भाँति अर्चन करके विधिपूर्वक पञ्चाक्षरी विद्या का जप करना चाहिये ।१। इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है कि व्रतों की विशेष रूप से समाप्ति जप से ही होती हैं। अन्यथा व्रतों को पूर्णता नहीं होती है। इसलिये शुभ पञ्चाक्षरी विद्या का जप अवश्य ही करना चाहिये ।२। ऋषियों ने कहा—पञ्चाक्षरी विद्या का प्रभाव किस प्रकार से होता है और वह कैसा प्रभाव है—यह हे महाभाग ! आप उसका क्रम एवं उपाय बतलाने की कृपा करे, हमको इसके श्रवण करने की बड़ी लालसा है ।३। सूतजी ने कहा–पहिले समय में देवों के देव भगवान् शम्भु रुद्र ने इसे पार्वती से कहा था। उस पुण्यमय विद्या के प्रभाव को मैं संक्षेप में बतलाता हूँ ।४। श्रीदेवी ने कहा—हे भगवन् ! हे देवदेवेश्वर ! हे समस्त लोकों

के महेश्वर ! मैं पंचाक्षर का माहत्म्य का तत्व पूर्वक श्रवण करना चाहती हूं। श्री हरि भगवान् ने कहा—हे देवि ! इस पञ्चाक्षर का माहात्म्य इतना विशाल एवं महान् है कि सैकड़ों करोड़ वर्षों में भी कहा नहीं जा सकता है। इसलिए इसका माहात्म्य सुनना चाहती हो तो संक्षेप में ही सुनओ ।५।६। महाप्रलय के प्राप्त होने पर जब कि समस्त यह स्थावर और जंगम जगत् नष्ट हो गया था तथा देव सौर असुर-उरग और राक्षस सब नष्ट हो गये थे ।७।

सर्वं प्रकृतिमापन्नं त्वया प्रलयमेष्यति ।
एकोहं संस्थितो देवि न द्वितीयोस्ति कुत्रचित् ।८।
तस्मिन्वेदाश्च शास्त्राणि मंत्रे पंवाक्षरे स्थिताः ।
ते नाशं नैव संप्राप्ता मच्छक्त्या ह्यनुपालिताः ।९।
अहमेको द्विधाप्यासं प्रकृत्यात्मप्रभेदतः ।
स तु नारायणः शेते देवो मायामयीं तनुम् ।१०।
आस्थाय योगपर्यंकशयने तोयमध्यगः ।
तन्नाभिपंकजाज्जातः पंचवक्त्रः पितामहः ।११।
सिसृक्षमाणो लोकान्वै त्रीनशक्तोऽसहायवान् ।
दश ब्रह्मा ससर्जादौ मानसानमितोजसः ।१२।
तेषां सृष्टिप्रसिद्ध्यर्थं मां प्रोवाच पितामहः ।
मत्पुत्राणां महादेव शक्तिं देहि महेश्वर ।१ ।
इति तेन समादिष्टः पंचवक्त्रधरो ह्यहम् ।
पञ्चाक्षरान् पञ्चमुखैः प्रोक्तवान् पद्म मोनये ।१४।

यह समस्त जगत् प्रकृति में लीन हो गया था और तुम्हारे साथ महाप्रलय काल में चला जायगा। उस समय मैं एक अकेला ही संस्थित रहता हूँ। मेरे सिवाय दूसरा कोई भी कहीं नहीं रहता है ।८। उस समय में वेद और समस्त शास्त्र पंचाक्षर मन्त्र में अवस्थित हो जाते हैं। वे सब मेरी शक्ति से अनुपालित होकर नाश को प्राप्त नहीं होते हैं। ।९। मैं एक आत्मा के प्रभेद से प्रकृति से दो प्रकार का भी था। वह नारायण देव मायामयी तनु में आस्थित होकर जल के मध्य में रहते हुए

योग के पर्यङ्क शयन में सोया करते हैं। उनकी नाभि में समुत्पन्न पंकज से पंच वक्त्र पितामह उत्पन्न हुए थे ।१०।११। तीन लोकों की सृष्टि करने की इच्छा रखते हुए भी सहायता से रहित होकर अशक्त हो गये थे। फिर ब्रह्मा ने आदि में अपरिमित ओज से संयुक्त दश को मन से उत्पन्न किया था ।१२। उनकी सृष्टि की प्रसिद्धि के लिए पितामह ने मुझ से कहा—हे महेश्वर ! हे महादेव ! मेरे पुत्रों को शक्ति प्रदान करो ।१३। इस तरह से पितामह के द्वारा आज्ञा प्राप्त करने वाले मैंने जो कि मैं पाँच मुखों को धारण करने वाला था अपने पाँच मुखों से पाँच अक्षरों को पद्म योनि को बताया था ।१४।

तान्पंचवदनैर्गृह्णन् ब्रह्मा लोकपितामहः।
वाच्यवाचकभावेन ज्ञातवान्परमहेश्वरम् ।१५।
वाच्यः पंचाक्षरैर्देवि शिवस्त्रै लोक्यपूजितः।
वाचकः परमो मंन्त्रस्तस्य पंचाक्षरः स्थितः ।१६।
ज्ञात्वा प्रयोगं विधिना च सिद्धि लब्ध्वा तथा पंचमुखो महात्मा।
प्रोवाच पुत्रेषु जगद्द्वितीय मंन्त्रं महार्थं किल पंचवर्णम् ।१७।
ते लब्ध्वा मंत्ररत्नं तु साक्षाल्लोकपितामहात्।
तमाराधयितुं देवं परात्परतरं शिवम् ।१८।
ततस्तुतोष भगवान् त्रिमूर्तीनां परः शिवः।
दत्तबानखिलं ज्ञानमणिमादिगुणाष्टकम् ।१९।
तेपि लब्ध्वा वरान्विप्रास्तदाराधनकांक्षिणः।
मेरोस्तु शिखरे रम्ये मुञ्जवान्नाम पर्वतः ।२०।
मत्प्रियः सततं श्रीमान्मद्भूतैः परिरक्षितः।
तस्याभ्याशे तपस्तात्रं लोकसृष्ठिसमुत्सुकाः ।२१।

लोकों के पितामह ने उन पाँच अक्षरों को अपने पांच मुखों से ग्रहण करते हुए वाच्य-वाचक भाव से परमेश्वर का ज्ञान प्राप्त किया था ।१५। हे देवि ! त्रैलोक्य के द्वारा पूजित शिव तो पंचाक्षरों के द्वारा वाच्य था और वाचक परम मन्त्र पञ्चाक्षर स्वरूप में स्थित था ।१६। विधि के सहित प्रयोग को जानकर तथा सिद्धि को प्राप्त करके पञ्चमुख महान्

आत्मा वाले ने उस महान् अर्थ वाले पाँच वर्णों से युक्त मन्त्र को जगत् के हित के लिये पुत्रों को बताया था ।१७। उन दश ब्रह्मा के मानस पुत्रों ने साक्षात् लोक पितामह से उस मन्त्र रत्न की प्राप्ति करके परात्पर देव शिव की आराधना करने लगे थे ।१८। इसके उपरान्त त्रिमूर्तियों पर प्रधानदेव शिव भगवान् अत्यन्त प्रसन्न हो गये थे। फिर उन्होंने सन्तुष्ट होकर अणिमा आदि अष्ट सिद्धियों का पूर्ण ज्ञान प्रदान कर दिया था ।१९। वे सब भी हे विप्रो ! उनके आराधना की आकाङ्क्षा वाले वरों को प्राप्त करके पर्वत पर चले गये थे। मेरु पर्वत के शिखर पर एक अत्यन्त रमणीय मुज्जवान् नामक पर्वत है ।२०। शह पर्वत मेरा अत्यन्त सर्वदा प्रिय है और श्री सम्पन्न वह मेरे भूतगणों के द्वारा परिरक्षित भी है। उसके ही समीप में लोकों की सृष्टि करने के लिए परम उत्सुक उन्होंने तीव्र तपस्या की थी ।२१।

दिव्यवर्षसहस्रं तु वायुभक्षाः समाचरन् ।
तिष्ठंतोनुग्रहार्थाय देवि ते ऋषयः पुरा ।२२।
तेषां भक्तिमहं दृष्ट्वा सद्यः प्रत्यक्षतामियाम् ।
पंचाक्षरमृषिच्छन्दो दैवतं शक्तिबीजवत् ।२३।
न्यासं षडगं दिग्बंधं विनियोगमशेषतः ।
प्रोक्तवानहमार्याणां लोकानां हितकाम्यया ।२४।
तच्छ्रुत्वा मंत्रमाहात्म्यमृषयस्ते तपोधनाः ।
मंत्रस्य विनियोगं च कृत्वा सर्वमनुष्ठिता ।२५।
तन्माहात्म्यात्तदालोकान्सदेवासुरमानुषान् ।
वर्णान्वर्णविभागांश्च सर्वधर्मांश्च शोभनान् ।२६।
पूर्वकल्पसमुद्भूताञ्छ्रुतवंयो यथा पुरा ।
पंचाक्षरप्रभावाच्च लोका वेदा महर्षयः ।२७।

वहाँ पर एक सहस्र दिव्य वर्षों तक वायु का भक्षण करते हुए उग्र तप किया था। हे देवि ! पहिले उस समय में वे ऋषिगण अनुग्रह की प्राप्ति के प्रयोजन से वहाँ तप में स्थित रहे थे ।२२। उनकी अति तीव्र भक्ति को देखकर मैं तुरन्त ही प्रत्यक्ष हो गया था । उस पञ्चाक्षर मन्त्र

को ऋषि-छन्द-देवता-बीज और शक्ति सबसे युक्त-षडङ्गन्यास-दिग्बन्ध और विनियोग इन सबके सहित पूर्ण रूप में लोकों के हित की कामना से उन आर्यों को मैंने बतला दिया था।२३।२४। तप के धम वाले अर्थात् परम तपस्वी उन ऋषियों ने मन्त्र का माहात्म्य श्रवण करके और मन्त्र का विनियोग करके उन्होंने पूर्णतया अनुष्ठान किया था।२५। उसके माहात्म्य से उस समय में देव-असुर और मनुष्यों के सहित समस्त लोक-वर्ण आश्रय के विभाग और समस्त शोभन धर्म जो कि पहले कल्प में समुद्भूत थे इस पञ्चाक्षर के प्रभाव से लोक-वेद तथा महर्षि सब ज्ञाता हो गये थे।२६-२७।

॥ ६०—ध्यानयज्ञ माहात्म्य-वर्णन ॥

जपाच्छ्रेष्ठतमं प्राहुर्ब्राह्मणा दग्धकिल्विषाः।
विरक्तानां प्रवुद्धानां ध्यानयज्ञं सुशोभनम्।१।
तस्माद्वदस्व सूताद्य ध्यानयज्ञमशेषतः।
विस्तरात्सर्वयत्नेन विरक्तानां महात्मनाम्।२।
तेषां तद्वचनं श्रुत्वा मुनीनां दीर्घसत्रिणाम्।
रुद्रेण कथितं प्राह गुहां प्राप्य महात्मनाम्।३।
संहृत्य कालकूटाख्यं विषं वै विश्वकर्मणा।
गुहां प्राप्य सुखासीनं भवान्या सह शङ्करम्।४।
मुनयः संशितात्मानः प्रणेमुस्तं गुहाश्रयम्।
अस्तुवंश्च ततः सर्वे नीलकंठमुमापतिम्।५।
अत्युग्रं कालकूटाख्यं संहृतं भगवंस्त्वया।
अतः प्रतिष्ठितं सर्वं त्वया देव वृषध्वज।६।
तेषां तद्वचनं श्रुत्वा भगवान्नीललोहितः।
प्रहसन्प्राह विश्वात्मा सनन्दनपुरोगमान्।७।

इस अध्याय में कालकूट नाम वाला समस्त दुःखों का निवारक ध्यान तथा शिव के द्वारा वर्णित ज्ञान का माहात्म्य निरूपित किया जाता है। ऋषियों ने कहा—अपने किल्विषों को दग्ध कर देने वाले ब्राह्मण प्रबुद्ध अर्थात् ज्ञानी विरक्तों का परम शोभन ध्यान यज्ञ को जप

से अधिक श्रेष्ठ बताते हैं। इसलिए हे सूत जी ! आप हमको वह ध्यान यज्ञ पूर्ण रूप से बताने की कृपा करें जिसको महान् आत्मा वाले विरक्त लोग किया करते हैं। ।१।२। दीर्घसत्र करने वाले उन मुनियों के इस वचन को सुनकर विश्व-कर्मा भगवान् रुद्र ने कालकूटाख्य विष को संहृत करके महात्माओं की गुहा में जाकर कहा था उसे कहा। सूतजी ने कहा—गुहा में जाकर भगवान् शङ्कर भवानी के साथ सुख पूर्वक विराजमान थे ।३।४। संशय ने पूर्ण आत्मा वाले मुनिगण ने वहाँ गुहा में आश्रय ग्रहण करने वाले भगवान् शङ्कर को प्रणाम किया था। फिर सबने उमा के स्वामी नील कण्ठ की स्तुति की थी ।५। मुनियों ने कहा—हे भगवन् ! आपने अत्यन्त उग्र कालकूट विष को संहृत किया है। हे वृषध्वजदेव ! इससे आपने सबकी रक्षा कर प्रतिष्ठित करने की कृपा की है। ।६। उन सबके इस वचन का श्रवण कर विश्व की आत्मा भगवान् नील लोहित हँसकर उनसे बोले जिनमें कि सनन्दन प्रमुख थे ।७।

किमनेन द्विजश्रेष्ठा विषं वक्ष्ये सुदारुणम् ।
संहरेत्तद्विषं यस्तु स समर्थो ह्यनेन किम् ।८।
न विषं कालकूटाख्यं संसारो विषमुच्यते ।
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन संहरेत सुदारुणम् ।६।
संसारो द्विविधः प्रोक्तः स्वाधिकारानुरूपतः ।
पुंसां समूढचित्तानामसंक्षीणः सुदारुणः ।१०।
ईषणारागदोषेण सर्गो ज्ञानेन सुव्रताः ।
तद्वशादेव सर्वेषां धर्माधर्मौ न संशयः ।११।
असन्निकृष्टे त्वर्थेपि शास्त्रं तच्छ्रवणत्सताम् ।
बुद्धिमुत्पादयत्येव संसारे विदुषां द्विताः ।१२।
तस्माद्दृष्टानुश्रविकं दुष्टमित्युभयात्मकम् ।
संत्यजेत्सर्वयत्नेन विरक्तः सोभिधीयते ।१३।
शास्त्रमित्युच्यतेऽभागं श्रुतेः कर्मसु तद्द्विजा ।
मूर्धानं ब्राह्मणः सारमृषीणां कर्मणः फलम् ।१४।

शिव ने कहा—हे द्विजश्रेष्ठो ! इससे क्या विष को मैं सुदारुण कहूंगा । जो इस विष का संहार करने वाला है वह परम समर्थ है। इसलिए इससे क्या होता है ।८। कालकूट नाम वाला विष नहीं है। यह संसार ही महाविष है । इसलिए सम्पूर्ण प्रयत्नों के द्वारा इस सदारुण विष का संहरण करना चाहिए ।९। अपने अधिकार के अनुरूप यह संसार दो प्रकार का बताया गया है जो कि संमूढ़ चित्त वाले पुरुषों का असंक्षीण और अत्यन्त दारुण होता है ।१०। अब संसार का मूल बताते है । आप लोग तो ज्ञान से सुव्रत वाले हो—यह इच्छा और विषयों में प्रीति जो है यही इसका सर्ग है । इन्हीं के कारण से सबका धर्म और अधर्म होता है—इसमें कुछ भी संशय नहीं है ।११। अप्रत्यक्ष स्वर्गादि अर्थ में आस्तिक जीवों को श्रवण करने से उसके धर्म का प्रतिपादक शास्त्र संसार में बुद्धि को उत्पन्न कर ही देता है ।१२। इसलिए यह विष रूप होने से दो प्रकार का होता है । एक तो दृष्ट जो ऐहिक है अर्थात् इसी लोक में होने वाला है और दूसरा पारलौकिक है जिसका अनुश्रवण किया करते हैं । ये दोनों ही प्रकार का दोष युक्त है—ऐसा समझकर जो इसे पूर्ण प्रयत्न से त्याग देता है वही विरक्त कहा जाया करता ।१३। श्रुति के प्रतिपादित कर्मों में अनेक देशी वेद का मस्तक स्वरूप अतीन्द्रिय दृष्टि वाले ऋषियों का सार निष्काम कर्म का फल जो अध्यात्म शास्त्र है वह ही शास्त्र कहा जाता है ।१४।

ननु स्वभावः सर्वेषां कामो दृष्टो न चान्यथा ।
श्रुतिः प्रवर्तिका तेषामिति कर्मण्यतद्विदः ।१५।
निवृत्तिलक्षणा धर्म समर्थाना मिहोच्यते ।
तस्माद्ज्ञानमूलो हि संसारः सवदेहिनाम् ।१६।
कला संशोषमायाति कमणान्यस्वभावतः ।
सकलस्त्रिविधो जीवा ज्ञानहीनस्त्वविद्यया ।१७।
नारकी प पकृत्स्वर्गी पुण्यकृत्पुण्यगौरवात् ।
व्यतिमिश्रेण वै जीवश्चतुर्धा संव्यवस्थितः ।१८।
उद्भिजः स्वेदजश्चैव अंडजो वै जरायुजः ।

एव व्यवस्थितो देही कर्मणाज्ञो ह्यनिर्वृ तः ।१९।
प्रजया कर्मणा मुक्तिर्धनेन च सतां न हि ।
त्यागेनैकेन मुक्तिः स्यात्तदभावाद्भ्रमत्यसौ ।२०।
एवमज्ञानदोषेणनानाकर्मवशेन च ।
षट्कौशिक समुद्भूतं भजत्येष कलेवरम् ।२१।

सब का स्वभाव काम देखा जाता है । इसके विपरीत नहीं देखा जाता है । उनमें श्रुति प्रवृत्त कराने वाली होती है किन्तु कर्म में जो ज्ञाता नहीं होते हैं वे ही अन्यथा कहा करते हैं ।१५। जो समर्थ अर्थात् विरक्त हैं उनका धर्म निवृत्ति के लक्षण वाला होता है और वही धर्म-इस नाम से कहा जाया करता है । इसलिए समस्त देहधारियों को यह संसार अज्ञान के मूल वाला होता है ।१६। अन्य स्वभाव से काम्य कर्म के वशीभूत होकर यह जीव कला संशोष को प्राप्त हो जाती है अर्थात् सकल हो जाता है । वह सकल जीव तीन प्रकार का है जो अविद्या से ज्ञान हीन होता है ।१७। पापों के करने वाला नारकी-पुण्य कर्म करने वाला स्वर्गी होता है क्योंकि यह पुण्य गौरव से होता है । पुण्य तथा पाप स्वरूप व्यति मिश्रित कर्म से युक्त होता है । उद्भिजादि देह से युक्त चार प्रकार का जीव संव्यवस्थित होता है ।१८। उद्भिज-स्वेदज-अण्डज और जरायुज-इन प्रकारों से कर्म से यह अज्ञ और अनि-वृ त देही व्यवस्थित होता है।१९। सत्पुरुषों की मुक्ति प्रजा से, कर्म से और धन ने मुक्ति नहीं होती है । केवल एक त्याग ही ऐसा है जिससे जन्म-मरण रूपी आवागमन के भव बन्धन से छुटकारा होता है । इसके अभाव होने पर यह जीव भ्रमता रहा करता है ।२०। इस प्रकार से अज्ञान के दोष से अनेक प्रकार के कर्मों के कारण से स्नायु आदि छै कोशों से युक्त इस कलेवर को धारण कर समुत्पन्न हुआ करता है और उसका सेवन किया करता है ।२१।

गर्भे दुःखान्यनेकानि योनिमार्गे च भूतले ।
कौमारे यौवने चैव वार्धके मरणेपि वा ।२२।
विचारतः सतां दुःख स्त्रीसंसर्गादिभिर्द्विजाः ।

दुःखेनैकेन वै दुःखं प्रशाम्यंतीह दुःखिनः ।२३।
न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति ।
हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय एवाभिवर्धते ।२४।
तस्माद्विचारतो नास्ति संयोगादपि वै नृणाम् ।
अर्थानामर्जनेष्येवं पालने च व्यये तथा ।२५।
पैशाचे राक्षसे दुःखं याक्षे चैव विचारतः ।
गांधर्वे च तथा चांद्रे सौम्यलोके द्विजोत्तमाः ।२६।
प्राजापत्ये तथा ब्राह्मे प्राकृते पौरुषे तथा ।
क्षयसातिशयाद्यैस्तु दुःखैर्दुःखानि सुव्रताः ।२७।
तानि भाग्यान्यशुद्धानि संत्यजेच्च धनानि च ।
तस्मादष्टगुणं भोगं तथा षोडशधा स्थितम् ।२८।

यह संसार पूर्ण रूप से दुःखमय है । पहिले जब यह जीव गर्भावास में आता है तो वहाँ पर नौ मास तक रहने में बड़ी पीड़ा का अनुभव होता है । गर्भ की अन्ध कोठरी में एक ही नहीं अनेकों दुःखों को सहना पड़ता है । फिर योनि द्वारा तन्त्री के द्वारा तार की भांति जन्म धारण करने में बड़ी वेदना हुआ करती है । भूतल में आने पर बहुत से शारीरिक कष्ट सहता है बचपन यौवन और वार्धक्य में अगणित सांसारिक कष्ट भोगता और अन्त में मरने का भी महान् दुःख होता है क्योंकि इस शरीर का त्याग करने में जीव को बड़ी वेदना हुआ करती है । ।२२। हे द्विजवृन्द ! विचार किया जावे तो सत्पुरुषों को स्त्री के संसर्ग आदि से बड़ा दुःख होता है । यहाँ संसार में ये दुःखित प्राणी एक दुःख से दूसरे दुःख को प्रशमित करने की चेष्टा किया करते हैं ।२३। कामनाओं की उपभोग द्वारा पूर्त्ति कर देने पर शान्ति नहीं हुआ करती है । काम पूर्त्ति से तो वह कामना हवि के जलने से अग्नि की भांति अत्यधिक बढ़ जाया करती हैं ।२४। इसलिये विचार से तथा मानवों के संयोग होने से दुःखों का छुटकारा नहीं होता है । धन के अर्जन में बहुत कष्ट होता है फिर उसकी रक्षा करने में तथा व्यय करनेमें भी महान् दुःख होता है ।२५। विचार किया जावे तो पैशाच-राक्षस और यक्ष इन सभी

पदों में दुःख भरा हुआ है। हे द्विजवृन्द! गान्धर्व-चान्द्र और सौम्य में तथा प्राजापत्य-ब्राह्म प्राकृत और पौरुष में सर्वत्र क्षय, अति श्रेष्ठता कारण वाले दुःखों से भी अनेक दुःख हुआ करते हैं।२६।२७। पूर्वोक्त संसार से सम्वन्ध रखने वाले भाग्य अशुद्ध होते हैं। अतएव धनों का भली-भाँति त्याग कर देना चाहिए क्योंकि धन कष्ट के अतिरिक्त कोई भी कल्याण नहीं होता है। पार्थिवादि ऐश्वर्य अष्टगुण दुःखरूप होता है और आप्य ऐश्वर्य सोलह गुना दुःख स्वरूप होता है।२८।

चतुर्विंशत्प्रकारेण संस्थितं चापि सुव्रताः।
द्वात्रिंशद्भेदमनघाश्चत्वारिंशद्गुणं पुनः।२९।
तथाष्टचत्वारिंशच्च षट्पंचाशत्प्रकारतः।
चतुःषष्टिविध चैव दुःखमेव विवेकिनः।३०।
पार्थिवं च तथाप्यं च जैतसं च विचारतः।
वायव्यं च तथा व्यौम मानसं च यथाक्रमम्।३१।
अभिमानिकमप्येवं बौद्धं प्राकृतसेव च।
दुःखमेव न सन्देहो योगिनां ब्रह्मवादिनाम्।३२।
गौणं गणेश्वराणां च दुःखमेव विचारतः।
आदौ मध्ये तथा चांते सर्वलोकेषु सर्वदा।३३।
वर्तमानानि दुःखानि भविष्याणि यथातथम्।
दोषदुष्टेषु देशेषु दुःखानि विविधानि च।३४।
न भावयंत्यतीतानि ह्यज्ञाने ज्ञानमानिनः।
क्षुव्द्याधेः परिहारार्थं न सुखायान्नमुच्यते।३५।

इस प्रकार से आठ-आठ की संख्या वृद्धि करने पर चौबीस गुना बत्तीस गुना-चालीस गुना-अड़तालीस-छप्पन तथा चौंसठ प्रकार का दुःख विवेकी को होता है।२९।३०। इन आठ से गुणित दुःखों का क्रम पार्थिव आप्य-तैजस-वायव्य-व्यौम और मानस-आभिमानिक-बौद्ध और प्राकृत इस रीति से है। जो ब्रह्मवादी योगी पुरुष हैं उनको दुःख ही दुःख होता है—इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है।३१।३२। जो गणेश्वर हैं अर्थात् शिवगण के स्वामी हैं उनको गौण दुःख होता है। इस प्रकार से

विचार किया जावे तो सभी लोकों में सर्वदा यथातथ दुःख ही हैं–ऐसा जान लेना चाहिए ।३३। दोषों से दूषित देशों में विविध भाँति के दुःख हुआ करते हैं । कुछ दुःख वर्त्तमान होते हैं और कुछ भविष्य में होने वाले दुःख हुआ करते हैं ।३४। जो अतीत अर्थात् अति क्रान्त हुए दुःख हैं वे अज्ञान में ज्ञान के मानी को भावित नहीं होते हैं । क्षुधा की व्याधि के परिहार के लिए और सुख प्राप्त करने के वास्ते अन्त नहीं कहा जाता है ।३५।

यथेतरेषां रोगाणामौषधं न सुखाय तत् ।
शीतोष्णवातवर्षाद्यैस्तत्तत्कालेषु देहिनाम् ।३६।
दुःखमेव न सन्देहो न जानंति ह्यपण्डिताः ।
स्वर्गेप्येवं मुनिश्रेष्ठा ह्यविशुद्धक्षयादिभिः ।३७।
रोगैर्नानाविधैर्ग्रस्ता रागद्वेषभयादिभिः ।
छिन्नमूलतरुर्यद्वदवशः पतति क्षितौ ।३८।
पुण्यवृक्षक्षयात्तद्वद्गां पतंति दिवौकसः ।
दुःखाभिलाषनिष्ठानां दुःखभोगादिसंपदाम् ।३९।
अस्मात्तु पततां दुःखं कष्टं स्वर्गाद्दिवौकसाम् ।
नरके दुःखमेवात्र नरकाणां निषेवणात् ।४०।
विहिताकरणाच्चैव वर्णिनां मुनिपुंगवाः ।४१।

जिस प्रकार से शीत, उष्ण, वात और वर्षा आदि से तत्तत्काल में देवधारियों के अन्य रोगों के लिए जो औषध हैं वह सुख के लिये नहीं होती है ।३६। वह भी दुःख ही होता है किन्तु जो पण्डित नहीं होते हैं वे इसे जानते नहीं हैं । हे श्रेष्ठ मुनिगण ! स्वर्ग में भी विशुद्ध ज्ञान-अविशुद्ध पुण्य और उसके क्षय आदि से होने वाले राग-द्वेष-भय आदि नाना दुःख तथा रोगों से जीव ग्रस्त होते हैं और वहाँ से अर्थात् स्वर्ग से छिन्न मूल वाले वृक्ष की भाँति वश रहित होकर पुण्य के क्षीण होने पर पुनः पृथ्वी पर आकर गिरता है । पुण्य की समाप्ति होते ही स्वर्गीय सुखोपभोग समाप्त होकर पुनः भूलोक में जीवों को जन्म ग्रहण करना पड़ता है ।३७।३८। पुण्य रूपी वृक्ष के क्षय हो जाने पर अर्थात् जितना

पुण्य होता है उसका स्वर्ग में सुख भोगने पर दिवौकस (स्वर्गवासी) भी इस भूमि पर आकर गिरा करते हैं। दुःखों के अभिलाष की निष्ठा वाले दुःखभोग आदि की सम्पदा वाले स्वर्गवासियों को वहाँ से गिरते हुए महान् कष्ट एवं दुःख होता है। नरकों के निषेवरण से यहां नरक में दुःख ही होता है ।३९।४०। हे मुनि पुङ्गवो ! ब्रह्मचारियों को विहित के अकरण से ही होता है ।४१।

यथा मृगो मृत्युभयस्य भीतो उच्छिन्नवासो न लभेत निद्राम् ।
एवं यतिध्यानपरो महात्मा संसारभीतो न लभेत निद्राम् ।४२।
कीटपक्षिमृगाणां च पशूनां गजवाजिनाम् ।
दृष्टमेवासुख तस्मात्त्यजतः सुखमुत्तमम् ।४३।
वैमानिकानामप्येवं दुःख कल्पाधिकारिणाम् ।
स्थानाभिमानिनां चैव मन्वादीनां च सुव्रताः ।४४।
देव नां चैव दैत्यानामन्योन्यविजिगीषया ।
दुःखमेव नृपाणां च राक्षसानां जगत्रये ।४५।
श्रमार्थमाश्रमश्चापि वर्णानां परमार्थतः ।
आश्रमैर्न च दैवैश्च यज्ञैः सांख्यैर्व्रतैस्तथा ।४६।
उग्रैस्तपोभिर्विविधैर्दानैर्नानाविधरपि ।
न लभते तथात्मानं लभंते ज्ञ निनः स्वयम् ।४७।
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन चरेत्पाशुपतव्रतम् ।
भस्मशायी भवेन्नित्य व्रते पाशुपते बुधः ।४८।
पंचार्थज्ञानसंपन्नः शिवतत्त्वे समाहितः ।
कैवल्यकरणं योगविधिकर्मच्छिदं बुधः । ८।

जिस तरह से मृत्यु के भय से मृग उच्छिन्न निवास वाला होकर निद्रा नहीं लेता है। इसी प्रकार से ध्यान में परायण यति भी संसार से भयभीत होकर निद्रा अर्थात् मोह को प्राप्त नहीं किया करता है ।४२। कीड़े-पक्षी और मृगों का तथा हाथी और घोड़े आदि पशुओं का दुःख देखा ही हुआ है अर्थात् सबको दिखलाई दिया ही करता है। इसलिये इस सांसारिक उत्तम सुख को त्याग देना चाहिए ।४३। यहाँ के मानवों

को ही नहीं किन्तु कल्प पर्यन्त स्वर्ग में निवास करने के अधिकारी वैमानिकों (देवों) को भी दुःख होता है । तथा स्थानाभि मानी मनु आदि को भी हे सुव्रतो ! दुःख हुआ करता है ।४४। देवता आदि और दैत्यों को परस्पर में एक दूसरे को जीत लेने की इच्छा से दुःख होता है : इस त्रैलोक्य में राजाओं को तथा राक्षसों को भी दुःख हुआ करता है । ।४५। आश्रम भी श्रम के लिए ही होते हैं और परमार्थ से वर्णों का भी श्रम ही होता है । आश्रमों के द्वारा-देवों के द्वारा-य ों से सांख्य से तथा व्रतों से उग्र तपों के द्वारा और नाना प्रकार के दोनों से उस प्रकार का आत्मोत्थान प्राप्त नहीं होता है जैसा कि ज्ञानी लोग स्वयं आत्मा का उत्थान किया करते हैं ।४६।४७। इसलिए सपूर्ण प्रयत्नों के द्वारा पाशुपत महाव्रत को करना चाहिये । बुद्धिमान् पुरुष को पाशुपत व्रत में नित्य भस्म में शयन करने वाला होकर रहना चाहिए ।४८। पञ्चार्थ ज्ञान से युक्त अर्थात् पञ्चाक्षरी मन्त्र के अर्थ के ज्ञान से युक्त पुरुष शिव तत्व में समाहित होता है । ऐसा विद्वान योग की विधि से कर्मों का छेदन करने वाला कैवल्य करण को अर्थात् मोक्ष को प्राप्त किया करता है ।४९।

पंचार्थयोगसंपन्नो दु खां तंव्रजते सुधोः ।
परया विद्यया वेद्यः विदत्यपरया न हि ।५०।
द्वे विद्ये वेदितव्ये हि परा चैवापरा तथा ।
अपरा तत्र ऋग्वेदो यजुर्वेदो द्विजोत्तमाः ।५१।
सामवेदस्तथाऽथर्वो वेदः सर्वाथसाधकः ।
शिक्षा कल्पो व्याकरण निरुक्त छद एव च ।५२।
ज्योतिष चा।रा विद्या पराक्षरमिति स्थितम् ।
तदहश्यं तदग्राह्यमगोत्रं तदवर्णकम् ।५३।
तदचक्षुस्तदश्रोत्रतदपाणि अपादकम् ।
तदजातमभूतं च तदशब्दं द्विजोत्तमाः ।५४।
अस्पर्श तदरूपं च रसगंध विवर्जितम् ।
अव्ययं चाप्रतिष्ठं च तन्नित्य सर्वंग विभुम् ।५५।

महांतं तद्गृहं तं च तदजं चिन्मयं द्विजाः ।
अप्रा॰.ममनस्कं च तदस्निग्धमलोहितम् ।५६।
अप्रमेयं तदस्थूलमदीर्घं तदनुल्बणम् ।
अह्रस्वं तदपार च तदानंद तदच्युतम् ।५७।

पञ्चाक्षरी के अर्थ के योग से सम्पन्न सुधी सम्पूर्ण दुःखों का अन्त कर देता है । वह परा विद्या से वेद्य (जानने के योग्य होता है अर्थात् उस वेद्य को जानते हैं । आध्यामिकी विद्या को परा विद्या कहते हैं । अपरा विद्या से नहीं जानते हैं ।५०। दो विद्या जानने के योग्य होती हैं । एक परा विद्या है और दूसरी का नाम अपरा विद्या कहा जाता है । द्विजोत्तमो ! उन दोनों विद्याओं में जो अपरा विद्या है वह ऋग्वेद-यजुर्वेद है ।५१। सामवेद और समस्त अर्थों का साधक अथर्ववेद है । शिक्षा-कल्प-व्याकरण-निरुक्त-छन्द ये सभी अपरा विद्या में वेद तथा वेदाङ्ग आते हैं ।५२। ज्योतिष भी अपरा विद्या है । परा विद्या अक्षर है—वह अवश्य है अग्राह्य-अगोत्र- अवर्णक-अव्यय-अप्रतिष्ठित-नित्य-सर्वत्र और विभ्र है । महान्-गृह-अज-चिन्मय-अप्राण-अमनस्क-अस्निग्ध अलो-हित-अप्रमेय अस्थूल-अदीर्घ-अनुल्वग-आह्रस्व-अपार-अच्युत है ।५३।५४। ५५।५६।५७।

अनपावृतमद्वैतं तदनंतमगोचरम् ।
असंवृतं तदात्मैकं परा विद्या न चान्यथा ।५८।
परापरेति कथिते नैवेह परमार्थतः ।
अहमेव जगत्सर्वं मय्येव सकलं जगत् ।५९।
मत्त उत्पद्यते तिष्टन्मवि मय्येव लीयते ।
मत्तो नान्यदितीक्षेत मनोवाक्पाणिभिस्तथा ।६०।
सर्वमात्मनि संपश्येत्सच्चासच्च समाहितः ।
सर्वं ह्यात्मनि सपश्यन्नबाह्ये कुरुते मनः ।६१।
अधोदृष्ट्या वितस्त्यां तु नाभ्यामुपरितिष्ठवि ।
हृदय तद्विजानीयाद्विश्वस्यायतन महत् ।६२।
हृदयस्यास्य मध्ये तु पुण्डरीकमवस्थितम् ।

धर्मकंदसमुद्भूतं ज्ञाननालं सुशोभनम् ।६३।

वह अनपावृत-अद्वैत-अनन्त-अगोचर-असंवृत और वह आत्मैक है। वह परा विद्या अन्य किसी भी प्रकार से वर्णन नहीं की जा सकती है ।५८। परा और अपरा ये कही तो गई हैं किन्तु परमार्थतः यहाँ पर नहीं हैं। मैं ही यह समस्त जगत् के स्वरूप वाला हूं और मुझ में ही यह समस्त जगत् विद्यमान रहता है ।५९। यह मुझसे ही उत्पन्न होता है। मुझ में स्थित रहता हैं और मुझ में ही अन्त में लीन हो जाया करता है मुझसे अन्य को मनवाणी और याणि से नहीं देखना चाहिये ।६०। समाहित होकर सत् और असत् सबको आत्मा में देखना चाहिए सबको आत्मा में देखते हुए बाहिर में मन को न लगावे ।६१। अधोमुख से नाभि में ऊपर वितस्ति में जो रहता है उसे इस विश्व का महान् आयतन हृदय जानना चाहिये ।६३। इस हृदय के मध्य में पुण्डरीक (कमल) अवस्थित है। वह धर्म कन्द से समुत्पन्न हुआ है और ज्ञान की नाल से सुन्दर शोभा वाला है ।६३।

ऐश्वर्याष्टदलं श्वेतं परं वैराग्यकर्णिकम् ।
छिद्राणि च दिशो यस्य प्राणाद्याश्च प्रतिष्ठिताः ।६४।
प्राणाद्यैश्चैव संयुक्तः पश्यते बहुधा क्रमात् ।
दशप्राणवहा नाड्यः प्रत्येकं मुनिपुंगवा ।६५।
द्विसप्ततिसहस्राणि नाड्यः संपरिकीर्तिताः ।
नेत्रस्थं जाग्रतं विद्यात्कंठे स्वप्न समादिशेत् ।६६।
सुषुप्तं हृदयस्थं तु तुरीयं मूर्धनि स्थितम् ।
जाग्रे ब्रह्मा च विष्णुश्च स्वप्ने चैव यथाक्रमात् ।६७।
इत्थं प्रसन्न त्विज्ञ न गुरुसंपर्कजं ध्रुवम् ।
रागद्वेषानृतक्रोधं कामतृष्णदिभिः सदा ।६८।
अपरामृष्टमद्यैव विज्ञेय मुक्तिद त्विदम् ।
अज्ञानमलपूर्वत्वात्पुरुषो मलिनः स्मृतः ।६९।
तत्क्षयाद्धि भवेन्मुक्तिर्नान्यथा जन्मकोटिभिः ।
ज्ञानमेक विना नास्ति पुण्यपापपरिक्षयः ।७०।

आठ ऐश्वर्य उसके आठ दल हैं और वैराग्य ही परम श्वेत कर्णिका है। जिसके छिद्र अर्थात् पत्रान्तर दिशायें हैं। प्राणादि वायु प्रतिष्ठित हैं।६४। प्राणादि के संयोग से विशिष्ट होता हुआ जीव क्रम से बहुत प्रकार देखता है। हे मुनि पुङ्गवो! प्रत्येक में दश प्राण वह नाड़ियाँ हैं।६५। बहत्तर हजार नाड़ियाँ बताई गई हैं। जब-जब नेत्रस्थ होता है तो उसे जाग्रत समझना चाहिये और जब कण्ठ में स्थित होता है तो स्वप्नावस्थ होता है। जब हृदयस्थ होता है तो सुषुप्त होता है और मूर्धा में स्थित होने पर तुरीय अवस्था वाला होता है। ब्रह्मा-विष्णु-ईश्वर और महेश्वर ये चारों अवस्थाओं के देवता होते हैं।६६।६७। इस प्रकार से प्रसन्न विज्ञान गुरु के सम्पर्क से उत्पन्न होता है और वह ध्रुव है। वह सदा राग-द्वेष-अनृत-क्रोध-काम और तृष्णा आदि से अपरामृष्ट होता है अर्थात् रहित रहता है। इसको अब ही विशेष रूप से समझ लेना चाहिये। यह मुक्ति के प्रदान करने वाला होता है। अज्ञान मूल होने से पहिले पुरुष मलिन कहा गया है।६८।६९। उस अज्ञान के नाश होने से मुक्ति होती है। अन्यथा करोड़ों जन्मों में भी मुक्ति नहीं हो सकती है। एक ज्ञान के बिना कभी भी पुण्य और पाप का परिक्षय नहीं होता है।७०।

ज्ञानमेवाभ्यसेत्तस्मान्मुक्त्यर्थं ब्रह्मवित्तमाः।
ज्ञानाभ्यासाद्धि वै पुंसाँ बुद्धिर्भवति निर्मला।७१।
तस्मात्सदाभ्यसेज्ज्ञानं तन्निष्ठस्तत्परायणः।
ज्ञानेनैकेन तृप्तस्य त्यक्तसगम्य योगिनः।७२।
कर्तव्यं नास्ति विप्रेन्द्रा अस्ति चेत्तत्त्वविन्न च।
इह लोके परे चापि कर्तव्यं नास्ति तस्य वै।७३।
जीवन्मुक्तो यतस्तस्माद्ब्रह्मवित्परमार्थतः।
ज्ञानाभ्यासरतो नित्यं ज्ञानतत्त्वार्थवित्स्वयम्।७३।
कर्तव्याभ्यासमुत्सृज्य ज्ञानमेवाधिगच्छति।
वर्णाश्रमाभिमानी यस्त्यक्तक्रोधो द्विजोत्तमाः।७५।
अन्यत्र रमते मूढः सोऽज्ञानी नात्र संशयः।

संसारहेतुरज्ञानं संसारस्तनुसंग्रहः ।७६।
मोक्षहेतुस्तथा ज्ञान मुक्तः स्वात्मन्यवस्थितः ।
अज्ञाने सति विप्रेन्द्राः क्रोधाद्या नात्र संशयः ।७७।

हे ब्रह्मवित्तमो ! इसलिये मुक्ति के पाने के वास्ते ज्ञान का हीं अभ्यास करना चाहिये । ज्ञान के अभ्यास से पुरुषों की बुद्धि निर्मल हो जाया करती है ।७१। ज्ञान में निष्ठा रखते हुये और तत्परायण होकर इसलिए सदा ज्ञान का ही अभ्यास करना चाहिये । एक ज्ञान से संतृप्त और सङ्ग के त्याग करने वाले योगों का कुछ भी कर्तव्य नहीं है । यदि कुछ कर्त्तव्य शेष है तो समझ लो वह तत्त्व वेत्ता नहीं हैं । ज्ञान वाले योगी को इस लोक में और परलोक में कुछ भी फिर कर्त्तव्य शेष नहीं रहता है ।७२।७३। ब्रह्म का वेत्ता जिसमें परमार्थ रूप से जीवन्मुक्त हो जाता है और ज्ञानाभ्यास में रत होने वाला स्वयं ज्ञान के तत्वार्थ का ज्ञाता होता है ।७४। जो वर्णाश्रम का अभ्यास का अभिमान रखने वाला है उसे क्रोध को त्याग कर कर्तव्य के अभ्यास का त्याग कर देना चाहिये तब वह ज्ञान को ही प्राप्त कर लेता है ।७५। जो मूढ़ अन्यत्र रमण करता है वह महाज्ञानी है—इसमें तनिक भी संशय नहीं है । यह संसार तनु का संग्रह होता है और यह संसार ही अज्ञान का हेतु है । ।७६। मोक्ष का हेतु ज्ञान होता है और जो मुक्त होता है वह अपनी आत्मा ही में स्थित रहता है । हे विप्रेन्द्रगण ! अज्ञान के रहने पर ही क्रुध आदि होते हैं—इसमें सन्देह नहीं है ।७७।

क्रोधो हर्षस्तथा लोभो मोहोदंभो द्विजोत्तमाः ।
धर्माधर्मौ हि तेषां च तद्वशातनुसंग्रहः ।७८।
शरीरे सति वै क्लेशः सोविद्यां संत्यजेद्बुधः ।
अविद्यां विद्यया हित्वा स्थितस्यैव च योगिनः ।७९।
क्रोधाद्या नाशमायांति धर्माधर्मौ च वं द्विजाः ।
तत्क्षयाच्च शरीरेण न पुनः सप्रयुज्यते । ०।
स एव मुक्तः संसाराद्दुःखत्रयविवर्जितः ।
एवं ज्ञानं विना नास्ति ध्यानं ध्यातुर्द्विजर्षभाः ।८१।

ज्ञानं गुरोर्हि संपर्कान्न वाचा परमार्थतः ।
चतुर्व्यूहमिति ज्ञात्वा ध्याता ध्यानं समभ्यसेत् ।८२।
सहजागंतुकं पापमस्थिवागुद्भवं तथा ।
ज्ञानाग्निर्दहते क्षिप्रं सुष्कें धनमिवानलः ।८३।

क्रोध-हर्ष-लोभ-मोह-दम्भ-धर्म और अधर्म उनको होते हैं और इनके वश में होने से तनु का संग्रह हुआ करता है ।७८। इस शरीर के होने पर ही क्लेश होता है । इसलिए बुध को इस अविद्या का त्याग कर देना चाहिए । विद्या के द्वारा अविद्या का त्याग करके योगी को स्थित रहना चाहिए ।७९। ऐसे योगी के क्रोधादि तथा धर्माधर्म नाश को प्राप्त हो जाया करते हैं । हे द्विजो ! इन सब के नाश होने से फिर वह शरीर से संप्रयुक्त नहीं हुआ करता है ।८०। ऐसा ही पुरुष तीनों प्रकार के दुःखों से मुक्त होता हुआ इस संसार से छुटकारा पा जाता है । हे द्विजर्षभ-गण ! इस प्रकार से ज्ञान के बिना ध्याता का ध्यान नहीं होता है ।८१। ज्ञान गुरु के सम्पर्क से ही होता है जो कि पारमार्थिक है केवल वचन से नहीं होता है । गुरु के प्रसाद रूपी हेतु से तैजस विश्व प्राज्ञ तुरीय रूप चतुर्व्यूह को जानकर ही ध्याता को ध्यान का अभ्यास करना चाहिए ।८२। सहज-आगन्तुक और अस्थि तथा वाणी से उद्भव वाला पाप जो होता है उसे सूखे हुए ईंधन को अग्नि के समान यह ज्ञान रूपी अग्नि जला दिया करती हैं ।८३।

ज्ञानात्परतर नास्ति सर्वपापविनाशनम् ।
अभ्यसेच्च सदा ज्ञानं सर्वसङ्गविवर्जितः ।८४।
ज्ञानिनः सर्वपापानि जीर्यंते नात्र संशयः ।
क्रीडन्नपि न लिप्येत पापैर्नानाविधैरपि ।८५।
ज्ञान यथा तथा ध्यानं तस्माद्ध्यान समभ्ययेत् ।
ध्यानं निर्विषयं प्रोक्तमादौ सविषयं तथा ।८६।
षट्प्रकारं समभ्यस्य चतुःषट् दशभिस्तथा ।
तथा द्वादशधा चैव पुनः षोडशधा क्रमात् ।८७।
द्विधाभ्यस्य च योगींद्रो मुच्यते नात्र संशयः ।

शुद्धजांबूनदाकारं विधूमांगारसन्निभम् ।८८।
पीत रक्तं सितं विद्युत्कोटिकोटिसमप्रभम् ।
अथवा ब्रह्मरन्ध्रस्थ चित्तं कृत्वा प्रयत्नतः ।८९।
न सित वासितं पीतं न स्मरेद्ब्रह्मविद्भवेत् ।
अहिंसकः सत्यवादी अस्तेयी सवयत्नतः ।९०।

ज्ञान से पर तर सब प्रकार के पापों को विनाश करने वाला अन्य कोई भी साधन नहीं है। इसलिये सम्पूर्ण सङ्ग का त्याग करके सदा ज्ञान का ही अभ्यास करना चाहिए ।८४। ज्ञानी पुरुष के समस्त पाप जीर्ण हो जाते हैं—इसमें कुछ भी संशय नहीं है। ज्ञानी पुरुष क्रीड़ा करता हुआ भी नाना प्रकार के पापों से लिप्त नहीं होता है ।८५। ज्ञान जैसा होता है वैसा ही ध्यान होता है इसलिए ध्यान का अभ्यास करे। ध्यान निर्विषय कहा गया है जो कि आदि में सविषय हुआ करता है। ।८६। छै प्रकार का अभ्यास करके चार छै और दश के द्वारा बारह प्रकार से और फिर क्रम से सोलह प्रकार का अभ्यास करे ।८७। योगीन्द्र दो प्रकार से अभ्यास करके मुक्त हो जाता है—इसमें संशय नहीं है। अब ध्यान में शिवाकार को बताते हुए कहते हैं—वह परम शुद्ध सुवर्ण के आकार वाला बिना धूम वाले अंगार के तुल्य है। पीत-रक्त और सित करोड़ों विद्युत की प्रभा के समान है। अथवा चित्त को ब्रह्म रन्ध्रस्थ करके प्रयत्न पूर्वक ब्रह्म वेत्ता सित-असित और पीत का स्मरण न करे।। ब्रह्म वेत्ता को अहिंसक-सत्यवादी-स्तेय (चोरी) से रहित सब यत्नों से होना चाहिए ।८८।८९।९०।

परिग्रहविनिर्मुक्तो ब्रह्मचारी दृढव्रतः ।
संतुष्टः शौचसंपन्नः स्वाध्यायनिरतः सदा ।९१।
मद्भक्तश्चाभ्यसेद्ध्यानं गुरुसंपर्कजं ध्रुवम् ।
न बुध्यति तथा ध्याता स्थाप्य चित्तं द्विजोत्तमाः ।९२।
न चाभिमन्यते योगी न पश्यति समततः ।
न घ्राति न शृणोत्येव लीनः स्वात्मनि यः स्वयम् ९३।
भीमः सुषिरनाकेऽसौ फास्करे मण्डले स्थितः ।

ईशानः सोमबिंबे च महादेव इति स्मृतः ।१४।
पुंसां पशुपतिर्देवश्चाष्टधाहं व्यवस्थितः ।
काठिन्य यत्तनौ सर्व पार्थिवं परगीयते ।९५।
आप्यं द्रवमिति प्रोक्तं वर्णाख्यो वह्निरुच्यते ।
यत्सञ्चरति तद्वायुः सुषिर यद्द्विजोत्तमाः ।९६।
तदाकाशं च विज्ञानं शब्दजं व्योमसंभवम् ।
तथैव विप्रा विज्ञानं स्पर्शाख्यं वायुसंभवम् ।९७।

समस्त प्रकार के परिग्रह से निर्मुक्त-ब्रह्मचर्य धारण करने वाला-दृढ़ व्रत से युक्त-सन्तोष रखने वाला-शौच से सम्पन्न और सदा स्वाध्याय करने में निरत रहे ।९१। मेरे भक्त को गुरु के सम्पर्क से प्राप्त ध्रुव ध्यान का अभ्यास करना चाहिए। ध्यान करने वाला अन्य किसी का ज्ञान ही नहीं रखता है क्योंकि वह ध्यान में ही चित्त को स्थापित कर देता है ।९२। योगी को ध्यान की स्थिति में कुछ भी भान अन्य का नहीं होता है और न कुछ देखता ही है—न सूँघता है और न कुछ सुनता ही है। वह तो स्वयं अपनी आत्मा में ही लीन रहता है। ।९३। यह सुषिर संज्ञा वाले आकाश में भीम है-भास्कर मण्डल में स्थित ईशान है और सोम के बिम्ब में महादेव कहा गया है ।९४। पुरुषों का यह पशुपति देव आठ प्रकार से स्थित रहता है। जो इसके तनु में सब प्रकार काठिन्य है वह पार्थिव कहा जाता है ।९५। द्रव स्वरूप इसका आप्य रूप है और वर्णाख्य वह्नि कहा जाता है। जो सञ्चरण किया करता है वह वायु है जो कि सुषिर में स्थित रहता है ।९६। आकाश का विज्ञान व्योम सम्भव शब्दज होता है। हे विप्र-वृन्द ! वायु से समुत्पन्न स्पर्श नाम वाला विज्ञान है ।९७।

रूपं वाह्न्य मित्युक्तमाप्यं रसमयं द्विजाः ।
गंधाख्य पार्थिवं भूयश्चितयेद्भास्करं क्रमात् ।९८।
नेत्रे च दक्षिणे वामे सोम हृदि विभुं द्विजः ।
आजानु पृथिवीतत्त्वमानाभेर्वारिमंडलम् ।९९।
आकंठं वह्नितत्त्वं स्याल्ललाटांत द्विजोत्तमाः ।

वायव्यं वै ललाटाद्यं व्योमाख्यं वा शिवाग्रकम् ।१००।
हंसाख्यं च ततो ब्रह्म व्योम्नश्चोर्ध्वं ततः परम् ।
व्योमाख्यो व्योममध्यस्थो ह्यग्र प्राथमिकः स्मरेत् ।१०१।
न जीवः प्रकृतिः सत्त्व रजश्चाथ तमः पुनः ।
महांस्तथाभिमानश्च तन्मात्राणींद्रियाणि च ।१०२।
व्योमादीनि च भूतानि नैवेह परमार्थतः ।
व्याप्य तिष्ठयतो विश्वं स्जाणुरित्यभिधीयते ।१०३।
उदेति सूर्यो भीतश्च पवते वात एव च ।
द्योतते चन्द्रमा वह्निर्ज्वलत्यापो वहंति च ।१०४।
दधाति भूमिराकाशमवकाशं ददाति च ।
तदाज्ञया तत सर्वं तस्माद्वै चितयेद्द्विजाः ।१०५।
तेनैवाधिष्ठितं तस्मादेतत्सर्वं द्विजोत्तमाः ।
सर्वरूपमयः शर्व इति मत्वा स्मरेद्भवम् ।१०६।

रूप अग्नि का तथा रसमय जल का और गन्धमय पार्थिव इस क्रम से भास्कर का चिन्तन करना चाहिए । दक्षिण नेत्र में सूर्य-वाम नेत्र में सोम और-हृदय में विभु का ध्यान करे । जानु पर्यन्त पृथिवी तत्त्व है और नाभि तक बारि मण्डल है ।९८।९९। कण्ठ तक वह्नि तत्व है और ललाटान्त तक वायव्य तत्व है । ललाट से आदि लेकर शिखाग्र पर्यन्त व्याख्या तत्व होता है । इसके ऊपर हंसाख्य ब्रह्म तत्व होता है । व्योम के मध्य में स्थित व्योमाख्य है । यह प्राथमिक है—इसका स्मरण करना चाहिए।१००।१०१। जीव-प्रकृति-सत्व-रज-तम-महान्-अहङ्कार-पञ्च तन्मात्रा-इन्द्रियाँ-व्योमादि भूत ये सब यहाँ परमार्थतः नहीं हैं । जो इस विश्व को व्याप्त होकर स्थित है वह स्थाणु-इस नाम से कहा जाता है । ।१०२। सूर्य भीत होता हुआ उदय होता है । वायु वहन करता हुआ पवित्र किया करता है । चन्द्रमा प्रकार फैलाकर चमकता है । अग्नि जलता है और जल बहते हैं । भूमि धारण करती है और आकाश अवकाश प्रदान करता है—ये सब उसी की आज्ञा विस्तार हुआ है इसलिये हे द्विजगण ! उसका चिन्तर करना चाहिए ।१०३।

।१०४। यह सब उसी के द्वारा अधिष्ठित है और सबके स्वरूप वाला यह शर्व ही है—ऐसा मानकर भव का स्मरण करना चाहिए।१०५।१०६।

संसारविषतप्तानां ज्ञानध्यानामृतेन वै।
प्रतीकारः समाख्यातो नान्यथा द्विजसत्तमाः।१०७।
ज्ञानं धर्मोद्भवं साक्षाज्ज्ञानाद्वैराग्यसंभवः।
वैराग्यात्परमं ज्ञानं परमार्थप्रकाशकम्।१०८।
ज्ञानवैराग्ययुक्तस्य योगसिद्धिर्द्विजोत्तमाः।
योगसिद्ध्या विमुक्तिः स्यात्सत्त्वनिष्ठस्य नान्यथा।१०९।

इस संसार रूपी विष से संतप्त जीवों को ज्ञान ध्यान रूपी अमृत से ही प्रतीकार बताया गया है और अन्य कोई प्रतिकार नहीं होता है ।१०७। ज्ञान साक्षात् धर्म से उत्पन्न होने वाला है और ज्ञान से ही वैराग्य की उत्पत्ति होती है वैराग्य से परम ज्ञान होता है जो कि परमार्थ को प्रकाशित करने वाला होता है।१०८। जो ज्ञान और वैराप्य से युक्त होता है हे द्विजगण ! उसी को योग की सिद्धि हुआ करती है। योग की सिद्धि से जो सत्व में निष्ठ होता है उसी की मुक्ति होती है अन्यथा मुक्ति नहीं हुआ करती है।१०९।

॥ ६१— सदाचार शौच निरूपण ॥

अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि शौचाचारस्य लक्षणम्।
यदनुष्ठाय शुद्धात्मा परेत्य गतिमाप्नुयात्।१।
ब्रह्मणा कथितं पूर्वं सर्वभूतहिताय वै।
संक्षेपात्सर्ववेदार्थं सञ्चयं ब्रह्मवादिनाम्।२।
उदयार्थं तु शौचानां मुनीनामुत्तमं पदम्।
यस्तत्राथाप्रमत्तः स्यात्स मुनिर्नावसीदति।३।
मानावमानौ द्वावेतौ तावेवाहुर्विषामृते।
अवमानोऽमृतं तत्र सन्मानो विषमुच्यते।४।
गुरोरपि हिते युक्तः स तु संवत्सरं वसेत्।
नियमेष्वप्रमत्तस्तु यमेषु च सदा भवेत्।५।

प्राप्यानुज्ञां ततश्चैव ज्ञानयोगमनुत्तमम् ।
अविरोधेन धर्मस्य चरेत् पृथिवीमिमाम् ।६।
चक्षुःपूत चरेन्मार्ग वस्त्रपूतं जलं पिवेत् ।
सत्यपूतं वदेद्वाक्यं मनःपूतं समाचरेत् ।७।

इस अध्याय में योगियों का सदाचार-द्रव्यशुद्धि-शौच और स्त्री धर्म का निरूपण किया जाता है । सूतजी ने कहा—इससे आगे मैं शौचाचार का लक्षण बताता हूँ जिसका अनुष्ठान करके शुद्ध आत्मा वाला मरकर सद्गति को प्राप्त करता हैं ।१। यह सब ब्रह्मा ने समस्त प्राणियों के हित के लिए सम्पूर्ण वेदों का अर्थ संक्षेप में कहा गया है जो कि ब्रह्मवादियों के लिए एक संचय है ।२। मुनियों के उदय के लिए शौचों का उत्तम पद है । इन शौचों के करने में जो सदा सावधान रहा करता है वह मुनि कभी भी दुःखित नहीं होता है ।३। मान और अवमान ये दोनों विष तथा अमृत बताये गते है । इनमें जो अवमान होता है वह अमृत होता है । सन्मान विष कहा जाता है ।४। गुरु के हित में युक्त होता हुआ भी गुरु के समीप में एक वर्ष पर्यन्त निवास करना चाहिए । जो नियम हैं उनमें तथा जो यम हैं उनसे सदा अप्रमत्त होता हुआ वहाँ पर निवास करे ।५। सर्वोत्तम ज्ञान योग को गुरु से प्राप्त करके उनकी आज्ञा ग्रहण कर धर्म का विरोध न करते हुए इस भूमण्डल में विचरण करना चाहिए ।६। मार्ग में अपनी आँख से भली-भाँति देखकर ही चलना चाहिए और सर्वदा वस्त्र छानकर पवित्र जल का पान करे । सदा सचाई के द्वारा परम पवित्र वचन ही बोलने चाहिए एवं मन से खूब विचार कर जिसे पवित्र समझे उसे ही करना चाहिए ।७।

मत्स्यगृह्यस्य यत्पापं षण्मासभ्यतरे भवेत् ।
एकाहं तत्समं ज्ञेयमपूतं यज्जलं भवेत् ।८।
अपूतोदकपाने तु जपेच्च शतपञ्चकम् ।
अघोरलक्षणं मंत्रं ततः शुद्धिमवाप्नुयात् ।९।
अथवा पूजयेच्छभुं घृतस्नानादिविस्तरैः ।
त्रिधा प्रदक्षिणीकृत्य शुद्धयते नात्र संशयः ।१०।

शातिथ्य श्राद्धयज्ञेषु न गच्छेद्योगवित्क्वचित् ।
एवं ह्यहिंसको योगी भवेदिति विचारितम् ।११।
वह्नौ विधूमेऽत्यंगारे सर्वस्मिन्भुक्तवज्जने ।
चरेत्तु मतिमात् भैक्ष्यं न तु तेष्वेव नित्यशः ।१२।
अथैनमवमन्यंते परे परिभवति च ।
तथा युक्तं चरेद्भक्ष्यं सतां धर्ममदूषयन् ।१३।
भैक्ष्य चरेद्नस्थेषु यायावरगृहेषु च ।
श्रेष्ठा तु प्रथमा हीयं वृत्तिरस्योपजायते ।१४।

मत्स्मों के ग्रहण करने वाले को छै मासों में जो पाप होता हैं उतना पाप एक दिन वस्त्र से पवित्र नहीं किये हुए जल के पान करने से होता है ।८। यदि प्रमाद वश अपूत जल को पी लेवे तो पाँच सौ बार अघोर मन्त्र के जाप करने से शुद्धि को प्राप्त करता है ।६। अथवा दूसरा प्रायश्चित्त अमूत जलपान करने का यह है कि धृत के स्नानादि से विस्तार साथ शिव का पूजन करे और फिर तीन प्रदक्षिणा शिव की करे तब शुद्धि होती है—इसमें संशय नहीं है ।१०। योग के वेत्ता को किसी आदर पूर्वक दिये हुए निमन्त्रण में श्राद्ध में और अन्य यज्ञादि में भोजन नहीं करना चाहिये। इस पूर्वोक्त प्रकार से योगी अहिंसक होता है—यह निश्चित है ।११। वह्नि के विधूम तथा अङ्गारों से रहित होने पर अर्थात् शीतल हो जाने पर और घर के समस्त सदस्यों के भोजन कर लेने पर मतिमान् योगी को घर-घर जाकर भिक्षा करनी चाहिए। वह भी उन्हीं घरों में नित्य भिक्षा न करे ।१२। जिस तरह से इसका दूसरे लोक अवमान करें और परिभूत करें उस तरह से युक्त होकर ही भैक्ष्य करे और सत्पुरुषों का जो धर्म होता है उसे कभी भी दूषित नहीं करे ।१३। भिक्षा बन में स्थितों के यहाँ तथा दया वरों के घरों में जाकर भिक्षा करे। इस योगी पुरुष की यह सर्वश्रेष्ठ वृत्ति होती है ।१४।

अत ऊर्ध्वं गृहेस्थेषु शीलीनेषु चरेद्द्विजाः ।
श्रद्दधानेषु दांतेषु क्षोत्रियेषु महात्मसु ।१५।
अत ऊर्ध्वं पुनश्चापि अदुष्टापतितेषु च ।

भक्ष्यचर्या हि वर्णेषु जघन्या वृत्तिरुच्यते ।१६।
भैक्ष्य यवागूस्तक्रं वा पयो यावकमेव च ।
फलमूलादि पक्वं वा कणपिण्य क सक्तव: ।१७।
इत्येव ते मया प्रोक्ता योगिनां सिद्धिवर्द्धना: ।
आहारास्तेषु सिद्धेषु श्रेष्ठं भैक्ष्यमिति स्मृतम् ।१८।
अब्बिदुं य: कुशाग्रेण मासिमासि समश्नुते ।
न्यायतो यश्चरेद्भैक्ष्य पूर्वोक्तात्स विशिष्यते ।१९।
जरामरणगर्भेभ्यो भातस्य नरकादिषु ।
एवं दाययते तस्मात्तद्भैक्ष्यमिति संस्मृतम् ।२०।
दधिभक्षा: प्रयोभक्षा ये चान्ये जीवक्षीणका: ।
सर्वे ते भैक्ष्यभक्षस्य कलां नार्हति षोडशीम् ।२१।

इसके बाद शील वाले एवं श्रेष्ठ सदाचारी जो गृहस्थ हों उनके वहाँ भिक्षा करनी चाहिए । गृहस्थ श्रद्धा रखने वाले दमनशील--श्रोत्रिय और महान् आत्मा वाले हों उनके यहाँ भिक्षा करे ।१५। इसके अनन्तर जो दुष्ट और पतित न हों उन वर्णों के यहाँ भैक्ष्यचर्या करे यह जघन्य वृत्ति कही जाती है ।१६। भिक्षा में पवागू-तक्र-पय-यावक फल और मूल-पक्व गोधूमान्न कण-तिल चूर्ण और सत्तू ये सब भैक्ष्य में प्राप्त होते हैं तो वे योगियों की सिद्धि के बढ़ाने वाले होते हैं । इसलिए मैंने इनको बताया है । इनके सिद्ध होने पर जो आहार हैं वे परम श्रेष्ठ भैक्ष्य होता हैं—ऐसा कहा गया है ।१७।१८। जो कुशा के अग्र भाग से जल की बूँदें मास-मास में अशन किया करता है और जो न्याय पूर्वक भिक्षा का चरण किया करता है वह पूर्व में कहे हुए से विशिष्ट होता है ।१९। जरा-मरण और गर्भ से नरक आदि में जो यति भीत होता है उसका पूर्व कहा हुआ भैक्ष्य (भिक्षा) दाय भाग की भाँति ही होता है । इसलिए भैक्ष्य कहा गया हैं ।२०। जो दधि के भक्षण करने वाले तथा दूध के ऊपर ही रहने वाले हैं अथवा कृच्छ्र आदि के द्वारा देह का शोषण करने वाले हैं वे सभी इस भिक्षा चरण की सोलहवीं कला के योग्य नहीं होते हैं ।२१।

भस्मशायी भवेन्नित्यं भिक्षाचारी जितेंद्रियः ।
य इच्छेत्परमं स्थानं व्रत पाशुपतं चरेत् ।२२।
योगिनां चैव सर्वेषां श्रेष्ठं चांद्रायणं भवेत् ।
एकं द्वे त्रीणि चत्वारि शक्तितो वा समाचरेत् ।२३।
अस्तेयं ब्रह्मचर्यं च अलोभस्त्याग एव च ।
व्रतानि पंच भिक्षूणामहिंसा परमा त्विह ।२४।
अक्रोधो गुरुशुश्रूषा शौचमाहारलाघवम् ।
नित्यं स्वाध्याय इत्येते नियमाः परिकीर्तिताः ।२५।
बीजयोनिगुणा वस्तुवधः कर्मभिरेव च ।
यथा द्विप इवारण्ये मनुष्याणां विधीथते ।२६।
देवैस्तुल्याः सर्वयज्ञक्रियास्तु यज्ञाज्जाप्य ज्ञानमाहुश्च जाप्यात् ।
ज्ञानाद्ध्यानं सगरागादपेतं तस्मिन्प्राप्ते शाश्वतस्योपलम्भः ।२७।
दमः शमः सत्यमकल्मषत्व मौनं च भूतेष्वखिलेषु चार्जवम् ।
अतीद्रियं ज्ञानमिदं तथा शिवं प्राहुस्तथा ज्ञानविशुद्धबुद्धयः ।२८।

जो भिक्षा चरण करने वाला है उसे जितेन्द्रिय और नित्य भस्म में शयन करने वाला होना चाहिये । जो सर्वोपरि वर्तमान परम स्थान प्राप्त करने की इच्छा रखता है उसे पाशुपत महाव्रत का समाचरण करना चाहिये ।२२। समस्त योगियों के लिए चान्द्रायण व्रत अति श्रेष्ठ होता है । इस चान्द्रायण व्रत को क्रम से एक-दो-तीन या चार अपनी शक्ति के अनुसार करना चाहिये ।२३। भिक्षुओं के पाँच परम व्रत होते हैं—अस्तेय-ब्रह्मचर्य-अलोभ-त्याग और अहिंसा, इनमें अहिंसा सब में परम श्रेष्ठ बताई गई है ।२४। क्रोध न करना-गुरु की सेवा करना-शुद्धता और आहार का हलकापन ये स्वाध्याय में नित्य नियम बताये गये हैं ।२५। बीजयोनि के गुण अर्थात् पिता और माता के स्वाभाविक गुण-वस्तु धनादि का बन्धन तथा संचित कर्मों के द्वारा बन्धन बन में हाथी के समान मनुष्यों में दुःखग्रह देवों के द्वारा किये जाते हैं ।२६। समस्त यज्ञों की क्रिया देवों के तुल्य अर्थात् स्वर्ग के प्राप्त कराने वाली होती है । यज्ञ से जाप्य श्रेष्ठ होता है । जप से भी श्रेष्ठ ज्ञान को

बताया गया है और ज्ञान से भी उत्तम स्थान होता है जो संग और राग से अपेत होता है। इसके प्राप्त हो जाने पर शाश्वत पद की प्राप्ति हो जाती है।२७। शम-दम-सत्य-अकल्मषत्व-मौन और समस्त भूतों में सरलता तथा अतीन्द्रिय ज्ञान अर्थात् आत्म-ज्ञान इसको विशुद्ध बुद्धि वाले शिव कहते हैं।२८।

समाहिता ब्रह्मपरोप्रमादो शुचिस्तथैकांतरतिर्जितेंद्रियः।
समाप्नुयाद्योगमिमं महात्मा महर्षयश्चैवमनिंदितामलाः।२९।

प्राप्यतेऽभिमतान् देशानंकुशेन निवारितः।
एतन्मार्गेण शुद्धेन दग्धबीजो ह्यकल्मशः।३०।
सदाचारताः शांताः स्वधर्मपरिपालकाः।
सर्वाल्लोकान् विनिर्जित्य ब्रह्मलोकं व्रजंति ते।३१।
पितामहेनोपदिष्टो धर्मः साक्षात्सनातनः।
सर्वलोकोपकारार्थं शृणुध्वं प्रवदामि वः।३२।
गुरुपदेशयुक्तानां वृद्धानां क्रमवर्त्तिनाम्।
अभ्युत्थानादिकं सर्वं प्रणामं चैव कारयेत्।३३।
अष्टांगप्रणिपातेनत्रिधा न्यस्तेन सुव्रताः।
त्रिःप्रदक्षिणयोगेन वंद्यो वं ब्राह्मणो गुरुः।३४।
ज्येष्ठान्येपि च ते सर्वे वंदनीया विजानता।
आज्ञ भंगं न कुर्वीत यदीच्छेत्सिद्धिमुत्तमाम्।३५।

समाहित अर्थात् शान्त चित्त वाला ब्रह्म के चिन्तन में परायण-आलस्य रहित-शौच से युक्त विविक्त का सेवन करने वाला-जितेन्द्रिय और प्रसन्न चित्त वाला महात्मा इस पाशुपत व्रत के योग को प्राप्त किया करता है यह अनिन्दित एवं अमल महर्षिगण कहते हैं।२९। जिस तरह अङ्कुश के द्वारा गज निवारित होता हुआ अपने अभिमत देशों को प्राप्त किया जाता है उसी प्रकार से परम शुद्ध इस योगमार्ग के द्वारा दग्ध बीज वाला तथा कलमष रहित हो जाता है।३०। सदाचार में रति रखने वाले परम शान्त प्रकृति वाले और अपने धर्म के पूर्ण पालन करने वाले योगी समस्त लोकों को विनिर्जित करके ब्रह्मलोक को चले

जाते हैं ।३१। यह धर्म पितामह के द्वारा उपदिष्ट हुआ है । यह साक्षात् सनातन धर्म है । समस्त लोकों के उपकार करने के लिए इसका आप लोग श्रवण करें । मैं आपको इसे बतलाता हूँ ।३२। गुरु के उपदेश से युक्त-वृद्ध और क्रमवर्ती जो मानव हैं उनके समागत होने पर अभ्युत्थान आदि देकर उन्हें प्रणाम करना चाहिये ।३३। प्रणाम ऐसा हो जिसमें आठों अङ्गों के द्वारा प्रणिपात किया जावे और वह भी तीन बार होना चाहिये । ब्राह्मण गुरु को तीन बार प्रदक्षिणा करके वन्दना करनी चाहिये ।३४। अन्य जो भी ज्येष्ठ हों उन्हें भली-भांति जानते हुये सब की वन्दना करनी चाहिये । यदि अपूर्व उत्तम सिद्धि की चाह हो तो बड़ों कों आज्ञा का भङ्ग कभी नहीं करना चाहिये ।३५।

धातुशून्यबिलक्षेत्रक्षुद्रमंत्रोपजीवनम् ।
विषग्रहविडंबादीन्वर्जयेत्सर्वयत्नतः ।३६।
कैतवं विद्यशाठ्यं च पेशुन्यं वर्जयेत्सदा ।
अतिहासमवष्टंभं लीलास्वेच्छाप्रवर्तनम् ।३७।
वर्जयेत्सर्वयत्तेन गुरूणामपि सन्निधौ ।
तद्वाक्यप्रतिकूलं च अयुक्तं वै गुरोर्वचः ।३८।
न वदेत्सर्वयत्नेन अनिष्टं न स्मरेत्सदा ।
यतीनामासनं वस्त्रं दंढाद्यं पादुके तथा ।३९।
माल्यं च शयनस्थानं पात्रं छायां च यत्नतः ।
यज्ञोपकरणांगं च न स्पृशेद्वै पदेन च ।४०।
देवद्रोहं गुरुद्रोहं न कुर्यात्सर्वयत्नतः ।
कृत्वा प्रमादतो विप्राः प्रणवस्यायुतं जपेत् ।४१।
देवद्रोहगुरुद्रोहात्कोटिमात्रेण शुध्यति ।
महापातकशुद्धयर्थं तथैव च यथाविधि ।४२।

धातुवाद-नास्तिकवाद-ऊषरभूमि भूतप्रेतादि के क्षुद्र मन्त्र इनके द्वारा अपनी वृत्ति करना तथा विष से युक्त सर्पादिका मन्त्र द्वारा पकड़ना अर्थात् अन्यानुकरण करना इस समस्त निन्दनीय कर्मों को प्रयत्नपूर्वक वर्जित कर देना चाहिये ।३६। कैतव-वित्तशाठ्य और पिशुनता इन बुरे

कर्मों का भी सर्वदा त्याग कर देना चाहिये। अत्यन्त हास करना-असतों का सा आरम्भ अर्थात् किसी बुरे कर्म को करना और लीला से स्वेच्छाचार में प्रवृत्ति करना इन समस्त कार्यों का गुरुगण की सन्निधि में यत्न पूर्वक वर्जित करना चाहिये। गुरु वर्ग के प्रतिकूल-उनके वचन के विरुद्ध एवं अयुक्त वचन कभी नहीं बोलना चाहिये। सम्पूर्ण यत्न के द्वारा कभी भी अनिष्ट का स्मरण नहीं करे तथा यतियों के आसन-वस्त्र-दण्ड आदि और पादुका तथा यज्ञ के उपकरणाङ्गों का पैर आदि से कभी स्पर्श नही करना चाहिये माल्य-शयन स्थान-पात्र और छाया का भी स्पर्श नहीं करे।३६।३७।३८।३९।४०। साधना करने वाले मानव को देवता से द्रोह तथा गुरु से द्रोह नहीं करना चाहिये और ऐसा पूर्ण प्रयत्न करना चाहिये कि द्रोह का भाव कभी होवे ही नहीं और प्रमाद से ऐसा हो भी जाय तो दश सहस्र प्रणव का जाप प्रायश्चित के लिये करे।१४। यदि यह देव और गुरु के साथ बुद्धि पूर्वक जान-बूझकर किया जाता है तो एक करोड़ प्रणव के जप से शुद्धि होती है। महापातक की शुद्धि के लिये जो विधि है वैसी ही विधि इस द्रोह में भीं होती है।४२।

पातकी च तदर्धेन शुध्यते वृत्तवान्यदि।
उपपातकिनः सर्वे तदर्धेनैव सुव्रताः।४३।
संध्यालोपे कृते विप्रः त्रिरावृत्त्यव शुद्धचति।
आह्निकच्छेदने जाते शतमेकेमुदाहृतम्।४४।
लघने समयानां तु अभक्ष्यस्य च भक्षणे।
अनाच्यवाचनं चैव सहस्र च्छुद्धिरुच्यते।४५।
क कोलूककपोतानां पक्षिणामपि घातने।
शतमष्टोत्तरं जप्त्वा मुच्यते नात्र संशयः।४६।
यः पुनस्तत्त्ववेत्ता च ब्रह्मविद्ब्राह्मणोत्तमः।
स्मरणाच्छुद्धिमाप्नोति नात्र कार्या विचारणा।४७।
नैवमात्मविदामस्ति प्रायश्चित्तानि चोदना।
विश्वस्यैव हि ते शुद्धा ब्रह्मविद्याविदो जनाः।४८।

योगध्यानैकनिष्ठाश्च निर्लेपाः कांचनं यथा ।
शुद्धानां शोधनं नास्ति विशुद्धा ब्रह्मविद्यया ।४६।

पातकी पुरुष उसकी आधी प्रायश्चित्त की विदि से भी शुद्ध हो जाता है अगर वह पुरुष चरित्रवान् होता है । हे सुव्रतों ! जो उपपातक करने वाले हैं वे उसके भी आधे प्रायश्चित्त से शुद्ध हो जाया करते हैं ।४३। विप्र यदि सन्ध्या का लोप कर देता है अर्थात् वन्दना नहीं करता है तो तीन रात्रि में शुद्ध हो जाता है । दैविक कर्म का छेदन होने पर शुद्धि के लिए एक शत बार जाप से ही शुद्धि कही गई है ।४४। समय तो नियत है उसके लंघन होने पर तथा अभक्ष्य पदार्थ के खा लेने पर और जो नहीं कहना चाहिए उसके कथन को करने पर एक सहस्र जाप से शुद्धि कही जाती है ।४५। कौआ उल्लू और कबूतर पक्षियों के घात करने पर एक सौ आठ बार जप से पाप से मुक्त हो जाया करता है—इसमें कुछ भी संशय नहीं है ।४६। जो तत्व वेत्ता ब्रह्म का ज्ञाता उत्तम ब्राह्मण हो तो केवल प्रणव के स्मरण करने ही से शुद्धि प्राप्त कर लेता है–इस विषय में कुछ भी अधिक विचार करने की आवश्यकता नहीं है ।४७। जो आत्म वेत्ता पुरुष होते हैं उनके लिए यह प्रायश्चित करने की प्रेरणा नहीं होती है क्योंकि वे ब्रह्म विद्या के विद्वान् तो विश्वम्भर के लिये ही शुद्ध होते हैं ।४८। योग और ध्यान में निष्ठा रखने वाले पुरुष तो सुवर्ण की भांति सर्वदा निर्लेप हुआ करते हैं । क्योंकि वे तो पहिले ही ब्रह्म विद्या के द्वारा विशुद्ध हुआ करते हैं । उन विशुद्धों का कोई भी शोधन नहीं होता है ।४६।

उद्धृतानुष्णफेनाभिः पूताभिर्वस्त्रचक्षुषा ।
अद्भिः समाचरेत्सर्वं वर्जयेत्कलुषोदकम् ।५०।
गंधवर्णरसैर्दुष्टमशुचिस्थासंस्थितम् ।
पंकाश्मदूषितं चैव सामुद्रं पल्वलोदकम् ।५१।
सशैवालं तथान्यैर्वा दोषदुष्टं विवर्जयेत् ।
वस्त्र शोचान्वितः कुर्यात्सर्वकार्याणि वै द्विजाः ।५२।
नमस्कारादिकं सर्वं गुरुशुश्रूषण दिकम् ।

वस्त्रशौचविहीनात्मा ह्यशुचिर्नात्र संशयः ।५३।
देवकार्योपयुक्तानां प्रत्यहं शौचमिष्यते ।
इतरेषां हि वस्त्राणां शौच कार्यं मलागमे ।५४।
वर्जयेत्सर्व यत्नेन वासोन्यर्विधृतं द्विजाः ।
कौशेयाविकयो रूक्षैः क्षौमाणां गौरसर्षपैः ।५५।
श्रीफलैरंशुपट्टानां कुतपानामरिष्टकैः ।
चर्मणां विदलानां च वेत्राणां वस्त्रवन्मतम् ।५६।

अनुष्ण केतों के सहित उद्धृत जल को वस्त्र तथा चक्षु ले पूत करके ही सब क्रिया करनी चाहिए और जो जल कलुषित हो उसको वर्जित कर देना चाहिए ।५०। जो जल किसी भी तरह गन्ध तथा वर्ण एवं रस से दूषित हो तथा किसी अपवित्र स्थान में रखा हुआ हो एवं कीच-पत्थर से दोष युक्त हो वह समुद्र का हो या किसी सरोवर का-शैवाल वाला हो या किसी अन्य दोषों से पूर्ण हो तो उसका त्याग कर देना चाहिए । हे द्विजो ऐसे दूषित जल को वस्त्र के द्वारा शौच से युक्त कर लेवे तभी उससे समस्त कार्यों का सम्पादन करे ।५१।५२। समस्त नमस्करादिक कार्य तथा गुरु का सेवा आदि के कार्य सर्वदा शुद्ध होकर ही करने चाहिये । वस्त्र और शौच से जो भी होता है वह अशुचि होता है—इसमें कुछ भी संशय नहीं है ।५३। देवों के कोई भी कार्य हों उनके करके के उपयुक्त होने के लिए प्रतिदिन शौच (शुद्धि) की आवश्यकता होती है । अन्य वस्त्रों की शुद्धि मैल के छूट जाने पर करनी चाहिए ।५४। हे द्विजो ! दूसरों के द्वारा धारण किये गये वस्त्रों को सभी प्रयत्नों के द्वारा वर्जित रखना चाहिये । जो कौशेय (रेशमी) वस्त्र हों तथा ऊनी वस्त्र हों उनकी शुद्धि रुक्ष वायु से ही हो जाती है। जो क्षौभ अर्थात् अतसी वस्त्र हों उनको शुद्धि गौर सरसों से होती है । जो अंशु यह अर्थात् सूर्य किरण युक्त हों उनकी शुद्धि बिल्व फलों से होती है । जो कुतुय-कुशास्तरण या छाग कम्बल हों उनकी शुद्धि तक्र सेचन से हो जाती है । जो विदल अर्थात् सत के वस्त्र हों तथा चर्म वस्त्र एवं वेत्र निर्मित्त हों उन सब की शुद्धि वस्त्र की भाँति होती है ।५५।५६।

वल्कलानां तु सर्वेषां छत्रचामरयोरपि ।
चैलवच्छोचमाख्यातं ब्रह्मविद्‌भिर्मुनीश्वरैः ।५७।
भस्मना शुद्धचते कांस्य क्षारेणायसमुच्यते ।
ताम्रमम्लेन वै विप्रास्त्रपुसीसकयोरपि ।५८।
हैममद्‌भिः शूभ पात्र रौप्यपात्र द्विजोत्तमाः ।
मण्यश्मशचमुक्तानां शौचं तैजसवत्स्मृतम् ।५९।
अग्गेरपां च संयोगादत्यंतोपहृतस्य च ।
रस नामिह सर्वेषां शुद्धिरुत्प्लवनं स्मृतम् ।६०।
तृणकाष्ठादिवस्तूनां शुभेन भ्युक्षण स्मृतम् ।
उष्णेन वारिणा शुद्धिस्तथा स्रुक्स्रुवयोरपि ।६१।
तथैव यज्ञपात्राणां मुशलोलूखलस्य च ।
शृङ्गास्थिदारुदातानां तक्षणेनैव शोधनम् ।६२।
संहृतानां महाभागा द्रव्याणां प्रोक्षणं स्मृतम् ।
असंहृतानां द्रव्याणां प्रत्येकं शोचमुच्यते ।६३।

वल्कल वस्त्रों की तथा छत्र और चामरों की शुद्धि ब्रह्मा वेत्ता मुनिश्वरों ने चैल वस्त्र की भाँति ही बताई है ।५७। अब पात्र की शुद्धि हैं—काँसे का पात्र भस्म से शुद्ध होता है । क्षार से लौह पात्र की शुद्धि होती है ताम्र पात्र की खटाई से शुद्धि है तथा रांग और शीशा के पात्र की भी खटाई से शुद्धि बताई गई है ।५८। सुवर्ण के पात्र और रौप्य (चाँदी) के पात्र की शुद्धि केवल जल से ही हो जाती है । जो मणि-अश्म-शंख और मुक्ता के पात्रादि होते हैं उन सब की शुद्धि सुवर्ण की ही होती है ।५९। सम रसों की शुद्धि उत लवम बताई गई है तथा अग्नि और जल के संयोग से अत्यन्त उपहृत करने से होती है ।६०। तृण और कोष्ठादि वस्तुओं की शुद्धि पवित्र जल के द्वारा अभ्युक्षण से होती है । स्रुक और स्रुवा की शुद्धि गर्म पानी से हुआ करती है । ।६१। इसी भाँति अन्य यज्ञ के पात्रों की तथा समूल और उलूखल की और सींग-अस्थि काष्ठ और दाँत की वस्तुओं की शुद्धि तक्षण (छिलाई) कर देने से हो जाती है ।६२। हे महाभागो ! जो पदार्थ

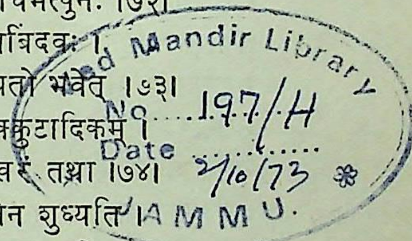
संहत अर्थात् मिले-जुले हों उन सब की शुद्धि केवल प्रोक्षण मात्र से ही हो जाया करती है। जो असंहत द्रव्य हों उनकी प्रत्येक की अलग-अलग शुद्धि हुआ करती है।६३।

अमुक्तराशि धान्यानामेकदेशस्य दूषणे ।
तावन्तात्रं समुद्धृत्य प्रोक्षयेद्व कुशांभसा ।६४।
शाकमूलफलादीनां धान्यवच्छुद्धिरिष्यते ।
मार्जनोन्मार्जनैर्वेश्म पुनः पाकेन मृन्मयम् ।६५।
उल्लेखनेनांजनेन तथा संमार्जनेन च ।
गोनिवासेन व शुद्धा सेचनेन धरा स्मृता ।६६।
भूमिस्थमुदकं शुद्धं वैतृष्ण्यं यत्र गोर्व्रजेत् ।
अव्याप्तं यदमेध्येन गंधवर्णरसान्वितम् ।६७।
वत्सः शुचिः प्रस्रवणे शकुनिः फलपातने ।
स्वदारास्यं गृहस्थानाँ रतौ भार्याभिकांक्षया ।६८।
हस्ताभ्यां क्षालितं वस्त्रं कारुणा च यथाविधि ।
कुशांबुना सुसंप्रोक्ष्य गृह्णीयाद्धर्मवित्तमः ।६९।
पण्यं प्रसारितं चैव वर्णाश्रमविभागशः ।
शुचिराकरजं तेषां श्वा मृगग्रहणे शुचिः ।७०।

जो अभुक्त धान्य की राशि हो और उसका एक भाग दूषित हो गया हो तो उसमें से उतना ही दूषित भाग निकाल कर शेष को कुशा द्वारा जल से प्रोक्षण कर देने पर शुद्धि हो जाती है।६२। शाक-मूल और फलों की शुद्धि भी धान्य के समान ही होती है। घर की शुद्धि मार्जन और जल के द्वारा उन्मार्जन अर्थात् सेचन करने से होती है। मृन्मय (मिट्टी के) पात्रों की शुद्धि दुबारा अग्नि में पाक कर देने से होती है।६५। भूमि की शुद्धि खनन (खोदने) से गोमय के द्वारा लेपन से भली-भाँति मल के अपकरण से गाय के निवास करा देने से और जल के द्वारा सेचन कर देने से हो जाती है।६६। भूमि में रहने वाला-जल उतनी मात्रा में होना चाहिये जिससे एक गाय की प्यास शान्त हो जावे तो वह शुद्ध माना गया है। जो अमेधा (अपवित्र)

पदार्थ से व्याप्त न हो और गन्ध-वर्ण तथा रस से अन्वित न हो ।६७। दोहन के समय में वत्स (बछड़ा) शुद्ध होता है और फल के गिराने के समय में पक्षी शुद्ध माना जाता है। अपनी स्त्री का मुख गृहस्थों के यहाँ भार्या की अभिकाङ्क्षा से रति के समय में शुद्ध माना गया है ।६८। कारु (कारीगर) के द्वारा विधिपूर्वक हाथों से धोया हुआ वस्त्र कुशा के जल से सम्प्रोक्षण करने के पश्चात् धर्म वेत्ता पुरुष को ग्रहण कर लेना चाहिए ।६९। बाजार की दूकानों फैलाई हुई वस्तु वर्णाश्रम के विभाग से शुद्ध होती हैं जो कि आकरज हों। मृग के ग्रहण करने के समय में कुत्ता शुद्ध माना गया है ।७०।

छाया च विप्लुषो विप्रा मक्षिकाद्या द्विजोत्तमाः ।
रजोभूर्वायुरग्निश्च मेध्यानि स्पर्शने सदा ।७१।
सुप्त्वा भुक्त्वा च वै विप्राः क्षुत्त्वा पीत्वा च वै तथा ।
ष्ठिवित्वाध्ययनादौ च शुचिरप्याचमेत्पुनः ।७२।
पादौ स्पृशंति ये चापि पराचमनविप्रुषः ।
ते पार्थिवैः समा ज्ञेया न तैरप्रयतो भवेत् ।७३।
कृत्वा च मैथुनं स्पृष्ट्वा पतितं कुक्कुटादिकम् ।
सूकरं चैव काकादि श्वानमुष्ट्रं खरं तथा ।७४।
यूप चांडालकाद्यांश्च स्पृष्ट्वा स्नानेन शुध्यति ।
रजस्वलां सूतिकां च न स्पृशेदंत्यजामपि ।७५।
सूतिकाशौचसंयुक्तः शावाशौचसमन्वितः ।
संस्पृशेन्न रजस्तासां स्पृष्ट्वा स्नात्वैव शुध्यति ।७६।
नैवाशौचं यतीनां च वनस्थब्रह्मचारिणाम् ।
नैष्ठिकानां नृपाणां च मडलीनां च सुव्रताः ।७७।



छाया और वेद-पठन के समय में मुख से निर्गत-विन्दु-विप्र-भक्षिका आदि तथा रज-भूमि-वायु और अग्नि स्पर्श करने में सदा शुद्ध होते हैं ।७१। शयन करके—भोजन करके—क्षुत करके अर्थात् जँभाई लेकर पेय पदार्थ पीकर थूककर और व्ययन के आदि में शुचि होते हुए भी पुनः आचमन करना चाहिए ।७२। जो परके आमचन की विन्दुयें पैरों का

स्पर्श करती हैं वे पार्थिवों के समान ही जानने चाहिए। उनसे अप्रयत नहीं होना चाहिए ।७३। मैथुन करके-पतित का स्पर्श करके तथा कुक्कुट आदि—सूवार कौआ आदि-कुत्ता-ऊँट-गधा-यूप और चाण्डाल आदि को छूकर स्नान करना चाहिए तभी शुद्धि होती है। राजस्वला स्त्री सूतिका स्त्री और अन्त्यजा स्त्री का भी कभी स्पर्श नहीं करना चाहिए ।७४।७५। सूतिका का जननाशौच और मृताशौच इनसे युक्त को भी अपनी रजस्वला स्त्री का स्पर्श नहीं करना चाहिए और यदि स्पर्श कर लेता है तो स्नान करके ही शुद्ध होता हैं ।७६। पति-व्रत में स्थित ब्रह्मचारी-नैष्ठिक नियम वाला-राजा और राजा के अमात्य आदि को आशौच नहीं होता है ।७७।

ततः कार्यविरोधाद्धि नृपाणां नान्यथा भवेत् ।
वैखानसानां विप्राणां पतितानामसंभवात् ।७८।
असंचयद्विजानां च स्नानमात्रेण नान्यथा ।
तथा संनिहितानां च यज्ञार्थ दीक्षितस्य च ।७९।
एकाहाद्यज्ञयाजीनां शुद्धिरुक्ता स्वयभुवा ।
ततस्त्वधीतशाखानां चतुर्भिः सर्वदेहिनाम् ।८०।
सूतकं प्रेतकं नास्ति त्र्यहादूर्ध्वममुत्र वै ।
अर्वागेकादशाहांतं वांधवानां द्विजोत्तमाः ।८१।
स्नानमात्रेण वै शुद्धिर्गरणे समुपस्थिते ।
तत ऋतुत्रयादर्वागेकाहः परिगीयते ।८२।
सप्तवर्षात्ततश्चार्वाक् त्रिरात्रं हि ततः परम् ।
दशाहं ब्राह्मणानां वै प्रथमेऽहनि वा पितुः ।८३।

राज्य के कार्यों के विरोध होने राजाओं को अशौच नहीं हुआ करता है। वैखानस (यायावर)-विप्र और पतितों का असम्भव होने से अशौच नहीं होता है ।७८। नित्य ही अर्जित कर वृत्ति वाले द्विजों को तथा अज्ञाता शौच वालों को और यथार्थ दीक्षा ग्रहण कर लेने वालों में जो असंचय वृत्ति वाले हैं उनको स्नान मात्र से ही शुद्धि होती है। यज्ञयात्री को एक दिन में ही शुद्धि स्वयम्भू ने बताई हैं। अधीत

शाखा वालों को अर्थात् वेद की शाखा के अध्ययन करने वालों एकाह से ही शुद्धि हो जाती है। अन्य जो असगोत्र हैं उनको तीन दिन में शुद्धि होती है, जातक और मृतक दोनों ही चतुर्थ दिन में शुद्ध हो जाते हैं। जो वान्धव हैं उनको एकादश दिन पर्यन्त आशौच रहता है है।७९।८०। ८१। वान्धवों को एकादश दिन के बाद स्नान करने पर शुद्धि हो जाया करती है। वकिमरण समुपस्थित होता है। जनन के दश दिन के पश्चात् शुद्धि होती है। ऋतु त्रय के पश्चात् मरण में भी एकाहमरण-शुद्धि के लिए बताया गया है।८२। छै मास के अनन्तर सात वर्ष पर्यन्त मृता-शौच तीन रात्रि का होता है। इससे आगे ब्राह्मणों के यहाँ जिनका कि उपनयन संसार हो गया है दशाह मृताशौच होता है। यदि जनन होते ही मृत हो जाने पर माता को सूतिका शौच और मृता शौच पूरा होता है किन्तु पिता को केवल एक पहिले ही दिन का आशौच होता है—ऐसा भी एक विकल्प होता है ।८३।

दशाहं सूतिकाशौचं मातुरप्येवमव्यया: ।
अर्वाक् त्रिवर्षात्स्नानेन वांधवानां पितु: सदा ।८४।
अष्टाब्दादेकरात्रेण शुद्धि: स्याद्वांधवस्य तु ।
द्वादशाब्दात्ततश्चार्वाक् त्रिरात्रं स्त्रीषु सुव्रता: ।८५।
सपिंडता च पुरुषे सप्तमे विनिवर्तते ।
अतिक्रांते दशाहे तु त्रिरात्रमशुचिर्भवेत् ।८६।
तत: सन्निहितो विप्रश्चार्वाक् पूर्वं तदेव वै ।
संवत्सरे व्यतीते तु स्नानमात्रेण शुध्यति ।८७।
स्पृष्ट्वा प्रेतं त्रिरात्रेण धर्मार्थं स्नानमुच्यते ।
दाहकानां च नेतृणां स्नानमात्रमबांधवे ।८८।
अनुगम्य च वै स्नात्वा घृतं प्राश्य विशुध्यति ।
आचार्य मरणे चैव त्रिरात्रं श्रोत्रिये मृते ।८९।
पक्षिणी मातुलानां च सोदराणां च वा द्विजा: ।
भूपानां मंडलीनां च सद्यो नीराष्ट्रवासिनाम् ।९०।
केवलं द्वादशाहेन क्षत्रियाणां द्विजोत्तमा: ।

नाभिषिक्तस्य चाशौचं संप्रमादेषु वै रणे ।६१।

दश दिन तक सूतिका शौच माता ही को होता है तीन वर्ष के बाद बान्धवों को स्नान से ही शुद्धि हो जाती है और पिता को सदा तीन रात्रि का आशौच होता है ।८४। हे सुव्रतो ! स्त्रियों के मरने पर बान्धवों की आठ वर्ष तक एक रात्रि में शुद्धि हो जाती है और आठ वर्ष से बाद में बारह वर्ष के बाद तीन रात्रि का आशौच होता है ।८५। सात पुरुष अर्थात् पीढ़ी तक एक ही गोत्र में सपिण्डता रहा करती है फिर सात पुरुष तक कोई लगान न होने पर सपिण्डता समाप्त हो जाया करती है। दश दिन अति क्रान्त हो जाने पर तीन रात्रि का ही आशौच हुआ करता है ।८६। ब्राह्मण सन्निमहित्य हो तो तीन ऋतु के बाद में वही आशौच पूर्व की भाँति होता है । एक वर्ष पूरा व्यतीत हो जाने पर यदि आशौच का ज्ञान हो तो केवल स्नान कर लेने से शुद्धि हुआ करती है ।८७। प्रेत का स्पर्श करने से तीन रात्रि के बाद शुद्धि होती है और धर्मार्थ स्नान ही शुद्धि के लिए कहा जाता है। बान्धव न होने पर दाह करने वाले नेताओं की स्नान मात्र से शुद्धि होती है । ।८८। प्रेत के साथ्य श्मशान यात्रा में जाकर धृत के प्राशन करने और स्नान करने से शुद्धि होती है। आचार्य और श्रोत्रिय के मरने पर तीन रात्रि में शुद्धि होती है ।८९। माता के माइयों के मरने पर यक्षिणी अर्थात् त्रिरात्र का आशौच होता है अथवा सोदर उपकारियों के मृत होने पर भी तीन रात्रि का आशौच होता है। गजाओं और सामन्तों का जो देशान्तर वासी हों तुरन्त स्नान से आशौच चला जाता है ।९०। हे द्विजोत्तमो ! केवल क्षत्रियों को बारह दिन का आशौच होता है। अभिषिक्त भी हो और रण में सप्रमाद होने पर आशौच नहीं होता है ।९१।

वैश्यः पंचदशाहेन शूद्रो मासेन शुध्यति ।
इति सक्षेपतः प्रोक्ता द्रव्यशुद्धिरनुत्तमा ।९२।
अशौचं चानुपूर्व्येण यतीनां नैव विद्यते ।
त्रेताप्रभृति नारीणां मांसि मास्यार्तवं द्विजाः ।९३।

क्रुते सकृद्यु गवशाज्जायंते वै सहैव तु ।
प्रयांति च महाभागा भार्याभिः कुरवो यथा ।६४।
वर्णाश्रमव्यवस्था च त्रेताप्रभृति सुव्रताः ।
भारते दक्षिणे वर्ष व्यवस्था नेतरेष्वथ ।६५।
महावीते सुवीते च जंबूद्वीपे तथाष्टसु ।
. शाकद्वीपादिषु प्रोक्तो धर्मो वै भारते यथा ।६६।
रसोल्लासा कृते वृत्तिस्त्रेतायां गृहवृक्षजा ।
सैवार्तवकृतादोषाद्रागद्वेषादिभिर्नृणाम् ।६७।
मैथुनात्कामतो विप्रास्तथैव परुषादिभिः ।
यवाद्याः संप्रजायते ग्राम्यारण्याश्चतुर्दश ।६८।

वैश्य वर्ण की शुद्धि पन्द्रह दिन में होती है और शूद्र एक मास में शुद्ध होता है । इस प्रकार से यह द्रव्य शुद्धि संक्षेप में बतादी गई है ।६२। यतियों को यह आशौच अनुपूर्वी से कभी होता ही नहीं है । अव स्त्रियों में रजो धर्म की प्रवृत्ति का क्रम बताते हैं—त्रेता से लेकर यह रजो दर्शन प्रत्येक मास में स्त्रियों को होता है ।६३। कृत युग में एक बार ही होता था । अब युग के कारण स्त्रियों के साथ ही होता जैसे महाभाग कुरु वर्षीय भार्या के साथ ही जाते हैं ।६४। हे सुव्रतो ! दक्षिण भारतवर्ष में यह वर्णों और आश्रमों की व्यवस्था त्रेता से लेकर ही है । दूसरे जो किम्पुरुषादि वर्ष हैं उनमें यह व्यवस्था नहीं हैं ।६५। महातीत और सुवीत में भी नहीं है । जम्बू द्वीप में तथा आठ शाक-द्वीपादि में भारत में जैसा धर्म है वैसा ही कहा गया है ।६६। कृत युग में रस के उल्लास वाली वृत्ति थी । त्रेता में गृह और वृक्ष से उत्पन्न होने वाली थी । वह ही मनुष्यों के राग-द्वेष आदि से आर्त्तव कृत दोष से हो गई है ।६७। हे विप्रगण ! पुरुष आदि के साथ काम वासना से मैथुन होने से यव आदि ग्राम्य एवं आरण्य चौदह उत्पन्न होते हैं ।६८।

ओषध्यश्च रजोदोषाः स्त्रीणां रागादिभिर्नृणाम् ।
अकालकृष्ठा विध्वस्ताः पुनरुत्पादितास्तथा ।६९।
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन न संभाष्या रजस्वला ।

प्रथमेऽहनि चांडाली यथा वर्ज्या तथांगना ।१००।
द्वितीयेऽहनि विप्रा हि यथा वै ब्रह्मघातिनी ।
तृतीयेऽह्नि तदर्धेन चतुर्थेऽहनि सुव्रता ।१०१।
स्नात्वार्धमासात्संशुद्धा ततः शुद्धिर्भविष्यति ।
आषोडशात्ततः स्त्रीणां मूत्रवच्छौचमिष्यते ।१०२।
पंचरात्रं तथास्पृश्या रजसा वर्तते यदि ।
सा विंशद्दिवसादूर्ध्वं रजसा पूर्ववत्तथा ।१०३।
स्नाने शौचं तथा गानं रोदनं हसनं तथा ।
यानमभ्यजनं नारी द्यूतं चैवानुलेपनम् ।१०४।
दिवास्वप्नं विशेषेण तथा वै दंतधावनम् ।
मैथुनं मानसं वापि वाचिकं देवतार्चनम् ।१०५।
वर्जयेत्सर्वयत्नेन वमस्कारं रजस्वला ।
रजस्वलांगना स्पर्शसंभाषे च रजस्वला ।१०६।

औषधियाँ और मनुष्यों के रागादि से स्त्रियों को रजोदोष होते हैं। जो कि अकाल में कृष्ट-विध्वस्त और पुनः उत्पादित हुए हैं ।९९। इस लिए पूर्णतया प्रयत्न के साथ रजस्वला जो स्त्रियाँ हों उनसे सम्भाषण नहीं करना चाहिए । जिस दिद रजो दर्शन होता है उस प्रथम दिन में तो वह एक चाण्डाली के ही समान वर्जित होने के योग्य होती है ।१००। दूसरे दिन में ब्रह्मघातिनी के तुल्य उसे वर्जित कर देना चाहिए। तीसरे दिन में उससे आधी अशुद्धि स्त्री में विद्यमान रहा करती है। चतुर्थ दिन में स्नान करके भी स्त्री को आधे मास पर्यन्त रज की अशुद्धि रहा करती है। इसके अनन्तर उसे शुद्धि होती है। पाँचवे दिन से लेकर सोलहवें दिन तक स्त्रियों को रजोदोष रहा करता है। उसका शौच मूत्र की भाँति अभीष्ट होता है ।१०१।१०२। यदि स्त्री रज से युक्त है तो पाँच रात्रि पर्यन्त स्पर्श करने के अयोग्य होती है अर्थात् गमन करने के योग्य नहीं होती है। वह बीस दिन के ऊपर रज से पूर्ववत् हुआ करती ।१०३। रजस्वला स्त्री को स्नान-शौच-गान-रोदन-हास्य-यान-अभ्यज्जम-नारीद्यूत-अनुलेपन-दिन में शयन दन्तधावन-मैथुन-मानस अथवा

वाचिक भी मैथुन नहीं होना चाहिए। देवार्चन और नमस्कार ये सब काम रजस्वला स्त्री को पूर्णतया तथा विशेष रूप से त्याग ही देने चाहिये। रजस्वला स्त्री के अङ्ग के स्पर्श से तथा उसके साथ सम्भाषण से भी रजस्वला के दोष आ जाते हैं ।१०४।१०५।१०६।

संत्यागं चैव वस्त्राणां वर्जयेत्सर्वयत्नतः ।
स्नात्वान्यपुरुषं नारी न स्पृशेत्तु रजस्वला ।१०७।
ईक्षयेद्भास्करं देवं ब्रह्मकूर्चं ततः पिबेत् ।
केवलं पंचगव्यं वा क्षीरं वा चात्मशुद्धये ।१०८।
चतुर्थ्यां स्त्री न गम्या तु गतोल्पायुः प्रसूयते ।
विद्याहीन व्रत भ्रष्टं पतितं पारदारिकम् ।१०९।
दारिद्र्यार्णवमग्नं च तनयं सा प्रसूयते ।
कन्यार्थिनैव गंतव्या पंचम्यां विधिवत्पुनः ।११०।
रक्ताधिक्याद्भवेन्नारी शुक्राधिक्ये भवेत्पुमान् ।
समे नपुंसकं चैव पञ्चम्यां कन्यका भवेत् ।१११।
षष्ठ्यां गम्या महाभागा सत्पुत्रजननी भवेत् ।
पुत्रत्वं व्यंजयेत्तस्य जातपुत्रो महाद्युतिः ।११२।

रजस्वला स्त्री को सर्वयत्नों से वस्त्रों का त्याग एवं स्पर्श का त्याग कर देना चाहिए। वह जब शुद्धि स्नान करे तो उसे अन्य पुरुष का स्पर्श नहीं करना चाहिए ।१०७। शुद्धिस्नान करने के अनन्तर स्त्री को सूर्य का दर्शन करना चाहिए और ब्रह्म कूर्चक पान करे। आत्म शुद्धि के लिए केवल पञ्चगव्य अथवा क्षीर लेना चाहिए ।१०८। चतुर्थ दिन में स्त्री का गमन नहीं करे इस दिन गमन से अल्पायु विद्याहीन-व्रतभ्रष्ट-पतित पारदिक-दरिद्रता के सागर में भग्न पुत्र का प्रसव हुआ करता है। पुरुष को, जिसे सुसन्तति की इच्छा हो, पाँचवे दिन विधि वर कन्या का गमन करना चाहिये ।१०९।११०। रक्त की अधिकता से स्त्री की उत्पत्ति होती है वीर्य की अधिकता होने से पुरुष की उत्पत्ति होती है। दोनों ही यदि समान मात्रा में रहकर गर्भाशय में स्थित होते हैं जो नपुंसक की उत्पत्ति हुआ करती है। पाँचवे दिन गमन से कन्या होती

है । छटे दिन गमन करने से स्त्री सत्पुत्र के जनन करने वाली होती है। उसका वह पुत्र पुत्रत्व को प्रकट किया करता हैं और महान् द्युति वाला होता है ।१११।११२।

पुमिति नरकस्याख्या दुःखं च नरकं विदुः ।
पुंसञ्जाणान्वितं पुत्रं तथाभूतं प्रसूयते ।११३।
सप्तम्या चैव कन्यार्थी गच्छेत्सैव प्रसूयते ।
अष्टम्यां सर्वसंपन्नं तनयं सप्रसूयते ।११४।
नवम्यां दारिकायार्थी दशम्यां पंडिती भवेत् ।
एकादश्यां तथा नारीं जनयेत्सैव पूर्ववत् ।११५।
द्वादश्यां धर्मतत्त्वज्ञ श्रौतस्मार्तप्रवर्तकम् ।
त्रयोदश्यां जडां नारीं सर्वसंकरकारिणीम् ।११६।
जनयत्यंगना यस्मन्नि गच्छेत्सर्वयत्नतः ।
चतुर्दश्या यदा गच्छेत्सा पुत्रजननी भवेत् ।११७।

पुम यह नरक का नाम है और नरक दुःख पूर्ण होता है । उस नरक से जो त्राण करने वाला हो वही पुत्र उत्पन्न होता है ।११३। सातवीं रात्रि में कन्या की इच्छा रखने वाले को यमन करना चाहिए। आठवीं रात्रि में सर्व गुण सम्पन्न पुत्र का प्रसव होता है । नवम रात्रि में दारिका-दशमी में पण्डित-ग्यारहवीं में पूर्व की भाँति नारी का जन्म होता है ।११४।११५। बारहवीं रात्रि में गमन से धर्म के तत्त्वों का ज्ञाता श्रौत-स्मार्त्त धर्म को प्रवृत्त करने वाला पुत्र होता हैं । त्रयोदशी रात्रि में अत्यन्त जड़ और सब को संकट बना देने वाली नारी उत्पन्न होती है इसलिए इस रात्रि में पूर्ण प्रयत्न से गमन नहीं करना चाहिये । चतुदर्शी रात्रि में पुत्र का जनन होता है ।११६।११७।

पञ्चदश्यां च धर्मिष्ठां षोडश्यां ज्ञानपारगम् ।
स्त्रीणां वै मैथुने काले वाम पार्श्वे प्रभञ्जनः ।११८।
चरेद्यदि भवेन्नारी पुमांसं दक्षिणे लभेत् ।
स्त्रीणां मैथुनकाले तु पापग्रहविवर्जिते ।११९।
उक्तकाले शुचिर्भूत्वा शुद्धां गच्छेच्छुचिस्मिताम् ।

इत्येवं संप्रसङ्गेन यतीनां धर्मसंग्रहे ।१२०।
सर्वेषामेव भूतानां सदाचारः प्रकीर्तितः ।
यः पठेच्छृणुयाद्वापि सदाचारं शुचिर्नरः ।१२१।
श्रावयेद्वा यथान्याय ब्राह्मणान् दग्धकिल्विषान् ।
ब्रह्मलोकमनुप्राप्य ब्रह्मणा सह मोदते ।१२२।

पन्द्रहवीं रात्रि में धर्मिष्ठा कन्या और सोलहवीं रात्रि में धर्म ज्ञान का परगामी पुत्र प्रसूत होता है। मैथुन के समय में स्त्रियों के वाम पार्श्व में प्रभज्जन चरण करता है तो नारी और दक्षिण में चरण करने से पुरुष का लाभ होता हैं। मैथुन का काल ऐसा होता चाहिये जिसमें कोई भी पाप ग्रह न हो ।११८।११६। ऐसे उत्तम समय में स्वयं शुचि होकर शुद्ध एवं शुचिस्मित वाली नारी का गमन करना चाहिए। इस प्रकार से यतियों के धर्म संग्रह के प्रसङ्ग से समस्त प्राणियों का सदाचार वता दिया गया है। जो इस सदाचार का पठन या श्रवण करता है वह नर शुचि होता है और जो इसको यथा न्याय ब्राह्मणों को श्रवण कराता है जो कि दग्ध किल्विष वाले हैं वह ब्रह्मलोक को प्राप्त होकर ब्रह्मा के साथ प्रसन्नता का आवन्ह प्राप्त किया करता है ।१२०।१२१।१२२।

।। ६२—यतियों के दोषों का प्रायश्चित्त ।।

अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि यतीनामिह निश्चितम् ।
प्रायश्चित्तं शिवप्रोक्तं यतीनां पापशोधनम् ।१।
पाप हि त्रिविधं ज्ञेयं वाङ्मनः कायसंभवम् ।
सततं हि दिवा रात्रौ येनेदं वेष्टचते जगत् ।२।
तत्कर्मणा विनाप्येष तिष्ठतीति परा श्रुतिः ।
क्षणमेवं प्रयोज्यं तु आयुष्य तु विधारणम् ।३।
भवेद्योगोऽप्रमत्तस्य योगो हि परमं बलम् ।
न हि योगात्परं किंचिन्नराणां दृश्यते शुभम् ।४।
तस्माद्योगं प्रशंसंति धर्मयुक्ता मनीषिणः ।
अविद्यां विद्यया जित्वा प्राप्यैश्वर्यमनुत्तमम् ।५।

दृष्ट्वापरावरं धीराः परं गच्छंति तत्पदम् ।
व्रतानि यानि भिक्षूणां तथैवोपव्रतानि च ।६।
एकैकातिक्रमे तेषां प्रायश्चित्तं विधीयते ।
उपेत्य तु स्त्रियं कामात्प्रायश्चितं विनिर्दिशेत् ।७।

इस अध्याय में यतियों के दोषों के दूर करने के लिए शिवोक्त प्रायश्चित्त की विधि भली-भाँति निरूपित की गई है । सूतजी ने कहा—इससे आगे मैं यतियों का पापों का शोधन करने वाला निश्चित प्रायश्चित्त बतलाता हूँ ।१। वाणी-मन और शरीर से होने के कारण पाप तीन प्रकार का होता है । यह तीनों तरह का पाप दिन-रात में निरन्तर इस जगत् को वेष्टित किया करता है ।२। यह यति कर्म के बिना भी स्थित रहता है—यह औप निष ही श्रुति हैं । अब एवं क्षण मात्र समय का योग द्वारा प्रयोग करना चाहिए क्योंकि आयुष्य अत्यन्त चल होती है ।३। योग प्रमाद से रहित को होता है । योग बहुत बड़ा बल हुआ करता है । योग से बढ़ कर मनुष्यों के लिए अन्य शुभ कर्म कुछ भी नहीं होता है ।४। इस कारण से धर्म से युक्त मनीषी गण योग की प्रशंसा किया करते हैं । विद्या से द्वारा अविद्या पर विजय प्राप्त करके और सर्व श्रेष्ठतम ऐश्वर्य की प्राप्ति करके तथा परावर को भली-भाँति देखकर धीर पुरुष उस परम पद को प्राप्त किया करते हैं । यति एवं भिक्षुओं के लिए जिस प्रकार से व्रत होते हैं उसी प्रकार से ही उपव्रत भी हुआ करते हैं ।५।६। एक भी व्रतोपव्रत का अतिक्रमण करने पर उनके प्रायश्चित्त का विधान होता हैं । स्वेच्छा से स्त्री का उपगमन करके प्रायश्चित्त का विशेष निर्देश करना चाहिए ।७।

प्राण यामसमायुक्तं चरेत्सांतपन व्रतम् ।
ततश्चरति निर्देशात्कृच्छ्रं चांते समाहितः ।८।
पुनराक्षममागत्य चरेद्भिक्षुरतंद्रितः ।
न धर्मयुक्तमनृतं हिनस्तीति मनीषिणः ।९।
तथापि न च कर्तव्यं प्रसङ्गो ह्येष दारुणः ।
अहोरात्रोपवासश्च प्राणायामशतं तथा ।१०।

असद्वादो न कर्तव्यो यतिना धर्मलिप्सुना ।
परमापद्गतेनापि न कार्यं स्तेयमच्युत ।११।
स्तेयादभ्यधिकः कश्चिन्नास्त्य धर्म इति श्रुतिः ।
हिंसा ह्येषा परा सृष्टा स्तौन्यं वै कथितं तथा ।१२।
यदेतद्द्रविणं नाम प्राणा ह्येते बहिश्चराः ।
स तस्य हरते प्राणान्यो यस्य हरते धनम् ।१३।
एवं कृत्वा सुदुष्टात्मा भिन्नवृत्तो व्रताच्च्युतः ।
भूयो निर्वेदमापन्नश्चरेच्चांद्र यणं व्रतम् ।१४।

प्राणायाम से समायुक्त सान्तपन व्रत करे । इसके अनन्तर अन्त में समाहित होकर निर्देश से कृच्छ्र सान्तपन करना चाहिए ।८। फिर अपने आश्रम में आकर भिक्षु को अतन्द्रित होकर चरण करना चाहिए । मनीषी लोग कहते हैं कि धर्मयुक्त अमृत हिंसा नहीं किया करता है ।६। तो भी यह दारुण अनृत का प्रसङ्ग नहीं करना चाहिए । यदि किसी समय हो जावे तो उसका प्रायश्चित्त कहते हैं एक अहोरात्र का उपवास तथा सौ वार प्राणायाम करे ।१०। धर्म के इच्छुक यति को असद्वाद कभी नहीं करना चाहिए । परमाधिक आपत्ति में ग्रस्त हो जाने पर भी स्तेय (चोरी) कर्म नहीं करे ।११। स्तेय से अधिक अधर्म या बुरा काम कोई नहीं होता है ऐसा श्रुति प्रतिपादन करती है । यह स्तेय जिसे कहा गया है यह भी एक दूसरे प्रकार की हिंसा ही सृजन की गई है ।१२। जो यह धन होता है वह मानव के मानव के बाहिर चरण करने वाले प्राण ही होते हैं अर्थात् प्राणों के ही तुल्य है । जो उसके धन का हरण किया करता है वह उसके प्राणों का ही एक प्रकार से हरण करने वाला होता है ।१३। इस प्रकार का कर्म करके वह दुष्ट आत्मा वाला पुरुष चरित्र से भिन्न और व्रत से च्युत हो जाया करता है । फिर वैराग्य को प्राप्त होकर उसे शुद्धि के लिए चान्द्रायण व्रत का समाचरण करना चाहिए ।१४।

विधिना शास्त्रदृष्टेन संवत्सरमिति श्रुतिः ।
तभूतः संवत्सरस्यांते यः प्रक्षीणकल्मषः ।

पुनर्निर्वेदमापन्नश्चरेद्भिक्षुरतंद्रितः ।१५।
अहिंसा सर्वभूतानां कर्मणा मनसा गिरा ।
अकामादपि हिंसेत यदि भिक्षुः पशून् कृमीन् ।१६।
कृच्छ्रातिकृच्छ्रं कुर्वीत चांद्रायणमथपि वा ।
स्कंदेदिंद्रियदौर्बल्यात् स्त्रियं दृष्ट्वा ययिर्यदि ।१७।
तेन धारयितव्या वै प्राणायामास्तु षोडश ।
दिवा स्कन्नस्य विप्रस्य प्रायश्चित्तं विधीयते ।१८।
त्रिरात्रमुपवासाश्च प्राणायामशतं तथा ।
रात्रौ स्कन्नः शुचिः स्नात्वा द्वादशैव तु धारणाः ।१९।
प्राणायामेन शुद्धात्मा विरजा जायते द्विजाः ।
एकान्नं मधुमांसं वा अशृतान्नं तथैव च ।२०।
अभोज्यानि यतीनां तु प्रत्यक्षलवणानि च ।
एकैकातिक्रमात्तोषां प्रायश्चित्तं विधीयते ।२१।

शास्त्र में जो विधि दृष्ट हो उसी के अनुसार एक वर्ष तक चान्द्रायण व्रत करे—ऐसे वेद की आज्ञा है । इसके पश्चात् एक सम्वत्सर के अन्त में प्रक्षीण पाप वाला होकर फिर निर्वेद को प्राप्त होता हुआ भिक्षु अतन्द्रित होकर चरण करे ।१५। समस्त प्राणियों की कर्म मन और वाणी से हिंसा नहीं करनी चाहिए। बिना इच्छा के भी अर्थात् अनजान में भी यदि भिक्षु पशु और कृमियों की हिंसा कर देवे तो उसे उस पाप की निवृत्ति के लिए कृच्छ्राति कृच्छ्र व्रत अथवा चान्द्रायण व्रत करना चाहिए । यदि यति अपनी इन्द्रियों के समय में दुर्बलता होने के कारण स्त्री को देखकर स्कन्दन करे तो उसे सोलह प्राणायाम धारण करने चाहिए । अब दिन में स्कन्त विप्र का प्रायश्चित्त बताया जाता है ।१६।१७।१८। ऐसे दिवा स्कन्त विप्र को तीन रात्रि तक उपवास और सो प्राणायाम करने चाहिए । रात्रि में स्कन्त हो तो स्नान करके बारह प्राणायामों से ही शुद्धि हो जाया करती है ।१९। हे द्विजगण ! प्राणायाम में बड़ा गुण है । इस प्राणायाम से विप्र शुद्ध आत्मा वाला होकर विरजा हो जाता है । एक ही स्वामी का अन्त-मधु-माँस और असृत

अर्थात् अपक्व अन्त तथा प्रत्यक्ष लवण ये सब यति को अभोज्य होते हैं। इनमें एक-एक के अतिक्रम करने से प्रायश्चित्त का विधान बताया जाता है।२०।२१।

प्राजापत्येन कृच्छ्रेण ततः पापात्प्रमुच्यते ।
व्यतिक्रमाश्चये कचिद्वाङ्मनः कार्यसंभवाः ।२२।
सद्भिः सह विनिश्चित्य यद्ब्रूयुस्तत्समाचरेत् ।२३।
चरेद्धि शुद्धः समलोष्ठकांचनः समस्तभूतेषु च सत्समाहितः ।
स्थानं ध्रुवं शाश्वतमव्ययं तु परं हि गत्वा न पुनर्हि जायते।२४

उक्त अतिक्रमों के होने पर प्राजापत्य कृच्छ्र व्रत करना चाहिये। इसके करने से वह यदि पाप से मुक्त हो जाता है। ये व्यतिक्रम जो कोई भी हों मन-वाणी और कर्म के द्वारा उत्पन्न होने वाले समझे जाते हैं।२२। सत्पुरुषों के साथ इनके प्रायश्चित्तों के विषय में विशेष निश्चय करके जो भी कुछ वे कहें उसे ही करना चाहिए।२३। मिट्टी का ढेला और सुवर्ण इन दोनों समान ही समझ कर शुद्ध स्वरूप में आस्थित होता हुआ आचरण करें और समस्त प्राणियों के विषय में सत्समाहित रहना चाहिये। इस प्रकार के समाचरण करने वाला यति परम शाश्वत-ध्रुव और अव्यय पर स्थान को जाकर फिर यहां संसार में जन्म ग्रहण नहीं किया करता है।२४।

।। ६३—वाराणसी माहात्म्य और विश्वेश्वरपूजा विधि ।।

एवं वाराणसी पुण्या यदि सूत महामते ।
वक्तुमर्हसि चास्माकं तत्प्रभावं हि सांप्रतम् ।१।
क्षेत्रस्यास्य च माहात्म्य मविमुक्तिस्य शोभनम् ।
विस्तरेण यथान्यायं श्रोतुं कौतूहलं हि नः ।२।
वक्ष्ये संक्षेपतः सम्यक् वाराणस्याः सुशोभनम् ।
अविमुक्तस्य माहात्म्यं यथाह भगवान् भवः ।३।
विस्तरेण मया वक्तुं ब्रह्मणा च महात्मना ।
शक्यते नैव विप्रेंद्रा वर्षकोटि शतैरपि ।४।

देवः पुरा कृतोद्वाहः शंकरो नीललोहितः ।
हिमवच्छिखराद्देव्या हैमवत्या गणेश्वरैः ।५।
वाराणसीमनुप्राप्य दर्शयामास शकरः ।
अविमुक्तेश्वर लिंग वासं तत्र चकार सः ।६।
वाराणसीकुरुक्षेत्रश्रीपर्वमहालये ।
तुंगेश्वरे च केदारे तत्स्थाने यो यतिर्भवेत् ।७।
योगे पाशुपते सम्यक् दिनमेकं यतिर्भवेत् ।
तस्मात्सर्वं परित्यज्य चरेत्पाशुपतं व्रतम् ।८।

इस अध्याय में वाराणसी की अद्भुत महिमा और स्थान के सहित पूजा आदि की विधि निरूपित की गई है—ऋषियों ने कहा—हे महान् मति वाले सूतजी, यदि वाराणसी पुरी यदि ऐसी परम पुण्य है तो अब आप हम लोगों को उसका पूर्ण प्रभाव बताने की कृपा करें । इस वाराणसी के क्षेत्र का माहात्म्य जो इस अविमुक्त क्षेत्र का अत्यन्त शोभन है उसे यथा विधि कृपया विस्तार के साथ वर्णन करियेगा–हमको मन में इसके श्रवण करने का बहुत अधिक कौतूहल हो रहा है ।१।२। सूतजी ने कहा—अब मैं इस वाराणसी के अविमुक्त क्षेत्र का परम हुशोभन माहात्म्य सम्यक् रूप से संक्षेप में कहता हूँ जैसा कि भगवान् भव वे कहा है ।३। इसको विस्तार के साथ तो मैं और माहात्मा ब्रह्मा भी हे विप्रवृन्द ! सैकड़ों करोड़ों वर्षों में भी नहीं कह सकते हैं ।४। पहिले देव नील लोहित शङ्कर ने विवाह करके हिमवान् के शिखर से देवी हैमवती और गणेश्वरों के सहित वाराणसी पुरी में पहुंच कर उसे देखा था । वहाँ पर उसने अविमुक्तेश्वर लिंग का वास किया था अर्थात् विश्वेश्वर विश्वनाथ इस नाम से प्रसिद्ध लिंग स्वरूप वहाँ स्थित हुए थे ।५।६। वाराणसी-कुरुक्षेत्र-श्री पर्वत-महालय-तुंगेश्वर-केदार ये उसके स्थान हैं । इनमें जो यति होता है और एक दिन पर्यन्त पाशुपत योग में भली-भाँति यति रहता है । इसका महान् पुण्य है । इसलिए अन्य समस्त कर्म कलाप का त्याग कर पाशुपत व्रत का ही समाचरण करना चाहिये । ।७।८।

देवोद्याने वसेत्तत्र शर्वोद्यानमनुत्तमम् ।
मनसा निर्ममे रुद्रो विमानं च सुशोभनम् ।९
दर्शयामास च तदा देवोद्यानमनुत्तमम्
हैमवत्याः स्वयं देवः सनंदी परमेश्वरः ।१०।
क्षेत्रस्यास्य च माहात्म्यमविमुक्तस्य शंकरः ।
उक्तवान्परमेशानः पार्वत्याः प्रीतये भवः ।११।
प्रफुल्लनानाविधगुल्म शोभितं लताप्रतानादिमनोहरं बहिः ।
विरूढपुष्पैः परितः प्रियंगुभिः सुपुष्पितैः कंटकितैश्च केतकैः१२
तमालगुल्मैर्निचित सुगंधिनिर्भिनिकामपुष्पर्वकुलैश्च सर्वतः ।
अशोकपुन्नागशतैः सुपुष्पितैर्दिरेफमालाकुलपुष्पसंचयैः ।१३।
क्वचित्प्रफुल्लाम्बुजरेणुभूषितैर्विहगमैश्चानुकलप्रणादिभिः ।
विनादितं सारसचक्रवाकैः प्रमत्तदात्यूहवरैश्च सर्वतः ।१४।

वहाँ पर देवोद्यान में अतिश्रेष्ठ शर्वोद्यान है वहाँ निवास करें। भगवान रुद्र ने मन से परम शोभन विमान का निर्माण किया था ।९। उस समय में नदी के सहित परमेश्वर ने स्वयं हैमवती को वह परमोत्तम देवोद्यान दिखाया था ।१०। परमेशान भगवान् शङ्कर ने पार्वती की प्रीति के लिए इस अवियुक्त क्षेत्र के माहात्म्य को कहा था ।११। वह देवोद्यान खिले हुये अनेक तरह के गुल्मों से शोभा युक्त था । इसके बाहिर लताओं के प्रतानों की बड़ी ही सुन्दरता विद्यमान थी । चारों और विरूढ़ पुष्पों वाले प्रियंगु के वृक्ष थे और सुन्दर पुष्पों से समन्वित काँटे वाले केतकी के वृक्ष लगे हुये थे ।१२। यह देवोद्यान सुगन्ध से युक्त तमाल की झाड़ियों से घिरा हुआ था । बहुत से पुष्पों से संयुत वकुल के वृक्ष इसके सब ओर खड़े हुये थे । सैकड़ों अशोक और पुन्ताग के वृक्ष थे जो फूलों से खिले हुये थे और उन पर भ्रमरों की पंक्तियाँ भँडरा रही थीं ।१३। इस देवोद्यान में किसी स्थान पर कमल खिले हुए थे जिनके पराग से विभूषित पक्षीगण अपनी परम सुन्दर ध्वनि कर रहे थे । यह देवोद्यान सब ओर से सारस-चक्र वाक और प्रमत्त दात्यूह अर्थात् केनत संज्ञा वाले पक्षियों के शब्दों से मुखरित हो रहा था ।१४।

क्वचिच्च केकारुतनादितं शुभं क्वचिच्च कारंडवनादनादितम् ।
क्वचिच्चमत्तालिकुलाकुलीकृतं मदाकुलाभिर्भ्रमरांगनादिभिः ।१५।
निषेवितं चारुसुगंधिपुष्पकैः क्वचित्सुपुष्पैः सहकारवृक्षैः ।
लतोपगूढैस्तिलकैश्च गूढ प्रगीतविद्याधरसिद्धकारणम् ।१६।
प्रवृत्तनृत्त नुगनाप्सरागेण प्रहृष्टनानाविधपक्षिसेवितम् ।
प्रनृत्ताहारीकुलोपनादितं मृगेंद्रनादाकुलमत्तमानसैः ।१७।
क्वचित्कचिद्गंधकदंबकैर्मृगैर्विलूनदर्भांकुरपुष्प संचयम् ।
प्रफुल्लानानाविधचारुपंकजैः सरस्तडागैरुपशोभितं क्वचित् ।१८।
विटपनिचयलीनं नीलकंठाभिरामंमदमुदितविहंगप्राप्तनादाभिरामम्
कुसुमिततरुशाखालीनमत्तद्विरेफंनवकिसलयशोभाशोभितप्रांशुशाखम्
क्वचिच्च दंतक्षतचारुवीरुधं क्वचिल्लतालिंगितचारुवृक्षकम् ।
क्वचिद्विलासालसगामिनोभिर्निषेवितं किंपुरुषांगनाभिः ।२०।
पारावतध्वनिविकूजितचारुशृंगैरभ्रंकषैः सितमनोहर चारुरूपैः ।
आकीर्णपुष्पनिकरप्रविभक्तहंसैर्विभ्राजितं त्रिदशदिव्यकुलैरनेकैः ।२१

इसमें कहीं पर मयूरों की वाणी गूंज रही थी तो किसी स्थान पर कारण्डवों की ध्वनि श्रूयमाण हो रही थी। किसी स्थल पर मद से आकुल भ्रमरों की अंगनाओं के साथ अत्युन्मत्त भौंरों के द्वारा गुज्जायमान हो रहा था और घिरा हुआ था ।१५। यह देवोद्यान परम सुन्दर सुगन्ध से युक्त पुष्पों से सेवित था और किसी स्थान पर सुपुष्पों से समन्वित आम के वृक्षों से युक्त था । लताओं से उपगूढ़ तिलक के वृक्षों से भरा-पूरा था जिसमें विद्याधर-सिद्ध तथा चारणों का गायन हो रहा था ।१६। इस देवोद्यान में अप्सरा गण अपना नृत्य करने में प्रवृत हो रही थीं । परम प्रसन्न पक्षियों ने यह सेवित था । नाचने वाले हारीत पक्षियों के समूह से शब्दायमान था तथा इसमें प्रमत्त मृगेन्द्रों के नाद से एक मन को मस्त करने वाली अद्भुत शोभा हो रही थी ।१७। किसी स्थान पर अत्यन्त गन्ध के युक्त मृगों से समुदाय द्वारा कुशा के अंकुर तथा पुष्पों का संचय विलून होता हुआ दिखाई दे रहा था। कोई २ स्थान खिले हुए नाना प्रकार के सुन्दर कमलों से समन्वित थे और सरोवर

तथा तड़ागों से उप शोभित थे।१८। यह देवोद्यान विटपों के समुदाय से लीन था। नीलकण्ठ पक्षियों के द्वारा यह अत्यन्त सुन्दर था। इसमें मह से परम प्रसन्न पक्षीगण विद्यमान थे। चारों ओर से सुन्दर ध्वनि के कारण यह अत्यन्त सुरम्य दिखाई दे रहा था। खिले हुए पुष्पों से युक्त वृक्षों की शाखाएँ थीं जिन पर मस्त भौंरे लीन हो रहे थे। यह उद्यान नूतन किसलयों की शोभा से प्रांशु शाखा वाला परम शोभित हो रहा था।१९। किसी स्थल पर दलों के क्षत वाली सुन्दर लताएँ हैं तो किसी स्थान पर लताओं के द्वारा वृक्षों का आलिङ्गन किया जा रहा है अर्थात् लताऐं वृक्षों से लिपटी हुई हैं। किसी स्थान में इस उद्यान में रति विलास के कारण मन्द गमन करने वाली किम्पुरुषों की अङ्गनाऐं इसका निषेवण कर रही हैं।२०। पारावतों की ध्वनि से विकूजित सुन्दर चोटियों वाले-सफेद एवं सुन्दर मन के हरण करने वाले रूप से युक्त-फैले हुए पुष्पों के समूह के समान प्रविभक्त हंसों से समन्वित और देवों के अनेक दिव्य कुलों से युक्त होकर भ्राजमान यह उद्यान है।२१।

फुल्लोत्पलांबुजवितानसहस्रयुक्त तोयाशयैः समनुशोभितदेवमार्गम्।
मार्गांतराकलितपुष्पविचित्रपंक्तिसंबद्धगुल्मविटपैर्विविधैरुपेतम्।२२
तुङ्गाग्रनीलपुष्पस्तबकभरनतप्रांशुशाखरशोकैर्दोलाप्रांतांतलीनश्रु-तिसुखजनकैर्भासितांतं मनोज्ञैः।
रात्रौ चद्रस्य भासा कुसुमिततिलकैरेकतां संप्रयातं छायासुप्तप्रबु-द्धस्थित हरिणकुयालुप्तदूर्वांकुराग्रम्।२३

तत्र पित्रा सुशैलेन स्थापितं त्वचलेश्वरम्।
अलंकृतं मया ब्रह्मपुरस्तान्मुनिभिः सह।२४
चंडिकेश्वरकं देवि चंडिकेशा तवात्मजा।
चंडिकानिर्मितं स्थानमंबिकातीर्थमुत्तमम्।२५
रुचिकेश्वरकं चैव धारैषा कलिपा शुभा।
एतेषु देवि स्थानेषु तीर्थेषु विविधेषु च।२६
पूजयेन्मां सदा भक्त्या मया सार्धं हि मोदते।
श्रीशैले संत्यजेद्देहं ब्राह्मणो दग्धकिल्बिषः।२७

मुच्यते नात्र संदेहो ह्यविमुक्त यथा शुभम् ।
महास्नानं च यः कुर्याद्घृतेन विधिनैव तु ।२८।
स याति मम सायुज्यं स्थानेष्वेतेषु सुव्रते ।
स्नानं पलशतं ज्ञेयमभ्यंगं पंचविंशति ।२९।

यह उद्यान खिले हुए उत्पल तथा अम्बुजों के सहस्रों वितान से युक्त है और जलाशयों से भली-भाँति शोभा युक्त देव मार्गों ने समन्वित है। मार्गान्तर में लगी हुई पुष्पों की विचित्र पंक्तियों से सम्बद्ध नाना भाँति के गुल्म और विटपों से युक्त है ।२२। ऊँचे अग्र भाग वाले नील पुष्पों के स्तवकों (गुच्छकों) के भार से झुकी हुई ऊँची शाखाओं वाले तथा दोला प्रान्तान्त से लीन और कानों को सुख देने वाले एवं अत्यन्त सुन्दर अशोक के वृक्षों के द्वारा इसका मध्य भाग भासित हो रहा था। रात्रि में चन्द्रमा की दीप्ति से कुसुमित तिलकों से एकता को प्राप्त हुआ एवं छाया में सोये हुए-प्रवुद्ध एवं स्थित हिरणों के समुदाय से आलुप्त दूभ के अंकुओं वाला था ।२३। ऐसे परम रमणीय उद्यान में वहाँ पर सुशैल पिता ने अचलेश्वर को स्थापित किया था। और ब्रह्मादि ऋषियों के साथ मैंने उसे अलंकृत किया था।२४। हे देवि ! देव चण्डिकेश्वर हैं और तुम्हारी आत्मजा चण्डिकेशा है। चण्डिका के द्वारा निर्मित उत्तम स्थान अम्बिका तीर्थ है ।२५। और रुचिकेश्वर देव हैं। यह धारा कपिला एवं परम शुभ है। हे देवि ! इन विविध तीर्थ स्थानों में जो सदा भक्ति से मेरी पूजा करता है वह फिर मेरे साथ मोह प्राप्त किया करता है। श्री शैल में जो देह का त्याग किया करता है वह ब्राह्मण दग्ध किल्विष अर्थात् पापों से मुक्त हो जाता है ।२६।।२७। वह मुक्त ही हो जाता है—इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है। जिस तरह अविमुक्त में शुभ होता है। जो विधि के साथ घृत से महास्नान करता है हे सुव्रते! इन स्थानों में वह मेरा साम्रज्य प्राप्त कर लेता है। सौ फल का स्नान जानना चाहिए और पच्चीस पल का अभ्यङ्ग होता है ।२८।२९।

पलानां द्वे सहस्रे तु महास्नानं प्रकीर्तितम् ।
स्नाप्य लिंगं मदीयं तु गव्येनैव घृतेन च ।३०।

विशोध्य सर्वद्रव्यैस्तु वारिभिरभिषिंचति ।
संमार्ज्य शतयज्ञानां स्नानेन प्रयुतं तथा ।३१।
पूजया शतसाहस्रमनंतं गीतवादिनाम् ।
महास्नाने प्रसक्त तु स्नानमष्टगुणं स्मृतम् ।३२।
जलेन केवलेनैव गंधतोयेन भक्तितः ।
अनुलेपनं तु तत्सर्वं पंचविंशत्पलेन वै ।३३।
शमीपुष्पं च विधिना बिल्वपत्रं च पंकजम् ।
अन्यान्यपि च पुष्पाणि बिल्वपत्रं न संत्यजेत् ।३४।
चतुर्द्रोणैर्महादेवमष्टद्रोणैरथापि वा ।
दशद्रोणैस्तु नैवेद्यमष्टद्रोणैरथापि वा ।३५।

दो सहस्र पलों का महास्नान कहा गया है। मेरे लिङ्ग का स्नान अभ्यङ्ग आदि गाय के घृत से ही करना चाहिए।३०। स्नान कराने के पश्चात् समस्त द्रव्य शर्करादि से युक्त जल से जो अभिसिञ्चन करता है वह सायुज्य पाता है। लिङ्ग के शोधन से सौ यज्ञों का और स्नान से एक लक्ष यज्ञों का फल प्राप्त होता है। पूजा से सौ सहस्र का तथा गीत वादियों को अनन्त फल होता है। महास्नान में स्नान से आठ गुना फल हुआ करता है ।३१।३२। केवल गन्ध युक्त जल से भक्ति से भाव से युक्त होकर महास्नानीय शर्करादि का अनुलेपन पचीस पल से कहा गया है।३३। शमी के पुष्प हों जो कि विधि सहित समर्पित किये जावें—बिल्वपत्र हों तथा पङ्कज हों अथवा अन्य भी कोई पुष्प हों किन्तु बिल्व-पत्र अवश्य ही होने चाहिए। इनका कभी भी लिङ्ग के पूजन में त्याग नहीं करना चाहिए ।३४। महादेव को चार द्रोण अथवा आठ द्रोण परिमति तण्डुल आदि धान्यों से अर्चित करना चाहिए। आठ द्रोण अथवा दश द्रोण तण्डुलादि से नैवेद्य बनाकर समर्पित करना चाहिए ।३५।

शतद्रोणसमं पुण्यमाढकेपि विधीयते ।
वित्तहीनस्य विप्रस्य नात्र कार्या विचारणा ।३६।
भेरीमृदंगमुरजतिमिरापटहादिभिः ।

वादित्रैर्विविधैश्चान्यैर्निनादैर्विविधैरपि ।३७
जागरं कारयेद्यस्तु प्रार्थयेच्च यथाक्रमम् ।
स भृत्यपुत्रदारैश्च तथा संबधिवान्धवैः ।३८
सार्धं प्रदक्षिण कृत्वा प्रार्थयेल्लिंगमुत्तमम् ।
द्रव्यहीनं क्रियाहीनं श्रद्धाहीनं सुरेश्वर ।३९
कृतं वा न कृतं वापि क्षंतुमर्हसि शंकर ।
इत्युक्त्वा वै जपेद्रुद्रं त्वरितं शांतिमेव च ।४०
जपित्वैव महाबीज तथा पंचाक्षरस्य वै ।
स एव सर्वतीर्थेषु सर्वयज्ञेषु यत्फलम् । १
तत्फलं समवाप्नोति वाराणस्यां यथा मृतः ।
तथैव मम सायुज्यं लभते नात्र संशयः ।४२
मत्प्रियार्थमिदं कार्य मद्भक्तैर्विधिपूर्वकम् ।
ये न कुर्वंति ते भक्ता न भवति न संशयः ।४३

एक आठक में भी शत द्रोण को तुल्य पुण्य का विधान होता है। जो ब्राह्मण वित्त हीन हो उसको इसका विचार नहीं करना चाहिए ।३६। भेरी-मृदङ्ग-मुरज-तिमिठ-पटह आदि वादित्रों के द्वारा तथा अन्य अनेक निनादों के द्वारा वादन करके जागरण जो करता है और यथा क्रम प्रार्थना करता है । उसे भृत्य-पुत्र और स्त्री के साथ तथा सम्बन्धी एवं बान्धवों के सहित आधी प्रदक्षिणा करके उत्तम शिव लिङ्ग की प्रार्थना करनी चाहिए—प्रार्थना का स्वरूप यह है—हे देव शङ्कर ! हे सुरों के स्वामिन् ! मैंने जो यह आपका अर्चन मन्त्रों से रहित और समस्त अत्यावश्यक द्रव्यों से हीन एवं श्रद्धा से भी शून्य जो कुछ भी जैसा किया है और जो आवश्यक छूट गया है उसे आप क्षमा कर देने के योग्य हैं ।३७।३८। इस तरह क्षमा प्रार्थना करके रुद्र का जप करे और शीघ्र ही शान्ति जाप करे ।३९।४०। इस प्रकार के पञ्चाक्षर के महाबीज का जाप करे । वह इस तरह से समस्त तीर्थों में और सम्पूर्ण यज्ञों में जो फल होता है उसे प्राप्त कर लेता है ।४१। उसी फल को वाराणसी में जो मृत्यु को प्राप्त किया करता है वह प्राप्त करता है और

उसी प्रकार से मेरा सायुज्य भी प्राप्त करता है—इसमें कुछ भी संशय नहीं है ।४२। मेरे भक्तों को मेरी प्रीति के लिये विधि पूर्वक यह करना चाहिए । जो इस तरह नहीं किया करते हैं वे मेरे भक्त नहीं होते हैं—इसमें कुछ भी संशय नहीं है ।४३।

॥६४—अन्धकदैत्य को गाणपत्य की पदवी ॥

अंधको नाम दैत्येंद्रो मंदरे चारुकंदरे ।
दमितस्तु कथं लेभे गाणपत्यं महेश्वरात् ।१
वक्तुमर्हसि चास्माकं यथावृत्तं यथाश्रुतम् ।
अंधकानुग्रहं चैव मंदरे शोषणं तथा ।२
वरलाभमशेषं च प्रवदामि समासतः ।
हिरण्याक्षस्य तनयो हिरण्यनयनोपमः ।३
पुरांधक इति ख्यातस्तपसा लब्धविक्रमः ।
प्रसादाद्ब्रह्मणः साक्षादवध्यत्वमवाप्य च ।४
त्रैलोक्यमखिलं भुक्त्वा जित्वा चेंद्रपुरं पुरा ।
लीलया चाप्रयत्नेन त्रासयामास वासवम् ।५
बाधितास्ताडिताबद्धाः पातितास्तेन ते सुराः ।
विविशुर्मंदरं भीता नारायणपुरोगमाः ।६
एवं संपीड्य वै देवानंधकोपि महासुरः ।
यदृच्छया गिरिं प्राप्तो मदरं चारुकदरम् ।७

इस अध्याय में देवताओं के शत्रु अन्धक का निग्रह-वरदान की प्राप्ति और गाणपत्य का निरूपण किया जाता है । ऋषियों ने कहा—अन्धक नाम वाले दैत्य को सुन्दर कन्दरा वाले मन्दराचल पर किस प्रकार दमित किया था और उनसे महेश्वर से गाणपत्य पद की कैसे प्राप्ति की थी ।१। आपने इस विषय में जो भी सुना है और जैसा भी हुआ है उसे आप वर्णन करने के योग्य होते हैं । सूतजी ने कहा—अन्धक के ऊपर जो अनुग्रह और मन्दर में शोषण तथा वरदान का लाभ—ये सम्पूर्ण मैं तुम को संक्षेप में बतलाता हूँ । हिरण्याक्ष-पुत्र हिरण्य नयन

की उपमा वाला था। वह पहिले अन्धक इस नाम से विख्यात था और तपस्या के द्वारा उसने पराक्रम की प्राप्ति की थी। ब्रह्मा के प्रसाद से वह साक्षात् अवध्वता को प्राप्त हो गया था।२।३।४। उसने समस्त त्रैलोक्य का उपभोग किया था और पहले इन्द्र के पुर पर विजय प्राप्त करली थी। उससे यों ही लीला से वित्त ही किसी प्रयत्न के इन्द्र को त्रस्त कर दिया था।५। उसके द्वारा वाधा पहुंचाये गये-पीटे-गये-बाँधे गये और गिराये गये समस्त देवगण नारायण को पुरोगामी बनाकर मन्दराचल के गुफाओं में अत्यन्त भयभीत होकर प्रविष्ट हो गये थे।६। महान् असुर अन्धक देवगण को इस प्रकार से संपीड़ित करके पट्टच्छा से रम्यतम कन्दराओं वाले मन्दर पर्वत पर पहुंच गया था।७।

ततस्ते समस्ताः सुरेंद्राः ससाध्याः सुरेश महेशं पुरेत्याहुरेवम्।
द्रुतं चाल्पवीर्यप्रभिन्नांगभिन्ना वय दैत्यराजस्य शस्त्रैर्निकृताः।८।
इतीदमखिलं श्रुत्वा दैत्यागममनौपमम्।
गणेश्वरैश्च भगवानंधकाभिमुखं ययौ।९।
तत्रेंद्रपद्मोद्भव विष्णुमुख्याः सुरेश्वरा विप्रवराश्च सर्वे।
जयेति वाचा भगवंतमूचुः किरोटबद्धांजलयः समंतात्।१०।
अथाशेषासुरांस्तस्य कोटिकोटिशतैस्ततः।
भस्मीकृत्य महादेवो निर्बिभेदांधक तदा।११।
शूलेन शूलिना प्रोतं दग्धकल्मषकंचुकम्।
दृष्ट्वांधक ननादेशं प्रणम्य स पितामहः।१२।
तन्नादश्रवणान्नेदुर्देवा देवं प्रणम्य तम्।
ननृतुर्मुनयः सर्वे मुमुदुर्गणपुंगवाः। ३।
ससृजुः पुष्पवर्षाणि देवाः शभोस्तदो ।रि।
त्रैलोक्य मखिलं हृषान्निनंद च ननाद च।१४।

उस समय में वे सम्पूर्ण सुरेन्द्र साध्य वर्ग के सहित देवों के स्वामी महेश्वर के सामने उपस्थित होकर इस प्रकार से कहने लगे—हे देव! हम लोग अत्यल्प पराक्रम वाले हैं और इस दैत्यराज के शस्त्रों से प्रभिन्न अङ्गों वाले एवं निकृत शीघ्र ही हो गये हैं।८। इस प्रकार से उस दैत्य

के आगमन का सम्पूर्ण समाचार श्रवण करके भगवान् शिव गणेश्वरों को साथ में लेकर उस अन्धक दैत्य के सामने प्राप्त हुए थे ।९। वहाँ पर इन्द्र-ब्रह्मा और विष्णु जिनमें प्रमुख थे ऐसे सब सुरेश्वर और विप्रवर जय-जयकार करके सभी ओर से किरीट पर्यन्त बद्धाञ्जलि वाले होकर भगवान् शिव से बोले थे ।१०। इसके अनन्तर भगवान् महादेव ने उस अन्धक दैत्य के जो सैकड़ों करोड़ असुर थे उनको भस्म करके अन्धक को निर्भिन्न कर दिया था ।११। भगवान् शूली ने अपने शूल से उसका छेदन किया था जिसके कारण वह दग्ध कल्मष रूपी कञ्जुक वाला हो गया था । ऐसा उस अन्धक को देखकर पितामह ब्रह्मा ने शिव को प्रणाम करके नाद किया था ।१२। उसके नाद (ध्वनि) को सुनकर समस्त देवों ने भी महादेव को प्रणाम करके हर्ष की ध्वनि की थी । समस्त मुनिगण नृत्य करने लगे थे और श्रेष्ठ गण परम प्रसन्न हो गये थे ।१३। उस समय में देवगण भगवान् शम्भु के ऊपर पुष्पों की वृष्टि करने लगे थे । पूरा त्रैलोक्य हर्षातिरेक से आनन्द से भरा गया था और हर्ष की ध्वनि करने लगा था ।१४।

दग्धोग्निना च शूलेन प्रोत. प्रेत इवांधकः ।
सात्त्विकं भावमास्थाय चिंतयामास चेतसा ।१५।
जन्मांतरेपि देवेन दग्धो यस्माच्छिवेन वै ।
आराधितो मया शंभुः पुरा साक्षान्महेश्वरः ।१६।
तस्मादेतन्मया लब्धमन्यथा नोपपद्यते ।
यः स्मरेन्मनसा रुद्रं प्राणांते सकृदेव वा ।१७।
स याति शिवसायुज्य किं पुनर्बहुशः स्मरन् ।
ब्रह्मा च भगवान्विष्णुः सर्वे देवाः सवासवाः ।१८।
शरणं प्राप्य तिष्ठंति तमेव शरणं व्रजेत् ।
एवं संचित्य तुष्टात्मा सोंधकश्चांधकार्दनम् ।१९।
सगण शिवमीशानमस्तुवत्पुण्यगौरवात् ।
प्रार्थितस्तेन भगवान् परमार्तिहरो हरः ।२०।
हिरण्यनेत्रतनयं शूलाग्रस्थं सुरेश्वरः ।

प्रोवाच दानवं प्रेक्ष्य घृणया नीललोहितः ।२१

शूल के द्वारा प्रोत और शूल की अग्नि से दग्ध अन्धक प्रेत की भाँति सात्त्विक भाव में समास्थित होकर चित्त से चिन्तन करने लगा था ।१५। मुझे जन्य जन्म में भी देव शिव ने ही दग्ध किया था। पहिले मैंने साक्षात् महेश्वर शम्भु की आराधना की थी ।१६। इस कारण से मैंने इसे प्राप्त किया है, अन्यथा ऐसा उपपन्न नहीं होता है । जो प्राणों के अन्त समय में एकबार भी मन से रुद्र का स्मरण करता है । वह शिव के सायुज्य की प्राप्ति किया करता है । और यदि बहुत बार शिव का स्मरण करे तो उस पुण्य-फल का तो कहना ही क्या है । ब्रह्मा-भगवान् विष्णु और इन्द्र के सहित सम्पूर्ण देवगण शिव की शरण प्राप्त करके ही स्थित हुआ करते हैं। इसलिये उसी की शरण में जाना चाहिए । इस प्रकार से चिन्तन करके वह अन्धक दैत्य अपने अर्दन करने वाले ईशान शिव की गणों के सहित पुण्य के गौरव से स्तवन करने लगा था। उस के द्वारा परम आर्त्ति के हरण करने वाले भगवान् हर प्रार्थित किये गये थे ।१७।१८।१९।२०। शूल के अग्र भाग में स्थित हिरण्याक्ष के पुत्र दानव को देखकर सुरों के ईश्वर भगवान् नील लोहित घृणा (दया) से युक्त होकर बोले ।२१।

तुष्टोस्मि वत्स भद्रं ते कामं किं करवाणि ते ।
वरान्वरय दैत्येंद्र वरदोह तवांधक ।२२
श्रुत्वा वाक्यं तथा शभोर्हिरण्यनयनात्मजः ।
हर्षगद्गदया वाचा प्रोवाचेदं महेश्वरम् ।२३
भगवन्देवदेवेश भक्तार्तिहर शंकर ।
त्वयि भक्तिः प्रसोदेश यदि देयो वरश्च मे ।२४
श्रुत्वा भवोपि वचनमंधकस्य महात्मनः ।
प्रददौ दुर्लभां श्रद्धां दैत्येंद्राय महाद्युतिः ।२५
गाणपत्य च दैत्याय प्रददौ चावरोप्यतम् ।
प्रणेमुस्तं सुरेंद्राद्या गाणपत्ये प्रतिष्ठितम् ।२६

हे वत्स ! मैं तुझसे अत्यन्त सन्तुष्ट हूँ । तेरा कल्याण हो, अब बोल,

तेरा क्या कार्य करूँ । हे अन्धक ! हे दैत्येन्द्र ! वरदान माँग ले । मैं तुझे वरदान देने वाला उपस्थित हूं ।२२। उस समय में हिरण्याक्ष के पुत्र ने भगवान् शम्भु के इस वाक्य का श्रवण कर हर्ष से अत्यन्त गदगद हो जाने वाली वाणी से महेश्वर से यह कहा था ।२३। हे देवों के भी देवेश्वर ! आप तो अपने भक्तों की पीड़ा का हरण करने वाले हैं । हे शङ्कर ! हे ईश ! यदि आप मुझे कोई वरदान देने की कृपा करते हैं तो मैं यही चाहता हूँ कि मेरी आप में दृढ़ भक्ति होवे ।२४। भगवान् भव ने महान् आतमा वाले अन्धक का यह वचन सुनकर महान् द्युति वाले शङ्कर ने उस दैत्येन्द्र को अपनी अति दुर्लभ श्रद्धा-भक्ति प्रदान करदी थी ।२५। और उस दैत्य को अवरोपित करके गाणपत्य पद को भी प्रदान किया था । जब वह गाणपत्य पद पर प्रतिष्ठित हो गया तो फिर सुरेन्द्र आदि सब देवों ने उसे प्रणाम किया था ।२६।

।। ६५-जालंधर वध ।।

जलंधरं जटामौलिः पुरा जंभारिविक्रमम् ।
कथं जघान भगवान् भगनेत्रहरो हरः ।१
वक्तुमर्हसि चास्माकं रोमहर्षण सुव्रत ।
जलंधर इति ख्यातो जलमंडलसंभवः ।२
आसीदंतकसंकाशस्तपसा लब्धविक्रमः ।
तेन देवाः सगंधर्वाः सयक्षोरगराक्षसाः ।३
निर्जिताः समरे सर्वे ब्रह्मा च भगवानजः ।
जित्वैव देवसंघातं ब्रह्माणं वै जलंधरः ।४
जगाम देवदेवेशं विष्णुं विश्वहरं गुरुम् ।
तयोः समभवद्युद्धं दिवारात्रमविश्रमम् ।५
जलंधरेशयोस्तेन निर्जितो मधुसूदनः ।
जलंधरोपि तं जित्वा देवदेवं जनार्दनम् ।६
प्रोवाचेदं दितेः पुत्रान् न्यायधीर्जेतुमीश्वरम् ।
सर्वे जिता मया युद्धे शंकरो ह्यजितो रणे ।७

इस अध्याय में शिव के अतिरिक्त अवध्य जलंधर का रुद्र कृत सुदर्शन से वध का निरूपण किया जाता है। ऋषियों ने कहा—मस्तक पर जटा धारण करने वाले तथा भग के नेत्रों का हरण करने वाले भगवान् हर ने जम्भारि विक्रम वाले जलन्धर का किस प्रकार से वध किया था हे रोम हर्षण ! हे सुन्दर व्रत वाले सूतजी ! यह आप हमको बताने के लिये परम योग्य हैं। सूतजी ने कहा—जलमण्डल से उत्पन्न होने वाला जलन्धर-इस नाम से ख्यात था ।१।२। तपश्चर्या के द्वारा विक्रम को प्राप्त कर लेने वाला यह अन्तका के समान था। उसने समस्त देवता गन्धर्वों के सहित तथा यक्ष-राक्षस-उरग गण के सहित युद्ध स्थल में जीत लिये थे। उस जलन्धर ने भगवान् अज ब्रह्मा को भी विजित कर लिया था तथा सम्पूर्ण देवों के समुदाय को पराजित कर दिया था ।३।४। इसके अनन्तर देवदेवेश विश्वहर गुरु विष्णु के समीप में यह गया था। उन दोनों का रात दिन निरन्तर महान् युद्ध हुआ था ।५। जलन्धर और ईश के इस युद्ध में उस जलन्धर ने मधुसूदन को भी निर्जित कर दिया था जलन्धर ने देवों के देव उस जनार्दन की जीत कर न्याय की बुद्धि वाले उसने ईश्वर को जीतने के लिये दिति के पुत्रों से यह कहा था। मैंने युद्ध भूमि से सभी को जीत लिया है। अब तो केवल रण में अजित एक शङ्कर ही रह गये हैं ।६।७।

तं जित्वा सर्वमीशानं गणपर्नंदिना क्षणात् ।
अहमेव भवत्वं च ब्रह्मत्वं वैष्णवं तथा ।८।
वासवत्वं च युष्माकं दास्ये दानवपुंगवाः ।
जलंधरवचः श्रुत्वा सर्वे ते दानवाधमाः ।९।
जगर्जुरुच्चैः पापिष्ठा मृत्युदर्शनतत्पराः ।
दैत्यैरेतैस्तथान्यैश्च रथनागतुरङ्गमैः ।१०।
सन्नद्धैः सह सन्नह्य शर्वं प्रति ययौ बली ।
भवोपि दृष्ट्वा दैत्येंद्रं मेरुकूटमिव स्थितम् ।११।
अवध्यत्वमपि श्रुत्वा यथान्यैर्भगनेत्रहा ।
ब्रह्मणो वचनं रक्षन् रक्षको जगतां प्रभुः ।१२।

सांब: सनंदी सगण: प्रोवाच प्रहसन्निव ।
किंकृत्यमसुरेशान युद्धे नानेन सांप्रतम् ।१३।
मद्‌वाणैर्भिन्नसर्वांगो मर्तुमभ्युद्यते मुदा ।
जलन्धरोपि तद्वाक्यं श्रुत्वा श्रोत्रविदारगम् ।१४।

ईशान शर्व को युद्ध में जीतकर तथा गणाय और नन्दी के साथ एक क्षण मात्र में अब मैं ही भवत्व का पद तथा ब्रह्मा और विष्णु का स्थान प्राप्त करने वाला हो जाऊँगा । ।८। हे दानव श्रेष्ठो ! मैं इन्द्र का पद तो आप लोगों को दे दूँगा । इस जलन्धर के वचन का श्रवण करके वे समस्त अधम दानव एवं पापिष्ठ मृत्यु के दर्शन करने में तत्पर होते हुए बहुत ही ऊँचे स्वर से गर्जने लगे थे । वह बलवान् जलन्धर इन दैत्यों तथा अन्य रथ-नाग और तुरङ्गमों से के सहित पूर्णतया सन्नद्ध होकर वह भगवान् शङ्कर की ओर गया था । भगवान् भव ने भी मेरु की शिखर की भाँति स्थित उस दैत्य को देखा था ।९।१०।११। भग के नेत्रों को हरण करने वाले महेश्वर ने दूसरों के द्वारा उस दैत्य की अवध्यता को सुनकर जगत् के स्वामी प्रभु ने ब्रह्मा के वचन की रक्षा करते हुए अम्बा के-नन्दी के और गणों के सहित भगवान् शम्भु ने हँसते हुए उस दैत्य से कहा था । हे असुरों के स्वामिन् ! अब इस युद्ध से तुझे क्या करना अभीष्ट है ।१२।१३। मेरे बाणों के द्वारा भिन्न समस्त अङ्गों वाला तू क्या आनन्द के साथ मरने के लिये प्रस्तुत हो रहा है ? जालन्धर शिव के इस श्रोत्रों के विदारण करने वाले वचनों को सुना था ।१४।

सरेश्वरमुवाचेदं सुरेतरबलेश्वरः ।
वाक्येनाल महाबाहो देवदेव वृषध्वज ।१५।
चद्रांशुसन्निभैः शस्त्रैर्हर योद्धु मिहागतः ।
निशम्यास्य वचः शूली पादांगुष्ठेन लीलया ।
महांभसि चकाराशु रथांग रौद्रमायुधम् ।१६।
कृत्वार्णवांभसि सितंभगवानुरथांगं स्मृत्वा जगत्त्रयमनेनहताःसुराश्च ।
दक्षांधकांतकपुरत्रययज्ञहर्ता लोकत्रयांतककरः प्रहसंस्तदाह ।१७।

पादेन निर्मितं दैत्य जलंधर महार्णवे ।
बलवान् यदि चोद्धर्तुं तिष्ठ योद्धुं न चान्यथा ।१८
तस्य तद्वचनं श्रुत्वा क्रोधेनादीप्तलोचनः ।
प्रदहन्निव नेत्राभ्यां प्राहालोक्य जगत्रयम् ।१९
गदामुद्धृत्य हत्वा च नंदिनं त्वां च शंकर ।
हत्वा लोकान्सुरैः सार्धं डुंडुभान् गरुडो यथा ।२०
हंतुं चराचरं सर्वं समर्थोहं सवासवम् ।
को महेश्वर मद्बाणैरच्छेद्यो भुवनत्रये ।२१

सरेतर अर्थात् दैत्यों के बल का स्वामी सुरों के स्वामी भगवान् शम्भु से यह बोला—हे देवों के देव ! हे महा बाहुओं वाले ! हे वृष-ध्वज ! ऐसा वाक्य मत बोलो ।१५। हे हर ! आप यहाँ चन्द्र किरणों के समान शस्त्रों के द्वारा युद्ध करने के लिये आये हैं । इस दैत्य के वचन का श्रवण करके भगवान शूली ने लीला से ही पैर के अँगूठे से शीघ्र ही महाम्भयें रौद्र रथाङ्ग आयुध को बना दिया था ।१६। भगवान् ने अर्षाव के जल में सित रथाङ्ग को करके जगत् त्रय का स्मरण किय और इसने सुरों का हनन किया था । उस समय दक्ष और अन्धक के अन्त करने वाले तथा पुर त्रय के यज्ञ का हरण करने वाले एवं तीनों लोकों का अन्त कर देने वाले हँसते हुए बोले ।१७। हे दैत्य जलन्धर ! मैंने पाद से महार्णव में निर्मित कर दिया है । यदि इसका उद्धार करने के लिये तू बलवान् है तो युद्ध करने के वास्ते यह ठहर जा, अन्यथा नहीं । ।१८। देव के यह वचन श्रवण करके क्रोध से लाल नेत्र वाला जगत् त्रय को नेत्रों से दग्ध होते हुए देखकर बोला ।१९। जलन्धर ने कहा - हे शंकर ! गदा को उठाकर तुमको और नन्दी को मारकर और समस्त सुरों के साथ लोकों का हनन करता हूँ जिस तरह निर्मिष सर्पों का हनन किया करता है ।२०। मैं इस सम्पूर्ण चराचर को इन्द्र के सहित हनन करने में समर्थ हूँ । हे महेश्वर ! इस भुवन त्रय में कौन ऐसा है जो मेरे बाणों के द्वारा छेदन करने योग्य नहीं है ? ।२१।

बालभावे च भगवान् तपसैव विनिर्जितः ।
ब्रह्मा वली यौवने वै मुनयः सुरपुंगवैः ।२२
दग्धं क्षणेन सकलं त्रैलोक्यं सचराचरम् ।
तपसा किं त्वया रुद्र निर्जितो भगवानपि ।२३
इंद्राग्नियमवित्तेशवायुवारीश्वरादयः ।
न सेहिरे यथा नागा गंध पक्षिपतेरिव ।२४
न लब्ध्वा दिवि भूमौ च बाहवो मम शंकर ।
समिस्तान्पर्वतान्प्राप्य घर्षिताश्च गणेश्वरः ।२५
गिरीद्रो मंदरः श्रीमान्नीलो मेरुः सुशोभनः ।
घर्षितो बाहुदंडेन कंडूनोदार्थमापतत् ।२६
गंगा निरुद्धा बाहुभ्यां लोलार्थं हिमवद्गिरौ ।
नारीणां मम भृत्यैश्च वज्रो बद्धो दिवौकसाम् ।२७
वडवाया मुखं भग्नं गृहीत्वा वै करेण तु ।
तत्क्षणादेव सकलं चैकार्णवमभूदिदम् ।२८

बाल भाव में भगवान् को तप के द्वारा ही विनिर्जित कर दिया था । बल वाले ब्रह्मा को समस्त मुनि और देव श्रेष्ठों के सहित यौवन में जीत लिया था । एक ही क्षण में इस समस्त चराचर त्रैलोक्य को दग्ध कर दिया था । हे रुद्र ! तपश्चर्या से भगवान् को भी विनिर्जित कर दिया था अब तुम से क्या है ।२२।२३। इन्द्र-अग्नि-यम-कुवेर-वायु और वरुण आदि देवगण पक्षिराज गरुड़ की गन्ध को नागों की भाँति मेरी गन्ध को भी सहन नहीं करते हैं ।२४। दिविलोक और भूमण्डल में हे शङ्कर ! मेरे बाहुओं के जोड़ के कोई भी न प्राप्त कर हे गणेश्वर ! मैंने समस्त पर्वतों में जाकर उन्हें घर्षित किया था ।२५। गिरिओं का स्वामी मन्दराचल-श्री सम्पन्न लीलागिरि और परम शोभन मेरु पर्वत को मैंने अपनी भुजाओं की खुजलाहट मिटाने के लिये बाहु दण्ड से घर्षित किया था तो गिर पड़ा था ।२६। हिमालय पर्वत में बाहुओं से लीला के ही लिये मैंने गङ्गा नदी को रोक दिया था । मेरी नारियों के भृत्यों के द्वारा देवताओं का वज्र बद्ध कर दिया था ।२७। हाथ से ग्रहण करने

वड़वा का मुख भानकर दिया था। उसी क्षरण में यह समस्त एकार्णव हो गया था।२८।

ऐरावतादयो नागाः क्षिप्ताः सिंधुजलोपरि ।
सरथो भगवानिंद्रः क्षिप्तश्च शतयोजनम् ।२९।
गरुडोपि मया बद्धो नागपाशेन विष्णुना ।
उर्वश्याद्या मया नीता नार्यः कारागृहांतरम् ।३०।
कथंचिल्लब्धवान् शक्रः शचीमेकां प्रणाम्य माम् ।
मां न जानासि दैत्यैंद्रं जलन्धरमुमापते ।३१।
एवमुक्तो महादेवः प्रादहद्रथं तदा ।
तस्य नेत्राग्निभागैककलार्धाधेन चाकुलम् ।३२।
दैत्यानामतुलबलैर्हयैश्च नागैर्दैत्येंद्रास्त्रिपुररिपोर्निरीक्षणेन ।
नागाद्वैशसमनुसवृतश्च नागैर्देवेशं वचनमुवाच चाल्पबुद्धिः ।३३
किं कार्यं मम युधि देवदैत्यसंघैर्हंतुं यत्सकलमिदं क्षणात्समर्थः ।
यत्तस्माद्भयमिह नास्ति योद्धुमोश वांछैषा विपुलतरा न संशयोत्र३४
तस्मात्त्वं मम मर्दनारिदक्षशत्रो यज्ञारे त्रिपुररिपो ममैव वीरैः ।
भूतेंद्रैर्हरि वदने । देवसंघैर्योद्धुं ते बलमिह चास्ति चेद्धि तिष्ठ ।३५

ऐरावत आदि नाग (गज) समुद्र के जल में फैंक दिये गये थे और रथ के सहित इन्द्रदेव सौ योजन तक दूर फैंक दिया था।२९। मैंने गरुड़ को भी बाँध दिया था और विष्णु की नाग पाश से उसका बन्धन किया था। उर्वशी आदि नारियाँ मैंने ग्रहण कर कारागृह के अन्दर बन्द करदी थीं। इन्द्र ने किसी प्रकार से मुझे प्रणाम करके अपनी पत्नी शची को प्राप्त कर लिया था। हे उमा के पतिदेव ! क्या आप दैत्यों के स्वामी जलन्धर मुझ को नहीं जानते हैं।३०।३१। सूतजी ने कहा—इस तरह से कहे हुए महादेव ने उस समय में उसके नेत्राग्नि की कला के अर्धार्ध भाग से आकुल उस जलन्धर का रथ जला दिया था। ।३२। उस समय में त्रिपुर के रिपु महादेव के निरीक्षण से दैत्यों के अतुल बल-हय और गजों के सहित समस्त दैत्येन्द्र क्षणभर में दग्ध हो गये थे। गजों से अनुसंवृत अल्प बुद्धि वाला जलन्धर नाग से वेशस पर

देवेश से यह वचन बोला। हे देव ! मुझे क्या करना चाहिए, मैं दैत्य संघों के द्वारा क्षण भर में इन सब को मारने के लिये समर्थ हूँ। यहाँ पर मुझे उससे हे ईश ! युद्ध करने में कुछ भी भय नहीं है। मेरी सबसे बड़ी यही इच्छा है-इसमें संशय नहीं है ।३३।३४। हे मदन के शत्रु शिव ! हे दक्ष के शत्रु ! हे त्रिपुर के रिपु ! यदि आपका भूतेन्द्रों के द्वारा, नन्दी के द्वारा और देव संघों के द्वारा मेरे ही वीरों के साथ युद्ध करने का बल है तो युद्ध करने को यहाँ रुक जाओ ।३५।

इत्युक्त्वाथ महादेवं महादेवारिनंदनः।
न चचाल न सस्मार निहतान्बांधवान् युद्धि ।३६।
दुर्मदेनाविनीतात्मा दोर्भ्यामास्फोट्य दोर्बलात्।
सुदर्शनाख्यं यच्चक्रं तेन हंतुं समुद्यतः ।३७।
दुर्धरेण रथांगेन कुच्छ्रेणापि द्विजोत्तमाः।
स्थापयामास वै स्कंधे द्विधाभूतश्च तेन वै ।३८।
कुलिशेन यथा छिन्नो द्विधा गिरिवरो द्विजाः।
पपात दैत्यो बलवानंजनाद्रिरिवापरः ।३९।
तस्य रक्तेन रौद्रेण संपूर्णमभवत्क्षणात्।
तद्रक्तमखिलं रुद्रनियोगान्मांसमेव च ।४०।
महारौरवमासाद्य रक्तकुंडमभूदहो।
जलंधरं हतं दृष्ट्वा देवगंधर्वपार्षदाः। ४१।
सिंहनादं महत्कृत्वा साधु देवेति चाब्रुवन्।
यः पठेच्छृणुयाद्वापि जलन्धरविमर्दनम् ।४२।
श्रावयेद्वा यथान्यायं गाणपत्यमवाप्नुयात् ।४३।

महादेव से इस प्रकार से कहकर वह महादेव का अरिनन्दन नहीं हिला और युद्ध में अपने निहत हुए बान्धवों का भी उसने स्मरण नहीं किया था। दुर्मद से अविनीत आत्मा वाले उसने अपनी बाहुओं से शब्द करके रुद्र के द्वारा निर्मित्त जो सुदर्शन नाम वाला चक्र था उसे बड़ी कठिनाई से बाहुओं से स्थापित किया था और उससे हनन करने को समुद्यत हुआ था किन्तु उससे स्कन्ध में दो टुकड़े हो गया था ।३६।३७

।३८। हे द्विजगण ! जिस तरह वज्र के द्वारा छिन्न हुआ गिरि गिरा करता है उसी भाँति वह बलवान् दैत्य दूसरे अजंन गिरि की भाँति दो टुकड़े होकर गिर गया था ।३९। उसके रक्त से जो कि बहुत ही रौद्र था, सम्पूर्ण भूमण्डल भर गया था। वह सम्पूर्ण रक्त शिव के नियोग से मांस हो गया था ।४०। और वह सब महा रौरव नामक नरक में जाकर वहाँ पर एक रक्त का कुण्ड बन गया था। उस जलन्धर दैत्य को मृत देखकर समस्त देव-गन्धर्व और पार्षद महान् हर्ष सूचक सिंहनाद करके हे देव ! बहुत अच्छा किया है—ऐसा कहने लगे थे। इस जलन्धर के मर्दन की कथा को जो पढ़ता है अथवा श्रवण करता है या यथा विधि इस का श्रवण करता है वह गाणपत्य पद की प्राप्ति किया करता है ।४१। ।४२।४३।

॥ ९९–शिव के वामांग से शिवानी उत्पत्ति ॥

संभवः सूचितो देव्यास्त्वया सूत महामते ।
सविस्तर वदस्वाद्य सतीत्वे च यथातथम् ।१
मेनाजत्वं महादेव्या दक्षयज्ञविमर्दनम् ।
विष्णुना च कथं दत्ता देवदेवाय शंभवे ।२
कल्याण वा कथं तस्य वक्तुमर्हसि सांप्रतम् ।
तेषां तद्वचनं श्रुत्वा सूतः पौराणिकोत्तमः ।३
संभवं च महादेव्याः प्राह तेषां महात्मनाम् ।
ब्रह्मणा कथितं पूर्वं दंडिने तत्सुविस्तरम् ।४
युष्माभिर्वै कुमाराय तेन व्यासाय धीमते ।
तस्मादहमुपश्रुत्य प्रवदामि सुविस्तरम् ।५
वचनाद्वो महाभागाः प्रणम्योमां तथा भवम् ।
सा भगाख्या जगद्धात्री लिंगमूर्तेस्त्रिवेदिका ।६
लिंगस्तु भगवान्द्वाभ्यां जगत्सृष्टिर्दिजोत्तमाः ।
लिंगमूर्तिः शिवो ज्योतिस्तमसश्चोपरि स्थितः ।७

इस अध्याय में महादेवी का जन्म वामाङ्ग से और दक्ष पुत्री का

होना और पार्वती का होना वर्णित किया जाता है। ऋषियों ने कहा—हे महान् मति वाले सूतजी ! आपने देवी के जन्म की सूचना मात्र तो दी थी किन्तु अब उनके सतीत्व होने का पूर्ण चरित ठीक २ हमारे सामने वर्णन विस्तार के सहित कीजिए ॥१॥ महादेवी का मेना से समुत्पन्न होना और दक्ष के यज्ञ का ध्वंस करना निरूपित करिये। उसको देवों के देव शम्भु के लिये विष्णु के द्वारा कैसे प्रदान किया गया था ? ॥२॥ उन विष्णु का कल्याण किस प्रकार से हुआ यह सब इस समय बताने को योग्य हैं। उन ऋषियों के इस बचन का श्रवण कर पौराणिकों में सर्वश्रेष्ठ सूतजी ने उन महात्मा ऋषियों से महादेवी का जन्म कहा था। सूतजी ने कहा—पहिले समय में ब्रह्माजी ने इस चरित को दण्डी सनत्कुमार से सुविस्तृत रूप में कहा था। सनत्कुमार ने व्यास जी को कहा था और उन व्यासदेव से मैंने श्रवण किया था। उसे मैं विस्तार के सहित आपको बताता हूँ ॥३॥४॥५॥ सूतजी ने कहा हे महाभाग वालो! आपके वचन से उमादेवी और देव शिव को प्रणाम करके मैं वर्णन करता हूँ। वह महादेवी भग संज्ञा वाली और इस जगत् की धात्री हैं तथा लिङ्ग रूप वाले शिव की त्रिगुणा प्रकृति रूप वाली हैं ॥६॥ हे द्विजोत्तमो ! लिङ्ग रूप वाले भगवान् शिव नित्य ही भग से युक्त रहा करते हैं और इन्हीं दोनों से इस जगत् की सृष्टि होती है। लिङ्ग स्वरूप शिव स्वतः प्रकाश रूप वाले हैं और यह माया के तिमिट से ऊपर विद्यमान रहा करते हैं ॥७॥

लिंगवेदिसमायोगादर्धनारीश्वरोभवत् ।
ब्रह्माण विदधे देवमग्रे पुत्रं चतुर्मुखम् ॥८
प्राहिणोति स्म तस्यैव ज्ञानं ज्ञानमयो हरः ।
विश्वाधिकोसौ भगवानर्धनारीश्वरो विभुः ।९।
हिरण्यगर्भं त देवो जायमानमपश्यत ।
सोपि रुद्रं महादेवं ब्रह्मापश्यत शंकरम् ।१०।
तं दृष्ट्वा संस्थितं देवमधनारोश्वरं प्रभुम् ।
तुष्टाव वाग्भिरिष्टाभिर्वरदं वारिजोद्भवः ।११।

विभजस्वेति विश्वेशं विश्वात्मानमजो विभुः ।
ससर्जदेवीं वामांगात्पत्नीं चैवात्मनः समाम् ।१२।
श्रद्धा ह्यस्य शुभा पत्नी ततः पुंसः पुरातनी ।
सैवाज्ञया विभोर्देवी दक्षपुत्री बभूव ह ।१३।
सतीसंज्ञा तदा सा वै रुद्रमेवाश्रिता पतिम् ।
दक्षं विनिंद्य कालेन देवी मैना ह्यभूत्पुनः ।१४।

लिङ्ग और वेदी इन दोनों का नित्य समायोग होता है अतएव सृष्टि के आदि में अर्ध नारीश्वर अर्थात् माया शवल ब्रह्मस्वरूप अर्ध स्त्री पुमान् स्वरूप वाले साकार हुए थे । सबसे प्रथम चतुर्मुख ब्रह्मा को पुत्र रूप में समुत्पन्न किया था ।८। विश्वाधिक अर्ध नारीश्वर ज्ञानमय विभु हर ने उस ब्रह्मा को ज्ञान का प्रदान किया था ।९। देव ने उत्पन्न हुए हिरण्य गर्भ को देखा था । उस हिरण्य गर्भ ने भी रुद्र महादेव शङ्कर का दर्शन किया था ।१०। उन अर्ध नारीश्वर देव प्रभु को संस्थित देखकर कमल से उद्भव प्राप्त करने वाले ब्रह्मा ने उस वरद प्रभु का परमाभीष्ट वाणियों के द्वारा स्तवन किया था ।११। विश्व के ईश तथा विश्व की आत्मा का विभाग करिये-तब अजन्मा विभु ने अपने वामाङ्ग से अपने ही समान पत्नी देवी का सृजन किया था ।१२। इस पुरुष की परम पुरातन पत्नी शुभो श्रद्धा है । वह ही विभु की आज्ञा से अब दक्ष प्रजापति की पुत्री हुई थी ।१३। उस समय इसकी सती यह संज्ञा थी और उस सती नाम धारिणी देवी ने रुद्रदेव को ही अपना पति स्वीकार कर उसके आश्रित हुई थी । कुछ काल के पश्चात् देवी ने दक्ष की विनिन्दित करके मैना के यहाँ उद्भव ग्रहण किया था ।१४।

नारदस्यैव दक्षोपि शापादेवं विनिंद्य च ।
अवज्ञ दुर्मदो दक्षो देवदेवमुमापतिम् ।१५।
अनादृत्य कृतिं ज्ञात्वा सती दक्षेण तत्क्षणात् ।
भस्मीकृत्वात्मनो देहं योगमार्गेण सा पुनः ।१६।
बभूव पार्वती देवी तपसा गिरेः प्रभोः ।
ज्ञात्वैतद्भगवान् भर्गो ददाह रुषितः प्रभुः ।१७।

दक्षस्य विपुलं यज्ञं च्यावनेर्वचनादपि ।
च्यवनस्य सुतो धीमान् दधोच इति विश्रुतः ।१८।
विजित्य विष्णुं समरे प्रसादात् त्र्यंबकस्य च ।
विष्णुना लोकपालांश्च शशाप च मुनीश्वरः ।१९।
रुद्रस्य क्रोधजेनैव वह्निना हविषा सुराः ।
विनाशो वै क्षणादेव मायया शंकरस्य वै ।२०।

दक्ष प्रजापति भी नारद देवर्षि के शाप से विनिन्दित करके अवज्ञा से दुर्मद हो गया था और देवों के देव उमा के पति का अनादर किया था ।१५। शिव के अनादर करने के इस दक्ष की कृति का ज्ञान प्राप्त करके सती ने उसी समय में योग मार्ग के द्वारा देवी ने अपना शरीर भस्म कर दिया था ।१६। वह देवी फिर गिरिओं के राजा हिमवान् के तप से उसके यहाँ पार्वती हुई थी । इस सती के देह-त्याग का समाचार जान कर क्रोध उत्पन्न होने वाले भर्ग न दक्ष के विस्तृत यज्ञ का ध्वंस करके दग्ध कर दिया था ।१७। इस दक्ष के यज्ञ का ध्वंस को च्यावनि के वचन से भी किया था । च्यवन ऋषि के पुत्र का नाम दधीच यह प्रसिद्ध था ।१८। भगवान् त्र्यम्बक के प्रसाद से समर में विष्णु को जीत कर उस मुनीश्वर ने विष्णु के साथ लोक पालों को भी शाप दे दिया था ।१९। रुद्र के क्रोध से समुत्पन्न अग्नि की हवि से शङ्कर की माया से क्षण मात्र में ही विनाश हो गया था ।२०।

॥ ६७—दक्ष-यज्ञ विध्वंस ॥

विजित्य विष्णुना सार्धं भगवान्परमेश्वरः ।
सर्वान्दधीचवचनात्कथं भेजे महेश्वरः ।१।
दक्षयज्ञे सुविपुले देवान् विष्णुपुरोगमान् ।
ददाह भगवान् रुद्रः सर्वान्मुनिगणानपि ।२।
भद्रो नाम गणस्तेन प्रेषितः परमेष्ठिना ।
विप्रयोगेन देव्या वै दुःसहेनैव सुव्रताः ।३।
सोसृजद्वीरभद्रश्च गणेशान्रोमजाञ्छुभान् ।

गणेश्वरैः समारुह्य रथं भद्रः प्रतापवान् ।४।
गंतुं चक्रे मतिं तस्य सारथिर्भगवानजः ।
गणेश्वराश्च ते सर्वे विविधायुधपाणयः ।५।
विमानैर्विश्वतो भद्रैस्तमन्वयुरथो सुराः ।
हिमवच्छिखरे रम्ये हेम शृंगे सुशोभने ।६।
यज्ञवाटस्तथा तस्य गंगाद्वारसमीपतः ।
तद्देशे चैव विख्य तं शुभं कनखलं द्विजाः ।७।

इस अध्याय में दक्ष प्रजापति के यज्ञ का विनाश और महादेव से सन्धान का परम अद्भुत निरूपण किया जाता है। ऋषियों ने कहा—भगवान् परमेश्वर महेश्वर ने विष्णु के साथ विजय प्राप्त करके फिर दधीच के वचन से सब का कैसे सेवन किया अर्थात् यज्ञ का सेवन किया था ? सूतजी ने कहा—सुमहान् दक्ष के यज्ञ में विष्णु जिनमें प्रमुख थे ऐसे समस्त देवों को भगवान् रुद्र ने दहन कर दिया था और सम्पूर्ण मुनिगणों को भी दग्ध कर दिया था ॥१॥२॥ हे सुव्रतो ! देवी के दुःसह वियोग से परमेष्ठी ने भद्र नाम वाला गण भेजा था ॥३॥ उस वीरभद्र ने रोमों से समुत्पन्न परम शुभ गणेशों का सृजन वहाँ कर दिया था। उन गणेश्वरों के साथ परम प्रताप वाले उस वीरभद्र ने एक रथ पर समारोहण किया था ॥४॥ और फिर वहाँ जाने का विचार किया था जिसके रथ के सारथि भगवान् अज थे। वे समस्त गणेश्वर अनेक प्रकार के आयुध अपने हाथों में ग्रहण किये हुए थे। उस वीरभद्र के साथ में पीछे २ देवों के शत्रु होने के कारण वाण आदि असुर भी गये थे। वे असुर भी बड़े अच्छे विमानों के द्वारा वहाँ गये थे। सुरगण हिमवान् पर्वत के परम रमणीक सुवर्ण के शृङ्ग पर, जो कि अत्यन्त शोभा से सपन्वित था; यज्ञ वाट था उसमें थे। उसके समीप में गङ्गा द्वार के निकट ही वह देश है जो कि शुभ कनखल इस नाम से विख्यात है ॥५॥ ॥६॥७॥

दग्धुं वै प्रेषितश्चासौ भगवान् परमेष्ठिना ।
तदोत्पातो बभूवाथ लोकानां भयशंसनः ।८।

पर्वताश्च व्यशीर्यत प्रचकंपे वसुंधरा।
मरुतश्चाप्यघूर्णंत चुक्षुभे मकरालयः ।९।
अग्नयो नैव दीप्यंति न च दीप्यति भास्करः।
ग्रहाश्च न प्रकाश्यंते न देवा न च दानवाः ।१०।
ततः क्षणात् प्रविश्यैव यज्ञवाटं महात्मनः।
रोमजैः सहितो भद्रः कालाग्निरिव चापरः ।११।
उवाच भद्रो भगवान् दक्षं चामिततेजसम्।
संपर्कादिव दक्षाद्यमुनीन्देवान् पिनाकिना ।१२।
दग्धुं संप्रेषितश्चाहं भवतं समुनीश्वरैः।
इत्युक्त्वा यज्ञशालां तां ददाह गणपुंगवः ।१३।
गणेश्वराश्च संक्रुद्धा यूपानुत्पाटच चिक्षिपुः।
प्रस्तोत्रा सह होत्रा च दग्धं चैव गणेश्वरैः ।१४।

यह वीरभद्र को तो भगवान् परमेष्ठी ने दग्ध करने को भेजा ही था। उस समय में लोकों को भय देने वाला बड़ा भारी उत्पात हो गया था ।।८।। पर्वत विशीर्ण हो गये थे। भूमि कांप उठी थी। वायु भी घूर्णित हो गया था और मकरालय क्षुब्ध। हो गया था उस समय अग्नि दीप्ति रहित हो गई तथा भास्कर ने प्रकाश देना त्याग दिया था। ग्रह-गण प्रकाशित नहीं हो रहे थे और वहाँ देव एवं दानव सभी तेजहीन से हो गये थे ।।९।।१०।। उसी क्षण में वीरभद्र ने अपने रोमों से उत्पन्न गणेश्वरों के सहित दूसरे कालाग्नि के समान महातमा के उस यज्ञ वाट में प्रवेश किया था ।।११।। वहाँ पर प्रवेश करके वीरभद्र ने अमित तेज वाले दक्ष से कहा—भगवान् पिता की ने मुझे दक्ष जिनमें प्रधान है उन मुनियों को और देवों को स्पर्श मात्र से मुनिश्वरों के साथ आपको दग्ध कर देने के लिये भेजा है। इतना भर कहकर उस श्रेष्ठगण ने उस यज्ञ-शाला दग्ध कर दिया था। ।।१२।।१३।। गणेश्वरी नें अत्यन्त कुपित होकर यज्ञशाला के यूपों को उखाड़कर फैंक दिया था। गणेश्वरों ने होता के साथ प्रस्तोता सब को दग्ध कर दिया था। ।।१४।।

गृहीत्वा गणपाः सर्वान् गंगास्रोतसि चिक्षिपुः।

वीरभद्रो महातेजाः शक्रस्योद्यच्छतः करम् ।१५।
व्यष्टंभयददीनात्मा तथान्येषां दिवौकसाम् ।
भगस्य नेत्रे चोत्पाटच करजाग्रेण लीलया ।१६।
निहत्य मुष्टिना दंतान् पूष्णश्चैव न्यपातयत् ।
तथा चंद्रमसं देवं पादांगुष्ठेन लीलया ।१७।
घर्षयामास भगवान् वीरभद्रः प्रतापवान् ।
चिच्छेद च शिरस्तस्य शक्रस्य भगवान्प्रभोः ।१८।
वह्नेर्हस्तद्वयं छित्वा जिह्वामुत्पाटच लीलया ।
जघान मूर्ध्नि पादेन वीरभद्रो महाबलः ।१९।
यमस्य दंडं भगवान् प्रचिच्छेद स्वयं प्रभुः ।
जघान देवमीशानं त्रिशूलेन महाबलम् ।२०।
त्रयस्त्रिंशत्सुरानेव विरिहत्याप्रयत्नतः ।
त्रयश्च त्रिशतं तेषां त्रिसाहस्त्र च लीलया ।२१।

उन गणेश्वरों ने यज्ञशाला की समस्त वस्तुऐं लेकर गङ्गा के प्रवाह में डाल दी थीं। महान् तेज वाले वीरभद्र ने वज्र से प्रहार करते हुए इन्द्र के हाथ को स्तम्भित कर दिया था अर्थात् जहाँ का तहाँ रोक दिया था। उस अदीन आतमा वाले भद्र गण ने इसी भाँति अन्य देवों को भी स्तब्धीभूत कर दिया था। लीला पूर्वक हाथ के नाखूनों के अग्रभाग से भग के नेत्रों को निकाल कर विनष्ट कर दिया था। पूषा के दाँतों पर मुष्टि का प्रहार कर उन्हें तोड़ दिया था। महान् बलवान् वीरभद्र भगवान् ने चन्द्रदेव को लीला के साथ पैर के अँगूठे से घसीट लिया था। इन्द्र के मस्तक को छिन्न कर दिया था ।१५।१६।१७।१८। अग्निदेव के दोनों हाथों को काटकर तथा उन्हें लीला पूर्वक जीभ को उखाड़ दिया था। और पैर से उसके मस्तक पर प्रहार किया था ।१९। यमराज के दण्ड को छिन्न कर दिया था। महावली ईशान देव का त्रिशूल से हनन किया था ।२०। तीन सहस्र तीन सौ तीन देवों के भेद हैं। इन सब को बिना किसी प्रयास एवं प्रयत्न के किये लीला ही में मार गिराया था ।२१।

त्रय चैव सुरेंद्राणां जघान च मुनीश्वरान् ।
अन्यांश्च देवान्देवोसौ सर्वान्युद्धाय संस्थितान् ।२२।
जघान भगवान्रुद्रः खड्गमुष्ट्यादिसायकैः ।
अथ विष्णुर्महातेजाश्चक्रमुद्यम्य मूर्च्छितः ।२३।
युयोध भगवांस्तेन रुद्रेण सह माधवः ।
तयोः समभवद्युद्धं सुघोरं रोमहर्षणम् ।२४।
विष्णोर्योगबलात्तस्य दिव्यदेहाः सुदारुणाः ।२५।
शंखचक्रगदाहस्ता असंख्याताश्च जज्ञिरे ।
तान्सर्वानपि देवोसौ नारायणसमप्रभान् ।२६।
निहत्य गदया विष्णुं ताडयामास मूर्धनि ।
ततश्चोरसि तं देवं लीलायैव रणाजिरे ।२७।
पपात च तदा भूमौ विसंज्ञः पुरुषोत्तमः ।
पुनरुत्थाय त हंतुं चक्रमुद्यम्य स प्रभुः ।२८।

इस देव वीरभद्र ने तीन सुरेन्द्रों को मुनीश्वरों को, तथा अन्य समस्त देवों को जो भी वहाँ यद्ध के लिये संस्थित थे मार गिराया था अर्थात् हनन कर दिया था ।२२। इसके अनन्तर महान् तेजस्वी विष्णु अपने चक्र से प्रहार करते हुए मूर्च्छित हो गये थे ।२३। भगवान् माधव ने उस रुद्र के साथ युद्ध किया था । उन दोनों का बड़ा भारी घोर एवं रोमहर्षण महान् युद्ध हुआ था । भगवान् रुद्र ने खड्ग-मुष्टि तथा सायक आदि से हनन किया था ।२४। विष्णु के योग बल से सुदारुण और दिव्य देह वाले शङ्ख, चक्र और गदा में लिये हुए असंख्यों उत्पन्न कर दिये थे । उन सब नारायण के तुल्य प्रभा वालों को इस देव ने गदा से मारकर फिर विष्णु के मस्तक में प्रहार किया था और फिर विष्णु के वक्षःस्थल में उस रणभूमि में ताड़ित किया था ।२५।२६। ।२७। उस समय भगवान् पुरुओत्तम बेहोश होकर भूमि में गिर गये थे और पुनः उठकर प्रभु ने उसको मारने के लिये चक्र उठाया था ।२८।

क्रोधरक्तेक्षण. श्रीमानतिष्ठत्पुरुषर्षभः ।
तस्त चक्रं यद्रौद्रं कालादित्यसमप्रभम् ।२९।

व्यष्टंभयददीनात्मा करस्थं न चचाल सः ।
अतिष्ठत्स्तंभितस्तेन शृंगवानिव निश्चलः ।३०।
त्रिभिश्चधर्षितं शार्ङ्गं त्रिधाभूतं प्रभोस्तदा ।
शार्ङ्गकोटिप्रसंगाद्वै चिच्छेद च शिरः प्रभोः ।३१।
चिन्नं च निपपातासु शिरस्तस्थ रसातले ।
वायुना प्रेरितं चैव प्राणजेन पिनाकिना ।३२।
प्रविवेश तदा चैव तदीयाहवनीयकम् ।
तत्प्रविध्वस्व कलशं भग्नयूपं सतोरणम् ।३३।
प्रदीपितमहाशालं दृष्ट्वा यज्ञोपि दुद्रुवे ।
ते तदा मृगरूपेण धावतं गगनं प्रति ।३४।
वीरभद्रः समाधाय विशिरस्कमथाकरोत् ।
ततः प्रजापतिं धर्मं कश्यपं च जगद्गुरुम् ।३५।

विष्णु क्रोध से रक्त नेत्र वाले होकर वहाँ पर पुरुषों में श्रेष्ठ श्रीमान् खड़े हुए थे। उनका जो रौद्र चक्र था जो कि कालाग्नि के समान आदित्य की प्रभा से युक्त था। उसको विष्णु के हाथ में स्थित ज्यौं का त्यौं उस अदीनात्मा ने स्तम्भित कर दिया था कि वह फिर नहीं चला था। वह पर्वत की भाँति निश्चल एवं स्थिर उसके द्वारा किया जाने पर स्तम्भीभूत होकर रुक गया था ॥२९॥ ३०॥ तीन के द्वारा धर्षित प्रभु विष्णु का शार्ङ्ग नाम वाला धनुष उस समय त्रिधाभूत हो गया था। शार्ङ्ग के कोटि प्रसङ्ग से प्रभु का शिर छिन्न कर दिया था ॥३१॥ उनका कटा हुआ वह शिर शीघ्र ही रसातल में गिर कर चला गया था। फिर पिता की वीरभद्र ने अपनी निःश्वास की वायु के द्वारा उसे प्रेरित कर दिया था ॥३२॥ उस समय ब्रह्म ने फिर उसका जो आहवनीयक था वहाँ प्रवेश किया था जो कि विध्वस्त कलश वाला था और जिसके यूप का तोरण के सहित भंग कर दिया गया था। उस प्रदीपित महाशाक्षा को देखकर यज्ञ भी काँपकर भाग गये थे। वह उस मृग के रूप से आकाश की ओर पलायन कर रहे थे कि वीरभद्र ने पकड़ कर शिर से हीन कर दिया था। इसके पश्चात् उस वीरभद्र ने प्रजापति धर्म-

कश्यप और जगद्गुरु के मस्तक में प्रहार किया था ॥३३॥३४॥३५॥

अरिष्टनेमिनं वीरो बहुपुत्रं मुनीश्वरम् ।
मुनिमंगिरसं चैव कृष्णाश्वं च महाबलः ।३६।
जघान मूर्ध्नि पादेन दक्षं चैव यशस्विनम् ।
विच्छेद च शिरस्तस्य ददाहाग्नौ द्विजोत्तमाः ।३७।
सरस्वत्याश्च नासाग्रं देवमातुस्तथैव च ।
निकृत्य करजाग्रेण वीरभद्रः प्रतापवान् ।३८।
तस्थौ श्रिया वृतौ मध्ये प्रेतस्थाने यथा भवः ।
एतस्मिन्नेव काले तु भगवानन्पद्मसभवः ।३९।
भद्रमाह मह तेजाः प्रार्थयन्प्रगतः प्रभुः ।
अलं क्रोधेन वै भद्र नष्टाश्चैव दिवौकसः ।४०।
प्रसीद क्षम्यतां सर्व रोमजः सह सुव्रत ।
सोपि भद्रः प्रभावेण ब्रह्मणः परमेष्ठिनः ।४१।
शमं जगाम शनकै शांतस्तस्थौ तदाज्ञया ।
देवोपि तत्र भगवानंतरिक्षे वृषध्वजः ।४२।

अरिष्ट नेपि-वहुपुत्र मुनीश्वर-अङ्गिरा मुनि और कृष्णाश्व के मस्तकों में महान् बलवान् वीरभद्र ने हनन किया धा और परम यशस्वी दक्ष का हनन करते हुए उसका शिर काट डाला था । हे द्विजोत्तमो ! उस शिर को अग्नि में दग्ध कर दिया था ॥३६॥३७॥ प्रतापी वीरभद्र ने करज के अग्रभाग से देवमाता सरस्वती का नासिका का अग्र भाग काट लिया था । श्री से वृत वह प्रेत स्थान के मध्य में भव की भाँति स्थित था । इसी बीच में भगवान पद्म सम्भव ब्रह्माजी बोले । और महान् तेजस्वी प्रभु ने भद्र से प्रणत होकर प्रार्थना की थी । हे भद्र ! अब अधिक क्रोध मत करो, देवगण सब नष्ट हो गये हैं ॥३८॥३९॥ ॥४०॥ ब्रह्माजी ने वीरभद्र से कहा—हे सुव्रत ! अब आप प्रसन्नता करिए और क्षमा कीजिए । परमेष्ठी ब्रह्म के प्रभाव से रोमजों गणों के साथ वह वीरभद्र भी उनकी आज्ञा में धीरे से शम को प्राप्त हो गया था और नितान्त शान्त होकर स्थित हो गया था । तथा वृषध्वज महादेव

भी अन्तरिक्ष में उस समय संस्थित हो रहे थे ।४१।४२।

सगण: सर्वद: शव: सर्वलोकमहेश्वर: ।
प्रार्थितश्चैव देवेन ब्रह्मणा भगवान् भव: ।४३।
हतानां च तदा तेषां प्रददौ पूर्ववत्तनुम् ।
इंद्रस्य च शिरस्तस्य विष्णोश्चैव महात्मन: ।४४।
दक्षस्य च मुनींद्रस्य तथान्येषां महेश्वर: ।
वागीश्याश्चैव नासाग्रं देवमातुस्तथैव च ।४५।
नष्टानां जीवितं चैव वराणि विविधानि च ।
दक्षस्य ध्वस्त वक्रस्य शिरसा भगवान्प्रभु: ।४६।
कल्पयामास वै वक्रं लीलया च महान् भव: ।
दक्षोपि लब्धसंज्ञश्च समुत्थाय कृतांजलि: ।४७।
तुष्टाव देवदेवेशं शंकरं वृषध्वजम् ।
स्तुतस्तेन महातेजा: प्रदाय विविधान्वरान् ।४८।
गाणपत्यं ददौ तस्मै दक्षायाक्लिष्टकर्मणे ।
देवाश्च सर्वे देवेशं तष्टुवु: परमेश्वरम् ।४९।
नारायणश्च भगवान् तुष्टाव च कृतांजलि: ।
ब्रह्मा च मुनय: सर्वे पृथक्पृथगजोद्भवम् ।५०।
तुष्टुवुर्देवदेवेशं नीलकठं वृषध्वजम् ।
तान्देवाननुगृह्यैव भवोप्यतरधीयत ।५१।

सभी कुछ प्रदान करने वाले समस्त लोकों के महान् ईश्वर भगवान् शम्भु की भी उनके गणों के सहित ब्रह्माजी ने प्रार्थना की थी ।४३। उस समय में जो भी देवगण का हनन किया गया था उन सब का शरीर पुन: महादेव ने दे दिया था अर्थात् उन्हें जीवित कर दिया था। इन्द्र का और विष्णु का भी शिर जो छिन्न कर दिया था वापिस प्रदान कर दिया था। महेश्वर भगवान् ने मुनीन्द्र दक्ष का तथा अन्य लोगों का कटा हुआ मस्तक दे दिया था और वाणी की अधिष्ठात्री सरस्वती देवी की नासिका ज्यौं की त्यौं लगादी थी ।४४।४५। जो नष्ट हो गये थे उनका जीवन प्रदान कर अनेक वर भी प्रदान किये थे। ध्वस्त मुख

वाले दक्ष का शिर भगवान् प्रभु ने लीला ही से पुनः कल्पित कर दिया था। फिर वह प्रजापति दक्ष संज्ञा (होश) प्राप्त करके हाथ जोड़ कर खड़ा हो गया था।४६।४७। दक्ष ने वृषध्वज भगवान् शङ्कर का स्तवन किया था। इस प्रकार से उसके द्वारा स्तुती किये जाने पर महा-तेजस्वी शम्भु ने उसे अनेक वरदान प्रदान किये थे।४८। उस आक्लिष्ट कर्म वाले दक्ष को शम्भु ने गणपत्य पद प्रदान किया था। उस समय समस्त देवों ने परमेश्वर शम्भु का स्तवन किया था।४९। भगवान् नारयण ने हाथ जोड़कर महेश्वर का स्तवन किया था। ब्रह्मा और समस्त मुनिगण ने पृथक् २ भगवान् देवदेवेश नीलकण्ठ वृषभ ध्वज का स्तवन किया था। उन सब देवताओं पर अनुग्रह करके भगवान भव भी फिर अन्तर्धान हो गये थे।५०।५१।

॥ ६८—मदन-दाह ॥

कथं हिमवतः पुत्री बभूवांबा सती शुभा।
कथं वा देवदेवेशमवाप पतिमीश्वरम्।१।
सा मेनातनुमाश्रित्य स्वेच्छयैव वरांगना।
तदा हैमवती जज्ञे तपसा च द्विजोत्तमाः।२।
जातकर्मादिकाः सर्वाश्चकार च गिरीश्वरः।
द्वादशे च तदा वर्षे पूर्णे हैमवती शुभा।३।
तपस्तेपे तया सार्धमनुजा च शुभानना।
अन्या च देवो ह्यनुजा सर्वलोक नमस्कृता।४।
ऋषयश्च तदा सर्वे सर्वलोकमहेश्वरीम्।
तुष्टुवुस्तपसा देवीं समावृत्य समंततः।५।
ज्येष्ठा ह्यपर्णा ह्यनुजा चैकपर्णा शुभानना।
तृतीया च वरारोहा तथा चैवैकपाटला।६।
तपसा च महादेव्याः पार्वत्याः परमेश्वरः।
वशीकृतो महादेवः सर्वभूत पतिर्भवः।७।

इस एकसौ एक अध्याय में पार्वती का तप एवं जन्म और कामदेव

का शिव के द्वारा दाह का वर्णन किया जाता है। ऋषियों ने कहा—सती अम्बा हिमवान् की पुत्री के स्वरूप में कैसे हुई थी और उसने देवेश्वर शम्भु को अपना पति किस प्रकार से प्राप्त किया था ? ॥१॥ सूतजी ने कहा हे द्विजोत्तमो ! उस सती देवी ने अपनी ही इच्छा से तप के द्वारा और हिमालय की आराधना से मेना के तनुका आश्रय ग्रहण करके हैमवती प्रादुर्भूत हुई थी ॥२॥ गिरीश्वर हिमवान् ने उस हैमवती देवी के समस्त जात कर्म आदि संस्कार सविधि किये थे। जब वह बारह वर्ष की पूरी अवस्था प्राप्त कर चुकी तो उसने तपस्या की थी। उसके साथ शुभ आनन वाली उसकी अनुजा भी थी। और अन्य भी एक उसकी छोटी बहिन थी जो समस्त लोकों के द्वारा वन्द्यमान थी ॥३॥४॥ उस समय में उस पार्वती के चारों ओर एकत्रित होकर सर्वलोक महेश्वरी का सब ऋषिगणों ने स्तवन किया था ॥५॥ पार्वती की तीन भगिनियाँ थी। उनके नाम बताये जाते हैं—सबसे बड़ी अपर्णा थी और छोटी सुन्दर मुख वाली एक पर्णा थी तथा तीसरी सुन्दर आनोह वाला एक पाटला थी ॥६॥ उस समय में पार्वती के तप से समस्त भूतों के स्वामी भव महादेव वशीकृत हो गये थे ॥७॥

एतस्मिन्नेव काले तु तारको नाम दानवः।
तारात्मजो महातेजा बभूव दितिनंदनः ।८।
तस्य पुत्रास्त्रयश्चापि तारकाक्षो महासुरः।
विद्युन्माली च भगवान् कमलाक्षश्च वीर्यवान् ।९।
पितामहस्तथा चैषां तारो नाम महाबलः।
तपसा लब्ध वीर्यश्च प्रसादाद्ब्रह्मणः प्रभोः ।१०।
सोपि तारो महातेजास्त्रैलोक्यं सचराचरम्।
विजित्य समरे पूर्वं विष्णुं च जितवानसौ ।११।
तयोः समभवद्युद्धं सुघोरं रोमहर्षणम्।
दिव्यं वर्षसहस्रं तु दिवारात्रमविश्रमम् ।१२।
सरथ विष्णुमादाय चिक्षेप शतयोजनम्।
तारे विजितः संख्ये दुद्राव गरुडध्वजः ।१३।

तारो वराञ्छतगुणं लब्ध्या शतगुणं बलम् ।
पितामहाज्जगत्सर्वमवाप दितिनंदनः ।१४।

इसी समय में तारक नाम वाला दानव हुआ था। दिति का पुत्र तारात्मज महान् तेज वाला था ॥८॥ उसके तीन पुत्र थे। तारकाक्ष महान् असुर था-दूसरे का नाम विद्युन्माली था और तीसरा महान् पराक्रमी कमलाक्ष हुआ था ॥९॥ इनका पितामह तार नाम नाला महान् बलवान् था। उसने प्रभु ब्रह्मा के प्रसाद से तपस्या के द्वारा अतुल बल-वीर्य की प्राप्ति की थी। ॥१०॥ वह तार महान् तेजस्वी था और इस समस्त चराचर को जीत कर फिर युद्ध में विष्णु को भी पराजित कर दिया था। ॥११॥ विष्णु और तार इन दोनों का अतिघोर तथा बहुत ही भयानक रोपहर्षण महान् युद्ध हुआ था। वह युद्ध लगातर रात दिन एक सहस्र दिव्य वर्षों तक हुआ था ॥१२॥ इसने रथ के सहित विष्णु को पकड़ कर सौ योजन दूरी पर फैंक दिया था। उस युद्ध में गरुड़-ध्वज विष्णु तार से विजित होकर भाग गये थे ॥१३॥ तार दानव ने पितामह से शतगुण वरों को प्राप्त करके तथा शतगुण बल का लाभ करके इसे दिति नन्दन ने समस्त जगत् को प्राप्त कर लिया था ॥१४॥

देवेंद्रप्रमुखाञ्जित्वा देवान्देवेश्वरेश्वरः ।
वारयामास तैर्देवान्सर्वलोकेपु मायया ।१५।
दैवताश्च सहेंद्रेण तारक ह्यूयपीडिताः ।
न शांति लेभिरे शूराः शरणं वा भयार्दिताः ।१६।
तदामरपतिः श्रीमान् सन्निपत्यामरप्रभुः ।
उवाचांगिरसं देवो देवानामपि सन्निधौ ।१७।
भगवंस्तारको नाम तारजो दानवोत्तमः ।
तेन सन्निहता युद्धे वत्सा गोपतिना यथा ।१८।
भयात्तस्मान्महाभाग बृहद्युद्धे बृहस्पते ।
अनिकेता भ्रमंत्येते शकुंता इव पंजरे ।१९।
अस्माकं यान्यमोघानि आयुधान्यंगिरोवर ।
तानि मोघानि जायंते प्रभावादमरद्विषः ।२०।

दशवर्षसहस्राणि द्विगुणानि बृहस्पते ।
विष्णुना योधितो युद्धे तेनापि न च सूदितः ।२१।

देवेश्वरेश्वर ने देवेन्द्र प्रमुख देवों को जीत कर माया से देवों को समस्त लोकों में वारण कर दिया था ।१५। इन्द्र के सहित देवताओं ने तारक के भय से उत्पीड़ित होते हुए कहीं भी शान्ति प्राप्त नहीं की थी और उन भय से दुखियों को कोई भी रक्षा करने वाला नहीं मिला था ।१६। उस समय देवों का स्वामी इन्द्रदेव जो कि अमरों का प्रभु और श्री सम्पन्न था आङ्गिरस मुनि के चरणों में पड़कर देवों की सन्निधि में ही बोला ।१७। हे भगवन् ! तार से उत्पन्न होने वाला दानव शिरोमणि तारक नामधारी दैत्य है और उसने गोपति के द्वारा वत्सों की भाँति हम लोगों को युद्ध में भली-भाँति निहित किया है ।१८। हे महाभाग बृहस्पतिजी ! इस विशाल युद्ध में उसके भय से ये सब देवगण बिना आश्रय वाले पञ्जर में पक्षियों की भाँति भ्रमण किया करते हैं ।१९। हे अङ्गिरोवर ! हमारे जो भी अमोघ आयुध थे वे सब देव शत्रु के प्रभाव से मोघ (विफल) हो गये थे ।२०। हे बृहस्पते ! दश हजार से भी दुगुने वर्षों तक विष्णु ने उसके साथ युद्ध किया था किन्तु वह उनके द्वारा भी नहीं मारा गया है ।२१।

यस्तेनानिर्जितो युद्धे विष्णुना प्रभुविष्णुना ।
कथमस्मद्विधस्तस्य स्थास्यते समरेऽग्रतः ।२२।
एवमुक्तस्तु शक्रेण जीवः सार्धं सुराधिपैः ।
सहस्राक्षेण च विभुं संप्राप्याह कुशध्वजम् ।२३।
सोपि तस्य मुखाच्छ्रुत्वा प्रणयात्प्रणतार्तिहा ।
देवैरशेषैः सेंद्रैस्तु जीवमाह पितामहः ।२४।
जाने वोर्ति सुरेंद्राणां तथापि श्रृणु सांप्रतम् ।
विनिंद्य दक्षं या देवी सती रुद्रांगसंभवा ।२४।
उमा हैमवती जज्ञे सर्वलोकनमस्कृता ।
तस्याश्चैवेह रूपेण यूयं देवः सुरोत्तमाः ।२६।
विभोर्यतध्वमाक्रष्टुं रुद्रस्यास्य मनो महत् ।

तयोर्योगेन संभतः स्कंदः शक्तिधरः प्रभुः ।२७।
षडास्यो द्वादशभुजः सेनानीः पावकिः प्रभुः ।
स्वाहेयः कार्तिकेयश्च गांगेयः शरधामजः ।२८।
देवः शाखो विशाखश्च नैगमेशश्च वीर्यवान् ।
सेनापतिः कुमाराख्यः सर्वलोकनमस्कृतः ।२९।

जो महाबली दानव प्रभुविष्णु विष्णु के द्वारा भी युद्ध में नहीं निर्जित-हुआ है फिर हमारे जैसा समर में उसके सामने किस तरह स्थित रहेगा ।२२। इन्द्र के द्वारा ऐसे कहे जाने पर वृहस्पति इन्द्र और समस्त देवों को साथ में लेकर विभु कुश ध्वज के पास पहुंच कर यह बोले ।२३। वह भी प्रणय से प्रणतों की पीड़ा के हरण करने वाले पितामह उस वृहस्पति के मुख से उनकी पीड़ा का हाल सुनकर सम्पूर्ण देवगण और इन्द्र के सहित बृहस्पति से बोले ।२४। मैं सुरेन्द्र आप लोगों की पीड़ा को जानता हूँ तो भी अब सुनिये । दक्ष प्रजापति को विनिन्दित करके जो रुद्र के अङ्ग से सम्भूत हुई देवी सती है वह सम्पूर्ण लोकों के द्वारा वन्दित होती हुइ हैमवती उमा उत्पन्न हुई है । आप सुरों में श्रेष्ठ देवगण अब उसके रूप-लावण्य के द्वारा विभु इन रुद्रदेव के महान् मन को आकर्षित करने का यत्न करें । उन दोनों का जब योग होगा तो उससे शक्ति के धारण करने वाले प्रभु स्कन्द उत्पन्न होंगे ।२५।२६।२७। वह स्कन्द छै मुख वाले-बारह भुजाओं ने युक्त-सेनानी (से ा के नायक) और प्रभु एवं पावकि हैं। उनके नाम स्वाहेय-कार्त्तिकेय-गाङ्गेय-शरधातमज-देव-शाख-विशाख-नैगमेश-वीर्यवान्-सेनापति और कुमार ये हैं जो कि सम्पूर्ण लोकों के द्वारा बन्द्यमान हैं ।२८।२९।

लीलयैव महासेनः प्रबलं तारकासुरम् ।
बालोपि विनिहत्यैको देवान् संतारयिष्यति ।३०।
एवमुक्त स्तदा तेन ब्रह्मणा परमेष्ठिना ।
बृहस्पतिस्तथा सेंद्रैर्देवैर्द्रेवं प्रणम्य तम् ।३१।
मेरोः शिखरमासाद्य स्मरं सस्मार सुव्रतः ।
स्मरणाद्देवदेवस्य स्मरोपि सह भार्यया ।३२।

रत्या समं समागम्य नमस्कृत्य कृतांजलिः ।
सशक्रमाह तं जीवं जगज्जीवो द्विजोत्तमाः ।३३।
स्मृतो यद्भवता जीव संप्राप्तोहं तवांतिकम् ।
ब्रूहि यन्मे विधातव्यं तमाह सुरपूजितः ।३४।
तमाह भगवाञ्छक्रः संभाव्य मकरध्वजम् ।
शंकरेणांबिकामद्य संयोजय यथासुखम्ः ।३५।

वह बालक भी होते हुए महासेन लीला ही से उस प्रबल तारकासुर को एक अकेला मार कर सब देवों का सन्तारण कर देंगे ।।३०।। इस प्रकार से ब्रह्मा के द्वारा कहे हुए बृहस्पति ने इन्द्र के तथा देवों के सहित उनको प्रणाम किया था । फिर सुब्रत ने मेरु पर्वत के शिखर पर पहुँच कर कामदेव का स्मरण किया था । देवों के देव के स्मरण करने से कामदेव भी अपनी भार्या रति को साथ लेकर वहाँ आ गया और उसने हाथ जोड़ कर गुरु और इन्द्रदेव को नमस्कार किया था । हे द्विजश्रेष्ठो ! समस्त जगत् का जीव वह कामदेव इन्द्र के सहित बृहस्पति से बोला । हे वृहस्पति जी ! आपके द्वारा स्मरण किये जाने पर मैं यहाँ आपके समीप में उपस्थित हो गया हूँ । अब मुझे आज्ञा दीजिए कि मुझे क्या करना है । तब सुर गुरु ने उससे कहा था ।।३१।।३२।।३३।।३४।। भगवान् इन्द्रदेव ने उससे कहा और मकरध्वज पूरी प्रशंसा की थी । अब तुम सुख पूर्वक अम्बिका देवी का भगवान् शङ्कर के साथ संयोग करादो ।।३५।।

तया स रमते येन भगवान् वृषभध्वजः ।
तेन मार्गेण मार्गस्व पत्न्या रत्याऽनया सह ।३६।
सोपि तुष्टो महादेवः प्रदास्यति शुभां गतिम् ।
विप्रयुक्तस्तया पूर्वं लब्ध्वा तां गिरिजामुमाम् ।३७।
एवमुक्तो नमस्कृत्य देवदेव शचीपतिम् ।
देवदेवाश्रमं गंतुं मतिं चक्रे तथा सहं ।३८।
गत्वा तदाश्रमे शंभोः सह रत्या महाबलः ।
वसंतेन सहायेन देवं योक्तुमनाभवत् ।३९।
ततः संप्रेक्ष्य मदनं हसन् देवस्त्रियंबकः ।

नयनेन तृतीयेन सावज्ञं तमवैक्षत ।४०।
ततोऽस्य नेत्रजो वह्निर्मदनं पार्श्वतः स्थितम् ।
अदहत्तत्क्षणादेव ललाप करुणं रतिः ।४१।
रत्याः प्रलापमाकर्ण्य देवदेवो वृषध्वजः ।
कृपया परया प्राह कामपत्नीं निरीक्ष्य च ।४२।

ऐसा प्रीति संयोग होना चाहिए कि भगवान् वृषभध्वज उस अम्बिका देवी के साथ रमण करने लगें। अब इस अपनी पत्नी रति के साथ वही मार्ग तुम खोज लो ।३६। वह महादेव भी परम सन्तुष्ट होकर तुमको बहुत अच्छी गति प्रदान करेंगे क्योंकि उस उमा से वे इस समय विप्रयुक्त हो रहे हैं। उस गिरिजा उमा को वे पुनः प्राप्त कर लेंगे तो उनको बड़ा तोष होगा ।३७। इस तरह से कहा हुए कामदेव ने शची के पति देवेन्द्र को नमस्कार किया और फिर देवों के भी देव महादेव के आश्रम में उस पत्नी रति के साथ जाने का विचार किया था ।३८। उस समय शम्भु के आश्रम में पहुंच कर महान् बलवान् कामदेव रति के सहित वसन्त की सहायता से उन देव को पार्वती के सङ्गत कर देने का मन किया था ।३९। इसके अनन्तर कामदेव को देखकर भगवान् त्र्यम्बक ने हँसते हुए उसको अवज्ञा पूर्वक अपने तीसरे नेत्र से देखा था ।४०। इसके अनन्तर उस शिव के नेत्र से समुत्पन्न अग्नि ने पास में स्थित मदन को तुरन्त ही दग्ध कर दिया था। मदन (पति) को दग्ध देखकर उसकी भार्या रति करुणा के साथ रुदन करने लगी ।४१। और के प्रलाप का श्रवण कर वृषध्वज देव ने परम कृपा से काम की स्त्री को देखकर उससे कहा ।४२।

अमूर्त्तोपि ध्रुव भद्रे कार्यं सर्वं पतिस्तव ।
रतिकाले ध्रुवं भद्रे करिष्यति न संशयः ।४३।
यदा विष्णुश्च भविता वासुदेवो महायशाः ।
शापाद्भृगोर्महातेजाः सर्वलोकहिताय वै ।४४।
तदा तस्य सुतो यश्च स पतिस्ते भविष्यते ।
सा प्रणम्य तदा रुद्रं कामपत्नी शुचिस्मिता ।४५।

जगाम मदनं लब्ध्वा वसंतेन समन्विता ।४६।

हे भद्रे ! यह अब विना मूर्त्ति वाला भी तेरा पति तेरा समाज कार्य भली-भाँति निश्चित रूप से सम्पादन किया करेगा। जिस समय रति काल होगा तो हे भद्रे ! यह तेरा पूर्ण तोष करेगा इसमें कुछ भी संशय नहीं है ।४३। जिस समय भगवान् विष्णु वासुदेव होंगे अर्थात् महान यश वाले और वसुदेव के यहाँ जन्म ग्रहण करेंगे जो कि महान् तेजस्वी विष्णु भृगु के शाप से समस्त लोकों के कल्याण के लिए ही अवतीर्ण होंगे ।४४। तब तेरा यह पति उनके पुत्र के रूप में समुत्पन्न होगा। तब उस रति कामदेव की पत्नी रुद्र को प्रणाम करके मुस्कराती हुई मदन को प्राप्त कर वसन्त के साथ वहां से चली गई थी ।४५।४६।

।। ६ —उमा-स्वयंवर ।।

तपसा च महादेव्याः पार्वत्या वृषभध्वजः ।
प्रीतश्च भगवाञ्छर्वो वचनाद्ब्रह्मणस्तदा ।१।
हिताय चाश्रमाणां च क्रीडार्थं भगवान्भवः ।
तदा हैमवतीं देवीमुपयेमे यथाविधि ।२।
जगाम स स्वयं ब्रह्मा मरीच्याद्यै महर्षिभिः ।
तपोवनं महादेव्याः पार्वत्याः पद्मसंभवः ।३।
प्रदक्षिणीकृत्य च तां देवीं स जगतोरणीम् ।
किमर्थं तपसा लोकान्संतापयसि शैलजे ।४।
त्वया सृष्टं जगत्सर्वं मातस्त्वं मा विनाशय ।
त्वं हि संधारये लोकानिमान्सर्वान्स्वतेजसा ।५।
सर्वदेवेश्वरः श्रीमान्सर्वलोकपतिर्भवः ।
यस्य वै देवदेवस्य वयं किंकरवादिनः ।६।
स एवं परमेशानः स्वयं च वरयिष्यतिः ।
वरदे येन सृष्टासि न विना यस्त्वयांबिके ।७।

इस अध्याय में तपश्चर्या से सन्तुष्ट देव शङ्कर से देवी का प्रसाद और स्वयम्बर में देवों का निग्रह आदि का निरूपण किया जाता है।

सूत जी ने कहा—उस समय ब्रह्मा के वचन से महादेवी पार्वती की तपस्या से भगवान् वृषभध्वज शर्व प्रीति युक्त हो गये थे ।१। समस्त आश्रमों के हित के लिए और क्रीड़ा करने के लिए भगवान् भव ने हैमवती देवी को विधि-विधान के साथ विवाह कर लिया था ।२। उस समय ब्रह्मा स्वयं मरीचि आदि महर्षियों को साथ में लेकर महादेवी पार्वती के तपोवन में गये थे । पद्म सम्भव ने उस देवी की परिक्रमा की थी और जगतों की निमित्त कारण भूता उस देवी से प्रणाम पूर्वक कहा था । हे शैलजे ! आप इस कठिन तप के द्वारा लोकों को किस फल की प्राप्ति के लिए संतप्त कर रही हैं ।३।४। हे माता ! आपने ही इस सम्पूर्ण जगत् का सृजन किया है । अत आप इसका विनाश मत करो । आप ही इन समस्त लोकों को अपने तेज के द्वारा सन्धारण करती हैं ।५। समस्त देवों के स्वामी और सब लोकों के पति श्रीमान् भव हैं । हम सब तो उस देवों के देव के किंकर कहे जाने वाले हैं । वह ही परमेशान स्वयं आपका वरण करेंगे । हे वरदे ! वे आपके बिना हे अम्बिके सृजन का कार्य नहीं करेंगे ।६।७।

वर्त्तति नात्र सन्देहस्तव भर्त्ता भविष्यति ।
इत्युक्त्वा तां नमस्कृत्य मुहुः संप्रेक्ष्य पार्वतीम् ।८।
गते पितामहे देवो भगवान् परमेश्वरः ।
जगामानुग्रहं कर्त्तुं द्विजरूपेण चाश्रमम् ।९।
स च दृष्ट्वा महादेवं द्विजरूपेण संस्थितम् ।
प्रतिभाद्यैः प्रभुं ज्ञात्वा ननाम वृषभध्वजम् ।१०।
संपूज्य वरदं देवं बाह्मगच्छद्मनागतम् ।
तुष्टाव परमेशानं पार्वती परमेश्वरम् ।११।
अनुगृह्य तदा देवीमुवाच प्रहसन्निव ।
कुलधर्माश्रय रक्षन् भूधरस्य महात्मन ।१२।
क्रीडार्थं च सतां मध्ये सर्वदेवपतिर्भवः ।
स्वयंवरे महादेवि तव दिव्यसुशोभने ।१३।
आस्थाय रूपं यत्सौम्यं समेष्येहं सह त्वया ।

इत्युक्त्वा तां समालोक्य देवो दिव्येन चक्षुषा ।१४।

इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है । वे आपके भर्त्ता अवश्य ही होंगे । इतना कहकर उस देवी को नमस्कार करके पुनः उन्होंने उस देवी का दर्शन किया था ।८। पितामह के चले जाने पर देव भगवान् परमेश्वर ने एक द्विज का रूप धारण कर अनुग्रह करने के लिए वे उसी आश्रम में गये थे ।९। उस देवी ने एक द्विज के स्वरूप में स्थित महादेव का दर्शन किया था । उनकी प्रतिभा आदि से पार्वती ने अपने प्रभु को पहिचान लिया और फिर उसने वृषभ ध्वज को प्रणाम किया था ।१०। ब्राह्मण के वेष में छल करके समागत वरद देव का पार्वती ने भली-भाँति पूजन किया था और फिर पार्वती परमेशान परमेश्वर का स्तवन किया था ।११। तब तो उस देवी पर अनुग्रह करके शम्भु हँसते हुए उससे बोले । हे महादेवी ! महात्मा भूधर के कुल के धर्म की रक्षा करते हुए सब देवों का स्वामी भव क्रीड़ा के लिए सत्पुरुषों के मध्य में तुम्हारे दिव्य सुशोभन स्वयम्वर में सौम्य स्वरूप में समास्थित होकर मैं तेरे साथ आऊँगा । उस देवी से इस प्रकार से यह कहकर देव ने अपनी दिव्य चक्षु से उसे देखा था ।१२।१३।१४।

जगामेष्टं तदा दिव्यं स्वपुरं प्रययौ च सा ।
दृष्ट्वा हृष्टस्तदा देवीं मेनया तुहिनाचलः ।१५।
आलिंग्याघ्राय संपूज्य पुत्रीं साक्षात्तापस्विनीम् ।
दुहितुर्देवदेवेन न जानन्नभि मंत्रितम् ।१६।
स्वयंवरं तदा देव्याः सर्वलोकेष्वघोषयत् ।
अथ ब्रह्मा च भगवान् विष्णुः साक्षाज्जनार्दनः ।१७।
शक्रश्च भगवान् वह्निर्भास्करो भग एव च ।
त्वष्टार्यमा विवस्वांश्च यमो वरुण एव च ।१८।
वायुः सोमस्तथेशानो रुद्राश्च मुनय स्तथा ।
अश्विनौ द्वादशादित्या गधर्वा गरुडस्तथा ।१९।
यक्षाः सिद्धास्तथा साध्या दैत्याः किंपुरुषोरगाः ।
ससुद्राश्च नदा वेदा मन्त्राः स्तोत्रादयः क्षणाः ।२०।

नागाश्च पर्वताः सर्वे यज्ञाः सूर्योदयो ग्रहाः ।
त्रयस्त्रिंशच्च देवानां त्रयश्च त्रिशतं तथा ।२१।
त्रयश्च त्रिसहस्रं च तथान्ये बहवः सुराः ।
जग्मुर्गिरींद्रपुत्र्यास्तु स्वयंवरमनुत्तमम् ।२२।

उस समय में वह देवी अपने अभीष्ट परम दिव्य निज पुर को चली गई थी । तब तुहिनाचल मेना के सहित उस देवी को देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुआ था ।१५। हिमवान् ने उस साक्षात् तपस्विनी पुत्री का आलिङ्गन कर-सत्कार करके और उसके मस्तक को सूँघकर देवों के देव शिव द्वारा दुहिता को दिये हुए संकेत को नहीं जानते हुए हिमालय ने देवी का स्वयम्वर समस्त लोकों में उद्घोषित कर दिया था । इसके अनन्तर वहाँ पर ब्रह्मा साक्षात् जनार्दन भगवान् विष्णु, इन्द्र-अग्नि-भग-त्वष्टा-अर्यमा-विवस्वान्-यम-वरुण वायु-सोम-ईशान-रुद्र-मुनिगण-अश्विनी-कुमार-द्वादश आदित्य-गन्धर्व गरुड़-यक्ष-सिद्धि-साध्य-दैत्यगण-किम्पुरुष उरग समुद्र-नद-वेद-मन्त्र-मण्डल-स्तोत्रादि-क्षण-नाग-पर्वत-समस्त यज्ञ सूय प्रभृति ग्रह-तीन सहस्र तीन सौ तेतीस देवताओं के भेद तथा अन्य बहुत से सुरगण गिरि शिरोमणि हिमवान् की पुत्री के परम श्रेष्ठतम इस स्वयम्वर में गये थे ।१६।१७।१८।१९।२०।२१।२२।

अथ शैलसुता देवी हैममारुह्य शोभनम् ।
विमानं सर्वतोभद्रं सर्वरत्नैरलंकृतम् ।२३।
अप्सरोभिः प्रनृत्ताभिः सर्वाभरणभूषितैः ।
गन्धर्वसिद्धैर्विविधैः किन्नरैश्च सुशोभनैः। ४।
वंदिभिः स्तूयमाना च स्थिता शैलसुता तदा ।
सितातपत्रं रत्नांशुमिश्रितं चावहत्तथा ।२५।
मालिनी गिरिपुत्र्यास्तु संध्यापूर्णेन्दुमण्डलम् ।
चामरासक्तहस्ताभिर्दिव्यस्त्रीभिश्च संवृता ।२६।
मालां गृह्य जया तस्थौ सुरद्रुमसमुद्भवाम् ।
विजया व्यजनं गृह्य स्थिता देव्याः समीपगा ।२७।
मालां प्रगृह्य देव्यां तु स्थितायां देवससदि ।

शिशुर्भूत्वा महादेवः क्रीडार्थं वृषभध्वजः ।२८।
उत्सङ्गतलसंसुप्तो बभूव भगवान्भवः ।
अथ दृष्ट्वा शिशुं देवास्तस्या उत्सङ्गवर्त्तिनम् ।२९।

इसके अनन्तर शैलराज की पुत्री देवी पार्वती सुवर्ण से निर्मित परम शोभा से समन्वित विमान में समारूढ़ हुई थी । वह विमान सभी प्रकार से बहुत ही भद्र था और समस्त प्रकार के रत्नों से समलङ्कृत हो रहा था ।२३। सम्पूर्ण आभरणों से विभूषित नृत्य करती हुई अप्सराओं के द्वारा-गान्धर्व तथा सिद्धों के द्वारा सुशोभन किन्नरों के द्वारा और बन्दी-गणों के द्वारा स्तवन की जाने वाली शैलराज की पुत्री पार्वती उस पर समारूढ़ हो रही थी । सित वर्ण का रत्नों की किरणों से मिश्रित एक छत्र उसके ऊपर लगा हुआ था ।२४।२५। माला धारण कर रही थी और गिरि वर की पुत्री का मुख सन्ध्या के समय में पूर्ण चन्द्र मण्डल के समान सुशोभित हो रहा था । चमर हाथों में लेकर दिव्य अङ्गनाओं के द्वारा वह देवी सुसंवृत हो रही थी ।२६। जया नाम धारिणी उस देवी के ही समीप में देव द्रुम के पुष्पों द्वारा निर्मित्त माला को लिये हुये खड़ी थी । विजया हाथ में व्यंजन लिए हुये थी ।२७। इसके अनन्तर समस्त देवगण ने उसके उत्सङ्ग (गोद में) में एक शिशु को देखा था । जिस समत वरमाला को लेकर वह देवी देवों की सभा में स्थित थी महादेव वृष-भध्वज क्रीड़ा करने के लिये एक छोटा सा शिशु होकर उस पार्वती के उत्सङ्ग भाग में सोया हुआ था ।२८।२९।

कोयमत्रेति संमंत्र्य चुक्षुभुश्च समागताः ।
वज्रमाहारयत्तास्य बाहु मुद्यम्य वृत्रहा ।३०।
स बाहुरुद्यमस्तस्य तथैव समुपस्थितः ।
स्तंभितः शिशुरूपेण देवदेवेन लीलया ।३१।
वज्रं क्षेप्तुं न शशाक बाहुं चालयितुं तथा ।
वह्निः शक्तिं तथा क्षेप्तुं न शशाक तथा स्थितः ।३२।
यमोपि दंडं खङ्गं च निर्ऋतिर्मुनिपुंगवाः ।
वरुणो नाग पाशं च ध्वजयष्टिं समीरणः ।३३।

सोमो गदां धनेशश्च दंडं दण्डभृतां वरः ।
ईशानश्च तथा शूलं तीव्रमुद्यम्य संस्थितः ।३४।
रुद्राश्च शूलमादित्या मुशलं वसवस्तथा ।
मुद्गरं स्तंभिताः सर्वे देवेनाशु दिवौकसः ।३५।

यह इस देवी की गोद में कौन है—ऐसा विचार कर सभी समागत महानुभावों के हृदय में बहुत क्षोभ उत्पन्न हो गया था। उसके ऊपर इन्द्रदेव ने बाहु से उठाकर वज्र को चलाना चाहा था किन्तु उसका वह बाहु वहाँ की वहाँ पर रह गया था। यह देवों के देव की लीला से स्तम्भित हो गया था जो कि एक शिशु के स्वरूप में वहाँ पर उपस्थित थे ।३०।३१। वह इन्द्र अपने उस वज्र को फेंकने में समर्थ न हो सका था और न वह अपनी बाहु को ही चलाने-डुलाने में समर्थ हुआ था। अग्नि अपनी शक्ति चलाने में असमर्थ हो गया था और ज्यौं का त्यौं स्थित रहा गया था ।३२। यम भी अपने दण्ड को-निर्ऋति खंग को-वरुण अपने नाग पाश को और वायु अपनी ध्वज यष्टि को हे मुनिश्रेष्ठो ! वहाँ चलाने में समर्थ न हो सके थे ।३३। सोम गदा को-धनेश्वर कुवेर दण्ड धारियों में अति श्रेष्ठ अपने दण्ड को और ईशान अपने तीव्र शूल को उठाकर ही रह गये थे ।३४। रुद्रगण भी शूल को-आदित्य मुसल को और वसुगण मुद्गर को न चला सके थे। देव ने समस्त देवताओं को शीघ्र ही स्तम्भित कर दिया था ।३५।

स्तंभिता देवदेवेन तथान्ये च दिवौकसः ।
शिरः प्रकंपयन्विष्णुश्चक्रमुद्यम्य संस्थितः ।३६।
तस्यापि शिरसो बालः स्थिरत्वं प्रचकार ह ।
चक्रं क्षेप्तुं न शशाक बाहूंश्चालयितुं न च ।३७।
पूषा दन्तान्दशन्दंतैर्बालमैक्षत मोहितः ।
तस्यपि दशनाः पेतुर्द्दष्टमात्रस्य शंभुना ।३८।
बलं तेजश्च योगं च तथैवास्तंभयद्विभुः ।
अथ तेषु स्थितेष्वेव मन्युमत्सु सुरेष्वपि ।३९।
ब्रह्मा परमसंविग्नो ध्यानमास्थाय शङ्करम् ।

बुबुधे देवमीशानमुमोत्संगे तमास्थितम् ।४०।
स बुद्धा देवमीशानं शीघ्रमुत्थाय विस्मितः ।
ववंदे चरणौ शंभोरस्तुवच्च पितामहः ।४१।
पुराणैः सामसंगीतैः पुण्याख्यैर्गुह्यनामभिः ।
स्रष्टा त्वं सर्वलोकानां प्रकृतेश्च प्रवर्त्तकः ।४२।

देवदेव ने द्वारा अन्य दिवौकस भी सम्पूर्ण स्तम्भीभूत हो गये थे। विष्णु भी शिर को प्रकम्पित करते हुये अपने चक्र को उद्यत कर संस्थित हो गये थे। उस बाल ने उनके शिर को स्थिर कर दिया था और वह भी चक्र चलाने में तथा अपनी बाहु को हिलाने-डुलाने में समर्थ न हो सके थे।३६।३७। पूषा ने अपने दाँतों को पीसते हुए ही मोहित होकर उस बाल को देखा था। क्षम्भु के द्वारा केवल देखने ही से उस पूषा के दाँत गिर पड़े थे।३८। शम्भु ने सब का बल-तेज और योग उसी प्रकार से स्तम्भित कर दिया था। इसके अनन्तर अत्यन्त क्रोध में भरे हुए समस्त देवगण उसी प्रकार से स्तम्भीभूत होकर स्थित रह गए थे तब ब्रह्मा ने परम संविग्न होकर भगवान् शङ्कर का ध्यान किया था तो ब्रह्माजी को ज्ञात हुआ कि देवी के उत्संग में साक्षात् भगवान् शिव ही समास्थित हो रहे थे।३९।४०। ब्रह्माजी ने ईशान देव को पहिचान कर विस्मित होते हुए शीघ्र ही उठकर शम्भु के चरणों की वन्दना की थी और पितामह ने उनका स्तवन किया था।४१। वह स्तुति पुराणों ने सामवेद के संगीतों और उनके गोपनीय शुभ नामों के द्वारा की गई थी। ब्रह्माजी ने कहा—हे देव! आप तो इन समस्त लोकों के सृजन करने वाले हैं और प्रकृति को प्रवृत्त कराने वाले हैं।४२।

बुद्धिस्त्वं सर्वलोकाना महङ्कारस्त्वमीश्वरः ।
भूतानामिंद्रियाणां च त्वमेवेश प्रवर्त्तकः ।४३।
तवाहं दक्षिणाद्धस्तात्सृष्टः पूर्वं पुरातनः ।
वामहस्तान्महाबाहो देवो नारायणः प्रभुः ।४४।
इयं च प्रकृतिर्देवी सदा ते सृष्टिकारण ।
पत्नीरूपं समास्थाय जगत्कारणमागता ।४५।

नमस्तुभ्यं महादेव महादेव्यै नमोनमः ।
प्रसादात्तव देवेश नियोगाच्च मया प्रजाः ।४६।
देवाद्यास्तु इमाः सृष्टा मूढास्त्वद्योगमोहिताः ।
कुरु प्रसादमेतेषां यथापूर्वं भवत्विमे ।४७।
विज्ञाप्यैवं तदा ब्रह्मा देवदेवं महेश्वरम् ।
संस्तंभितांस्तदा तेन भगवानाह पद्मजः ।४८।
मूढास्थ देवताः सर्वा नैव बुध्यत शंकरम् ।
देवदेवमिहायांतं सर्वदेवनमस्कृतम् ।४९।

हे ईश्वर ! आप ही समस्त लोकों का ज्ञान है । आप ही इनका अहङ्कार हैं । हे ईश ! समस्त प्राणियों के और इन्द्रियों के प्रवर्त्तक भी आप ही होते हैं ।४३। पहिले आपके ही दाहिने हाथ से पुरातन मैं सृष्ट हुआ हूँ । आप बांए हाथ से हे महाबाहो ! नारायण प्रभु का सृजन हुआ था ।४४। हे सृष्टि के कारण ! यह प्रकृति देवी सदा ही आपकी पत्नी के स्वरूप में समास्थित होकर जगत् का कारण बनी है । ।४५। हे महादेव ! आपके लिए हम सब का नमस्कार है । इस महादेवी के लिये भी वारम्बार हमारा प्रणाम है । हे देवेश ! आपके ही प्रसाद से और आदेश से मैंने इस प्रजा का और देवगणों का सृजन किया था ।४६। अब ये देवगण सब आपके योग से मोहित होकर मूढता को प्राप्त हो गये हैं । अब आप अनुग्रह करिये जिससे ये सब पूर्व की ही भाँति हो जावें ।४७। सूतजी ने कहा ब्रह्मा ने इस प्रकार से देवों के देव महेश्वर का स्तवन करके फिर उन स्तम्भित हुए देवों से कहा था—हे देवगणों ! आप ऐसे मूढ होकर स्थित हो गए हैं कि आप लोगों ने भगवान् शङ्कर को नहीं पहिचाना है । ये देवों के देव और सब के द्वारा परम वन्दित शङ्कर यहां आये हुए हैं ।४८।४९।

गच्छध्वं शरणं शीघ्रं देवाः शक्रपुरोगमाः ।
सनारायणकाः सर्वे मुनिभिः शङ्करं प्रभुम् ।५०।
सार्धं मयैव देवेशं परमात्मानमीश्वरम् ।
अनया हैमवत्या च प्रकृत्या सह सत्तमम् ।५१।

तत्र ते स्तंभितास्तेन तथैव सुरसत्तमाः ।
प्रणेमुर्मनसा सर्वे सनारायणकाः प्रभुम् ।५२।
अथ तेषां प्रसन्ना भूद्देवदेवस्त्रियंबकः ।
यथापूर्वं चकाराशु वचनाद्ब्रह्मणः प्रभुः ।५३।
तत एवं प्रसन्ने तु सर्वदेवनिवारणम् ।
वपुश्चकार देवेशो दिव्यं परमद्भुतम् ।५४।
तेजसा ऽस्य देवास्ये सेंद्रचन्द्रदिवाकराः ।
सब्रह्मकाः ससाध्याश्च सनारायणकास्तथा ।५५।
सयमाश्च सरुद्राश्च चक्षुर प्राथयन्विभुम् ।
तेभ्यश्च परमं चक्षुः सर्वदृष्टौ च शक्तिमत् ।५६।
ददवंबापतिः शर्वो भवान्याश्त्र चलस्य च ।
लब्ध्वा चक्षुस्तदा वेवा इद्रविष्णुपुरोतमाः ।५७।
सब्रह्मकाः सशक्राश्च तमपश्यन्महेश्वरम् ।
ब्रह्माद्या नेमिरे तूर्णं भवानी च गिरीश्वरः ।५८।

वे देवगणो ! इन्द्र को साथ में लेकर आप सब लोग शीघ्र ही भगवान् शङ्कर की शरणागति में चले जाओ । नारायण को भी साथ में लेकर समस्त मुनिगण शङ्कर की शरण का आश्रय ग्रहण करो ! मैं भी परमातमा ईश्वर की शरण में चलता हूँ जो कि इस हैमवती अपनी प्रकृति के साथ विराजमान हैं ।५०।५१। तब वहाँ पर स्तम्भित होते हुए ही नारायण के सहित समस्त देवगण ने मन से ही शङ्कर को प्रणाम किया था । इसके अनन्तर देव देव त्र्यम्बक उन सव पर परम प्रसन्न हो गये थे और ब्रह्मा की प्रार्थना के अनुसार सब को पूर्व की ही भांति कर दिया था ।५३। इस प्रकार से प्रसन्न हो जाने पर वह जो समस्त देवों के द्वारा नहीं देखे जाने वाले स्वरूप का त्याग करके देवेश ने परम दिव्य अत्यन्त रमणीय एवं अद्भुत शरीर धारण किया था ।५४। गस शङ्कर के वायु के तेज से वे समस्त इन्द्र-चन्द्र-दिवाकर-ब्रह्मा-साध्य यम-रुद्र और नारायण दृष्टि हीन से हो गये थे । उन्होंने भगवान् शम्भु चक्षुओं की शक्ति प्राप्त करने की प्रार्थना की थी । तब उन सब को देखने में समर्थ परम

चक्षु अम्बा के पति ने प्रदान की थी। चक्षु-शक्ति प्राप्त करके समस्त इन्द्र विष्णु आदि परम प्रधान देवों ने तथा ब्रह्मा ने महेश्वर का दर्शन प्राप्त किया। ब्रह्मा आदि सब देवों ने महेश्वर को प्रणाम किया था। भवानी और गिरीश्वर ने भी महादेव को प्रणाम किया था ।५५।५६। ।५७।५८।

मुनयश्च महादेवं गणेशाः शिवसंमताः ।
ससर्जुः पुष्पवृष्टिं च खेचराः सिद्धचारणाः ।५६।
देवदुंदुभयो नेदुस्तुष्टुवुर्मुनयः प्रभुम् ।
जगुर्गंधर्वमुख्याश्च ननृतुश्चाप्सरोगणाः ।६०।
मुमुहुर्गणपाः सर्वं मुमोदांबा च पार्वती ।
तस्य देवो तदा हृष्टा समक्ष त्रिदिवौकसाम् ।६१।
पादयोः स्थापयामास मालां दिव्यां सुगंधिनीम् ।
साधुसाध्विति संप्रोच्य तथा तत्रैव चार्चितम् ।६२।
सह देव्या नमश्चक्रुः शिरोभिर्भूतलाश्रितैः ।
सर्वे सब्रह्मका देव्याः सयक्षोरगराक्षसाः ।६३।

समस्त मुनि मण्डल ने और शिव के सम्मत गणाधिपतियों ने शिव को प्रणाम किया था। आकाशगामी खेचर सिद्ध और चारणों ने महादेव की ऊपर आकाश से पुष्पों की वृष्टि की थी ।५६। देवों ने दुन्दुभि का वादन किया था। मुनियों ने स्तवन किया था था। गन्धर्वों ने गायन किया था और अप्सराओं ने नर्त्तन किया था ।६०। समस्त गणाय मोहित हो गये थे तथा जगदम्बा पार्वती को परमानन्द हुआ था। उस समय में देवी पार्वती ने समस्य देवगण के समक्ष में अत्यन्त प्रमुदित होकर परम सुगन्धित जो वरमाला थी उसे भगवान् शिव के चरणों में समर्पित कर दिया था। साधु-साधु ऐसा कहने पर उस देवी ने वहाँ पर शिव का अर्चन किया था। देवी के साथ ही मस्तकों को भूतल में टेककर समस्त ब्रह्मा-यक्ष-उरग एवं राक्षसों ने शिव को प्रणाम किया था ।६१।६२।६३।

॥ ७०–विघ्नेश्वर उत्पत्ति ॥

कथं विनायको जातो गजवक्त्रो गणेश्वरः ।
कथंप्रभावस्तस्यैवं सूत वक्तुमिहार्हसि ।१।
एतस्मिन्नंतरे देवाः सेंद्रोपेंद्राः समेत्य ते ।
धर्मविघ्नं तदा कर्त्तुं दैत्यानामभवन्द्विजाः ।२।
असुरा यातुधानाश्च राक्षसाः क्रूरकर्मिणः ।
तामसाश्च तथा चान्ये राजसाश्च तथा भुवि ।३।
अविघ्नं यज्ञदानाद्यैः समभ्यर्च्य महेश्वरम् ।
ब्रह्माणं च हरिं विप्रा लब्धेप्सितवरा यतः ।४।
ततोऽस्माकं सुरश्रेष्ठाः सदा विजयसंभवः ।
तेषां ततस्तु विघ्नार्थमविघ्नाय दिवौकसाम् ।५।
पुत्रार्थं चैव नारीणां नराणां कर्मसिद्धये ।
विघ्नेशं शंकरं स्रष्टुं गणपं स्तोतुमर्हथ ।६।
इत्युक्त्वान्योन्यमनघ तुष्टुवुः शिवमीश्वरम् ।
नमः सर्वात्मने तुभ्यं सर्वज्ञाय पिनाकिने ।७।

इस अध्याय में समस्त देवों के द्वारा शिव का स्तव तथा शम्भु से विघ्नेश की सृष्टि के लिए कथन का निरूपण किया जाता है। ऋषियों ने कहा—गज के समान मुख वाले विनायक की कैसे उत्पत्ति हुई थी और उनका इस प्रकार का प्रभाव कैसे हुआ था हे सूत जी ! इस को बताने की कृपा करिए। सूतजी ने कहा—इसी समय में इन्द्र और उपेन्द्र के सहित समस्त देवगण, हे द्विजगणो ! दैत्यों के धर्म कार्य में विघ्न करने के लिए एकत्रित हुये थे ।१।२। असुर-यातुधन-क्रूर कर्म करने वाले राक्षस-तामस जीव और रजोगुण वाले जीवगण भूमण्डल में बिना ही किसी विघ्न के यज्ञ और दान आदि के द्वारा महेश्वर की अर्चना किया करते हैं तथा ब्रह्मा एवं हरि का पूजन कर अपने अभीष्ट वरदान प्राप्त कर लिया करते हैं ।३।४। इसलिए हे सुरश्रेष्ठो ! तभी हमारा सदा विजय सम्भव हो सकता हैं जब कि उन दैत्यों के विघ्न करने के लिए और देवों के विघ्नों का नाश करने के लिए स्त्रियों को पुत्र प्राप्ति के लिए

और पुरुषों के कार्य्यों की सिद्धि के लिए हम सब लोग विघ्नों के स्वामी शङ्कर से गणप का सृजन करने के लिए स्तवन करें ।५।६। ऐसा परस्पर में कहकर वे सब अनध ईश्वर शिव की स्तुति करने लगे थे। देवों ने शिव से प्रार्थना की थी—हे देव ! सर्वात्मा सर्वज्ञ और पिनाक धारण करने वाले आपको हमारा सबका नमस्कार है ।७।

यदा स्थिताः सुरेश्वराः प्रणम्य चैवमीश्वरम् ।
तदां बिकापतिर्भवः पिनाकधृङ् महेश्वरः ।८।
ददौ निरीक्षणं क्षणाद्भवः स तान्सुरोत्तमान् ।
प्रणेमुरादराद्धरं सुरा मुदार्द्र लाचनाः ।९।
भवः सुध मृतोपमैर्निरीक्षणैर्निरीक्षणात् ।
तदाह भद्रमस्तु वः सुरेश्वरान् महेश्वरः ।१०।
वरार्थमीश वीक्ष्यते सुरा गृहं गतास्त्विमे ।
प्रणम्य चाह वाक्पतिः पतिं निरीक्ष्य निर्भयः ।११।
सुरेतरादिभिः सदा ह्यविघ्नमर्थितो भवान् ।
समस्तकर्मसिद्धये सुरापकारकारिभिः ।१२।
ततः प्रसीदताद्भवान् सुविघ्नकर्मकारणम् ।
सुरापकारकारिणामिहैष एव नो वरः ।१३।

सूत जी ने कहा—जिस समय में सुरेश्वर इस प्रकार से ईश्वर को प्रणाम करके स्थित हुये थे तब जगदम्बा के पति पिनाक के धारण करने वाले महेश्वर भव ने एक क्षण मात्र के लिये उन सुरश्रेष्ठों को दिव्य चक्षु प्रदान की थी। उस समय देवगण ने आनन्द से आर्द्र नेत्रों वाले होकर बड़े ही आदर कें साथ भगवान् हर को प्रणाम किया था ।८।९। भगवान् शङ्कर ने सुधामृत के समान अपने निरीक्षणों के द्वारा दृष्टि से ही सुरेश्वरों से यह कह दिया था कि तुम्हारा कल्याण होगा। ।१०। इसके अनन्तर वृहस्पति ने निर्भय होकर शिव का दर्शन कर तथा प्रणाम करके कहा—ये देवगण आपके घर पर गये हुए वरदान प्राप्त करने के लिए इच्छुक होकर आपका दर्शन करते हैं ।११। आप से दैत्यों के द्वारा विघ्न न होने के लिये इन्होंने प्रार्थना की है। जिससे कि

इन देवों के समस्त कार्यों की पूर्ण सिद्धि प्राप्त हो जावे क्योंकि दैत्यगण देवों के अपकार करने वाले रहा करते हैं ।१२। इसलिये हे देव ! आप प्रसन्न होइये और सुरों के अपकार करने वालों के सुविघ्न कर्म का कारण हो जावै—यही हमारा यहाँ पर वरदान है जिसे हम आप से चाहते हैं ।१३।

ततस्तदा निशम्य वै विनाकधृक् सुरेश्वरः ।
गणेश्वरं सुरेश्वरं वपुर्दधार सः शिवः ।१४।
गणेश्वराश्च तुष्टुवुः सुरेश्वरा महेश्वरम् ।
समस्तलोकसंभवं भवार्त्तिहारिण शुभम् ।१५।
इभाननाश्रितं वरं त्रिशूलपाशधारिणम् ।
समस्तलोकसंभवं गजाननं तदांबिका ।१६।
ददुः पुष्पवर्षं हि सिद्धा मुनींद्रास्तथा खेचरा देवसंघास्तदानीम् ।
तदा तुष्टुवुश्चैकदंतं सुरेशाः प्रणेमुर्गणेशं महेशं वितंद्राः ।१७।
तदा तयोर्विनिर्गतः सुभैरवः समूर्त्तिमान् ।
स्थितो ननर्त्त बालकः समस्तमंगलालयः ।१८।
विचित्रवस्त्रभूषणैरलंकृतो गजाननो महेश्वरस्य पुत्रकोऽभि-
वंद्यतातमंबिकाम् ।१९।
जातमात्रं सुत दृष्ट्वा चकार भगवान्भवः ।
गजाननाय कृत्यांस्तु सर्वात्सर्वेश्वरः स्वयम् ।२०।
आदाय च कराभ्यां च सुसुखाभ्यां भवः स्वयम् ।
आलिंग्नाघ्राय मूर्धानं महादेवो जगद्गुरुः ।२१।

इसके अनन्तर पिनाक के धारण करने वाले सुरेश्वर महेश्वर ने यह श्रवण करके शिव ने गणों के ईश्वर का वपु धारण कर लिया था ।१४। उस समय में गणेश्वर और सुरेश्वरों ने महेश्वर का स्तवन किया था । जो समस्त लोकों को जन्म देने वाले –संसार की पीड़ा को हरण करने वाले—परम शुभ हैं । गज के मुख को धारण करने वाले और वरदान तथा त्रिशूल एवं पाश को ग्रहण किये हुए हैं । ऐसे समस्त लोकों को जन्म प्रदान करने वाले गजानन को अम्बिका ने प्रसूत किया था ।

उस समय सिद्ध-मुनीन्द्र खेचर और देव संघों ने आकाश पुष्पों की वर्षा की थी। उस समय में सुरेशों ने अति समाहित होकर एक दन्त गणेश महेश की स्तुति की थी ।१५।१६।१७। उस समय उन दोनों से मूर्त्तिमान् सुभैरव जो समस्त मङ्गलों का आलय है, निकला और वह बालक स्थित होकर नृत्य करने लगा था ।१८। वह गजानन विचित्र वस्त्र और आभूषणों से अलङ्कृत हो रहा था ऐसा यह महेश्वर का पुत्र उत्पन्न हुआ और उसने अपने पिता शिव की तथा माता जगदम्बा की वन्दना की थी ।१६। अपने उत्पन्न होने वाले पुत्र के जात कर्म आदि जो आवश्यक संस्कार थे वे शिव ने स्वयं किये थे। और सर्वेश्वर शिव ने सुसुख करों से स्वयं उसको लेकर उसका आलिङ्गन करके तथा मस्तक का आघ्राण करके जगद्गुरु महादेव ने गजानन को समस्त कृत्यों को बता दिया था ।२०।२१।

तवावतारो दैत्यानां विनाशाय ममात्मज ।
देवानामुपकारार्थं द्विजानां ब्रह्मवादिनाम् ।२२।
यज्ञश्च दक्षिणाहीनः कृतो येन महीतले ।
तस्य धर्मस्य विघ्नं च कुरु स्वर्गपथे स्थितः ।२३।
अध्यापनं चाध्ययनं व्याख्यानं कर्म एव च ।
योऽन्यायतः करोत्यस्मिन् तस्य प्राणान्सदा हर ।२४।
वर्णाच्च्युतानां नारीणां नराणां नरपुङ्गव ।
स्वधर्मरहितानां च प्राणानपहर प्रभो ।२५।
याः स्त्रियस्त्वां सदा कालं पुरुषाश्च विनायक ।
यजंति तासां तेषां च त्वत्साम्यं दातुमर्हसि ।२६।
त्वं भक्तान् सर्वयत्नेन रक्ष बालगणेश्वर ।
यौवनस्थांश्च वृद्धांश्च इहामुत्र च पूजितः ।२७।
जगत्त्रयेऽत्र सर्वत्र त्वं हि विघ्नगणेश्वरः ।
संपूज्यो वंदनीयश्च भविष्यसि न संशयः ।२८।

महेश्वर ने कहा—हे मेरे पुत्र ! यह तेरा अवतार दैत्यों के विनाश करने के लिए ही हुआ है। तथा द्विजगण और देवों के उपकार के लिए

है ।२२। जिसने इस महीतल में दक्षिणा से रहित यज्ञ किया है आप स्वर्ग के मार्ग में स्थित होते हुये उसका विघ्न करेंगे ।२३। अध्यापन अध्ययन-व्याख्यान और कर्म जो न्याय से हीन कोई भी करे उसके प्राणों का हरण करो ।२४। हे नरश्रेष्ठ ! जो नारियाँ या नरगण अपने वर्ण धर्म से च्युत हों और अपने धर्म का समुचित पालन न करें उनके प्राणों का अपहरण करो । २५। जो स्त्रियाँ तथा पुरुष सदा-सर्वदा हे विनायक ! अर्चन-यजन किया करते हैं उन स्त्रियों तथा पुरुषों को अपना साम्य तुमको देना चाहिये ।२६। हे बालगणेश्वर ! तुम अपने भक्तों का सभी प्रकार के यत्नों द्वारा रक्षा करना । जो यौवन में स्थित हों तथा वृद्ध हों और उनके द्वारा तुम्हारा अर्चन किया जावे तो उनकी भी रक्षा करना ।२७। इस तीनों जगत् में यहाँ पर विघ्नगणों के ईश्वर आप ही सर्वत्र भली-भाँति पूज्य वन्दनीय होओगे-इसमें कुछ भी संशय नहीं है ।२८।

मां च नारायणं वापि ब्रह्माणमपि पुत्रक ।
यजति यज्ञैर्वा विप्रैरग्रे पूज्यो भविष्यसि ।२९।
त्वामनभ्यर्च्य कल्याणं श्रौतं स्मार्तं च लौकिकम् ।
कुरुते तस्य कल्याणमकल्याणं भविष्यति ।३०।
ब्राह्मणैः क्षत्रियैर्वैश्यैः शूद्रैश्चैव गजानन ।
संपूज्य सर्वसिद्ध्यर्थं भक्ष्यभोज्यादिभिः शुभैः ।३१।
त्वां गंधपुष्पधूपाद्यैरनभ्यर्च्य जगत्त्रये ।
देवैरपि तथान्यैश्च लब्धव्यं नास्ति कुत्रचित् ।३२।
अभ्यर्चयन्ति ये लोका मानवास्तु विनायकम् ।
ते चार्चनीयाः शक्राद्यैर्भविष्यन्ति न संशयः ।३३।
भज हरिं च मां वापि शक्रमन्यान्सुरानपि ।
विघ्नैर्बाधयसि त्वां चेन्नार्चयन्ति फलार्थिनः ।३४।
ससर्ज च तदा विघ्नगणं गणपतिः प्रभुः ।
गणैः सार्धं नमस्कृत्वाप्यतिष्ठत्तस्य चाग्रतः ।३५।
तदा प्रभृति लोकेऽस्मिन्पूजयन्ति गणेश्वरम् ।

दैत्यानां धर्मविघ्नं च चकारासो गणेश्वरः ।३६।
एतद्वः कथितं सर्व स्कंदाग्रजसमुद्भवम् ।
यः पठेच्छृणुयाद्वापि श्रावयेद्वा सुखोभवेत् ।३७।

जो भी कोई मुझको-नारायण को और ब्रह्मा को हे पुत्र ! यज्ञों के द्वारा विप्र यजन किया करते हैं उन सभी पूजनार्चनों में तुम्हारी सर्वप्रथम पूजा होगी ।२९। जो कोई तुम्हारी पूजा न करके लौकिक कल्याण के लिए श्रौत तथा स्मार्त्त कर्म करता है उसका वह कल्याण अकल्याण के स्वरूप में परिवर्तित हो जायेगा ।३०। हे गजानन ! समस्त कार्यों की सिद्धि के लिए ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य और शूद्रों के द्वारा भक्ष्यभोज्य आदि शुभ पदार्थों से भली-भाँति पूजा करने के योग्य होंगे ।३१। इस त्रिलोकी में आपकी गन्ध-पुष्प और धूप आदि से अभ्यर्चना न करके देवों तथा अन्य किसी के द्वारा भी कहीं कुछ भी प्राप्त नहीं हो सकता है ।३२। जो मानव लोक भगवान् विनायक की अभ्यर्चना किया करते हैं वे इन्द्रादि देवों के द्वारा पूजनीय हुआ करते हैं—इसमें कुछ भी संशय नहीं हैं ।३३। अज-हरि और मुझको भी तथा शक्र आदि देवों को भी विघ्न बाधा किया करते हैं यदि वे फलार्थी होकर तुम्हारा अर्चन नहीं करते हैं ।३४। उस समय गणपति प्रभु ने विघ्नगण का सृजन किया था और वर के लाभ के उसी समय में गणों के साथ नमस्कार करके उसके आगे ही स्थित हो गये थे ।३५। उसी दिन से लेकर लोग भगवान् गणपति का इस लोक में पूजन करते हैं । इस गणेश्वर ने दैत्यों के धर्म में विघ्न कर दिया था ।३६। यह सम्पूर्ण स्कन्ध के अग्रज (बड़े भाई) की उत्पत्ति तुमको बतला दी है । जो इसको पढ़ता है अथवा श्रवण करता है या किसी को इसे श्रवण कराता है वह परम सुखसम्पन्न हो जाता है ।३७।

।। ७१—शिवतांडव नृत्य आरम्भ ।।

नृत्यारम्भः कथं शंभोः किमर्थं वा यथातथम् ।
वक्तुमर्हसि चास्माकं श्रुतः स्कंदाग्रजोद्भवः ।१।

दारुकोऽसुरसंभु स्तपसा लब्धविक्रमः ।
सूदयामाम कालाग्निरिव देवान्द्विजोत्तमान् ।२।
दारुकेण तदा देवास्ताडिताः पीडिता भृशम् ।
ब्रह्माणं च तथेशानं कुमारं विष्णुमेव च ।३।
यममिंद्रमनुप्राप्य स्त्रीवध्य इति चासुरः ।
स्त्रीरूपधारिभिः स्तुत्यैर्ब्रह्माद्यैर्युधि संस्थितैः ।४।
बोधितास्तेन ते सर्वे ब्रह्माणं प्राप्य वै द्विजाः ।
विज्ञाप्य तस्मै तत्सर्वं तेन सार्धमुमापतिम् ।५।
संप्राप्य तुष्टुवुः सर्वे पितामहपुरोगमाः ।
ब्रह्मा प्राप्य च देवेशं प्रणम्य बहुधानतः ।६।
दारुणो भगवन्दारुः पूर्वं तेन विनिर्जिताः ।
निहत्य दारुकं दैत्यं स्त्रीवध्यं त्रातुमर्हसि ।७।

इस अध्याय में नृत्यारम्भ के प्रसङ्ग से काली और क्षेत्रपाल का उद्भव निरूपित किया जाता है। ऋषियों ने कहा—स्कन्द के अग्रज के उद्भव का सब हाल भली-भाँति श्रवण कर लिया है। अब कृपा कर यह बताइये और इसके बताने के योग्य भी हैं कि भगवान् शंकर के नृत्य का आरम्भ किस कारण से हुआ था और किस लिये हुआ था। इसे ठीक-ठीक बताइये। सूतजी ने कहा—एक दारुक नाम वाला असुर हुआ था जिसने तप करके बहुत भारी पराक्रम प्राप्त कर लिया था वह कालाग्नि की भाँति देवों को और ब्राह्मणों को मारता था।१।२। उस समय में दारुक के द्वारा देवगण ताड़ित और अत्यन्त ही उत्पीड़ित हुये थे। यह असुर ब्रह्मा-ईशान-कुमार-विष्णु यम और इन्द्र के पास पहुंच कर स्त्री का रूप धारण करने पर भी वध करने वाला हो गया था। स्तुति करने योग्य ब्रह्मादि देव स्त्री का रूप धारण करके युद्ध में संस्थित हो गये थे तो भी इसने उनको सताया था। हे द्विजो! इससे दुःखित एवं बाधित होकर वे समस्त देवगण ब्रह्माजी के पास जाकर सब दुःख सुनाया और फिर ब्रह्मा को साथ में लेकर वे सब उमा के पति शिव के समीप में गये थे।३।४।५। उन सब देवों ने, जिनमें पितामह प्रधान थे, शिव की

स्तुति की थी। ब्रह्मा जी देवेश के निकट जाकर प्रणाम करके अत्यन्त विनम्र होकर प्रार्थना करने लगे थे।६। हे भगवन्! दारु असुर बड़ा भारी दारुण है। उसके द्वारा पहिले ही सब विनिर्जित हो गये हैं। आप उस स्त्री वध्य दारुक दैत्य का वध करके सब की रक्षा करने के लिए समर्थ होते हैं।७।

विज्ञप्ति ब्रह्मणः श्रुत्वा भगवान् भगनेत्रहा।
देवीमुवाच देवेशो गिरिजां प्रहसन्निव।८।
भवतीं प्रार्थयाम्यद्य हिताय जगतां शुभे।
वधार्थं दारुकस्यास्य स्त्रीवध्यस्य वरानने।९।
अथ सा तस्य वचनं निशम्य जगतोरणिः।
विवेश देहे देवस्य देवेशी जन्मतत्परा।१०।
एकेनांशेन देवेशं प्रविष्टा देवसत्तमम्।
न विवेद तदा ब्रह्मा देवाश्चेंद्रपुरोगमाः।११।
गिरिजां पूर्ववच्छंभोर्दृष्ट्वा पार्श्वस्थितां शुभाम्।
मायया मोहितस्तस्याः सर्वज्ञोऽपि चतुर्मुखः।१२।
सा प्रविष्टा तनुं तस्य देवदेवस्य पार्वती।
कंठस्थेन विषेणास्य तनुं चक्रे तदात्मनः।१३।
तां च ज्ञात्वा तथाभूतां तृतीयेनेक्षणेन वै।
ससर्ज कालीं कामारिः कालकंठी कपर्दिनीम्।१४।

ब्रह्मा की इस विज्ञप्ति का श्रवण करके भगवान् भग के नेत्रों का हनन करने वाले शम्भु देवेश्वर हँसते हुए गिरिजा देवी से बोले—।८। हे शुभे! आज मैं जगतों के कल्याण करने के लिये आप से प्रार्थना करता हूँ। हे वरानने! स्त्री वध्य अर्थात् स्त्री के द्वारा ही वध करने के योग्य इस दारुक असुर का आप वध कर दीजिये।९। इसके अनन्तर शिव के इस वचन का श्रवण करके जगतोरणि देवेशी ने जन्म धारण करने में तत्पर होती हुई देवेश के देह में प्रवेश किया था।१०। वह देवी अपने एक सोलहवें अंश से देवों में परम श्रेष्ठ शिव में प्रविष्ट हो गई थी। उस समय देवगण ने जिनमें इन्द्र प्रमुख थे और ब्रह्मा ने इस

को नहीं जाना था ।११। पूर्व की भाँति शम्भु के समीप में स्थित शुभा गिरिजा को देखकर सर्वज्ञ ब्रह्मा भी उस देवी की माया से मोहित हो गये थे ।१२। वह पार्वती के देवों के देव शिव के शरीर में प्रविष्ट हो गई और इनके कण्ठ में स्थित विष से उसने अपना शरीर धारण किया था ।१३। उस देवी को उस स्थिति में जानकर काम के मर्दन करने वाले शिव ने काल कण्ठी कपर्दिनी काली का सृजन किया था ।१४।

जाता यदा कालिमकालकंठी जाता तदानीं विपुला जयश्रीः ।
देवेतराणामजयस्त्वसिद्धया तुष्टिर्भवान्याः परमेश्वरस्य ।१५।
जातां तदानीं सुरसिद्धसंघा दृष्ट्वा भयाद्दुद्रुवुरग्निकल्पाम् ।
कालीं गरालकृतकालकंठीमुपेंद्रपद्मोद्भवशक्रमुख्याः ।१६।
तथैव जातं ललाटे सितांशुलेखा च शि स्युदग्रा ।
कण्ठे करालं निशितं त्रिशूलं करे करालं च विभूषणानि ।१७।
साधं दिव्यांबरा देव्याः सर्वाभरण भूषिताः ।
सिद्धेंद्रसिद्धाश्च तथा पिशाचा जज्ञिरे पुनः ।१८।
आज्ञया दारुकं तस्याः पार्वत्याः परमेश्वरी ।
दानवं सूदयामास सूदयन्तं सुराधिपान् ।१९।
संरंभातिप्रसंगाद्वै तस्याः सर्वमिद जगत् ।
क्रोधाग्निना च विप्रेन्द्राः संबभूव तदातुरम् ।२०।
भवोपि बालरूपेण श्मशाने प्रेतसंकुले ।
रुरोद मायया तस्याः क्रोधाग्निं पातुमीश्वरः ।२१।

जिस समय में विष की कालिमा से काले कण्ठ वाली काली उत्पन्न हुई थी उस समय जय श्री बहुत हो गई थी । देवों से इतर जो असुर गण थे उनकी असिद्धि से अजय हो गई और परमेश्वर की भवानी की तुष्टि हुई थी ।१५। महाविष से समलङ्कृत कण्ठ वाली अग्नि के सदृश स्वरूप वाली उस अवतीर्ण भगवती काली को देखकर ब्रह्मा-विष्णु और इन्द्र आदि समस्त देवगण भय से भागने लगे थे ।१६। उस काली वती के ललाट में उसी प्रकार का एक शिव की भाँति तीसरा नेत्र था और शिर में अति तीव्र चन्द्र की रेखा थी । उस काली के कण्ठ में महा

कालकूट विष था तथा उसके हाथ में अति तीक्ष्ण एवं कराल त्रिशूल था। वह अनेक भूषण धारण किये हुए थी ।१७। उस देवी के साथ में दिव्य अम्वर धारण करने वाली तथा समस्त आभूषणों से भूषित अनेक देवियाँ और सिद्ध एवं पिशाच भी उत्पन्न हुए थे ।१८। पार्वती की आज्ञा से उस परमेश्वरी महाकाली ने सुराधियों के मारने वाले उस दारुक दानव को मार डाला था ।१६। उसके वेग के अतिशय से यह सम्पूर्ण जगत् हे विप्रेन्द्रगण ! काली की क्रोधाग्नि से आतुर हो उठा था ।२०। भगवान् भव भी प्रेतों से घिरे हुए काशी के श्मशान में बाल रूप धारण कर क्रोधाग्नि का पान करने के लिये उस देवी की माया से रुदन करने लगे थे ।२१।

तं दृष्ट्वा बालमोशानं मायया तस्य मोहिता।
उत्थाप्यघ्राय वक्षोजं स्तनं स प्रददौ द्विजाः ।२२।
स्तनजेन तदा सार्धं कोपमस्याः पपौ पुनः।
क्रोधेनानेन वै बालः क्षेत्राणां रक्षकोऽभवत् ।२३।
मूर्तयोऽष्टौ च तस्यापि क्षेत्रपालस्य धोमतः।
एवं वै तेन बालेन कृता सा क्रोधमूर्च्छिता ।२४।
कृतमस्याः प्रसादार्थं देवदेवेन तांडवम् ।
संध्याया सर्वभुतेन्द्रैः प्रेतैः प्रीतेन शूलिना ।२५।
पीत्वा नृत्तामृतं शंभोराकंठं परमेश्वरी।
ननर्त सा च योगिन्य प्रेतस्थाने यथासुखम् ।२६।
तत्र सब्रह्मका देवाः सेंद्रपेंद्राः समंततः।
प्रणेमुस्तुष्टुवुः कालीं पुनर्देवीं च पावतीम् ।२७।
एवं संक्षेपतः प्रोक्त तांडव शूलिनः प्रभोः।
योगानंदेन च विभोस्तांडव चेति च परे ।२८।

उस वालस्वरूप ईशान को देखकर उनकी माया मोहित होती हुई देवी ने उस बालभव को उठा लिया था और उसके मस्तक को सूँघकर उसे अपना वक्षोज स्तन दे दिया था ।।२२। उस स्तन के दूध के साथ बाल शिव ने इस काली देवी का क्रोध का पान किया था। इस क्रोध

से वह बाल शिव क्षेत्रों का रक्षक हो गया था ।२३। उस धीमान क्षेत्रपाल की आठ मूर्त्तियाँ हुईं थीं। इस प्रकार से बाल स्वरूप शिव के द्वारा वह मूर्च्छित हो गई थी ।२४। इसकी प्रसन्नता के लिए उस समय में देवों के देव महेश्वर ने ताण्डव किया था। वह सन्ध्या का समय था और परम प्रसन्न शूली के साथ समस्त भूतों के स्वामी एवं प्रेतगण थे ।२५। उस परमेश्वरी काली देवी ने कण्ठ पर्यन्त शिव के ताण्डव नृत्य के अमृत का पान किया था और फिर वह भी उस प्रेतों के स्थान श्मशान में सुख पूर्वक नृत्य करने लगी थी तथा समस्त योगिनियाँ भी उसके साथ नाचने लग गईं थीं ।२६। वहां पर ब्रह्मा तथा इन्द्र एवं उपेन्द्र के सहित समस्त देवों ने उस काली को और फिर पार्वती को प्रणाम किया था तथा स्तवन किया था ।२७। इस प्रकार से प्रभु शूली का जो ताण्डव नृत्य हुआ था उसका संक्षेप से तुमको सुना दिया है। कुछ लोग भगवान् भव के ताण्डव नृत्य का कारण उनका योगानन्द ही बतलाते हैं ।२८।

॥ ७२—उपमन्यु-चरित्र ॥

पुरोपमन्युना सूत गाणपत्यं महेश्वरात् ।
क्षीरार्णवः कथं लब्धो वक्तुमर्हसि सांप्रतम् ।१।
एवं कालीमुपालभ्य गते देवे त्रियम्बके ।
उपमन्युः समभ्यर्च्य तपसा लब्धवान्फलम् ।२।
उपमन्युरिति ख्यातो मुनिश्च द्विजसत्तमाः ।
कुमार इव तेजस्वी क्रीडमानो यदृच्छया ।३।
कदाचित्क्षीरमल्पं च पीतवान्मातुलाश्रमे ।
ईर्ष्यया मातुलसुतो ह्यपिबत् क्षीरमुत्तमम् ।४।
पीत्वा स्थितं यथाकामं दृष्ट्वा प्रोवाच मातरम् ।
मातर्मातर्महाभागे मम देहि तपस्विनि । ।
..व्यं क्षीरमतिस्वादु नाल्पमुष्णं नमाम्यहम् ।
उ...लितैवं पुत्रेण पुत्रमालिंग्य सादरम् ।६।

दुःखिता विललापार्ता स्मृत्वा नैर्धन्यमात्मनः ।
स्मृत्वास्मृत्वा पुनः क्षीरमुपमन्युरपि द्विजाः ।
देहिदेहीति तामाह रोदमानो महाद्युतिः ।७।

इस अध्याय में भक्ति से परम प्रसन्न महेश्वर से उपमन्यु के शाश्वत प्रसाद का वर्णन किया जाता है । ऋषियों ने कहा—हे सूतजी ! पहिले उपमन्यु ने महेश्वर से गाणपत्य प्राप्त किया था फिर उसने क्षीरार्णव कैसे प्राप्त किया था इसे आप अब वर्णन कीजिए ।१। सूतजी ने कहा—इस प्रकार से काली देवी को उत्पन्न करके त्रियम्बक देव के चले जाने पर-उपमन्यु ने अभ्यर्चना करके फल की प्राप्ति की थी ।२। हे द्विज वृन्द ! कुमार के समान तेज वाला यदृच्छा से क्रीड़ा करता हुआ उप-मन्यु-इस नाम से मुनि ख्यात हुआ था ।३। किसी समय में मातुल के आश्रम में थोड़ा-सा क्षीर का पान कर लिया था फिर ईर्ष्या से मामा के पुत्र ने उस उत्तम क्षीर का पान किया था ।४। इच्छा पूर्वक पान करके फिर माता को देखकर उससे बोला था—हे महाभागे ! हे माता ! हे माता ! हे तपस्विनि ! मुझे दे दो ।५। यह गव्यक्षीर अत्यन्त स्वाद वाला है । यह थोड़ा भी गर्म नहीं है । मैं आपको नमस्कार करता हूं । सूत जी ने कहा—इस प्रकार से पुत्र के द्वारा उप लालित होती हुई अर्थात् बड़े ही प्यार से कही गई उसने पुत्र का आदर के साथ आलि-ङ्गन करके वह अत्यन्त दुःखित हुई और अपनी निर्धनता का स्मरण करके आर्त्त वह विलाप करने लगी थी । उपमन्यु बार २ उस क्षीर की याद करके वह महान् द्युति वाला रोता हुआ यही कह रहा था हे माता ! मुझे क्षीर दो, क्षीर दो ।६।७।

उंछवृत्त्यार्जितान्बीजान्स्वय पिष्ट्वा च सा तदा ।
बीजपिष्टं तदालोड्य तोयेन कलभाषिणी ।८।
ऐह्येहि मम पुत्रेति सामपूर्वं ततः सुतम् ।
आलिंग्यादाय दुःखार्ता प्रददौ कृत्रिमं पयः ।९।
पीत्वा च कृत्रिमं क्षीरं मात्रा दत्तं द्विजोत्तमः ।
नैतत्क्षीरमिति प्राह मातरं चातिविह्वलः ।१०।

दुःखिता सा तदा प्राह सप्रेक्ष्याघ्राय मूर्धनि ।
संमार्ज्य नेत्रे पुत्रस्य कराभ्यां कमलायते ।११।
तटिनी रत्नपूर्णास्ते स्वर्गपातालगोचराः ।
भाग्यहीना न पश्यन्ति भक्तिहीनाश्च ये शिवे ।१२।
राज्यं स्वर्गं च मोक्षं च भोजनं क्षीरसंभवम् ।
न लभन्ते प्रियण्येषां नो तुष्यति सदा भवः ।१३।
भवप्रसादजं सर्वं नान्यदेवप्रसादजम् ।
अन्यदेवेषु निरता दुःखार्त्ता विभ्रमंति च ।१४।

उस समय में शिलोच्छ वृत्ति से उपार्जित किये हुए बीजों को उसने पीस लिया था और उस बीजों की पिष्टि को उसने जल के साथ आलोडित कर लिया था। मधुर भाषण करने वाली उसने हे वेटा ! मेरे पास चले आओ—ऐसे बहुत शान्ति के साथ पुत्र का आलिङ्गन करके दुःख से आर्त्ता उसने अपने को वह बनावटी दूध दे दिया था ।८। ।९। हे द्विजोत्तमो ! उस कृत्रिम (बनावटी) क्षीर को पीकर जो कि माता के द्वारा बना कर दिया गया था। यह क्षीर । नहीं है—ऐसा अत्यन्त विह्वल होकर वह माता से बोला ।१०। उस समय अत्यन्त दुःखित होती हुई उसने अपने पुत्र को देखकर तथा उसके मस्तक को सूँघकर और अपने हाथों से कमल के समान विशाल उसके नेत्रों के आँसुओं को पौंछ कर वह बोली—।११। वेटा, रत्नों से परिपूर्ण रहने वाली और स्वर्ग तथा पाताल में गोचर होने वाली है। जो शिव में भक्ति से रहित होते हैं वे भाग्यहीन पुरुष उसे नहीं देखते हैं ।१२। जिन पर शिव सर्वदा सन्तुष्ट नहीं रहते हैं वे राज्य-स्वर्ग मोक्ष और क्षीर से बनने वाला भोजन इनकी प्रिय वस्तुयें नहीं प्राप्त किया करते हैं ।१३। यह सभी कुछ शिव के ही प्रसाद से प्राप्त हुआ करते हैं और अन्य देवों की प्रसन्नता से नहीं प्राप्त होते हैं। जो अन्य देवों में निरत रहा करते है वे दुःख से आर्त्त होकर भ्रमण किया करते हैं ।१४।

क्षीरं तत्र कुतोऽस्माकं महादेवो न पूजित. ।
पूर्वं जन्मनि यद्दत्तं शिवमुद्यम्य वै सुत ।१५।

तदेव लभ्यं नान्यत्तु विष्णुमुद्दिश्य वा प्रभुम् ।
निशम्य वचनं मातुरुपमन्युर्महाद्युतिः ।१६।
बालोपि मातरं प्राह प्रणिपत्य तपस्विनीम् ।
त्यज शोकं महाभागे महादेवोस्ति चेत्क्वचित् ।१७।
चिराद्वा ह्यचिराद्वापि क्षीरोदं साधयाम्यहम् ।
तां प्रणम्यैवमुक्त्वा स तपः कर्त्तुं प्रचक्रमे ।१८।
तमाह माता सुशुभं कुर्वीति सुतरां सुतम् ।
अनुज्ञातस्तया तत्र तपस्तेपे सुदुस्तरम् ।१९।
हिमवत्पर्वतं प्राप्य वायुभक्षः समाहितः ।
तपसा तस्य विप्रस्य विधूपितमभूज्जगत् ।२०।
प्रणम्याहुस्तु तत्सर्वे हरये देवसत्तमाः ।
श्रुत्वा तेषां तदा वाक्य भगवान्पुरुषोत्तमः ।२१।

वहाँ हम लोगों को क्षीर कैसे प्राप्त हो सकता है क्योंकि हमने कभी शिव का पूजन नहीं किया है । हे बेटा, पूर्व जन्म में भगवान् शिव का उद्देश्य करके जो दिया है वह ही मिलता है और विष्णु का उद्देश्य करके जो कुछ किया है उससे अन्य कुछ भी नहीं मिलता है । महान् द्युति वाले उस उपमन्यु ने माता के इस वचन को सुनकर उस बालक ने भी अपनीं माता से कहा और उस तपस्विनी को प्रणाम किया था । उपमन्यु ने कहा —हे महाभागे ! यदि कहीं पर भी महादेव हैं तो तू अपना शोक त्याग दे ।१५।१६।१७। शीघ्रता से या देर से मैं क्षीरोद का अवश्य ही साधन करूँगा। सूत जी ने कहा—उस उपमन्यु ने अपनी माता को प्रणाम करके तपस्या करना आरम्भ कर दिया था ।१८। उसकी माता उससे बोली—शिव का आराधन मेरे पुत्र को शुभ कल्याण युक्त करे इस प्रकार से अपनी माता के द्वारा आज्ञा प्राप्त करके उसने कठिन तपश्चर्या की थी ।१९। हिमालय पर्वत में जाकर केवल वायु का भक्षण करके बहुत समाहित होते हुए उसने तप किया था । उसके तप से सम्पूर्ण जगत् विभूपित हो गया था ।२०। उस समय सब देवताओं

ने प्रणाम करके हरि से कहा था और भगवान् पुरुषोत्तम उसी समय उनके वाक्य का श्रवण किया था ।२१।

किमिदं त्विति संचिंत्य ज्ञात्वा तत्कारणं च सः ।
जगाम मंदरं तूर्णं महेश्वरदिदृक्षया ।२२।
दृष्ट्वा देव प्रणम्यैवं प्रोवाचेदं कृतांजलिः ।
भगवन् ब्राह्मणः कश्चिदुपमन्युरितिश्रुतः ।२३।
क्षीरार्थमदहत्सर्वं तपसा तं निवारय ।
एतस्मिन्नन्तरे देवः पिनाकी परमेश्वरः ।
शक्ररूपं समास्थाय गतं चक्रे मतिं तदा ।२४।
अथ जगाम मुनेस्तु तपोवनं गजवरेण सितेन सदाशिवः ।
सह सुरासुरसिद्धमहोरगैरमरराजतनुं स्वयमास्थितः ।२५।
सहैव चारुह्य तदा द्विपं तं प्रगृह्य वालव्यजनं विवस्वान् ।
वामेन शच्या सहितं सुरेन्द्रं करेण चान्तेन सितात पत्रम् ।२६।
रराज भगवान् सोमः शक्ररूपी सदाशिवः ।
सितातपत्रेण यथा चंद्रबिंबेन मन्दरः ।२७।
आस्थायैवं हि शक्रस्य स्वरूपं परमेश्वरः ।
जगामानुग्रहं कर्त्तुमुपमन्योस्तदाश्रमम् ।२८।

यह क्या है—ऐसा भली-भाँति करके और उसके कारण को जानकर भगवान् महेश्वर के दर्शन करने की इच्छा से शीघ्र ही मन्दराचल पर गये थे ।२२। इसी बीच में देव परमेश्वर पिनाकी ने शक्र (इन्द्र) के स्वरूप में समास्थित होकर उस समय में जाने का विचार किया था। भगवान् देव का दर्शन करके और हाथ जोड़ करके हरि ने यह कहा था। हे भगवन् ! कोई उपमन्यु नाम से प्रसिद्ध ब्राह्मण है। उसने क्षीर के लिए तप के द्वारा सब का दहन कर दिया है। उसका निवारण करिए ।२३।२४। इसके अनन्तर भगवान् सदा शिव श्वेत श्रेष्ठ गज के द्वारा उस तपोवन में गये जहाँ वह मुनिवर तपश्चर्या कर रहा था। उनके साथ समस्त सुर असुर-सिद्ध-महोरग थे और वे स्वयं देवराज के स्वरूप में समास्थित थे ।२५। ऊनके साथ ही उस समय में वालव्यजन ग्रहण करके विवस्वान् उस हाथी पर समारूढ़ थे। वाम

भाग में शची के सहित सुरेन्द्र थे जो अन्य कर से सित आतपत्र (छत्र) ग्रहण किये हुए थे । उस समय में शक्र के रूप वाले सदा शिव सोम सुशोभित हो रहे थे । जिस तरह चन्द्र के बिम्ब से मन्दर गिरि शोभा युक्त होता हैं उसी तरह उस श्वेत आत पत्र से भगवान् सदा शिव शोभा सम्पन्न हुए थे ।२५।२६।२७। इस प्रकार से परमेश्वर शिव ने इन्द्र का स्वरूप धारण करके उपमन्यु के आश्रम में उस पर अनुग्रह करने के लिए पदार्पण किया था ।२८।

तं दृष्ट्वा परमेशानं शक्ररूपधरं शिवम् ।
प्रणम्य शिरसा प्राह मुनिर्मुनिवराः स्वयम् ।२९।
पावितश्चाश्रमश्चायं मम देवेश्वरः स्वयम् ।
प्राप्तः शक्रो जगन्नाथो भगवान्भानुना प्रभुः ।३०।
एवमुक्त्वा स्थितं वीक्ष्य कृतांजलिपुटं द्विजम् ।
प्राह गंभीरया वाचा शक्ररूपधरो हरः ।३१।
तुष्टोस्मि ते वरं ब्रूहि तपसानेन सुव्रत ।
ददामि चेप्सितान्सर्वान्धौम्याग्रज महामते ।३२।
एवमुक्तस्तदा तेन शक्रेण मुनिसत्तमः ।
वरयामि शिवे भक्तिमित्युवाच कृतांजलिः ।३३।
ततो निशम्य वचनं मुनेः कपितवत्प्रभुः ।
प्राह सव्यग्रमीशानः शक्ररूपधरः स्वयम् ।३४।
मां न जानासि देवर्षे देवराजानमीश्वरम् ।
त्रैलोक्याधिपतिं शक्रं सर्वदेवनमस्कृतम् ।३५।

उन परमेश को इन्द्र के रूप में संस्थित देखकर मुनि ने भगवान् शिव को प्रणाम किया था और मुनि श्रेष्ठ स्वयं बोले । मेरा यह आश्रम आज देवेश्वर ने स्वयं पवित्र कर दिया है । जगत् के स्वामी प्रभु भगवान् शक्र भानु के सहित यहाँ पर प्राप्त हुए हैं ।२९।३०। इस तरह से कह-कर हाथ जोड़कर स्थित द्विज को देखकर शक्र के स्वरूप को धारण करने वाले भगवान् शिव गम्भीर वाणी द्वारा बोले । हे सुव्रत ! मैं तुम्हारी इस तपस्या से बहुत ही सन्तुष्ट एवं परम प्रसन्न हो गया हूँ । अब

तुम वरदान माँग लो। हे धौम्याग्रज महान् मति वाले ! तुमको मैं समस्त अभीष्ट देता हूँ।३१।३२। इस प्रकार से उस शक्ररूपी शिव के द्वारा कहे गये उस मुनि श्रेष्ठ अपने हाथ जोड़कर कहा था कि मैं शिव में परम भक्ति का वरदान चाहता हूँ।३३। इसके पश्चात् मुनि के इस वचन को सुनकर शक्र के रूप को धारण करने वाले प्रभु ईशान कुपित की भाँति व्यग्रता के साथ यह वचन बोले ! हे देवर्षे ! देवों के राजा प्रभु मुझको क्या तुम नहीं जानने हो ? मैं त्रैलोक्य का स्वामी हूँ और समस्त देवताओं के द्वारा वन्द्यमान इन्द्रदेव हूँ ।३४।३५।

सद्भक्तो भव विप्रर्षे मामेवार्चय सर्वदा ।
ददामि सर्वं भद्रं ते त्यज रुद्रं च निर्गुणम् ।३६।
ततः शक्रस्य वचनं श्रुत्वा श्रोत्रविदारणम् ।
उपमन्युरिदं प्राह जपत्पञ्चाक्षरं शुभम् ।३७।
मन्ये शक्रस्य रूपेण नूनमत्रागतः स्वयम् ।
कर्त्तुं दैत्याधमः कश्चिद्धर्मविघ्नं च नान्यथा ।३८।
त्वयैव कथितं सर्वं भवनिंदारतेन वै ।
प्रसङ्गाद्देवदेवस्य निर्गुणत्वं महात्मनः ।३९।
बहुनात्र किमुक्तेन मयाद्यानुमितं महत् ।
भवांतरकृतं पापं श्रुता निंदा भवस्य तु ।४०।
श्रुत्वा निंदां भवस्याथ तत्क्षणादेव सत्यजेत् ।
स्वदेहं तं निहत्याशु शिवलोकं स गच्छति ।४१।
यो वाचोत्पाटयेज्जिह्वां शिवनिंदारतस्य तु ।
त्रिः सप्तकुलमुद्धृत्य शिवलोकं स गच्छति ।४२।

हे विप्रर्षे ! तुम मेरे भक्त बन जाओ और सर्वदा मेरा ही अर्चन किया करो। मैं तुमको सभी कुछ देता हूँ जिसमें तेरा कल्याण होगा। निर्गुण रुद्र की भक्ति को तुम त्याग दो।३६। इसके अनन्तर कानों को विदीर्ण करने वाले शक्र के इस वचन का श्रवण कर उपमन्यु पञ्चाक्षरी शुभ मन्त्र का जाप करता हुआ यह बोला।३७। मैं इस बात को खूब अच्छी तरह मानता हूँ अर्थात् स्वीकार करता हूँ कि आप ही स्वयं इन्द्र

का स्वरूप धारण करके यहाँ पधारे हो। कोई अधम दैत्य ने धर्म में विघ्न उत्पन्न करने के लिए ही ऐसा किया है अन्यथा ऐसा नहीं होता।३८। भव की निन्दा में रत आपने ही यह सब कुछ कहा है। आपने ही प्रसङ्ग वश देवों के देव महात्मा की निर्गुणता बताई है।३९। इस विषय में मैं अधिक क्या बताऊँ। मैंने आज महान् अनुमान किया है कि निश्चय ही अन्य जन्म का मेरा कोई मेरा पाप है जिससे इस समय में मैंने शिव की निन्दा का श्रवण किया है।४०। भगवान् शिव की निन्दा को सुनकर शीघ्र ही उसका हनन कर अपने देह का त्याग कर देना चाहिए वह पुरुष शिव लोक को जाता है।४१। जो शिव के निन्दक की बोलने वाली जिह्वा को खींच लेता है और उखाड़ कर फेंक देता है वह पुरुष अपने इक्कीस कुलों का उद्धार करके अन्त में शिवलोक को चला जाता है।४२।

आस्तां तावन्ममेच्छाया: क्षीरं प्रति सुराधमम्।
निहत्य त्वां शिवास्त्रेण त्यजाम्येतत्कलेवरम्।४३।
पुरा मात्रा तु कथितं तत्थ्यमेव न संशय:।
पूर्वजन्मनि चास्माभिरपूजित इति प्रभु:। ४।
एवमुक्त्वा तु तं देवमुपमन्युरभीतवत्।
शक्रं चक्रे मतिं हंतु मथर्वास्त्रेण मंत्रवित्।४५।
भस्माधारान्महातेजा भस्ममुष्टिं प्रगृह्य च।
अथर्वास्त्रं ततस्तस्मै ससर्ज च ननाद च।४६।
दग्धुं स्वदेह माग्नेयीं ध्यात्वा वै धारणां तदा।
अतिष्ठच्च महातेजा: शुष्केंधनमिवाव्यय:।४७।
एवं व्यवसिते विप्रे भगवान्भगनेत्रहा।
वारया मास सौम्येन धारणां तस्य योगिन:।४८।
अथर्वास्त्रं तद तस्य संहृतं चंद्रिकेण तु।
कालाग्निसदृशं चेदं नियोगान्नंदिनस्तथा।४९।

मेरी यह क्षीर के प्रति जो इच्छा है उसे यहीं रहने दिया जावे। मैं सुरों में अधम तुझको मारकर शिवास्त्र से अपने शरीर का त्याग किये

देता हूँ।४३। पहिले ही माता ने जो भी कहा था वह बिल्कुल सत्य है— इसमें कुछ भी संशय नहीं है कि हमने अपने पूर्व जन्म में प्रभु की पूजा नहीं की थी।४४। इस तरह कहकर उपमन्यु ने अभीत की भाँति उस देवराज इन्द्र को मन्त्र के वेत्ता ने अथर्वास्त्र से मार देने का विचार किया था।४५। महान् तेजस्वी ने भस्म के आधार से एक भस्म की मुठ्ठी लेकर फिर उसके लिए अथर्वास्त्र का सृजन किया था और जोर से ध्वनि की थी।४६। अपने देह को दग्ध करने के लिए आग्नेयी धारणा का उस समय ध्यान किया था और महान् तेज वाला शुष्क ईंधन की तरह वह अव्यय स्थित हो गया था।४७। इस प्रकार से विप्र के निश्चय कर लेने पर भगवान् भग के नेत्रों के हनन करने वाले शिव ने बड़ी सौम्यता से उस योगी की धारणा का वारण किया था।४८। उस समय में नन्दी के वियोग से कालाग्नि के समान जो अथर्वास्त्र था उसको उसके चन्द्रिक नाम वाले गण के द्वारा संहृत कर लिया गया था।४९।

स्वरूपमेव भगवानास्थाय परमेश्वरः।
दर्शयामास विप्राय बलेंदुकृतशेखरम्।५०।
क्षीरधारासहस्रं च क्षीरोदार्णवमेव च।
दध्यादेरर्णवं चैव घृणोदार्णवमेव च।५१।
फलार्णवं च बालस्य भक्ष्यभोज्यार्णवं तथा।
अपूप गिरयश्चैव तथातिष्ठन् समंततः।५२।
उपमन्युमुवाच सस्मितो भगवान्वंधुजनैः समावृतम्।
गिरिजामवलोक्य सस्मितां सघृणं प्रेक्ष्य तु तं तदा घृणी।५३।
भुंक्ष्व भोगान्यथाकामं बांधवैः पश्य वत्स मे।
उपमन्यो महाभाग तवांबैषा हि पार्वती।५४।
मया पुत्री कृतोस्यद्य दत्तः क्षीरोदधिस्तथा।
मधुनश्चार्णवश्चैव दध्नश्चार्णव एव च।५५।
आज्योदनार्णवश्चैव फललेह्यार्णवस्तथा।
अपूपगिरयश्चैव भक्ष्यैभोज्यार्णवः पुनः।५६।
पिता तव महादेवः पिता वै जगतां मुने।

माता तव महाभागा जगन्माता न संशयः ।५७।
अमरत्वं मया दत्तं गाणपत्यं च शाश्वतम् ।
वरान्वरय दास्यामि नात्र कार्या विचारणा ।५८।

इसके अनन्तर भगवान् परमेश्वर ने अपने ही स्वरूप को धारण कर लिया था और बाल चन्द्र द्वारा शेखर से शोभित उस स्वरूप को विप्र के लिये दिखा दिया था ।५०। क्षीर की सहस्र धारा तथा क्षीरोद सागर दधि आदि का अर्णव-घृतोद अर्णव-फलार्णव और बाल का भक्ष्य-भोज्य का अर्णव तथा अपूप पर्वत उसके चारों ओर स्थित थे ।५१।५२। फिर भगवान् मुस्कराहट के साथ बन्धुजनों से समावृत उस उपमन्यु से बोले और स्मित से युक्त गिरिजा को देखकर घृणी ने घृणा से युक्त उसको देखकर कहा था ।५३। हे वत्स उपमन्यु ! हे महाभाग ! वान्धवों के साथ देखो और यथेच्छया भोगों का उपभोग करो । यह पार्वती तेरी अम्बा हैं ।५४। मैंने आज तुझे अपना पुत्र बना लिया है और यह क्षीरोदधि तुझे दे दिया है । इसके अतिरिक्त मधु का अर्णव-दधिका अर्णव-आज्योदार्णव-फल लेह्यार्णव-अपूप गिरिगण और भक्ष्य भोज्यों का अर्णव भी तुझे दिये हैं । हे मुने ! समस्त जगतों का पिता महादेव तेरे पिता हैं और जगत् की जननी यह महान् भाग वाली पार्वती तेरी माता हैं ।५५।५६।५७। इसमें कुछ भी संशय कभी मत करना । मैंने तुझे अमरत्व प्रदान कर दिया है और शाश्वत गाणपत्य पद भी दे दिया है । अन्य जो भी तू वरदान चाहता है, माँग ले, में सब तुझे दे दूँगा—इसमें कुछ भी विचार मत करना ।५८।

एवमुक्त्वा महादेवः कराभ्यामुपगृह्य तम् ।
आघ्राय मूर्धनि विभुर्ददौ देव्यास्तदा भवः ।५९।
देवी तनयमालोक्य ददौ तस्मै गिरीन्द्रजा ।
योगैश्वर्यं तदा तुष्टा ब्रह्म विद्यां द्विजोत्तमाः ।६०।
सोपि लब्ध्वा वरं तस्याः कुमारत्वं च सर्वदा ।
तुष्टाव च महादेवं हर्षगद्गदया गिरा ।६१।
वरयामास च तदा वरेण्यं विरजेक्षणम् ।

कृतांजलिपुटो भूत्वा प्रणिपत्य पुनः पुनः ।६२।
प्रसीद देवदेवेश त्वयि चाव्यभिचारिणी ।
श्रद्धा चैव महादेव सान्निध्यं चैव सर्वदा ।६३।
एवमुक्तस्तदा तेन प्रहसन्निव शंकरः ।
दत्वेप्सितं हि विप्राय तत्रैवांतरधीयत ।६४।

महादेव ने इस प्रकार से उस उपमन्यु से कहा और दोनों अपने हाथों से उसे ग्रहण कर लिया था । शिव ने उसे हाथों से उठाकर उसके मस्तक को सूँघा और फिर विभु भव ने उस समय उसे देवी पार्वती को दे दिया था ।५९। गिरि शिरोमणि की तनया देवी पार्वती ने पुत्र को देखकर उस समय में परम तुष्ट होकर हे द्विजोत्तमो ! उसे योगैश्वर्य और ब्रह्म विद्या प्रदान की थी ।६०। वह उपमन्यु भी उस जगदम्बा के वर को तथा सर्वदा कुमारत्व को प्राप्त कर बड़े ही हर्ष से गदगद वाणी के द्वारा उसने महादेव का स्तवन किया था ।६१। उस समय उसने विरजेक्षण वरेण्य का वरदान प्राप्त किया था और हाथ जोड़कर वारम्बार प्रणाम किया था ।६२। उपमन्यु ने कहा–हे देवों के भी देवेश्वर ! प्रसन्नता कीजिए । मुझे आप अपने में अव्यभिचारिणी भक्ति प्रदान करें । हे महादेव ! आप मेरी अटूट श्रद्धा हो और सदा सर्वदा आप का ही मुझे सान्निध्य मिलता रहे ।६३। उस तरह से जब शिव से प्रार्थना उपमन्यु ने की तो भगवान् शङ्कर ने हँसते हुए उस विप्र को सम्पूर्ण ईप्सित वर प्रदान कर दिये थे और फिर वहीं पर अन्तर्हित हो गए ।६४।

।। ७२-उपमन्यु द्वारा श्रीकृष्ण को शिवदीक्षा ।।

दृष्टोऽपौ वासुदेवेन कृष्णेनाक्लिष्टकर्मणा ।
धौम्याग्रज स्ततो लब्धं दिव्यं पाशुपतं व्रतम् ।१।
कथं लब्धं तदा ज्ञानं तस्मात्कृष्णेन धीमता ।
वक्तुमर्हसि तां सूत कथां पातकनाशिनीम् ।२।
स्वेच्छया ह्यवतीर्णोपि वासुदेवः सनातनः ।
निंदयन्नेव ,मानुष्यं देहशुद्धिं चकार सः ।३।

पुत्रार्थं भगवांस्तत्र तपस्तप्तुं जगाम च ।
आश्रमं चोपमन्योर्वै दृष्टवांस्तत्र तं मुनिम् ।४।
नमश्चकार तं दृष्ट्वा धौम्याग्रजमहो द्विजाः ।
बहुमानेन वै कृष्णास्त्रिः कृत्वा वै प्रदक्षिणम् ।५।
तस्यावलोकनादेव मुनेः कृष्णस्य धीमतः ।
नष्टमेव मलं सर्वं कायजं कर्म्मजं तथा ।६।
भस्मनोद्धूलनं कृत्वा उपमन्युर्महाद्युतिः ।
तमग्निरिति विप्रेंद्रा वायुरित्यादिभिः क्रमात् ।७।
दिव्यं पाशुपतं ज्ञानं प्रददौ प्रीतमानसः ।
मुनेः प्रसादान्मान्योऽसौ कृष्णः पाशुपते द्विजाः ।८।

इस अध्याय में उपमन्यु से श्री कृष्ण का शैव विक्षादि के कथन का वर्णन किया जाता है। ऋषियों ने कहा—अक्लिष्ट कर्म वाले वासुदेव कृष्ण ने इसको देखा था और धौम्याग्रज ने उनसे दिव्य पाशुपात व्रत की प्राप्ति की थी। उस समय धीमान् कृष्ण ने यह ज्ञान कैसे प्राप्त किया था ? हे सूतजी ! आप इस पातकों के नाश करने वाली सम्पूर्ण कथा बताने के योग्य होते हैं।१।२। सूतजी ने कहा—सनातन वासुदेव भगवान् अपनी ही इच्छा से यहाँ अवतीर्ण हुए थे तो भी मानुष्यता की निन्दा करते हुए उन्होंने देह की शुद्धि की थी।३। भगवान् वहाँ पर पुत्र के लिये तप करने के योग्य थे। वहाँ पर उनने वह मुनि का आश्रम देखा और मुनि को भी देखा था।४। हे द्विजगण ! भगवान् ने उस धौम्याग्रज को देखकर प्रणाम किया था। कृष्ण से वहुमात्र करने के कारण उस मुनि की तीन प्रदक्षिणाऐं की थीं।५। उस मुनि के अवलोकन मात्र से ही धीमान् कृष्ण का कायत्र तथा कर्मत्र थल नष्ट हो गया था।६। महान् द्युति से समन्वित उपमन्यु ने भस्म से उद्धूलित करके हे विप्रेन्द्रगण ! उस कृष्ण को अग्नि और वायु इस क्रम से प्रसन्न मन वाले मुनि ने परम दिव्य पाशुपत ज्ञान का प्रदान कर दिया था। मुनि के ही प्रसाद से यह कृष्ण भी पाशुपत ज्ञान में अति मान्य हो गये थे।७।८।

तपसा त्वेकवर्षान्ते दृष्ट्वा देवं महेश्वरम् ।
सांबं सगणमव्यग्रं लब्धवान्पुत्रमात्मनः ।९।
तदाप्रभृति तं कृष्णं मुनयः संशितव्रताः ।
दिव्याः पाशुपताः सर्वे तस्थुः संवृत्य सर्वदा ।१०।
अन्यं च कथयिष्यामि मुक्त्यर्थं प्राणिनां सदा ।
सौवर्णी मेखलां कृत्वा आधार दंडधारणम् ।११।
सौवर्णं पिंडिकं चापि व्यजनं दंडमेव च ।
नरैः स्त्रियाथ वा कार्यं मषीभाजनलेखनीम् ।१२।
क्षुराकर्त्तरिका चापि अथ पात्रमथापि वा ।
पाशुपताय दातव्य भस्मोद्धूलितविग्रहैः ।१३।
सौवर्णं राजतं वापि ताम्रं वाथ निवेदयेत् ।
आत्मवित्तानुसारेण योगिनं पूजयेद्बुधः ।१४।

इसके अनन्तर एक वर्ष के पश्चात् अन्त में तप करने महेश्वर भगवान् का दर्शन प्राप्त किया था जो कि अम्बा के साथ और गणों के साथ साथ विद्यमान थे तथा अव्यग्र स्वरूप वाले थे। उन शिव के दर्शन से कृष्ण ने अपना पुत्र भी प्राप्त किया था ।९। तभी से लेकर उन कृष्ण को संशित व्रत वाले मुनिगण जो परम दिव्य एवं पाशुपत ज्ञान वाले थे सर्वदा उनको संवृत करके स्थित रहा करते थे ।१०। इसके अतिरिक्त अन्य भी व्रत मैं बतलाता हूँ जो कि सदा प्राणियों की मुक्ति के लिये उपयुक्त होते हैं। सुवर्ण की मेखला करके और उसका आधार दण्ड की भाँति करे। सुवर्ण का पिंडिक-व्यजन-दण्ड और मषी पात्र से युक्त लेखनी करे। स्त्री हो अथवा पुरुष हो सभी को करना चाहिए। क्षुर के सहित कर्त्तरिका (कैंची) तथा जलपात्र श्री सुवर्ण निर्मित करके भस्म से उद्धूलित शरीर वालों को पाशुपत व्रत के लिये देना चाहिए। सुवर्ण की ये सब उपर्युक्त वस्तुएँ न हो सकें तो चाँदी की हों अथवा ताम्र की होवें। बुध को अपने वित्त के अनुसार ही निवेदन कर योगी की अर्चा करनी चाहिए ।११।१२।१३।१४।

ते सर्वे पापनिर्मुक्ताः समस्तकुलसंयुताः ।

यांति रुद्रपदं दिव्यं नात्र कार्या विचारणा ।१५।
तस्मादनेन दानेन गृहस्थे मुच्यते भवात् ।
योगिनां संप्रदानेन शिवः क्षिप्र प्रसीदति ।१६।
राज्यं पुत्र धनं भव्यमश्वं यानमथापि वा ।
सर्वस्वं वापि दातव्यं यदीच्छेन्मोक्षमुत्तमम् ।१७।
अध्रुवेण शरीरेण ध्रुवं साध्यं प्रयत्नतः ।
भव्यं पाशुपतं नित्यं संसारार्णवतारकम् ।१८।
एतद्वः कथितं सर्वं संक्षेपान्न च संशयः ।
यः पठेच्छृणुयाद्वापि विष्णुलोकं स गच्छति ।१९।

ऐसे समस्त दान करने वाले पुरुष अपने सम्पूर्ण कुल से युक्त पापों से निर्मुक्त होकर परम दिव्य रुद्र भगवान के पद की प्राप्ति किया करते हैं—इसमें कुछ भी विचार करने की आवश्यकता नहीं है अर्थात् ऐसा फल प्राप्त करना निश्चित एवं ध्रुव है ।१५। इसलिये इस प्रकार के दान करने से गृहस्थ में रहने वाला पुरुष संसार के बन्धन से मुक्त हो जाया करता है । योगियों के लिये ऐसा दान देने से भगवान् शिव बहुत ही शीघ्र प्रसन्न हो जाया करते हैं ।१६। यदि मोक्ष प्राप्त करने की कोई इच्छा रखता है तो उसे राज्य-धन-भव्य अश्व-यान-एवं सर्वस्व का दान कर देना चाहिए ।१७। यह शरीर तो अनित्य है : इसके द्वारा प्रयत्न पूर्वक ध्रुव एवं नित्य वस्तु की साधना करनी चाहिए । पाशुपत परम भव्य-नित्य और संसार रूपी समुद्र से तारण करने वाला व्रत होता है ।१८। हमने यह सम्पूर्ण व्रत का विधान संक्षेप से तुमको बतला दिया है—इसमें तनिक भी संशय नहीं है । जो पुरुष इस विधान का पठन किया करता है अथवा इसका श्रवण करता है वह सीधा विष्णु लोक को चला जाता है ।१९।

॥ ७३-कौशिक का वैष्णव गायन ॥

कृष्णस्तुष्यति केनेह सर्वदेवेश्वरेश्वरः ।
वक्तुमर्हसि चास्माकं सूत सर्वार्थविद्भवान् ।१।

पुरा पृष्टो महातेजा मार्कंडेयो महामुनिः ।
अंबरीषेण विप्रेंद्रास्तद्वदामि यथातथम् ।२।
मुने समस्तधर्माणां पारगस्त्वं महामते ।
मार्कंडेय पुराणोऽसि पुराणार्थविशारदः ।३।
नारायणानां दिव्यानां धर्माणां श्रेष्ठमुत्तमम् ।
तत्किं ब्रूहि महाप्राज्ञ भक्तानामिह सुव्रत ।४।
तस्य तद्वचनं श्रुत्वा समुत्थाय कृतांजलिः ।
स्मरन्नारायण देवं कृष्णमच्युतमव्ययम् ।५।
शृणु भूप यथान्याय पुण्यं नारायणात्मकम् ।
स्मरण पूजनं चैव प्रणामो भक्तिपूर्वकम् ।६।
प्रत्येकमश्वमेधस्य यज्ञस्य सममुच्यते ।
य एकः पुरुषः श्रेष्ठः परमात्मा जनार्दनः ।७।

इस लिङ्ग महा पुराण के उत्तर भाग के प्रथम अध्याय में परम साध्य और अत्यन्त प्रियात्मा विष्णु के गान से परम प्रीति होती है—इस कथा का निरूपण किया जाता है। ऋषियों ने कहा—हे सूतजी ! आप तो समस्त अर्थों के परम ज्ञाता हैं। अब कृपा कर हमको यह बताइये कि सम्पूर्ण देवों के भी शिरोभूषण ईश्वर भगवान् श्रीकृष्ण इस संसार में किस विधान से परम सन्तुष्ट हुआ करते हैं ? ।१। सूत जी ने कहा—हे विप्रवृन्द ! यही प्रश्न पहिले राजा अम्बरीष ने महा मुनीश्वर मार्कण्डेय जी से पूछा था जो कि महान् तेजस्वी मुनिवर थे। उसी को मैं तुमको ठीक २ बतलाता हूँ। ।२। अम्बरीष ने कहा था—हे महामुने ! आप तो महान् बुद्धिमान् हैं और समस्त धर्मों के भी पारगामी ज्ञाता हैं। आप चिरजीवी होने के कारण बहुत ही पुराने भी हैं तथा पुराणों के अर्थ के ज्ञाता परम पण्डित हैं।३। सो अब यह बतलाइये कि नारायण के उत्तम एवं दिव्य धर्मों में परम श्रेष्ठ एवं अत्युत्तम धर्म क्या है। हे महान् प्रज्ञा सम्पन्न पण्डित प्रवर ! हे सुव्रत ! जो भी भक्तों के लिये अति श्रेष्ठ हो उसे बतलाइये।४। सूतजी ने कहा—राजा अम्बरीष के इस वचन को सुनकर मार्कण्डेय मुनि ने कृताञ्जलि होकर उत्थान

किया और अच्युत अव्यय श्री कृष्ण देव का स्मरण किया था ।५। मार्कण्डेय मुनि ने कहा—हे राजन् ! तुम श्रवण करो । नारायण स्वरूप पुण्य न्याय के अनुसार जो भी होता हैं । इनका स्मरण करना—पूजन करना और भक्ति भाव के साथ प्रणाम करना—इन में प्रत्येक का फल अश्वमेध यज्ञ के समान होता है । परमात्मा जनार्दन एक ही श्रेष्ठ पुरुष हैं ।६।७।

यस्माद्ब्रह्मा ततः सर्वं मा श्रित्यैव मुच्यते ।
धर्ममेकं प्रवक्ष्यामि यद्दृष्टं विदितं मया ।८।
पुरा त्रेतायुगे कश्चित् कौशिको नाम वं द्विजः ।
वासुदेवपरो नित्यं सामगानरतः सदा ।९।
भोजनासन शय्यासु सदा तद्गतमानसः ।
उदारचरित विष्णोर्गायमानः पुनः पुनः ।१०।
विष्णोः स्थलं समासाद्य हरेः क्षेत्रमनुत्तमम् ।
अगायत हरिं तत्र तालवर्णलयान्वितम् ।११।
मूर्च्छनास्वरयोगेन श्रुतिभेदेन भेदितम् ।
भक्तियोगं समापन्नो भिक्षामात्रं हि तत्र वं ।१२।
तत्रैनं गायमानं च दृष्ट्वा कश्चिद्द्विजस्तदा ।
पद्माख्य इति विख्यातस्तस्मै चान्नं ददौ तदा ।१३।
सकुटुंबो महातेजा ह्युष्णमन्नं हि तत्र वै ।
कौशिको हि तदा हृष्टो गायन्नास्ते हरिं प्रभुम् ।१४।

जिस भगवान् नारायण से ब्रह्मा होते हैं और फिर उस ब्रह्मा का समाश्रय ग्रहण कर सभी हुआ करते हैं । मैं एक धर्म के विषय में बतलाता हूँ जो मैंने देखा है तथा जिसका मुझे ज्ञान है ।८। पहिले त्रेत्रा युग में कोई एक कौशिक नामधारी ब्राह्मण था । वह नित्य सामगान में निरत रहकर वासुदेव परायण हुआ था । ।९। भोजन-आसन और शय्या के समय में वह सदा वासुदेव भगवान् में ही मन रखा करता था । सर्वदा भगवान् विष्णु के अति उदार चरित का बारम्बार गान किया करता था । ।१०। भगवान् विष्णु के स्थल को प्राप्त होकर जो

कि सर्वश्रेष्ठ होता है वहाँ पर वह हरि के गुणानुवाद को ताल तथा वर्ण की लय से युक्त गान किया करता था ।११। मूर्च्छना स्वर के योग से श्रुति के भेद से भेद वाला भक्ति योग को प्राप्त हुआ वह वहाँ पर ही भिक्षा ग्रहण करके बैठ जाया करता था । अर्थात् सकुटुम्ब भिक्षा मात्र लेकर हरि का गान करके वहाँ पर ही परम प्रसन्न होकर रह जाया करता था ।१२। उस समय वहाँ पर इसको गायन करते हुए किसी द्विज ने देखा था जो कि पद्माख्य-इस नाम से विख्यात था । उसने इसको अन्न दिया था ।१३। यह महान् तेजस्वी सपरिवार उस उष्ण अन्न को खाकर प्रभु का गान करता हुआ परम प्रसन्न वहाँ पर ही रह गया था ।१४।

शृण्वन्नास्ते स पद्माख्यः काले काले विनिर्गतः ।
कालयोगेन संप्राप्ताः शिष्या वै कौशिकस्य च ।१५।
सप्त राजन्यवैश्यानां विप्राणां कुलसंभवाः ।
ज्ञानविद्याधिकाः शुद्धा वासुदेवपरायणाः ।१६।
तेषामवितथान्नाद्यं पद्माक्षः प्रददौ स्वयम् ।
शिष्यैश्च सहितो नित्य कौशिको हृष्टमानसः ।१७।
विष्णुस्थले हरिं तत्र आस्ते गायन्यथविधि ।
तत्रैव मालवो नाम वैश्यो विष्णुपरायणः ।१८।
दीप मालां हरेर्नित्यं करोति प्रीतिमनसः ।
मालवी नाम भार्या च तस्य नित्यं पतिव्रता ।१९।
गोमयेन समालिप्य हरेः क्षेत्रं समंततः ।
भर्त्रा सहास्ते सुप्रीता शृण्वती गानमुत्तमम् ।२०।
कुशस्थलात्समापन्ना ब्राह्मणाः शसितव्रताः ।
पञ्चाशब्दै समापन्ना हरेर्गानार्थमुत्तमाः ।२ ।

वह पद्माख्य समय समय पर विनिर्गत होता हुआ उसके गान का श्रवण किया करता था । समय के योग से कौशिक के शिष्य वहाँ पर आ गये थे ।१५। वे सब सात्व थे जो ब्राह्मण-क्षत्रिय और वैश्यों के कुल में उत्पन्न होने वाले थे । वे सब ज्ञान और विद्या में अधिक थे

तथा परम शुद्ध और वासुदेव की भक्ति में परायण रहने वाले थे ।१६। उन सब को परम विशुद्ध अन्न आदि पद्माख्य ने स्वयं दिया था। शिष्यों के सहित कौशिक नित्य ही परम प्रसन्न चित्त वाला रहता था ।१७। जिस विष्णु के स्थल में हरि का गान करता हुआ रहता था वहाँ पर ही मालव नाम वाला एक वैश्य जो कि विष्णु की भक्ति में परायण था आया करता था ।१८। वह प्रीति से युक्त मन वाला नित्य हरि की दीप माला किया करता था। उसकी मालवी नाम वाली भार्या थी जो कि उसकी नित्य पतिव्रता थी ।१६। वह मालवी नित्य ही गोमय से उस हरि के क्षेत्र को सब ओर से लीप दिया करती थी और अपने स्वामी के साथ परम प्रसन्नता से उस हरि के उत्तम गान को श्रवण किया करती थी ।२०। फिर कुश स्थल से व्रत ग्रहण किये हुए पचास ब्राह्मण वहाँ आ गये थे जो कि हरि गान करने में बहुत ही श्रेष्ठ थे ओर इसीलिये वहाँ उपस्थित भी हुए थे ।२१।

साधयतो हि कार्याणि कौशिकस्य महात्मनः ।
ज्ञानविद्यार्थतत्त्वज्ञाः शृण्वंतो ह्यवसस्तु ते ।२२।
ख्यातमासीत्तदा तस्य गान वै कौशिकस्य तत् ।
श्रुत्वा राजा समभ्येत्य कलिंगो वाक्यमब्रवीत् । ३।
कौशिकाद्य गणैः सार्धं गायस्वेह च मां पुनः ।
शृणुध्वं च तथा यूय कुशस्थलजना अपि ।२४।
तच्छ्रुत्वा कौशिकः प्रात राजान सांत्वया गिरा ।
न जिह्वा मे महाराजन् वाणी च मम सर्वदा ।२५।
हरेरन्यमपींद्रं वा स्तौति नैत्र च वक्ष्यति ।
एवमुक्तो तु तच्छिष्यो वासिष्ठो गौतमो हरिः ।२६।
सारस्वतस्तथा चित्रश्चित्रमाल्यस्तथा शिशुः ।
ऊचुस्ते पार्थिवं तद्वद्यथा प्राह च कौशिकः ।२७।
श्रावकास्ते तथा प्रोचुः पार्थिवं विष्णुतत्पराः ।
श्रोत्राणीमानि शृण्वंत रहिरेन्यं न पार्थिव ।२८।

महात्मा कौशिक के कार्यों का साधन करते हुए ज्ञान-विद्या और

अर्थ के तत्वों के ज्ञाता वे श्रवण करते हुए वहीं पर निवास कर गये थे ।२२। उस समय में उस कौशिक का गान प्रसिद्ध था । यह सुनकर कलिङ्ग-राजा वहाँ आकर यह वाक्य बोला था । हे कौशिक ! आज अपने गणों के साथ यहाँ पर मेरा गायन करो । और इस समय में कुश स्थल के समस्त मनुष्य भी श्रवण करेंगे ।२३।२४। यह श्रवण करके कौशिक ने सान्त्वना पूर्ण वाणी से राजा से कहा था । हे राजन् ! मेरी जिह्वा और वाणी सर्वदा हरि के अतिरिक्त इन्द्र का भी स्तवन नहीं करती है और न कुछ बोलती है । अतः यह कुछ भी नहीं बोलेगी । उसके ऐसा कहने पर उसके शिष्य वासिष्ठ-गौतम-हरि-सारस्वत-चित्र-चित्रमाल्य और शिशु इन सब ने भी राजा को वैसा ही उत्तर दिया था जैसा कि कौशिक ने उसे दिया था । ।२५।२६।२७। श्रावक जो हरि गान के श्रवण करने वाले थे वे सब भी विष्णु भक्ति परायण थे और उन्होंने भी राजा से उसी भांति स्पष्ट कह दिया था कि हमारे श्रोत्र हरि कीर्त्तन के अतिरिक्त अन्य कुछ भी नहीं श्रवण किया करते हैं ।२८।

गानकीर्ति वयं तस्य शृणुमोन्यां न च स्तुतिम् ।
तच्छ्रुत्वा पार्थिवो रुष्टो गायता मिति चाब्रवीत् ।२६।
स्वभृत्यान्ब्राह्मणा ह्यते कीर्तिं श्रृण्वंति मे यथा ।
न श्रृण्वंति कथं तस्मात् गायमाने समंततः ।३०।
एव मुक्तास्तदा भृत्या जगुः पार्थिवमुत्तमम् ।
निरुद्धमार्गा विप्रास्ते गाने वृत्ते तु दुःखिताः ।३१।
काष्ठशंकुभिरन्योन्यं श्रोत्राणि विदधुर्द्विजाः ।
कौशिकाद्याश्च तां ज्ञात्वा मनोवृत्तिं नृपस्य वै ।३२।
प्रसह्यास्मांस्तु गायेत स्वगानेसौ नृपः स्थितः ।
इति विप्राः सुनियता जिह्वाग्रं चिच्छिदुः करैः ।३३।
ततो राजा सुसंक्रुद्धः स्वदेशात्तान्व्यवासयत् ।
आदाय सर्वं वित्तं च ततस्ते जग्मुरुत्तराम् ।३४।
दिशमासाद्य कालेन कालधर्मेण योजिताः ।
तानागतान्यमो दृष्ट्वा किं कर्तव्यमिति स्म ह ।३५।

श्रोताओं ने राजा से स्पष्ट कह दिया था कि हे राजन् हम तो केवल भगवान् की ही कीर्त्ति का गायन सुना करते हैं उसके अतिरिक्त अन्य किसी की भी स्तुति कभी नहीं सुनते हैं। यह सुनकर राजा बहुत ही रुष्ट हो गया था और गाने वालों में बोला था कि मेरे भृत्य मेरी कीर्त्ति का गान करें जिससे कि ये ब्राह्मण श्रवण करें। देखते हैं चारों ओर से गाई गई मेरी कीर्त्ति को कैसे नहीं सुनेंगे ।२९।३०। उस समय इस प्रकार से जब भृत्यों से राजा ने कहा तो वे भृत्य राजा की कीर्ति का गान करने लगे। वे समस्त ब्राह्मण विरुद्ध मार्ग वाले कर दिये गये थे। गान के होने पर वे अत्यन्त दुःखित हुए थे ।३१। उस समय ब्राह्मणों ने काठ की खूँटियों से परस्पर में एक दूसरे के कानों को बन्द कर दिया था। कौशिक आदि ने राजा की मनोवृत्ति को समझ लिया था कि यह राजा जबर्दस्ती से हमसे अपना कीर्त्ति गान कराने के लिये स्थित हो गया है अतएव ऐसा सब ने निश्चय करके अपने ही हाथों से जिह्वा का अग्रभाग छिन्न कर दिया था ।३२।३३। इस पर राजा ने बहुत ही अधिक क्रोध किया था और उनको अपने देश से निर्वासित कर दिया था। वे सब ब्राह्मण अपना धन लेकर उत्तर दिशा में चले गये थे ।३४। उत्तर दिशा में पहुंच कर इस स्थूल देह के वियोग से जब वे योजित हुए तो आये हुए उनको देखकर यमराज ने विचार किया कि क्या करना चाहिए इस तरह वह सम्भ्रान्त हो गया था ।३५।

चेष्टितं तत्क्षणे राजन् ब्रह्मा प्राह सुराधिपान् ।
कौशिकादीन् द्विजानद्य वासयध्वं यथासुखम् ।३६।
गानयोगेन ये नित्यं पूजयंति जनार्दनम् ।
तानानयत भद्रं वो यदि देवत्वमिच्छथ ।३७।
इत्युक्ता लोकपालास्ते कौशिकेति पुनः पुनः ।
मालवेति तथा केचित् पद्माक्षेति तथा परे ।३८।
क्रोशमानाः समभ्येत्य तानादाय विहायसा ।
ब्रह्मलोकं गताः शीघ्रं मुहूर्त्तेनैव ते सुराः ।३९।
कौशिकादींस्ततो दृष्ट्वा ब्रह्मा लोकपितामहः ।

प्रत्युद्गम्य यथान्यायं स्वाग तेनाभ्यपूजयत् ।४०।
ततः कोलाहलमभूदतिगौरवमुल्बणम् ।
ब्रह्मणा चरितं दृष्ट्वा देवानां नृपसत्तम ।४१।
हिरण्यगर्भो भगवांस्तान्निवार्य सुरोत्तमान् ।
कौशिकदीन्समादाय मुनीन् देवैः समावृतः ।४२।

यमराज के चिन्तन के समय में ब्रह्माजी ने उनके चरित को जानकर सुराधियों से कहा था कि इन कौशिक आदि द्विजों का सुख पूर्वक निवास स्थान दो ।३६। ये अपने गान के योग से नित्य ही भगवान जनार्दन का अर्चन किया करते हैं । यदि आप लोग अपने देवत्व की इच्छा रखते हैं तो आपका कल्याण होगा, आप उन्हें यहाँ लिवा लाओ ।३७। ब्रह्मा जी के द्वारा ब्राह्मणों के अत्यन्त गौरव के साथ समादर करने पर देव जो लोकपाल थे उनमें बड़ा भारी कोलाहल उठ खड़ा हुआ था । वे बार २ कौशिक इस नाम से आह्वान कर रहे थे कुछ मालव इस नाम को लेकर बोल रहे थे और दूसरे पद्माक्ष नाम से पुकार रहे थे ।३८। इस तरह से उनको लेकर आकाश मार्ग से देवगण मुहूर्त्त मात्र में अत्यन्त शीघ्र ब्रह्मलोक में चले गये थे । ३६। इसके अनन्तर लोकों के पितामह ब्रह्मा ने कौशिकादि-विप्रों को देखकर यथा विधि उनकी आगौनी करके स्वागत किया और उनकी अर्चना की थी ।४०। इस प्रकार से उनका अत्यधिक गौरव देखकर बड़ा कोलाहल हो गया थह । ब्रह्मा के द्वारा ऐसा गौरवमय व्यवहार देखकर देवों को बड़ा विस्मय हुआ था ।४१। हिरण्य-गर्भ भगवान् ने उन देवों का निवारण करके कौशिकादि मुनियों को लेकर देवों से समावृत होते हुए शीघ्र ही विष्णु लोक को गये थे ।४२।

विष्णुलोकं ययौ शीघ्रं वासुदेवपरायणः ।
तत्र नारायणो देवः श्वेतद्वीपनिवासिभिः ।४३।
ज्ञानयोगेश्वरैः सिद्धैर्विष्णुभक्तैः समाहितैः ।
नारायणसमैर्दिव्यैश्चतुर्बाहुधरैः शुभैः ।४४।
विष्णु चिह्नसमापन्नैर्दीप्यमानैरकलमषैः ।
अष्टाशीतिसहस्रैश्च सेव्यमानो महाजनैः ।४५।

अस्माभिर्नारदाद्यैश्च सनकाद्यैरकल्मषैः ।
भूतैर्नानाविधैश्चैव दिव्यस्त्रीभिः समंततः ।४६।
सेव्यमानोथ मध्ये वै सहस्रद्वारसंवृते ।
सहस्रयोजनायामे दिव्ये मणिमये शुभे ।४७।
विमाने विमले चित्रे भद्रपीठासने हरिः ।
लोककार्ये प्रसक्तानां दत्तदृष्टिश्च माधवः ।४८।
तस्मिन्कालेऽथ भगवान् कौशिकाद्यैश्च संवृतः ।
आगम्य प्रणिपत्याग्रे तुष्टाव गरुडध्वजम् ।४६।

वासुदेव भगवान् में परायण ब्रह्मा विष्णु लोक में पहुंचे थे । वहाँ पर नारायण देव श्वेत द्वीप निवासियों के द्वारा परिसेवित हो रहे थे । ज्ञान योगेश्वर सिद्ध और समाहित विष्णु के भक्तों के द्वारा नारायण सेव्यमान हो रहे थे । जिनका स्वरूप भी बिल्कुल नारायण के ही समान था । सब के परम शुभ एवं दिव्य चार भुजाएं थी । समस्त भगवान् के समान ही उनके चिह्न थे परम दीप्यमान एवं कल्मष से रहित अट्ठासी सहस्र महान् पुरुषों के द्वारा भगवान् नारायण सेवित हो रहे थे ।४३। ।४४।४५। मध्य में हस सबसे-नारदादि-सनकादि और नाना प्रकार के कल्मष रहित प्राणियों से सेवित थे तथा सब ओर से दिव्य स्त्रियों के द्वारा सेव्यमान हो रहे थे। एक सहस्र द्वारों से संवृत और सहस्र योजन के आयाम वाला-अत्यन्त दिव्य एवं मणिमय परम शुभ विमान था । उस विमल एवं चित्र भद्रपीठासन पर हरि विराजमान थे । माधव लोक कार्य में प्रसक्त हाने वालों पर दृष्टि दिये हुए माधव सुशोभित हो रहे थे । उस समय में कौशिकादि से घिरे हुए भगवान ब्रह्मा ने वहाँ आकर नारायण को प्रणाम किया और गरुड़ ध्वज भगवान् का स्तवन किया था ।४६। ।४७।४८।४६।

ततो विलोक्य भगवान् हरिर्नारायणः प्रभुः ।
कौशिकेत्याह संप्रीत्या तान्सर्वांश्च यथाक्रमम् ।५०।
जयघोषो महानासीन्महाश्चर्ये समागते ।
ब्रह्माणमाह विश्वात्मा शृणु ब्रह्मन् मयोदितम् ।५१।

कौशिकस्य इमे विप्राः साध्यसाधनतत्पराः ।
हिताय संप्रवृत्ता वै कुशस्थलनिवासिनः ।५२।
मत्कीर्तिश्रवणे युक्ता ज्ञानतत्त्वार्थकोविदाः ।
अनन्यदेवताभक्ताः साध्या देवा भवंत्विमे ।५३।
मत्समीपे तथान्यत्र प्रवेशं देहि सर्वदा ।
एवमुक्त्वा पुनर्देवः कौशिकं प्राह माधवः ।५४।
स्वशिष्यैस्त्व महाप्राज्ञ दिग्बंधो भव मे सदा ।
गणाधिपत्यमापन्नो यत्राहं त्वं समास्व वै ।५५।
मालवं मालवीं चैवं प्राह दामोदरो हरिः ।
मम लोके यथाकामं भार्यया सह मालव ।५६।
दिव्यरूपधरः श्रीमान् शृण्वन्गानमिहाधिपः ।
आस्व नित्य यथाकामं यावल्लोका भवंति वै ।५७।

इसके अनन्तर प्रभु भगवान् नारायण हरि ने इनको देखा और बड़ी प्रीति के साथ उन सब को यथा क्रम कौशिक–यह कहा था ।५०। उस समय में महान् आश्चर्य हुआ था और महान् जय-जय कार का घोष हुआ था । विश्वात्मा भगवान् ब्रह्मा से बोले–हे ब्रह्मन् ! आप मेरे कथन का श्रवण करो ।५१। कौशिक के ये ब्राह्मण हैं वे सभी साध्य के साधन करने में परायण रहने वाले हैं । ये सब कुशस्थल के निवासियों के हित के लिये संप्रवृत हुए थे ।५२। ये लोग मेरी ही कीर्त्ति के श्रवण करने में तत्पर रहा करते थे और ज्ञान के तत्वार्थ के पण्डित थे । ये अनन्य देव भक्त थे । ये सब मेरे साध्य देव होंगे ।५३। इनका प्रवेश मेरे समीप में तथा अन्यत्र सर्वदा दे दो । इस तरह ब्रह्मा से कहकर फिर माधव भगवान् कौशिक से बोले ।५४। हे महाप्राज्ञ ! तुम अमने शिष्यों के सहित सदा मेरा दिग्वन्ध हो जाओ । गणाधिपत्य को प्राप्त होते हुए जहाँ पर मैं रहूँ वहाँ पर ही तुम भी मेरे साथ में रहो ।५५। फिर दामोदर हरि मालव और मालवी से बोले—हे मालव ! तुम अपनी स्त्री के साथ यथेच्छया दिव्यरूप धारण कर यहाँ पर गान का श्रवण करते हुए अधिप बनजाओ । नित्य अपनी इच्छा के अनुसार यहाँ पर रहो जब तक ये

लोक हैं ।५६।५७।

पद्माक्षमाह भगवान् धनदो भव माधवः ।
धनानामीश्वरो भूत्वा यथाकालं हि मां पुनः ।५८।
आगम्य दृष्ट्वा मां नित्यं कुरु राज्यं यथासुखम् ।
एवमुक्त्वा हरिर्विष्णुर्ब्रह्माणमिदमब्रवीत् ।५९।
कौशिकस्यास्य गानेन योगनिद्रा च मे गता ।
विष्णुस्थले च मां स्तौति शिष्यैरेष समन्ततः ।६०।
राज्ञा निरस्तः क्रूरेण कलिंगेन महीयसा ।
स जिह्वाच्छेदनं कृत्वा हरेरन्यं कथंचन ।६१।
न स्तोष्यामीति नियतः प्राप्तोसौ मम लोकताम् ।
एते च विप्रा नियता मम भक्ता यशस्विनः ।६२।
श्रोत्रच्छिद्रमथाहत्य शंकुभिर्वै परस्परम् ।
श्रोष्यामो नैव चान्यद्वै हरेः कीर्तिमिति स्म ह ।६३।

इसके पश्चात् भगवान् माधव पद्माक्ष से बोले तुम धनद हो जाओ । सम्पूर्ण धनों के स्वामी बनकर यथा समय मेरे पास आकर मेरा दर्शन करके सुखपूर्वक राज्य के सुख का आनन्द प्राप्त करो । इस प्रकार से हरि विष्णु भगवान् ने फिर ब्रह्मा जी से यह कहा था ।५८।५९। इस कौशिक के गान से मेरी योग निद्रा समाप्त हो गई है । यह शिष्यों से समन्वित होकर विष्णुस्थल में मेरा स्तवन करता है ।६०। क्रूरकलिङ्ग राजा के द्वारा यह निरस्त हुआ था। इसने अपनी जिह्वा का उच्छेदन कर लिया था और इसने दृढ़ निश्चय कर लिया था कि मैं हरि के अति-रिक्त अन्य किसी का भी स्तवन नहीं करूँगा । यह परम नियत था । अतएव यह मेरे लोक को प्राप्त हुआ है। ये अन्य विप्र भी नियत और मेरे भक्त हैं तथा यशस्वी हैं ।६०।६१।६२। इन सब ने परस्पर में अपने कानों के छिद्रों को काष्ठ की खूँटियों से आहत किया था और प्रतिज्ञा की थी कि हरि की कीर्ति के अतिरिक्त अन्य किसी की भी कीर्त्ति को नहीं सुनेंगे ।६३।

एते विप्राश्च देवत्वं मम सान्निध्यमेव च ।

मालवो भार्यया सार्धं मत्क्षेत्रं परिमृज्य वै ।६४।
दीपमालादिभिर्नित्यमभ्यर्च्य सतत हि माम् ।
गानं शृणोति नियतो मत्कीर्तिचरितान्वितम् ।६५।
तेनासौ प्राप्तवाँल्लोकं मम ब्रह्म सनातनम् ।
पद्माक्षोसौ ददौ भोज्यं कौशिकस्य महात्मनः ।६६।
धनेशत्वमवाप्तोसौ मम सान्निध्यमेव च ।
एवमुक्त्वा हरिस्तत्र समाजे लोकपूजितः ।६७।
तस्मिन् क्षणे समापन्ना मधुराक्षरपेशलैः ।
विपंचीगुणतत्त्वज्ञैर्वाद्यविद्याविशारदैः ।६८।
मंदं मंदस्मिता देवी विचित्राभरणान्विता ।
गायमाना समायाता लक्ष्मीर्विष्णुपरिग्रहा ।६९।
वृता सहस्रकोटीभिरंगनाभिः समंततः ।
ततो गणाधिपा दृष्ट्वा भुशुंडीपरिघायुधाः ।७०।
ब्रह्मादींस्तर्जयंतस्ते मुनीन्देवान्समंततः ।
उत्सारयंतः संहृष्टा धिष्ठिताः पर्वतोपमाः ।७१।

ये विप्र भी देवत्व को प्राप्त होकर मेरे ही सान्निध्य में रहेंगे । यह मालव अपदी भार्या के साथ मेरे क्षेत्र का परिमार्जन करके दीपमाला आदि के द्वारा नित्य ही सर्वदा मेरा अर्चन करके मेरी कीर्त्ति एवं चरित से युक्त गान को नियत रूप से श्रवण किया करता है ।६४।६५। इसी कारण से यह मेरे सनातन ब्रह्मलोक को प्राप्त हुआ है । वह जो पद्माक्ष है इसने महात्मा कौशिक को नित्य भोज्य दिया था ।६६। यह धनेश के पद को प्राप्त हुआ है और इसने मेरा सान्निध्य भी प्राप्त किया है । इस प्रकार से कहकर भगवान् हरि समाज में लोक से पूजित हुए थे ।६७। उसी समय में मधुर अक्षरों से परम सुन्दर-विपञ्ची (वीणा) को गुणों के तत्वों के ज्ञाता तथा वाद्यों के वादन की विद्या के महान् मनीषीगण से युक्त मन्द-मन्द स्मित वाली और अद्भुत आभूषणों से विभूषित एवं विष्णु भगवान् के परिग्रह से युक्त गान करती हुई लक्ष्मी देवी वहाँ पर आ गई थी ।६८।६९। उस देवी के चारों ओर सहस्रों करोड़ अङ्गनाएँ

उसे घेरे हुए थीं। इसके अनन्तर भुशुण्डी और परिप्य से युक्त गणाधिय देखकर ब्रह्मा आदि देवता-मुनिगण को डाँटते हुए और सब ओर से हटाते हुए परम प्रसन्न पर्वत के समान वहाँ अविष्ठित हुए थे ।७०।७१।

सर्व वयं हि निर्याताः सार्धं वै ब्रह्मणा सुरैः ।
तस्मिन् क्षणे समाहूतस्तुंबरुर्मुनिसत्तमः ।७२।
प्रविवेश समीपं वै देव्या देवस्य चैव हि ।
तत्रासीनो यथायोगं नानामूर्च्छासमन्वितम् ।७३।
जगौ कलपदं हृष्टो विपंचीं चाभ्यवादयत् ।
नानारत्नसमायुक्तैर्दिव्यैराभरणोत्तमैः ।७४।
दिव्यमाल्यैस्तथा शुभ्रैः पूजितो मुनिसत्तमः ।
निर्गतस्तुंबरुर्हृष्टो अन्ये च ऋषयः सुराः ।७५।
दृष्ट्वा संपूजितं यांतं यथायोगमरिंदम ।
नारदोथ मुनिर्दृष्ट्वा तुंबरोः सत्क्रियां हरेः ।७६।
शोकाविष्टेन मनसा संतप्तहृदयेक्षणः ।
चिंतामापेदिवांस्तत्र शोकमूर्च्छाकुलात्मकः ।७७।

हम सब ब्रह्मा और देवगण के साथ निकल आये थे। उस समय में मुनिश्रेष्ठ तुम्बरु नाम वाला गन्धर्व बुलाया गया था ।७२। उसने देवी और देव के समीप में प्रवेश किया था और वहाँ स्थित होकर अनेक मूर्च्छनाओं से युक्त तथा योग मधुर पद का गान किया था और परम प्रसन्न होकर उस गन्धर्व वीणा का भी वादन किया था। विविध रत्नों से समन्वित परम दिव्य एवं अत्युत्तम आभरणों से तथा शुभ्र एवं दिव्य माल्यों से वह मुनिश्रेष्ठ गन्धर्व सत्कृत किया गया था। तब वह तुम्बरु प्रसन्न होता हुआ निकल गया था। अन्य देवों तथा ऋषियों ने हे अरिन्दन ! यथा योग उसे सम्पूजित और जाते हुए को देखा था। इसके अनन्तर नारद मुनि ने हरि का किया हुआ सत्कार तुम्बरु का देखा था ।७६-७६। शोक से आविष्ट मन के कारण हृदय तथा नेत्रों में परिपूर्ण सन्ताप वाला शोक की मूर्च्छा से बेचैन होता हुआ वहाँ पर बड़ी भारी चिन्ता को प्राप्त हो गया था ।७७।

केनाहं हि हरेर्यास्ये योगं देवीसमीपतः ।
अहो तुंबरुणा प्राप्तं धिङ्मां मूढ़ं विचेतसम् ।७८।
योऽहं हरेः सन्निकाशं भूतैर्निर्यातितः कथम् ।
जीवन्यास्यामि कुत्राहमहो तुंबरुणां कृतम् ।७९।
इति संचितयन् विप्रस्तप आस्थितवान्मुनिः ।
दिव्य वर्ष सहस्रं तु निरुच्छ्वाससमन्वितः ।८०।
ध्यायन्विष्णुमथाध्यास्ते तुंबरोः सत्क्रियां स्मरन् ।
रोदमानो मुहुर्विद्वान् धिङ्मामिति च चिंतयन् ।८१।
तत्र यत्कृतवान्विष्णुस्तच्छृणुष्व नराधिप ।८२।

मैं किस प्रकार से देवी के समीप से हरि के योग को प्राप्त करूँगा। अहो ! इस तुम्बरु ने उसे प्राप्त कर लिया है। मुझ मूढ़ विचेता को धिक्कार है ।७८। जो मैं भूतों के द्वारा हरि के सन्निकाश को कैसे निर्यातित कर दिया गया ? मैं जीवित रहता हुआ कहाँ जाऊँगा ? अहो ! तुम्बरु ने यह किया है ।७९। इस तरह से चिन्तन करते हुए वह विप्र मुनि तपश्चर्या में समास्थित हो गया था। एक सहस्र दिव्य वर्ष तक प्राणायाम से युक्त हो गया था ।८०। तुम्बरु की सत्क्रिया का स्मरण करते हुए वहाँ पर ध्यान करते २ विष्णु में अधिष्ठित हो जाता है। वह विद्वान् बार-बार रुदन करता हुआ 'मुझे धिक्कार है'—ऐसी चिन्ता करता रहता था ।८१। हे नराधिय ! वहाँ पर विष्णु भगवान् ने जो कुछ भी किया था अब तुम उसका श्रवण करो ।८२।

ततो नारायणो देवस्तस्मै सर्वं प्रदाय वै ।
कालयोगेन विश्वात्मा समं चक्रेऽथ तुंबरोः ।८३।
नारदं मुनि शार्दूलमेवं वृत्तमभूत्पुरा ।
नारायणस्य गीतानां गानं श्रेष्ठं पुनः सुनः ।८४।
गानेनाराधितो विष्णुः सत्कीर्ति ज्ञानवर्चसी ।
ददाति तुष्टिं स्थानं च यथाऽसौ कौशिकस्य वै ।८५।
पद्माक्षप्रभृतीनां च संसिद्धिं प्रददौ हरिः ।
तस्मात्त्वया महाराज विष्णुक्षेत्रे विशेषतः ।८६।

अर्चनं गाननृत्याद्यं वाद्योत्सवसमन्वितम् ।
कर्तव्यं विष्णुभक्तैर्हि पुरुषैरनिशं नृप ।८७।
श्रोतव्यं च सदा नित्यं श्रोतव्योसौ हरिस्तथा ।
विष्णुक्षेत्रे तु यो विद्वान् कारयेद्भक्तिसंयुतः ।८८।
गाननृत्यादिकं चैव विष्णवाख्यानं कथां तथा ।
जातिस्मृतिं च मेधां च तथैवोपरमे स्मृतिम् ।८९।
प्राप्नोति विष्णुसायुज्यं सत्यमेतन्नृपाधिप ।
एतत्ते कथितं राजन् यन्मां त्वं परिपृच्छसि ।९०।

इसके अनन्तर नारायण देव ने उसको उस प्रदान करके विश्वात्मा ने काल के योग से उसे तुम्बरू के समान ही कर दिया था ।८३। पहिले मुनियों में शार्दूल के समान नारद का वृत्त इस प्रकार का हुआ था कि भगवान् नारायण के गीतों का पुनः पुनः गान होता था ।८४। गान के द्वारा आराधना किये गए भगवान् विष्णु सत्कीर्ति-ज्ञान-वर्चस-तुष्टि और स्थान प्रदान किया करते हैं जैसा कि इ ने कौशिक का किया था ।८५। भगवान् हरि ने पद्माक्ष आदि को ससिद्धि प्रदान की थी । इसलिए हे महाराज ! विशेष रूप से विष्णु के क्षेत्र में आपको अर्चन-गान-नृत्य आदि वाद्योत्सव के सहित विष्णु भक्त पुरुषों को के साथ निरन्तर हे नृप ! करना चाहिए ।८६।८७। नित्य और सदा श्रवण करना चाहिए और भगवान् हरि श्रवण करने के योग्य हैं । जो विद्वान् विष्णु क्षेत्र में भक्ति-भाव संयुत होकर ऐसा करता है । गान-नृत्य आदिक तथा भगवान् विष्णु का आख्यान एवं कथा किया करता है वह जाति स्मृति-मेधा तथा उपरम में स्मृति और हे नृपाधिप ! विष्णु का सायुज्य अवश्य ही प्राप्त करता है—यह पूर्णतया सत्य है । हे राजन् यह हमने तुमको सब कह दिया है जिसको कि तुम मुझ से पूछ रहे हो । हे धर्मधारियों में परम श्रेष्ठ ! अब आगे और बोलो, मैं तुमको क्या बतलाऊँ ! ।८८।८९।९०।

॥ ७४–वैष्णव गीत कथन ॥

मार्कंडेय महाप्राज्ञ केन योगेन लब्धवान् ।

गान विद्यां महाभाग नारदो भगवान्मुनिः ।१।
तुम्बरोश्च समानत्वं कस्मिन्काल उपेयिवान् ।
एतदाचक्ष्व मे सर्वं सर्वज्ञोसि महामते ।२।
श्रुतो मयायमर्थो वै नारदाद्देवदर्शनात् ।
स्वयमाह महातेजा नारदोऽसौ महामतिः ।३।
संतष्यमानो भगवान् दिव्यं वर्षसहस्रकम् ।
निरुच्छ्वासेन सयुक्तस्तुंबरोगौंरव स्मरन् ।४।
तताप च महाघोरं तपोरा शिस्तपः परम् ।
अथांतरिक्षे शुश्राव नारदोऽसौ महामुनिः ।५।
वाणीं दिव्यां महाघोषामद्भुतामशरीरिणीम् ।
किमर्थं मुनिशार्दूल तपस्तपसि दुश्चरम् ।६।
उलूकं पश्य गत्वा त्वं यदि गाने रता मतिः ।
मानसोत्तरशैले तु गानबन्धुरिति स्मृतः ।७।

अम्बरीष नृप ने कहा—हे महान् विद्वद्वर ! हे मार्कण्डेय ! हे महान् भाग्य वाले ! भगवान् नारद मुनि ने किस योग के द्वारा गान विद्या की प्राप्ति की थी ।१। आप तो महान् मति वाले हैं और सभी कुछ के ज्ञाता हैं। तुम्बरु गन्धर्व की समानता को नारद देवर्षि ने किस समय से प्राप्त की थी यह सभी हमको कृपा करके बतलाइये ।२। मार्कण्डेय मुनि ने कहा - मैंने यह सब कुछ समाचार देवों के समान दर्शन वाले नारद जी से श्रवण किया है । महामति और महान् तेजस्वी भगवान् नारद ने स्वयं ही मुझसे कहा था ।३। भगवान् नारद ने एक सहस्र दिव्य वर्ष तक भली-भाँति तपस्या की थी और निरुच्छ्वास होकर तुम्बरु गन्धर्व के महान् गौरव का स्मरण किया था ।४। तपोराशि मुनि ने महाघोर परम तपस्या की थी । इसके अनन्तर इस नारद मुनि ने अन्तरिक्ष के श्रवण किया था । आकाश में बिना शरीर वाली परम दिव्य महान् घोष समन्वित एक अत्यद्भुत वाणी हुई थी—'हे मुनिशार्दूल ! तुम किस फल की अभिलाषा से ऐसा परम दुश्चर तप इस तपोभूमि में स्थित होकर कर रहे हो ?' यदि गान विद्या में तुम्हारा अत्यन्त अनु-

राग है तो मानसोत्तर शैल पर जाकर उलक का दर्शन करो जो कि वहाँ पर गान वन्धु कहा गया है।५।६।७।

गच्छ शोघ्रं च पश्यैनं गानवित्त्वं भविष्यसि।
इत्युक्तो विस्मया विष्टो नारदो वाग्विदां वरः।८।
मानसोत्तरशैले तु गानबधुं जगाम वै।
गंधर्वाः किन्नरा यक्षास्तथा चाप्सरसां गणाः।९।
समासीनास्तु परितो गानबंधुं ततस्ततः।
गानविद्यां समापन्नः शिक्षितास्तेन पक्षिणा।१०।
स्निग्धकण्ठस्वरास्तत्र समासीना मुदान्विताः।
ततो नारदमालोक्य गानबंधुरुवाच ह।११।
प्रणिपत्य यथान्यायं स्वागतेनाभ्यपूजयत्।
किमर्थं भगवानत्र चागतोऽसि महामते।१२।
किं कार्यं हि मया ब्रह्मन् ब्रूहि किं करवाणि ते।
उलूकेन्द्र महाप्राज्ञ शृणु सर्वं यथातथम्।१३।
मम वृत्तं प्रवक्ष्यामि पुरा भूतं महाद्भुतम्।
अतीते हि युगे विद्वन्नारायणसमीपगम्।१४।

तुम अति शीघ्र चले जाओ और इस उलूक का दर्शन प्राप्त करो। इससे तुम गान विद्या के परम वेत्ता हो जाओगे। इस प्रकार से कहे गये नारद मुनि परम विस्मय से आविष्ट हो गये और वाग्वेत्ताओं में अतिश्रेष्ठ नारद महामुनि वहाँ मानसरोवर के उत्तर में स्थित शैल पर गान बन्धु के समीप चले गये थे। वहाँ उन्होंने देखा कि उस गान बन्धु के चारों ओर गन्धर्व-किन्नर-यक्ष और अप्सराओं के समूह समास्थित हैं और गान विद्या से सम्पन्न उस पक्षी से वे सब गान विद्या की शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं।८।९।१०। वहाँ पर नारद मुनि ने देखा कि सब के कण्ठ अति स्निग्ध थे जिनसे बहुत ही स्वर लहरी आविर्भूत हो रही थी। सब लोग परम हर्ष से युक्त होकर वहाँ पर स्थित हैं। जब वहाँ नारद महामुनि पहुंचे तो इनको देखकर उस गान बन्धु ने नारद से कहा था—।११। पहिले उसने प्रणिपात किया और समुचित रीति से नारद का स्वागत

करके अभ्यर्चना की। गान बन्धु ने फिर नारद से कहा—हे महान् मति वाले! आप यहाँ किस अभिलाषा को लेकर यहाँ आये हैं! हे ब्रह्मन्! आप आज्ञा दीजिए मैं आप की क्या सेवा करूँ। नारद मुनि ने कहा—हे उलूकों में सर्वश्रेष्ठ! आप तो महान् पंडित हैं। जो यथार्थ बात हैं उसे आप श्रवण कीजिए। पहिले मेरे साथ जो कुछ भी परम अद्भुत घटना हुई थी उस समस्त वृत्त को मैं बतलाऊँगा। व्यतीत हो जाने वाले युग में हे विद्वन्! मैं भगवान् सर्वेश्वर नारायण के समीप में गया था।१२।१३।१४।

मां विनिर्धूय संहृष्टः समाहूय च तुम्बरुम्।
लक्ष्मी समन्वितो विष्णुरश्रृणोद्गानमुत्तमम्।१५।
ब्रह्मादयः सुराः सर्वे निरस्ताः स्थानतोऽच्युताः।
कौशिकाद्याः समासीना गानयोगेन वै हरिम्।१६।
एवमाराध्य संप्राप्ता गाणपत्यं यथासुखम्।
तेनाहमतिदुःखार्तस्तपस्तप्तुमिहागतः।१७।
यद्दत्तं यद्धुतं चैव यथा वा श्रुतमेव च।
यदधीतं मया सर्वं कलां नार्हति षोडशीम्।१८।
विष्णोर्माहात्म्ययुक्तस्य गान योगस्य वै ततः।
संचित्याहं तपो घोरं तदर्थं तप्तवान् द्विज।१९।
दिव्यवर्षसहस्रं वै ततो ह्यशृणुवं पुनः।
वाणीमाकाशसंभूतां त्वामुद्दिश्य विहगम्।२०।
उलूकं गच्छ देवर्षे गानबन्धु मतिर्यदि।
गाने चेद्वर्तते ब्रह्मन् तत्र त्व वेत्स्यसे चिरात्।२१।

लक्ष्मी देवी से साथ संस्थित भगवान् विष्णु ने मेरा तिरस्कार करके परम प्रसन्न होते हुए तुम्बरु गन्धर्व को बुला लिया था। फिर विष्णु ने उसका उत्तम गान सुना था।१५। ब्रह्मा आदि समस्त देव स्थान से अच्युत निरस्त कर दिए गये थे। कौशिकादि सब वहाँ पर गान के योग से हरि के समीप में समासीन थे। इस प्रकार से आराधना करके वे यथा सुख गाणपत्य को सम्प्राप्त हुए थे। उससे मैं अत्यन्त दुःखित हुआ और

मैं यहाँ तपस्या करने को आया हूँ ।१६।१७। जो मैंने दिया—जो कुछ भी हवन किया और जो कुछ भी मैंने अध्ययन किया है वह सब सोलहवीं कला के योग्य भी नहीं है ।१८। हे द्विज ! महिमा से समन्वित भगवान् विष्णु के गान योग का संचिन्तन करके उसी के लिए महाघोर मैंने तपश्चर्या की थी ।१९। एक सहस्त्र दिव्य वर्ष तक यह तप करके मैंने आकाश में होने वाली वाणी का श्रवण किया था जो कि आपका उद्देश्य लेकर हुई थी। उसमें आकाश वाणी ने यही कहा था—हे देवर्षे ! यदि तेरा गान विद्या के सीखने का अनुराग है तो गान बन्धु उलूक के पास चला जा। हे ब्रह्मन् ! वहाँ पर तू चिरकाल में गान विद्या का ज्ञान प्राप्त कर लेगा ।२०।२१।

इत्यहं प्रेरितस्तेन त्वत्समीपमिहागतः ।
किं करिष्यामि शिष्योहं तव मां पालयाव्यय ।२२।
शृणु नारद यद्वृत्तं पुरा मम महामते ।
अत्याश्चर्यसमायुक्तं सर्वपापहरं शुभम् ।२३।
भुवनेश इति ख्यातो राजाभूद्धार्मिकः पुरा ।
अश्वमेधसहस्रैश्च वाजपेयायुतेन च ।२४।
गवां कोट्यर्बुदे चैव सुवर्णस्य तथैव च ।
वाससां रथहस्तीनां कन्याश्वानां तथैव च ।२५।
दत्वा स राजा विप्रेभ्यो मेदिनीं प्रतिपालयन् ।
निवारयन् स्वके राज्ये गेययोगेन केशवम् ।२६।
अन्यं वा गेययोगेन गायन्यदि स मे भवेत् ।
वध्यः सर्वात्मना तस्माद्वै दैरीड्यः परः पुमान् ।२७।
गानयोगेन सर्वत्र स्त्रियो गायन्तु नित्यशः ।
सूतमागधसंघाश्च गीतं ते कारयन्तु वै ।२८।
इत्याज्ञाप्य महातेजा राज्यं वै पर्यपालयत् ।
तस्य राज्ञः पुराभ्याशे हरिमित्र इति श्रुतः ।२९।

इस प्रकार से उसके द्वारा प्रेरित होकर मैं इस समय आपके समीप में उपस्थित हुआ हूँ। हे अव्यय ! मैं आपका शिष्य हूँ। अब मैं आपकी

क्या सेवा करूँ ? आप मेरा पालन करिए ।२२। गान बन्धु ने कहा हे महामति वाले नारद ! पहिले मेरा जो कुछ भी हुआ उसका तुम अब श्रवण करो । यह घटना भी अत्यन्त आश्चर्य से समायुक्त और परम शुभ सम्पूर्ण पापों के संहरण करने वाली है ।२३। पुराने समय में एक अति धार्मिक भुवनेश नाम वाला राजा हुआ था । उस राजा ने एक सहस्र अश्वमेध यज्ञ और दश सहस्र वाजपेय किये थे । उस नृप ने करोड़ों अर्बुद गौ-सुवर्ण वस्त्र-रथ-हाथी-कन्या और अश्वों के विप्रों को दान दिये थे और इस परम धार्मिक वृत्ति से उसने मेदिनी का परिपालन किया था । किन्तु उसने गान करने के योग से भगवान् केशव की उपासना करने का अपने राज्य में निवारण कर दिया था ।२४।२५।२६। कोई भी अन्य पुरुष मेरे राज्य में गेय योग से गान करेगा तो वह मेरे द्वारा वध्य होगा अर्थात् मैं उसे मृत्यु का दण्ड दे दूँगा । पर पुमान् प्रभु केवल वेद के मन्त्रों के द्वारा ही स्तुति करने के योग्य हैं ।२७। गान योग से नित्य केवल स्त्रियाँ ही सर्वत्र गान किया करें और सूत और मागधों के समुदाय मेरा गीत करें । ऐसी आज्ञा उस राजा ने जो कि महान् तेजस्वी था, देकर ही अपने राज्य का प्रशासन करता था । उस राजा के पुर के समीप में हरिमित्र नामक एक व्यक्ति था ।२८।२९।

बाह्मणो विष्णुभक्तश्च सर्वद्वन्द्वविवर्जितः ।
नदीपुलिनमासाद्य प्रतिमां च हरेः शुभाम् ।३०।
अभ्यर्च्य च यथान्यायं घृतदध्युत्तरं बहु ।
मिष्टान्नं पायसं दत्त्वा हरेरावेद्य पूपकम् ।३१।
प्रणिपत्य यथान्यायं तत्र विन्यस्तमानसः ।
अगायत हरिं तत्र तालवर्णलयान्वितम् ।३२।
अतीव स्नेहसंयुक्तस्तद्गतेनांतरात्मना ।
ततो राज्ञः समादेशाच्चारास्तत्र समागताः ।३३।
तदर्चनादि सकलं निर्धूय च समन्ततः ।
ब्राह्मणं तं गृहीत्वा ते राज्ञे सम्पइन्यवेदयन् ।३४।
ततो राजा द्विजश्रेष्ठं परिभर्त्स्य सुदुर्मतिः ।

राज्यान्निर्यातयामास हृत्वा सर्वं धनादिकम् ।३५।
प्रतिमां च हरेश्चैव म्लेच्छा हृत्वा ययुः पुनः ।
ततः कालेन महता कालधर्ममुपेयिवान् ।३६।
स राजा सर्वलोकेषु पूज्यमानः समन्ततः ।
क्षुधार्तश्च तथा खिन्नो यममाह सुदुःखितः ।३७।

वह हरिमित्र ब्राह्मण भगवान् विष्णु का परम भक्त था और सम्पूर्ण द्वन्द्वों से रहित होकर नदी के पुलिन पर चला गया था । वहाँ पर हरि की परम शुभ प्रतिमा की यथा विधि पूजा करके घृत-दधि से संयुत मिष्टान्न-पायस-पूजा हरि को समर्पित कर-विष्णु का प्रणिपात करता था और उसमें विन्यस्त मन वाला होकर हरि के गुणों का गान किया करता था जो कि गायन ताल-वर्ण और लय से युक्त होता था । इसका यह गायन जिस समय होता था वह तद्गत अन्तरात्मा वाला होकर अत्यन्त ही स्नेह से समन्वित हो जाया करता था । इसके अनन्तर एक बार राजा की आज्ञा से उसके अनुचर वहाँ पर आ गये थे ।३०। ।३१।३२।३३। उन्होंने उसके अर्चना के सब उपचारों को फेंक-फाँक कर तथा सब के साथ उन्होंने उस ब्राह्मण को पकड़ कर राजा के समक्ष में उपस्थित कर दिया था ।३४। इसके पश्चात् उस दुष्ट बुद्धि वाले राजा ने उस श्रेष्ठ द्विज को डाँट फटकार के उसके समस्त धन आदि का हरण कर उसे राज्य से निकाल दिया था ।३५। उस हरिमित्र ब्राह्मण के द्वारा पूजित जो हरि की प्रतिमा थी उसे म्लेच्छ लोग हरण करके ले गये थे । इसके अनन्तर बहुत काल के पश्चात् वह राजा काल के धर्म मृत्यु को प्राप्त हुआ था । वह राजा यहाँ सब लोक में परम पूज्य माना जाता था किन्तु मरणोत्तर वह क्षुधा से आर्त्त-खिन्न और अत्यन्त ही दुःखित होकर यमराज से बोला—।३६।३७।

क्षुत्तृट् च वर्तते देव स्वर्गतस्यापि मे सदा ।
मया पापं कृतं किं वा किं करिष्यामि वै यम ।३८।
त्वया हि सुमहत्पापं कृतमज्ञानमोहतः ।
हरिमित्रं प्रति तदा वासुदेव परायणम् ।३९।

हरिमित्रे कृतं पापं वासुदेवार्चनादिषु ।
तेन पापेन संप्राप्तः क्षुद्रोगस्त्वां सदा नृप ।४०।
दानयज्ञ दिकं सर्वं प्रनष्टं ते नराधिप ।
गीतवाद्यसमोपेतं गायमानं महामतिम् ।४१।
हरिमित्रं समाहूय हृतवानसि तद्धनम् ।
उपहारादिकं सर्वं वासुदेवस्य सन्निधौ ।४२।
तव भृत्यैस्तदा लुप्तं पापै चक्रुस्त्वदाज्ञया ।
हरेः कीर्ति विना चान्यद्ब्राह्मणेन नृपोत्तम ।४३।
न गेययोगे गातव्यं तस्मात्पापं कृतं त्वया ।
नष्टस्ते सर्वलोकोद्य गच्छ पर्वतकोटरम् ।४४।

राजा ने यम से मका—हे देव ! स्वर्ग में आये हुए भी मुझे सर्वदा भूख और प्यास सता रही है । हे यमराज ! मैंने क्या ऐसा पाप किया हूँ ? अब मैं क्या करूँ ? यमराज ने कहा—हे राजन् ! तुमने अज्ञान से मोह के कारण बड़ा भारी पाप किया है । तुमने सर्वदा भगवान् वासुदेव के पूजन और कीर्त्तन मैं परायण हरिमित्र विप्र के प्रति बड़ा अन्याय किया था—यही तुम्हारा परम भीषण पाप है । हरिमित्र ने जो भगवान् वासुदेव की अर्चना आदि में जो पापापराध किया था उस पाप से हे नृप ! वह तुमको सदा भूख का रोग बन गया है ।३८।३९।४०। हे नराधिप ! तूने जो कुछ भी दान दिये हैं और यज्ञ आदि किये हैं वे सभी तेरे नष्ट हो गये हैं क्योंकि तूने गीत वाद्य से युक्त गान करने वाले महान् मतिमान् हरिमित्र नामक विप्र को बुलाकार उसका सम्पूर्ण धन का हरण कर लिया था । भगवान् वासुदेव की सन्निधि में जो उपहारादिक सब थे उनको तेरे ही भृत्यों ने तेरी ही आज्ञा से, उस समय में लुप्त कर दिया था—यह एक महान् पाप उन्होंने किया था । हे नृपोत्तम ! तेरा ही ऐसा आदेश था कि ब्राह्मण के द्वारा भी हरि की कीर्त्ति के बिना ही अर्थात् गान न करके ही उपासना करनी चाहिए । ।४१।४२।४३। गेय योग में गान नहीं करना चाहिये—ऐसी आज्ञा देकर तूने महत् पाप किया था ।४४।

पूर्वोत्सृष्टं स्वदेहं तं खादन्नित्यं निकृत्य वै ।
तस्मिन् कोणे त्विमं देहं खादन्नित्य क्षुधान्वितः ।४५।
महानिरयसंस्थस्त्वं यावन्मन्वंतरं भवेत् ।
मन्वंतरे ततोऽतीते भूम्यां त्वं च भविष्यसि ।४६।
ततः कालेन संप्राप्य मानुष्यमवगच्छसि ।
एवमुक्त्वा यमो विद्वांस्तत्रैवांतरधीयत: ।४७।
हरिमित्रो विमानेन स्तूयमानो गणाधिपैः ।
विष्णुलोकं गतः श्रीमान् संगृह्य गणबांधवान् ।४८।
भुवनेशो नृपो ह्यस्मिन् कोटरे पर्वतस्य वै ।
खादमानः शवं नित्यमास्ते क्षुत्तृट् समन्वितः ।४९।

इस समय तेरा सर्वलोक नष्ट हो गया है अब पर्वत कोटर में जाओ वहाँ पर पूर्व में उत्सृष्ट तेरा अपना देह है उसे ही काटकर नित्य खाकर रहो । उस कोण में इस देह को क्षुधा से युक्त होकर नित्य ही खाते हुए रहो । महा नरक में संस्थित होते हुए जब तक मन्वन्तर समाप्त होगा वहाँ इसी भांति रहोगे । मवन्न्तर के अतीत हो जाने पर फिर तुम भूमि पर उत्पन्न होओगे ।४५।४६। पहिले अन्य पशु आदि की योनि में समुत्पत्ति प्राप्त कर कुछ काल में पुनः तुझे मनुष्य योनि प्राप्त होगी । गानबन्धु ने कहा–इतना कहकर वह विद्वान यमराज वहाँ पर ही अन्तर्हित हो गया था ।४७। हरिमित्र विमान के द्वारा गणाधिपों से स्तूयमान होता हुआ विष्णु लोक को प्राप्त हुआ था किस श्रीमान् के साथ समस्त गण वान्ध भी संगृहीत थे ।४८। वह भुवनेश राजा पर्वत के इस कोटर में नित्य शव का भोजन करते हुये भूख-प्यास से युक्त होकर वहाँ रहता था ।४९।

अद्राक्षं तं नृपं तत्र सर्वमेतन्ममोक्तवान् ।
समालोक्याहमाज्ञाय हरिमित्रं समेयिवान् ।५०।
विमानेनार्कवर्णेन गच्छन्तममरैर्वृतम् ।
इन्द्रद्युम्नप्रसादेन प्राप्तं मे ह्यायुरुत्तमम् ।५१।
तेनाहं हरिमित्रं वै दृष्टवानस्मि सुव्रत ।

तदैश्वर्य प्रभावेन मनो मे समुपागतम् ।५२।
गानविद्यां प्रति तदा किन्नरैः समुपाविशम् ।
षष्टि वर्ष सहस्राणां गानयोगेन मे मुने ।५३।
जिह्वा प्रसादिता स्पष्टा ततो गानमशिक्षयम् ।
ततस्तु द्विगुणेनैव कालेनाभूदियं मम ।५४।
गानयोगसमायुक्ता गता मन्वंतरा दश ।
गानाचार्योऽभवं तत्र गन्धर्वाद्याः समागताः ।५५।
एते किन्नरसंघा वै मामाचार्यमुपागताः ।
तपसा नैव शक्या वै गानविद्या तपोधनः ।५६।

वहाँ पर उस राजा को मैंने देखा था और यह सब मुझ से कहा था। मैंने जानकर और देखकर फिर मैं हरिमित्र के पास प्राप्त हुआ था ।५०। वह हरिमित्र सूर्य के समान वर्ण वाले विमान के द्वारा जा रहा था और देवों से समावृत था। मैंने इन्द्रद्युम्न के प्रसाद से यह उत्तम आयु प्राप्त की है ।५१। हे सुव्रत ! उस समय इसी से मैंने हरिमित्र को देख लिया था। उसके उस ऐश्वर्य के प्रभाव से मेरा भी मन आ गया था कि मैं भी गान विद्या का अभ्यास करूँ और तब किनारों के साथ बैठा था। हे मुने ! मेरी गान योग के द्वारा साठ हजार वर्षों में जिह्वा स्पष्ट रूप से प्रसादित हुई थी तब फिर मैंने गान शिक्षा प्राप्त की थी। इसके अनन्तर भी यह विद्या दुगुने काल में मुझे हुई थी ।५२।५३।५४। इस गान में समायुक्त हुए दश मन्वन्तर व्यतीत हो गये हैं। तब मैं गान विद्या का आचार्य हुआ था समस्त गन्धर्व आदि आये थे। ये किन्नरों के समूह भी सब मुझको ही आचार्य मानने वाले हुए हैं। हे तपोधन ! तप से गान विद्या प्राप्त नहीं की जा सकती है ।५५।५६।

तस्माच्छ्र तेन संयुक्तो मत्तस्त्वं गानमाप्नुहि ।
एवमुक्तो मुनिस्तं वै प्रणिपत्य जगौ तदा ।५७।
तच्छृणुष्व मुनिश्रेष्ठ वासुदेवं नमस्य तु ।
उलूकेनैवमुक्तस्तु नारदो मुनिसत्तमः ।५८।
शिक्षाक्रमेण संयुक्तस्तत्र गानमशिक्षयत् ।

गानबन्धुस्तदादेहं त्यक्तलज्जो भवाधुना ।५९।
स्त्रीसंगमे तथा गीते द्यूते व्याख्यानसंगमे ।
व्यवहारे तथाहारे त्वर्थानां च समागमे ।६०।
आय व्यये तथा नित्यं त्यक्तलज्जस्तु वै भवेत् ।
न कुंचितेन गूढेन नित्यं प्रावरणादिभिः ।६१।
हस्तविक्षेपभावेन व्यादितास्येन चैव हि ।
निर्यातजिह्वायोगेन न गेयं हि कथंचन ।६२।

इसलिए क्योंकि इसकी शिक्षा में एक मात्र अभ्यास ही कारण होता है, तुम श्रुत से संयुक्त हो, अब मुझसे इस गान विद्या को प्राप्त करो। इस प्रकार से कहे गये नारद मुनि ने उस गान बन्धु को प्रणाम कपके तब गान किया था ।५७। हे मुनिश्रेष्ठ ! भगवान् वासुदेव को प्रणाम करके उसका श्रवण करो। मार्कण्डेय ने कहा—उलूक के द्वारा इस तरह मुनियों में परम श्रेष्ठ नारद जी से कहा गया था ।५८। फिर शिक्षा के क्रम के अनुसार संयुत होकर वहाँ पर गान विद्या की शिक्षा दी थी। गान बन्धु उस समय नारद से यह बोले इस समय अर्थात् गान विद्या सीखने के समय में तुमको लज्जा को पूर्ण रूप से त्याग देना चाहिए ।५९। उलूक ने कहा—जो कार्य के विद्या तक हों उन्हें कार्य सिद्धि की इच्छा रखने वाले पुरुष का त्याग ही देना चाहिये। जिन २ कार्यों में लज्जा का त्याग करना चाहिए उन्हें बताते हैं स्त्री के साथ सङ्गम करने में—गान करने के समय में-द्यूत क्रीड़ा करने के समय में—व्याख्यान करने में प्रसङ्ग में व्यहार में भोजन करने के समय में-अर्थ सम्बन्धी सभागम में आय-में—व्यय करने के समय में मनुष्य को लज्जा का त्याग कर देने वाला ही होना चाहिए। गान करने वाले व्यक्ति को कुञ्चित-आवरण आदि से गूढ़-हस्तों के विक्षेप-भाव से युक्त-व्यादित मुख से युक्त और जिह्वा निकालने वाला होते हुए कभी गान नहीं करना चाहिए। ।६०।६१।६२।

न गायेदूर्ध्वबाहुश्च नोर्ध्वदृष्टिः कथंचन ।
स्वांगं निरीक्षमाणेन परं संप्रेक्षता तथा ।६३।

संघट्टे च तथोत्थाने कटिस्थानं न शस्यते ।
हासो रोषस्तथा कंपस्तथान्यत्र स्मृतिः पुनः ।६४।
नैतानिशस्तरूपाणि गानयोगे महामते ।
नैकहस्तेन शक्यं स्यात्तालसंघट्टनं मुने ।६५।
क्षुधार्त्तेन भयार्तेन तृष्णार्तेन तथैव च ।
गादयोगो न कर्तव्यो नांधकारे कथंचन ।६६।
एवमादीनि चान्यानि न कर्तव्यानि गायता ।
एवमुक्तः स भगवांस्तेनोक्तैर्विधिलक्षणैः ।
अशिक्षयत्तथा गीतं दिव्यं वर्ष सहस्रकम् ।६७।
ततः समस्तसंपन्नो गीतप्रस्तारकादिषु ।
विपंच्यादिषु संपन्नः सर्वस्वरविभागवित् ।६८।
अयुतानि च षट्त्रिंशत्सहस्राणि शतानि च ।
स्वराणां भेदयोगेन ज्ञातवान्मुनिसत्तमः ।६९।

उर्ध्व वाहु वाला होकर तथा उर्ध्व (ऊपर की ओर) दृष्टि वाला होकर कभी भी गान नहीं करना चाहिए । अपने अङ्गों को देखते हुए तथा दूसरे की ओर देखते हुए भी गान न करे ।६३। संघट्ट में तथा उत्थान में कटि स्थान प्रशस्त नहीं होता है । हास्य, रोष, कम्प तथा अन्य की स्मृति करना भी हे महामते ! गानयोग में प्रशस्त रूप नहीं होते हैं । हे मुनिवर ! एक हाथ से तालों को संघट्टन नहीं किया जा सकता है ।६४। ।६५। भूख से दुःखित-भय से आर्त्त-प्यास से पीड़ित पुरुष को गानयोग नहीं करना चाहिए और अन्धकार में भी इसे न करे ।६६। इस प्रकार से उपर्युक्त कुछ नियम हैं जो गान करने वाले को नहीं करने चाहिए और उन्हें बचाकर ही गान योग का अभ्यास करे । मार्कण्डेय मुनि ने कहा—इस तरह से कहे हुए उन भगवान् ने उक्त विधि के लक्षणों के द्वारा उस गानयोग को एक सहस्त्र दिव्य वर्ष तक सीखा था ।६७। तब वह गीत प्रस्तारक आदि सम्पूर्ण विधियों में सम्पन्न हुये और विपञ्ची आदि वाद्यों में कुशल तथा समस्त स्वरों के विभाग के ज्ञाता हुये थे ।६८। दश सहस्र और छत्तीस सहस्र सौ स्वरों के भेद योग के ज्ञाता

मुनिश्रेष्ठ नारद हुये थे ।६९।

ततो गंधर्वसंघाश्च किन्नराणां तथैव च ।
मुनिना सह संयुक्ताः प्रीतियुक्ता भवंति ते ।७०।
गानबंधुं मुनिः प्राह प्राप्य गानमनुत्तमम् ।
त्वां समासाद्य संपन्नस्त्वं हि गीतविशारदः ।७१।
ध्वांक्षशत्रो महाप्राज्ञ किमाचार्य करोमि ते ।
ब्रह्मणो दिवसे ब्रह्मन् मनवस्तु चतुर्दश ।७२।
ततस्त्रैलोक्यसंप्लावो भविष्यति महामुने ।
तावन्मे त्वायुषो भावस्तावन्मे परमं शुभम् ।७३।
मनसाध्याहित मे स्य दक्षिणा मुनिसत्तम ।
अतीतकल्पसंयोगे गरुडस्त्वं भविष्यसि ।७४।
स्वस्ति तेऽस्तु महाप्राज्ञ गमिष्यामि प्रमोद माम् ।
एवमुक्त्वा जगामाथ नारदोपि जनार्दनम् ।७५।
श्वेतद्वीपे हृषीकेशं गापयामास गीतकान् ।
तत्र श्रुत्वा तु भगवान्नारदं प्राह माधवः ।७६।
तुंबरोर्न विशिष्टोसि गीतैरद्यापि नारद ।
यदा विशिष्टो भविता तं कालं प्रवदाम्यहम् ।७७।

इसके अनन्तर समस्त गन्धर्वों के समुदाय तथा किन्नरों के समूह नारद मुनि के साथ संयुक्त हुये और प्रीति करने वाले वे सभी होते है ।७०। फिर नारद मुनि सर्वोत्तम गानयोग को प्राप्त कर गान वन्धु से बोले—मैं अब गानयोग की विद्या में पूर्ण हो गया हूँ क्योंकि आप जैसे गीत विद्या के महा मनीषी मुझे शिक्षा देने वाले प्राप्त हो गये थे। हे ध्वांक्ष शत्रो ! हे महाप्राज्ञ ! आप मेरे आचार्य हैं। अब मुझे आज्ञा दीजिये कि मैं आपकी क्या सेवा करूँ। गान वन्धु ने कहा—हे महा-मुने ! ब्रह्मा के एक दिन में चौदह मनु होते हैं। इसके बाद त्रैलोक्य संप्लाव होगा। तब तक मेरी आयु हो-यही मेरे मन की चाही हुई परम शुभ दक्षिणा होगी। नारद जी ने कहा—अतीत से जो कल्प का संयोग होगा उसमें आप गरुड़ होंगे ।७१।७४। मारद जी ने फिर कहा—हे महा-

प्राज्ञ ! आपका कल्याण होवे । मुझ पर आप प्रसन्न होइये । मैं अब चला जाऊँगा । मुझे आज्ञा दीजिये । मार्कण्डेयजी ने कहा—इस प्रकार से कहकर देवर्षि नारद भगवान जनार्दन के समीप में चले गये थे ।७५। श्वेत द्वीप में पहुंचकर भगवान हृषीकेश के सामने नारद ने गीतों का गान किया था । उस नारद के गीतों के गायन का श्रवण कर भगवान् माधव ने नारद से कहा था—हे नारद ! अभी तक भी आप तुम्बरु से विशिष्ट गीतों के गायन में नहीं हुये हैं । जिस समय में आप में तुम्बरु से विशेषता आ जायगी उस समय को मैं बताता हूँ । ६।७७।

गानबंधु समासाद्य गानार्थज्ञो भवानसि ।
मनोर्वैवस्वतस्याहमष्टाविंशतिमे युगे ।७८।
द्वापरांते भविष्यामि यदुवंशकुलोद्भवः ।
देवक्यां वसुदेवस्य कृष्णो नाम्ना महामते ।७९।
तदानीं मां समासाद्य स्मारयेथा यथातथम् ।
तत्र त्वां गीतसंपन्नं करिष्यामि महाव्रतम् ।८०।
तुंबरोश्च समं चैव तथा तिशयसंयुतम् ।
तावत्कालं यथायोगं देवगधर्वयोनिषु ।८१।
शिक्षयस्व यथान्यायमित्युक्त्वांतरधीयत ।
ततो मुनिः प्रणम्यैनं वीणावादनतत्परः ।८२।
देवर्षिर्देवसंकाशः सर्वाभरणभूषितः ।
तपसां विधिरत्यंतं वासुदेवपरायणः ।८३।
स्कंधे विपञ्चीमासाद्य सर्वलोकांश्चचार चः ।
वारुणं याम्यमाग्नेयमैंद्रं कौबेरमेव च ।८४।

गान बन्धु के पास जाकर आपने गान विद्या प्राप्त की है । अब वैवस्वत मनु के अठ्ठाईशवें युग में द्वापर युग के अन्त में मैं यदुकुल वंश में उत्पन्न होने वाले देवकी वसुदेव के यहाँ हे महामते ! 'कृष्ण-इस नाम से अवत्तीर्ण होऊँगा ।७८।७९। उस समय में आप मेरे पास उपस्थित होकर ठीक २ स्मरण दिलाना । उस समय मैं आपको महान् व्रत वाला गीतों से सम्पन्न कर दूँगा ।८०। तुम्बरु के तुल्य अथवा उससे भी

अधिक बना दूंगा । उस समय तक आप देव तथा गन्धर्व योनियों में यथायोग शिक्षा प्राप्त करो जैसा कि शिक्षा प्राप्त करने का क्रम होता है। इतना कहकर भगवान् माधव अन्तर्धान हो गये थे । इसके अनन्तर भगवान् को प्रणाम किया और वीणा के बजाने में परायण होकर देवर्षि देव के समान-समस्त आभरणों से विभवित तप की निधि और वासुदेव परायण होकर अपने कन्धे पर वीणा रखते हुए समस्त लोकों में विचरण किया करते थे ।८१।७२।८३।८४।

।। ७५—वैष्णव के लक्षण और माहात्म्य ।।

वैष्णवा इति ये प्रोक्त वासुदेवपरायणाः ।
कानि चिह्नानि तेषां वै तन्नो ब्रूहि महामते ।१।
तेषां वा किं करोत्येष भगवान् भूतभावनः ।
एतन्मे सर्वमाचक्ष्व सूत सर्वार्थवित्तम ।२।
अम्बरीषेण वै पृष्टो मार्कंडेयः पुरा मुनिः ।
युष्माभिरद्य यत् प्रोक्तं तद्वदामि यथातथम् ।३।
शृणु राजन्यथान्यायं यन्मां त्वं परिपृच्छसि ।
यत्रास्ते विष्णुभक्तस्तु तत्र नारायणः स्थितः ।४।
विष्णुरेव हि सर्वत्र येषां वै देवता स्मृता ।
कीर्त्यमाने हरौ नित्यं रोमांचो यस्य वर्तते ।५।
कंपः स्वेदस्तथाक्षेषु दृश्यंते जलबिंदवः ।
विष्णभक्तिसमायुक्तान् श्रौतस्मार्तप्रवर्तकान् ।६।
प्रीतो भवति यो दृष्ट्वा वैष्णवोऽसौ प्रकीर्तितः ।
यान्यदाच्छादयेद्वस्त्रं वैष्णवो जगतोऽरणे ।७।

इस अध्याय में वैष्णवों का लक्षण और उनका माहात्म्य तथा शैवों की उनसे श्रेष्ठता का निरूपण किया जाता है । ऋषियों ने कहा—हे महान् मति वाले ! वासुदेव भगवान् में परायण रहने वाले पुरुष वैष्णव कहे गये हैं । उन वैष्णवों के क्या चिह्न होते हैं —यह कृपाकर हमको बतलाइये । हे समस्त अर्थों के ज्ञाताओं में परम श्रेष्ठ सूतजी !

यह भूत भावन अर्थात् प्राणियों पर कृपा रखने वाले भगवान् उनको क्या फल दिया करते हैं। यह आप हमको सभी बतलाइये ।१।२। सूत जी ने कहा—पुराने ससय में किसी समय जो तुम आज इस समय मुझ से पूछते हो, यही बात राजा अम्बरीष ने महामुनि मार्कण्डेय जी से पूछी थी। सो मैं तुमको ठीक २ वह सब बताता हूं। मार्कण्डेय जी से कहा—हे राजन्! तुम जो मुझसे न्यायानुकूल पूछते हो उसका अब श्रवण करो। जहाँ पर भगवान् विष्णु का भक्त रहता है वहाँ साक्षात् नारायण विराजमान रहा करते हैं।३।४। जिनका सभी जगह केवल भगवान् विष्णु ही एकमात्र देवता अर्थात् उपास्य है और जिसके भगवान् के कीर्त्ति का वखान करते हुए तथा नाम एवं गुणों का संकीर्त्तन करने पर रोमाञ्च हो जाता है। गात्रों में कम्प होता है—शरीर में पसीना आ जाता है और आँखों में प्रेमाश्रुओं की बूँद झलक आती है और श्रौत तथा स्मार्त धर्म के प्रवर्त्तक एवं विष्णु की भक्ति से समायुक्त पुरुष भक्तों का दर्शन कर जो परम आह्लादित एवं अत्यन्त प्रसन्न हो जाता वह वैष्णव कहा गया है। वैष्णव जन जगत् के दर्शन में रक्षा के लिये अन्य वस्त्र अर्थात् परिधान से अतिरिक्तवस्त्र के द्वारा शरीर का आवरण नहीं किया करता है।५।६।७।

विष्णुभक्तमथायांतं यो दृष्ट्वा सन्मुखस्थितः।
प्रणामादि करोत्येवं वासुदेवे यथा तथा।८।
स वै भक्त इति ज्ञेयः स जयी स्याज्जगत्रये।
रूक्षाक्षराणि शृण्वन्वै तथा भागवतेरितः।९।
प्रणामपूर्वं क्षात्या वै यो वदेद्वैष्णवो हि सः।
गंधपुष्पादिकं सर्वं शिरसा यो हि धारयेत्।१०।
हरेः सर्वामितीत्येवं मत्त्वासौ वैष्णवः स्मृतः।
विष्णुक्षेत्रे शुभान्येव करोति स्नेहसंयुतः।११।
प्रतिमां च हरेर्नित्य पूजयेत्प्रयतात्मवान्।
विष्णुभक्तः स विज्ञेयः कर्मणा मनसा गिरा।१२।
नारायणपरो नित्यं महाभागवतो हि सः।

भोजनाराधनं सर्वं यथाशक्त्या करोति यः ।१३।
विष्णुभक्तस्य च सदा यथान्याय हि कथ्यते ।
नारायणपरो विद्वान्यस्यान्नं प्रीतमानसः ।१४।
अश्नाति तद्धरेरास्यं गतमन्नं न संशयः।
स्वार्चनादपि विश्वात्मा प्रीतो भवति माधवः ।१५।

जो विष्णु के भक्त को आते हुए देखकर सामने स्थित होकर भगवान् वासुदेव के ही समान समझ कर प्रणाम आदि किया करता है वह भगवान् विष्णु का सच्चा भक्त जानना चाहिए। वह त्रैलोक्य में विजयी होता है। सूखे और कठोर वचनों को सुनकर भी भागवतेरित होकर प्रणाम पूर्वक क्षान्ति एवं शान्ति के साथ बोलता है वह वैष्णव कहा गया है। गन्ध-पुष्प आदि सब को जो शिर पर धारण किया करता है। यह सभी कुछ हरि का प्रसाद स्वरूप है—ऐसा ही समझ कर अत्यन्त आदर करता है। वह वैष्णव कहा गया है। विष्णु के क्षेत्र में वह परम पुण्य कर्म ही स्नेह से संयुत होकर किया करता है ।८।९।१०।११। जो नित्य प्रति भगवान् हरि की प्रतिमा का प्रयत आव्या वाला होकर अर्चन किया करता है वह मन-कर्म और वाणी से विष्णु का भक्त समझना चाहिए।१२। जो नारायण में सर्वदा परायण रहता है वह महान् भागवत् होता है और वह भोजन तथा आराधन आदि सभी काम शक्ति के अनुसार किया करता है। ।१३। विष्णु के भक्त का सदा सब काम यथा न्याय ही कहा जाता है। वह विद्वान् नारायण के ही कर्मों में सर्वदा तत्पर रहता है। ऐसे परम भक्त पुरुष का अन्न जो प्रीति युक्त मन वाला खाता है उस अन्न को हरि के ही मुख में गया हुआ अन्न समझना चाहिए इस में बिल्कुल भी संशय नहीं है। विश्वात्मा माधव अपने अर्चन से भी अधिक प्रसन्न होते हैं। १४।१५।

महाभागवते तच्च दृष्ट्वासौ भक्तवत्सलः।
वासुदेवपरं दृष्ट्वा वैष्णवं दग्धकिल्बिषम् ।१६।
देवापि भीतास्तं यांति प्रणिपत्य यथागतम्।
श्रूयतां हि पुरावृत्तं विष्णुभक्तस्य वैभवम् ।१७।

दृष्ट्वा यमोऽपि वै भक्तं वैष्णवं दग्धकिल्बिषम् ।
उत्थाय प्रांजलिर्भूत्वा ननाम भृगुनन्दनम् ।१८।
तस्मात्संपूजयेद्भक्त्या वैष्णवान्विष्णुवन्नरः ।
स याति विष्णुसामीप्यं नात्र कार्या विचारणा ।१९।
अन्यभक्तसहस्रेभ्यो विष्णुभक्तो विशिष्यते ।
विष्णुभक्तसहस्रेभ्यो रुद्रभक्तो विशिष्यते ।
रुद्रभक्तात्परतरो नास्ति लोके न संशयः ।२०
तस्मात्तु वैष्णवं चापि रुद्रभक्तमथापि वा ।
पूजयेत्सर्वयत्नेन धर्मकामार्थमुक्तये ।२१।

भक्त वत्सल अर्थात् अपने भक्तों पर प्यार करने वाले प्रभु महान् भागवत में यह सब देखकर तथा वासुदेव परायण पापों के दग्ध होने वाले वैष्णव को देखकर देवता भी भयभीत हो जाते हैं और जैसे ही उसको समागत हुआ देखते हैं उसको प्रणिपात किया करते हैं । पहिले होने वाला विष्णु के भक्त का वैभव श्रवण करो ।१६।१७। यमराज भी किल्विष दग्ध हो जाने वाले वैष्णव भक्त को देखकर भृगु के पुत्र च्यवन को देखकर अपने आसन से खड़ा हो गया था और हाथ जोड़कर उसे प्रणाम किया था ।१८। इसलिये वैष्णव लोगों को विष्णु के ही समान भक्ति पूर्वक भली भाँति पूजन करना चाहिए । ऐसा पुरुष विष्णु के समीप में जाता है-इसमें कुछ भी विचार नहीं करना चाहिए । ।१९। अन्य सहस्रों भक्तों से विष्णु का भक्त विशेषता वाला हुआ करता है और सहस्रों विष्णु के भक्तों से भी विशिष्ट रुद्र का भक्त होता है । भगवान् रुद्र के भक्त से बड़ा लोक में अन्य कोई भी नहीं होता है । यह सबसे अधिक पूज्य माना जाता है । इसमें तनिक भी संशय नहीं है ।२०। इसलिये हर एक को विष्णु के भक्त वैष्णव का तथा रुद्र के भक्त का पूर्ण प्रयत्नों के साथ धर्म-अर्थ और काम की तथा मुक्ति की सिद्धि के लिये भली-भाँति पूजा करनी चाहिए ।२१।

॥७६–अम्बरीष चरित्र और श्रीमती आख्यान ॥

ऐक्ष्वाकुरंबरीषो वै वासुदेवपरायणः ।

पालयामास पृथिवीं विष्णोराज्ञापुरः सरः ।१।
श्रुत मेतन्महाबुद्धे तत्सर्वं वक्तुमर्हसि ।
नित्यं तस्य हरेश्चक्रं शत्रुरोगभयादिकम् ।२।
हंतीति श्रूयते लोके धार्मिकस्य महात्मनः ।
अम्बरीषस्य चरितं तत्सर्वं ब्रूहि सत्तम ।३।
माहात्म्यमनुभावं च भक्तियोगमनुत्तमम् ।
यथावच्छ्रोतुमिच्छामः सूत वक्तुं त्वमर्हसि ।४।
श्रूयतां मुनिशार्दूलाश्चरितं तस्य धीमतः ।
अम्बरीस्य माहात्म्यं सर्वपापहरं परम् ।५।
त्रिशंकोर्दयिता भार्या सर्वलक्षणशोभिता ।
अम्बरीषस्य जननी नित्यं शौचसमन्विता ।६।
योगनिद्रासमारूढ शेषपर्यंकशायिनम् ।
नारायणं महात्मानं ब्रह्मांडकमलोद्भवम् ।.।
तमसा कालरुद्राख्यं रजसा कनकांडजम् ।
सत्वेन सर्वगं विष्णुं सर्वदेवनमस्कृतम् ।८।
अर्चयामास सततं वाङ्मनः कायकर्मभिः ।
माल्यदानादिकं सर्वं स्वयमेवमचोकरत् ।९।

इस अध्याय में राजर्षि परम भक्त अम्बरीष के चरित का वर्णन किया जाता है जो कि विष्णु की माया से युक्त और परम अद्भुत है। ऋषियों ने कहा—हे महान् बुद्धि वाले सूतजी ! इक्ष्वाकु के वंश में समुत्पन्न राजा अम्वरीष परम भक्त एवं वासुदेव में ही परायण रहने वाला था जो कि विष्णु की आज्ञा के अनुसार ही इस पृथ्वी का पालन किया करता था—यह तो हम लोगों ने सब सुना है किन्तु इसका विशेष वर्णन अब आप करने की कृपा कीजिए। ऐसा सुना जाता है कि उस परम धार्मिक महात्मा के शत्रु-रोग और भय आदि का नित्य ही हरि का सुदर्शन चक्र हनन किया करता है। हे श्रेष्ठतम ! उस अम्वरीष का सम्पूर्ण चरित हमारे सामने बताइये ।१।२।३। हे सूतजी ! हम लोग माहात्म्य-अनुभाव और अतिश्रेष्ठ एवं परमोत्तम भक्ति योग यथावत

श्रवण करने की इच्छा रखते हैं सो वह सब आप वर्णन करने के योग्य होते हैं ।४। सूतजी ने कहा—हे मुनिशार्दूलो ! उस परम धीमान् राजर्षि अम्बरीष का चरित तथा समस्त पापों के हरण करने वाला परम माहात्म्य का तुम लोग श्रवण करो ।५। त्रिशङ्कु की जो भार्या थी वह सम्पूर्ण लक्षणों से शोभित थी और नित्य ही शौच से समन्वित रहने वाली राजा अम्बरीष की माता थी ।६। योग निद्रा में समारूढ़ तथा शेष के पर्यङ्क पर शयन करने वाले ब्रह्माण्ड से समुत्पन्न कमल से उत्पन्न महात्मा नारायण—तमोगुण से काल रुद्र नाम वाले—रजोगुण से कनकाण्डज तथा सत्त्वगुण से सर्वत्र व्याप्त सम्पूर्ण देवों के द्वारा वन्दित विष्णु का सदा मन-वाणी और कर्म के द्वारा पूजा किया करती थी और माल्य दान आदि सब कार्य स्वयं ही किया करती थी ।७।८।९।

गंधादिपेषणं चैव धूपद्रव्यादिकं तथा ।
भूमेरालेपनादीनि हविषां पचनं तथा ।१०।
तत्कौतुकसमाविष्टा स्वयमेव चकार सा ।
शुभा पद्मावती नित्यं वाचा नारायणेति वै ।११।
अनंतेत्येव सा नित्यं भाषमाणा पतिव्रता ।
दशवर्षसहस्राणि तत्परेणांतरात्मना ।१२।
अर्चयामास गोविंदं गंधपुष्पादिभिः शुचिः ।
विष्णुभक्तान्महाभागान् सर्वपापविवर्जितान् । ३।
दानमानार्चनैर्नित्यं धनरत्नैरतोषयत् ।
ततः कदाचित्सा देवी द्वादशीं समुपोष्य वै ।१४।

गन्ध आदि का पीसना तथा धूप द्रव्य आदि का प्रस्तुत करना—भूमिका आलेपन करना और हवियों याचन करना जो कि भगवान् विष्णु के लिये समर्पण करने के योग्य थे वह कौतुक में समाविष्ट होकर सब काम स्वयं ही किया करती थी । वह शुभ एवं पतिव्रता पद्मावती नित्य ही अपनी वाणी से "नारायण" तथा "अनन्त" इन विष्णु के शुभ नामों को नित्य ही बोलती रहा करती थी । इस प्रकार से विष्णु परायण अपनी आत्मा से दश सहस्र वर्ष तक परम पवित्र रहकर गन्ध पुष्पादि

के द्वारा भगवान् गोविन्द का उसने अर्चन किया था। और जो महाभाग विष्णु के भक्त समस्त पापों से विनिर्मुक्त होते थे उनको-दान-मान-अर्चन तथा धन रत्नों के द्वारा नित्य सन्तुष्ट किया करती थी। इसके अनन्तर एकवार उस देवी ने व्रत करके द्वादशी के दिन शयन किया था ।१०। ।११।१२।१३।१४।

हरेरग्रे महाभागा सुष्वाप पतिना सह ।
तत्र नारायणो देवस्तामाह पुरुषोत्तमः ।१५।
किमिच्छसि वरं भद्रे मत्तस्त्वं ब्रूहि भामिनि ।
सा दृष्ट्वा तु वरं वव्रे पुत्रो मे वैष्णवो भवेत् ।१६।
सार्वभौमो महातेजाः स्वकर्मनिरतः शुचिः ।
तथेत्युक्त्वा ददौ तस्यै फलमेकं जनार्दनः ।१७।
सा प्रबुद्धा फलं दृष्ट्वा भर्त्रे सर्वं न्यवेदयत् ।
भक्षयामास संहृष्टा फलं तद्गतमानसा ।१८।
ततः कालेन सा देवी पुत्रं कुलविवर्धनम् ।
असूत सा सदाचारं वासुदेवपरायणम् ।१९।
शुभलक्षणसंपन्नं चक्रांकिततनूरुहम् ।
जातं दृष्ट्वा पिता पुत्रं क्रियाः सर्वाश्चकार वै ।२०।
अंबरीष इति ख्यातो लोके समभवत्प्रभुः ।
पितर्युपरते श्रीमानभिषिक्तो महामुनिः ।२१।

वह महाभाग वाली हरि के आगे ही अपने पति के साथ सो गई थी। वहाँ पर स्वयं नारायण परम पुरुषोतम देव आकर उससे बोले—हे भद्रे ! तू क्या चाहती है ? हे भामिनी ! तू इस समय मुझसे कहकर माँग ले। उसने जब भगवान् का दर्शन किया तो यह वरदान उनसे माँगा था कि मेरा पुत्र परम वैष्णव उत्पन्न होवे ।१५।१६। वह सार्वभौम अर्थात् चक्रवर्ती सम्राट–महान् तेजस्वी–अपसे कर्त्तव्य कर्म में निरत और परम शुचि भी हो। ऐसा ही होगा–यह कहकर भगवान् जनार्दन ने उसे एक फल प्रदान किया था।१७। वह जग गई तो उसने वह फल देखा था और सारा हाल अपने पति से कह सुनाया था। उसने उसी में अपना

लगाकर परम प्रसन्नता से उस फल का भक्षण कर लिया था ।१८। इसके अनन्तर समय आने पर कुल की वृद्धि करने वाला अति सदाचारी और वासुदेव में ही परायण रहने वाला पुत्र उस देवी ने समुत्पन्न किया था ।१९। परम शुभ लक्षणों से युक्त और चक्र से अङ्कित तनूरुह वाले उत्पन्न हुए पुत्र को देखकर पिता ने उसकी जात कर्मादि संस्कारों की क्रियायें सुसम्पन्न की थीं ।२०। वह प्रभु अम्बरीष इस नाम से लोक में प्रसिद्ध हुआ था और पिता के उपरत हो जाने पर वह महामुनि ज्यासन पर अभिषिक्त हुआ था ।२१।

मंत्रिष्वाधाय राज्यं च तप उग्रं चकारः सः ।
संवत्सरसहस्रं वै जपन्नारायणं प्रभुम् ।२२।
हृत्पुंडरीकमध्यस्थं सूर्यमंडलमध्यतः ।
शंखचक्रगदापद्मधारयंतं चतुर्भुजम् ।२३।
शुद्धजांबूनदनिभं ब्रह्मविष्णुशिवात्मकम् ।
सर्वाभरणसंयुक्त पीतांबरधर प्रभुम् ।२४।
श्रीवत्सवक्षसं देवं पुरुषं पुरुषोत्तमम् ।
ततो गरुडमारुह्य सर्वदेवैरभिष्टुतः ।२५।
आजगाम स विश्वात्मा सर्वलोकनमस्कृतः ।
ऐरावतमिवाचिंत्यं कृत्वा वै गरुडं हरिः ।२६।
स्वयं शक्र इवासीनस्तमाह नृपसत्तमम् ।
इन्द्रोऽहमस्मि भद्रं ते किं ददामि वरं च ते ।२७।
सर्वलोकेश्वरोऽहं त्वां रक्षितुं समुपागतः ।
नाहं त्वामभिसंधाय तप आस्थितवानिह ।२८।

उसने अभिषिक्त हो जाने के पश्चात् समस्त राज्यों के शासन का कार्य मन्त्रियों पर छोड़ दिया था और अत्यन्त उग्र तपश्चर्या में स्वयं संलग्न हो गया था। उसने एक सहस्र वर्ष पर्यन्त भगवान् नारायण प्रभु के महामन्त्र का जाप निरन्तर किया था ।२२। सूर्य मण्डल के मध्य से हृदय कमल के मध्य में स्थित तथा शंख-चक्र-गदा और पद्म को धारण करने वाले प्रभु का जाप के समय में ध्यान करना चाहिये। चार भुजाओं

वाले विशुद्ध सुवर्ण की कान्ति के समान-ब्रह्मा विष्णु और शिव के स्वरूप वाला-समस्त समुचित अलङ्कारों से युक्त-पीताम्बर को धारण करने वक्षःस्थल में श्रीवत्स का शुभ चिन्ह धारण करने वाले-समस्त देवों के द्वारा अभिष्टुत ऐसे परम पुरुष पुरुषोत्तम देव का ध्यान करते हुए जाप किया तो सर्वलोकों से नमस्कृत विश्वात्मा भगवान् गरुड़ पर समारूढ़ होकर वहाँ आये थे। हरि ने उस गरुड़ को अचिन्त्य ऐरावत की भाँति कर दिया था ।२३।२४।२५।२६। स्वयं प्रभु इन्द्र के समान स्थित होते हुए उस श्रेष्ठ राजा से बोले - मैं इन्द्र हूँ—तेरा कल्याण हो—बोल, क्या वरदान तुझे दूँ ? ।२७। मैं इस सम्पूर्ण लोक का स्वामी हूँ और यहाँ पर मैं तेरी रक्षा करने के लिये ही उपस्थित हुआ हूँ ।२८।

त्वया दत्तं न नेष्यामि गच्छ शक्र यथासुखम् ।
मम नारायणो नाथस्तं नमामि जगत्पतिम् ।२९।
गच्छेंद्र माकृथास्त्वत्र मम बुद्धिविलोपनम् ।
ततः प्रहस्य भगवान् स्वरूप मकरोद्धरिः ।३०।
शार्ङ्ग चक्रगदापाणिः खड्गहस्तो जनार्दनः ।
गरुडोपरि सर्वात्मा नीलाचल इवापरः ।३१।
देवगंधर्वसंघैश्च स्तूयमानः समंततः ।
प्रणम्य स च संतुष्टस्तुष्टाव गरुडध्वजम् ।३२।
प्रसीद लोकनाथेश मम नाथ जनादन ।
कृष्ण विष्णो जगन्नाथ सर्वलोकनमस्कृत ।३३।
त्वमादिस्त्वमनादिस्त्वमनतः पुरुषः प्रभुः ।
अप्रमेयो विभुर्विष्णुर्गोविंदः कमलेक्षणः ।३४।
महेश्वरांगजो मध्ये पुष्करः खगमः खगः ।
कव्यवाहः कपाली त्वं हव्यवाहः प्रभञ्जनः ।३५।

अम्बरीष ने कहा—मैं आपका अभिसन्धान करके यहाँ पर तपश्चर्या करने के लिए समास्थित नहीं हुआ हूं ।२८। आप जो कुछ भी प्रदान करेंगे उसकी मैं इच्छा भी नहीं करूँगा । अतएव हे इन्द्र ! आप सुखपूर्वक चले जाइये मेरे स्वामी तो भगवान् नारायण हैं । मैं उन्हीं को

नमन करता हूँ जो इस जगत् के स्वामी हैं। हे इन्द्र ! तुम चले जाओ, मेरी बुद्धि का विलोप मत करो। इसके अनन्तर भगवान प्रसन्नता पूर्वक हँस पड़े और हरि ने अपना स्वरूप धारण कर लिया था ।२९।३०। उस समय जब हरि ने अपना स्वरूप बनाया तो आप का स्वरूप शंख-चक्र-गदा तथा खड्ग हाथों में आयुध धारण करने वाला था। जनार्दन गरुड़ वाहन पर विराजमान थे जिस तरह कोई दूसरा नील गिरि हो ।३१। इनके चारों ओर देव तथा गन्धर्वों के समुदाय स्तवन कर रहे थे। राजा अम्बरीष ने ऐसे भगवान् का निज स्वरूप में स्थित का दर्शन किया तो वह बहुत सन्तुष्ट हुआ था। प्रणाम करके फिर वह भगवान् गरुड़ध्वज का स्तवन करने लगा था। उसने भगवान् से प्रार्थना की–हे लोकों के नाथ ! आप तो मेरे सच्चे स्वामी हैं और आप भक्तजन की पीड़ाओं का नाश करने वाले हैं। आप मेरे स्वामी हैं। हे कृष्ण ! हे विष्णो ! हे जगत् के स्वामिन् ! आप तो समस्त लोकों के द्वारा वन्दित हैं। हे प्रभु ! आप सब के आदि हैं–आप अनन्त हैं–आप आदि से रहित हैं–आप परात्पर पुरुष हैं प्रमा के अन्दर नहीं आने वाले व्यापक हैं। आप कमल के समान नेत्रों वाले गोविन्द एवं विष्णु हैं ।३२।३३।३४। आप महेश्वर के अङ्ग से उत्पन्न होने वाले मध्य में पुष्कर अन्तरिक्ष में गमन करने वाले खग हैं। आप कपाली-कव्य वाह हव्य वाह और प्रभञ्जन हैं ।३५।

आदिदेवः क्रियानंदः परमात्मात्मनि स्थितः ।
त्वां प्रपन्नोस्मि गोविंद जय देवकिनंदन ।
जय देव जगन्नाथ पाहि मां पुष्करेक्षण ।३६।
नान्या गतिस्त्वदन्या मे त्वमेव शरणं मम ।
तमाह भगवान्विष्णुः किं हृदि चिकीर्षितम् ।३७।
तत्सर्वं ते प्रदास्यामि भक्तोसि मम सुव्रत ।
भक्तिप्रियोऽहं सततं तस्माद्दातुमिहागतः ।३८।
लोकनाथ परानद नित्यं मे वर्तते मतिः ।
वासुदेवपरो नित्यं वाङ मनःकाकर्मभिः ।३९।

यथा त्वं देवदेवस्य भवस्य परमात्मनः ।
तथ भवाम्यहं विष्णो तव देव जनार्दन ।४०।
पालयिष्यामि पृथिवीं कृत्वा वै वैष्णवं जगत् ।
यज्ञहोमार्चनैश्चैव तर्पयामि सुरोत्तमान् ।४१।
वैष्णवान्पालयिष्यामि निहनिष्यामि शात्रवान् ।
लोकतापभये भीत इति मे धीयते मतिः ।४२।

आप आदि देव हैं तथा क्रियानन्द स्वरूप हैं। आत्मा में स्थित परम आत्मा हैं। मैं आपकी शरणागति में जाता हूँ। हे गोविन्द! हे देवकी के तनय! आपकी जय हो। हे जगत् के स्वामी! हे कमलनयन! हे देव! आपकी जय हो, आप मेरी रक्षा करो।३६। आपके अतिरिक्त मेरी अन्य कोई भी गति नहीं है। आप ही मेरे एक मात्र शरण अर्थात् रक्षक हैं। सूतजी ने कहा — इस प्रकार से जब उसने स्तुति की तो भगवान् विष्णु ने उससे कहा—तेरे हृदय में क्या करने की इच्छा है? वह बोल, मैं तुझे वह सभी कुछ प्रदान कर दूंगा क्योंकि तू मेरा सुन्दर व्रतधारी परम भक्त है। मैं भक्ति पर ही प्रसन्न होने वाला हूँ और इसी कारण से तुझे प्रदान करने के लिए यहाँ आया हूँ।३७।३८। अम्बरीष ने कहा—हे लोकों के स्वामिन्! हे परम आनन्द स्वरूप! मेरी मति नित्य होती है कि मैं देव में ही परायण नित्य मन-वाणी और कर्म द्वारा रहूँ।३९। देवों के देव परमात्मा भव के जिस तरह हैं हे विष्णो! मैं उस प्रकार से देव जनार्दन आपका हो जाऊँ।४०। मैं इस समस्त जगत् को वैष्णव अर्थात् एकमात्र विष्णु का समाराधन करने वाला बनाकर इस भूमि का पालन करूंगा। यज्ञ तथा होम एवं अर्चनों के द्वारा सुरगण को भी तृप्त करूंगा।४१। जो विष्णु के परम भक्तजन होंगे उनका पालन करूंगा और इनके शत्रुओं का हनन करूंगा। लोक ताप के भय में भीत रहूँ—ऐसी मेरी मति होती है।४२।

एवमस्तु यथेच्छं वै चक्रमेतत्सुदर्शनम् ।
पुरा रुद्रप्रसादेन लब्ध वै दुर्लभ मया ।४३।
ऋषिशापादिकं दुःखं शत्रुरोगादिकं तथा ।

निहनिष्यति ते नित्यमित्युक्त्वांतरधीयत ।४४।
ततः प्रणम्य मूदितो राजा नारायणं प्रभुम् ।
प्रविश्य नगरीं रम्यामयोध्यां पर्यपालयत् ।४५।
ब्राह्मणादींश्च वर्णांश्च स्वस्वकर्मण्ययोजत् ।
नारायणपरो नित्यं विष्णुभक्तानकलमषान् ।४६।
पालयामास हृष्टात्मा विषेशेण जनाधिपः ।
अश्वमेधशतैरिष्ट्वा वाजपेयशतेन च ।४७।
पालयामास पृथिवीं सागरावरणामिमाम् ।
गृहेगृहे हरिस्तस्थौ वेदघोषो गृहेगृहे ।४८।
नामघोषो हरेश्चैव यज्ञघोषस्तथैव च ।
अभवन्नृपशार्दूले तस्मिन् राज्यं प्रशासति ।४९।

श्री भगवान् ने कहा—राजन् ! ऐसा ही सब कुछ होगा—जो कुछ भी तू चाहता है। यह मेरा सुदर्शन चक्र जिसको पहिले मैंने भगवान् रुद्र के प्रसाद से प्राप्त किया है यह परम दुर्लभ है ।४३। तेरे ऋषि के शाप आदिक दुःख तथा शत्रुरोगादिक दुःख नित्य नाश कर देगा—यह कहकर वह अन्तर्धान हो गया था ।४४। सूतजी ने कहा—इसके अनन्तर राजा ने परम प्रसन्न होकर नारायण प्रभु का प्रणाम किया था और फिर परम रम्य अयोध्या नगरी में प्रवेश करके उसका पर्यपालन किया था ।४५। वहाँ उसने ब्राह्मण आदि समस्त वर्णों को अपने-अपने कर्म में नियोजित कर दिया था। नित्य ही नारायण की सेवार्चना में तत्पर होते हुए वह राजा निष्पाप विष्णु के भक्तों का पालन विशेष रूप से प्रहृष्ट मन वाला होकर किया करता था। उस राजा ने एक सौ अश्वमेधों यज्ञों तथा सौ वाजपेय यज्ञों का यजन किया था ।४६।४७। उसने सागरों के आवरण से समन्वित इस पृथ्वी का पालन किया था। प्रत्येक घर में भगवान् हरि स्थित रहते थे और घर-घर में वेदों का उच्चारण हुआ करता था। उस नृपों में शार्दूल के समान राजा के शासन करने के समय में भगवान् के पवित्र नामों का घोष–यज्ञों में वेदध्वनि का घोष हुआ करता था ।४८।४९।

नासस्या नातृणा भूमिर्न दुर्भिक्षादिभिर्युता ।
रोगहीनाः प्रजा नित्यं सर्वोपद्रववर्जिताः ।५०।
अम्बरीषो महातेजाः पालयामास मेदिनीम् ।
तस्यैवंवर्तमानस्य कन्या कमललोचना ।५१।
श्रीमती नाम विख्याता सर्वलक्षणसंयुता ।
प्रदानसमयं प्राप्ता देवमायेव शोभना ।५२।
तस्मिन्काले मुनिः श्रीमान्नारदोऽभ्यागतश्च वै ।
अम्बरीषस्य राज्ञो वै पर्वतश्च महामतः ।५३।
तावुभावागतौ दृष्ट्वा प्रणिपत्य यथाविधि ।
अम्बरीषो महातेजाः पूजयामास तावृषी ।५४।
कन्यां तां रममाणां वै मेघमध्ये श ह्लदाम् ।
प्राह तां प्रेक्ष्य भगवान्नारदः सस्मितस्तदा ।५५।
केयं राजन्महाभागा कन्या सुरसुतोपमा ।
ब्रूहि धर्मभृतां श्रेष्ठ सर्वलक्षगशोभिता ।५६।

उसके शासन काल में कभी भी भूमि असस्या अन्न की फशल से रहित नहीं रहती थी और वह तृणादि से भी शून्य नहीं होती थी अर्थात् समस्त भूमि अन्न एवं तृण से परिपूर्ण रहा करती थी तथा किसी भी समय दुर्भिक्ष आदि का भय वहाँ नहीं होता था । उस राजा की सम्पूर्ण प्रजा रोगों से हीन अर्थात् परम स्वस्थ-सुखी एवं सर्वदा सभी प्रकार के उपद्रवों से रहित रहा करती थी ।५०। राजा अम्बरीष महान् तेज वाला था । उसने बहुत ही अच्छी तरह से मेदिनी का पालन किया था । इस प्रकार से सुन्दर शासन करने वाले उस राजा के कमल के समान नेत्रों वाली समस्त शुभ लक्षणों से समन्वित एक श्रीमती इस शुभ नाम से विख्यात होने वाली कन्या थी । देवमाया की भाँति परम शोभा से सम्पन्न उसके प्रदान करने का समय सम्प्राप्त हो गया था ।५१।५२। उस समय में राजा अम्बरीष के यहाँ श्रीमान् महामुनि नारद और महान् मति वाले पर्वत ये दोनों आ गये थे ।५३। उन दोनों महामुनियों को देखकर राजा अम्बरीष ने जो कि स्वयं महान् तेजस्वी था उन्हें

प्रणाम किया और यथा विधि उन दोनों ऋषियों का पूजन किया था ।५४। मेघों के मध्य में विद्युत् की भाँति प्रकाश करने वाली परम सुन्दरी उस कन्या को देखकर भगवान् नारद मुस्कराते हुए बोले—हे राजन् ! सुरों की कन्या के समान सुन्दरी महान भाग वाली यह कन्या कौन है । यह तो समस्त सुन्दर एवं शुभ लक्षणों से परम शोभित है । हे धर्म धारियों में परम श्रेष्ठ ! आप इस कन्या के विषय में हमें सब बताइये ।५५।५६।

दुहितेयं मम विभो श्रीमती नाम नामतः ।
प्रदानसमयं प्राप्ता वरमन्वेषते शुभा ।५७।
इत्युक्ता मुनिशार्दूलस्तामैच्छन्नारदो द्विजाः ।
पर्वतोपि मुनिस्तां वै चकमे मुनिसत्तमाः ।५८।
अनुज्ञाप्य च राजानं नारदो वाक्यमब्रवोत् ।
रहस्याहूय धर्मात्मा मम देहि सुतामिमाम् ।५९।
पर्वतो हि तथा प्राह राजानं रहसि प्रभुः ।
तावुभौ सह धर्मात्मा प्रणिपत्य भयार्दितः ।६०।
उभौ भवंतौ कन्यां मे प्रार्थयानौ कथं त्वहम् ।
करिष्यामि महाप्राज्ञ शृणु नारद मे वच. ।६१।
त्वं च पर्वत मे वाक्यं शृणु वक्ष्यामि यत्प्रभो ।
कन्येयं युवयोरेकं वरयिष्यति चेच्छुभा ।६२।
तस्मै कन्यां प्रयच्छामि नान्यथा शक्तिरस्ति मे ।
तथेत्युक्त्वा ततो भूयः श्वो यास्याव इति स्म ह ।६३।
इत्युक्त्वा मुनिशार्दूलौ जग्मतुः प्रीतिमारसौ ।
वासुदेवपरौ नित्यमुभौ ज्ञानविदांवरौ ।६४।

राजा अम्बरीष ने कहा—हे विभो ! यह मेरी पुत्री है और इसका नाम श्रीमती है । इसके अब प्रदान करने का समय प्राप्त हो गया है और इसके लिये वर का अन्वेषण यह शुभा करती है ।५७। इस प्रकार से जब राजा ने मुनि से कहा था तो वह मुनिशार्दूल नारद स्वयं उसकी इच्छा करने लगे । हे द्विजगण ! पर्वत मुनि भी उस कन्या के प्राप्त

करने की इच्छा करने लगे थे ।५७।५८। नारद मुनि ने एकान्त में राजा को बुलाकर यह वाक्य कहा था कि राजा इस अपनी पुत्री को तुम मुझे ही देदो । ।५६। इसी तरह से पर्वत मुनि ने भी राजा अम्बरीष से एकान्त में कहा था । उन दोनों की प्रार्थना को जान कर राजा भयभीत हो गया था और उनको प्रणाम करके धर्मात्मा राजा ने कहा—आप दोनों ही मेरी कन्या को प्राप्त करना चाहते हैं । हे महान् प्राज्ञ नारद ! आप मेरी बात सुनिये कि मैं अब क्या करूं । हे पर्वत मुनि ! आप भी मेरी प्रार्थना सुन लीजिए । हे प्रभो ! यह एक ही कन्या है अतः आप दोनों में से कोई भी एक इस शुभा के साथ विवाह कर सकते हैं । मैं किसी भी एक को आप दोनों में से इस कन्या को दे सकता हूं । इसके अतिरिक्त मेरी कुछ भी शक्ति नहीं है कि मैं आप लोगों की आज्ञा का पालन कर सकूं । इस पर उन दोनों मुनियों ने कहा हम कल आवेंगे--यह कहकर वे दोनों मुनि प्रसन्न होते हुए वहाँ से चले गये थे । ये दोनों ही मुनि नित्य वासुदेव परायण और ज्ञानियों में परम श्रेष्ठ थे । ।६०।६१।६२।६३।६४।

विष्णु लोक ततो गत्वा नारदो मुनिसत्तमः ।
प्रणिपत्य हृषीकेशं वाक्यमेतदुवाच ह ।६५।
श्रोतव्यमस्ति भगवन्नाथ नारायण प्रभो ।
रहसि त्वां प्रवक्ष्यामि नमस्ते भुवनेश्वर ।६६।
ततः प्रहस्य गोविंद सर्वानुत्सार्य तं मुनिम् ।
ब्रूहित्याहं च विश्वात्मा मुनिराह च केशवम् ।६७।
त्वदीयो नृपतिः श्रीमानंबरीषो महीपतिः ।
तस्य कन्या विशालाक्षी श्रीमती नाम नामतः ।६८।
परिणेतुमना स्तत्र गतोऽस्मि वचनं शृणु ।
पर्वतोऽयं मुनिः श्रीमांस्तव भृत्यस्तपोनिधिः ।६९।
तामैच्छत्सोपि भगवन्नावामाह जनाधिपः ।
अंबरीषो महातेजाः कन्येय युवयोर्वरम् ।७०।
लावण्ययुक्तं वृणुयाद्यदि तस्मै ददाम्यहम् ।

इत्याहावां नृपस्तत्र तथेत्युक्त्वाहमागतः ।७१।
आगमिष्यामि ते राजन् श्वः प्रभाते गृहं त्विति ।
आगतोहं जगन्नाथ कर्तुमर्हसि मे प्रियम् ।७२।
वानराननवद्भाति पर्वतस्य मुखं यथा ।
तथा कुरु जगन्नाथ मम चेदिच्छसि प्रियम् ।७३।

इस अनन्तर वे दोनों मुनियों में से नारद मुनि श्रीश्रेष्ठ विष्णुलोक में चले गये थे । और भगवान् हृषीकेश को प्रणाम करके नारद ने उनसे प्रार्थना की थी—हे भगवन् ! हे नारायण ! हे नाथ ! हे प्रभो ! मुझे कुछ श्रोतव्य है अर्थात् मैं कुछ श्रवण करना चाहता हूँ सो मैं उसे आप से एकान्त स्थान में कहूँगा । हे भुवनों के स्वामिन् ! मेरा आपको प्रणाम है ।६६। इसके अनन्तर भगवान् गोविन्द ने हँसकर वहाँ से सब को अलग कर दिया था और फिर वे विश्वात्मा भगवान् मुनि नारद से बोले-बोलो, क्या कहना है ? उस समय नारद मुनि ने केशव भगवान् से कहा था ।६७। इस भूमि का स्वामी राजा अम्बरीष आपका परम भक्त है । उसकी एक विशाल नेत्रों वाली बड़ी सुन्दरी कन्या है जिसका नाम श्रीमती है ।६८। हे भगवन् ! आप मेरी प्रार्थना का श्रवण करें, मैं वहाँ उसके साथ विवाह करने की इच्छा से गया था । यह पर्वत मुनि भी जो कि परम तपस्वी आपका ही भृत्य है । यह भी उस कन्या के साथ परिणय करना चाहता है । हे भगवन् ! हम दोनों ही ने उस राजा से अपनी २ इच्छायें प्रकट करते हुए कहा था तब उस राजा ने कहा था कि यह एक कन्या है और आप दोनों में जो भी लावण्य से युक्त है इस एक का वरण कर सकती है यदि मैं उसके लिए इसे प्रदान करता हूं । उस महान् तेजस्वी राजा ने हम दोनों से ऐसा कह दिया है । फिर मैं वहाँ से कल प्रातः काल में आपके पास आऊँगा—यह कहकर मैं चला आया हूँ । अब हे जगत् के स्वामी ! आप मेरा प्रिय कार्य सम्पादन करने के योग्य हैं सो ऐसा ही कृपा करके कर दीजिए ।६९।७०।७१।।७२। हे नाथ ! अब आप ऐसा कर दीजिए कि पर्वत मुनि का मुख बन्दर के समान मुख हो जावे तो मेरी मन में चाही हुई बात पूरी हो

जावेगी। यदि आप मेरा प्रिय करना चाहते हैं तो ऐसा ही कर देवें।७३।

तथेत्युक्त्वा स गोविंदः प्रहस्य मधुसूदनः।
त्वयोक्तं च करिष्यामि गच्छ सौम्य यथागतम्।७४।
एवमुक्त्वा मुनिर्हृष्टः प्रणिपत्य जनार्दनम्।
मन्यमानः कृतात्मानं तथाऽयोध्यां जगाम सः।७५।
गते मुनिवरे तस्मिन्पर्वतोऽपि महामुनिः।
प्रणम्य माधवं हृष्टो रहस्येनमुवाच ह।७६।
वृत्तं तस्य निवेद्याग्रे नारदस्य जगत्पतेः।
गोलांगूलमुख यद्वन्मुखं भाति तथा कुरु।७७।
तच्छ्रुत्वा भगवान्विष्णुस्त्वयोक्तं च करोमि वै।
गच्छ शीघ्रमयोध्यां वै मावेदोर्नारदस्य वै।७८।
त्वया मे संविदं तत्र तथेत्युक्त्वा जगाम सः।
ततो राजा समाज्ञाय प्राप्तौ मुनिवरौ तदा।७९।
मांगल्यैर्विविधैः सर्वामयोध्यां ध्वजमालिनीम्।
मण्डयामास पुष्पैश्च लाजैश्चैव समन्ततः।८०।

तब वे गोविन्द मधुसूदन हँसकर बोले—ऐसा ही होगा। मैं आपका कहा हुआ सभी कुछ कर दूँगा। हे सौम्य! अब आप जहाँ से आये हैं वहाँ चले जाइये।७४। इस प्रकार से कहकर नारद मुनि ने प्रसन्न होते हुए भगवान् को प्रणिपात किया था और अपने आपको पूर्ण सफल मनोरथ वाला मानते हुए वे पुनः अयोध्या पुरी को चले गये थे।७५। उस मुनिवर के चले जाने के पश्चात् महामुनि पर्वत भी वहाँ उपस्थित हो गये और उनने माधव भगवान् को प्रणाम करके एकान्त स्थान में इनसे कहा था।७६। समस्त राजा अम्बरीष की कन्या के साथ विवाह करने का दोनों का मनोरथ होने वाला समाचार कहकर पर्वत मुनि ने भगवान् से प्रार्थना की कि नारद का मुख गोलांगूल के मुख के समान हो जाना चाहिए—ऐसा आप कर देवें।७७। यह पर्वत की प्रार्थना श्रवण कर भगवान् विष्णु ने महा—जो भी कुछ आपने कहा है वही मैं

कर दूंगा । भगवान् ने कहा—अब आप शीघ्र ही अयोध्या पुरी में पहुंच जाओ नारद मुनि इसे न जानने पावें कि मेरी आपके साथ क्या बातें हुई हैं । ऐसा कहकर वह मुनि वहाँ चला गया था । जब वहाँ दोनों मुनिवर पहुँच गये तो राजा ने इस बात को जान लिया था ।७९। फिर राजा अम्बरीष ने अयोध्या पुरी को विविध माङ्गल्य वस्तुओं के द्वारा मण्डित करा दिया था । वहाँ बहुत सी ध्वजाऐं लगाई गई थीं और पुष्प तथा लाजा सभी ओर उपस्थित किये गये थे । ।८०।

अंबुसिक्त गृहद्वारां सिक्तापणमहापथाम् ।
दिव्यगधरसोपेतां धूपितां दिव्यधूपकैः ।८१।
कृत्वा च नगरीं राजा मंडयामास तां सभाम् ।
दिव्यैर्गंधैस्तथा धूपै रत्नैश्च विविधैस्तथा ।८२।
अलंकृतां मणिस्तंभैर्नानामाल्योपशोभिताम् ।
पराध्यास्तिरणोपेतैर्दिव्यैर्भद्रासनैर्वृताम् ।८३।
कृत्वा नृपेंद्रस्तां कन्यां ह्यादाय प्रविवेश ह ।
सर्वाभरणसंपन्नां श्रीरिवायतलोचनाम् ।८४।
करसंमितमध्यांगीं पंचस्निग्धां शुभाननाम् ।
स्त्रीभिः परिवृतां दिव्यां श्रीमतीं संश्रितां तदा ।८५।
सभा च सा भूपपतेः समृद्धा मणिप्रवेकोत्तमरत्नचित्रा ।
न्यस्तासना माल्यवती सुबद्धा तामाययुस्ते नरराजवर्गाः ।८६।
अथापरो ब्रह्मवरात्मजो हि त्रैविद्यविद्यो भगवान्महात्मा ।
सपर्वतो ब्रह्मविदां वरिष्ठो महामुनिर्नारद आजगाम ।८७।

उस समय अयोध्या के समस्त घरों के द्वार जल से सिक्त किये गये थे और सभी महा पथ एवं बाजार भी अम्बु सिक्त किये गये थे । सर्वत्र दिव्य गन्ध एवं रस से वह अयोध्या पुरी युक्त की गई थी और दिव्य धूप से धूपित हो रही थी।८१। इस प्रकार से राजा ने अयोध्या नगरी को सब तरह से सुशोभित करके फिर उस स्वयम्बर सभा को सुमण्डित कराया था । जहाँ कि परम दिव्य गन्ध-धूप-विविध रत्नों के द्वारा उसे विभूषित किया गया था ।८२। मणियों के स्तम्भों से उस स्वयम्बर

सभा को अलंकृत किया गया था और अनेक माल्यों से उसे उपशोभित बनाया था। उस सभा में बहुत कीमती अति उत्तम आस्तरण बिछाये गये थे तथा परम श्रेष्ठ आसनों के द्वारा उसे दिव्य बनाया गया था ।८३। उस स्वयम्वर सभा को इस प्रकार से परम सुसज्जित करके राजा ने उस कन्या का वहाँ प्रवेश कराया था। यह कन्या सम्पूर्ण आभरणों से समलङ्कृत थी—सुदीर्घ विशाल नेत्रों से वह दूसरी महालक्ष्मी के ही समान परम सुन्दरी थी। वह अत्यन्त कृशोदरी थी और करादि पाँचों स्थानों में अत्यन्त स्निग्ध थी तथा परम शुभ मुख वाली थी। उसके चारों ओर बहुत-सी स्त्रियाँ थीं जो कि उस दिव्य श्रीमती की सुश्रूषा कर रहीं थीं ।८४।८५। भूपों के भी स्वामी महाराज अम्बरीष की वह सभा अत्यन्त समृद्धि-सम्पन्न थी और मणियों के प्रवेक उत्तमोत्तम रत्नों के द्वारा वह विचित्र बनी हुई थी । वहाँ पर सुवद्धा माल्यवनी न्यस्त आसन वाली थी और सभी नरराजों के वर्ग उसके निकट में आये हुये थे ।८६। इसके अनन्तर ब्रह्म वर का आत्मज वेदत्रयी की विद्या का ज्ञाता महान् आत्मा वाला और ब्रह्म वेत्ताओं में सब से वरिष्ठ नारद मुनि पर्वत ऋषि के साथ वहाँ पर आ गये थे ।८७।

तावागतौ समोक्ष्याथ राजा संभ्रांतमानसः ।
दिव्यमासनमादाय पूजयामास तावुभौ ।८८।
उभौ देवर्षिसिद्धौ तावुभौ ज्ञानविदां वरौ ।
समासीनौ महात्मानो कन्यार्थं मुनिसत्तमौ ।८९।
तावुभौ प्रणिपत्याग्रे कन्यां तां श्रीमतीं शुभाम् ।
सुतां कमलपत्राक्षीं प्राह राजा यशस्विनोम् ।९०।
अनयोर्यं वरं भद्रे मनसा त्वमिहेच्छसि ।
तस्मै मालामिमां देहि प्रणिपत्य यथाविधि ।९१।
एवमुक्ता तु सा कन्या स्त्रीभिः परिवृता तदा ।
मालां हिरण्मयीं दिव्यामादाय शुभलोचना ।९२।
यत्रासीनौ महात्मानो तत्रागम्य स्थिता तदा ।
वीक्षमाणा मुनिश्रेष्ठौ नारदं पर्वतं तथा ।९३।

शाखामृगाननं दृष्ट्वा नारदं पर्वतं तथा ।
गोलांगूलमुखं कन्या किंचित्त्रासममन्विता ।९४।
संभ्रांतमानसा तत्र प्रवातकदली यथा ।
तस्थौ तामाह राजासौ वत्से किं त्वं करिष्यसि ।९५।
अनयोरेक मुद्दिश्य देहि मालामिमां शुभे ।
सा प्राह पितरं त्रस्ता इमौ तौ नरवानरौ ।९६।

उन दोनों मुनियों को आये हुए देखकर राजा अम्बरीष सम्भ्रान्त मन वाला होकर तुरन्त ही उठ पड़ा और दिव्य आसन देकर उन दोनों मुनियों का उसने अर्चन किया था ।८८। वे दोनों ही देवर्षि एवं सिद्ध पुरुष थे—वे दोनों ज्ञानियों में परम श्रेष्ठतम थे—वे दोनों मुनिश्रेष्ठ कन्या को प्राप्त करने की इच्छा से आये थे और दोनों महान् आत्मा वाले वहाँ पर विराज गये थे ।८९। उन दोनों को प्रणाम करके उनके आगे राजा ने उस परम शुभ एवं सुन्दरी श्रीमती कन्या को जो कि उस राजा की पुत्री थी और परम यश वाली एवं कमल के समान सुन्दर नेत्रों वाली थी, कहा था—हे भद्रे ! इन दोनों में जिस किसी को भी तू मन से वरण करने की इच्छा करती है उसी महापुरुष के गले में इस वरमाला को डाल दे और विधि पूर्वक उनको प्रणिपात करले ।९०।९१। इस प्रकार से राजा के द्वारा कहे जाने पर उस समय स्त्रियों परिवृत वह शुभ लोचनों वाली कन्या परम दिव्य हिरण्मयी माला को लेकर जहाँ पर वे दोनों महात्मा अवस्थित थे वहाँ आकर उस समय में स्थित हो गई थी । वह उन दोनों मुनिश्रेष्ठों को देखती जा रही थी उन दोनों में एक नारद थे और दूसरे पर्वत मुनि थे ।९२।९३। उसने नारद और पर्वत दोनों को शाखामृ के समान मुख वाला देखा था और गोलांगूल मुख को देखकर वह कन्या कुछ भयभीत-सी हो गई थी ।९४। सम्भ्रान्त मन वाली वह प्रवात से कदली की भाँति वहाँ स्थित रह गई थी तब राजा ने उसी समय उससे कहा—हे वत्से ! तू क्या करेगी ? इन दोनों में से किसी एक को उद्देश्य करके उसी के कण्ठ में हे शुभे माला को पहिना दो । तब वह डरी हुई पिता से बोली ये दोनों नर वानर हैं ।९५।९६।

मुनिश्रेष्ठं न पश्यामि नारदं पर्वतं तथा ।
अनयोर्मध्यत स्त्वेकमूनषोडशवार्षिकम् ।९७।
सर्वाभरणसंपन्नमतसीपुष्पसंनिभम् ।
दीर्घबाहुं विशालाक्षं तुङ्गोरस्थलमुत्तमम् ।९८।
रेखांकित कटिग्रीवं रक्तांतायतलोचनम् ।
नम्रचापानुकरणपटुभ्रूयुगशोभितम् ।९९।
विभक्तत्रिवलीव्यक्तं नाभिव्यक्तशुभोदरम् ।
हिरण्यांवर संवीतं तुंगरत्ननखं शुभम् ।
पद्माकारकरं त्वेनं पद्मास्यं पद्मलोचनम् ।१००।
सुनासं पद्महृदयं पद्मनाभं श्रिया वृतम् ।
दंतपंक्तिभि रत्यर्थं कुन्दकुड्मलसन्निभैः ।१०१।
हसंतं मां समालोक्य दक्षिणां च प्रसार्य वै ।
पाणिं स्थितममुं तत्र पश्यामि शुभमूर्धजम् ।१०२।
संभ्रांतमानसां तत्र वेपतीं कदलीमिव ।
स्थितां तामाहं राजासौ वत्से किं त्वं करिष्यसि ।१०३।

कन्या ने अपने पिता अम्बरीष से कहा कि मैं मुनियों में श्रेष्ठ नारद तथा पर्वत को यहाँ नहीं हैं । रही हूँ । इन दोनों के मध्य में एक सोलह वर्ष से कम एक पुरुष को देख रही हूँ । जो समस्त आभरणों से सम्पन्न है और अतसीं (अलसी) के पुष्प के समान वर्ष से युक्त है । इस महा-पुरुष की बड़ी दीर्घ वाहु हैं तथा अत्यन्त विशाल सुन्दर नेत्र हैं और उन्नत एवं उत्तम इसका उरःस्थल है । ।९७।९८। इस पुरुष की कटि तथा ग्रीवा रेखाङ्कित हैं । इसके रक्त तथा आयत लोचन हैं । नम्र चाप के अनुकरण करने इसके परम पटु भ्रूयुग और दोनों भ्रुकुसियाँ है जो कि इसकी शोभा वढ़ा रही हैं ।९९। विभक्त त्रिबली के द्वारा व्यक्त तथा नाभि से व्यक्त शुभ उदर वाला हैं । सुवर्ण जैसे वर्ण वाले भास्वर वस्त्रों को धारण किये हुए हैं और उच्चकोटि के रत्नों के सदृश इसके नख परम शुभ हैं । पद्माकार कर वाला-पद्म के समान मुख से युक्त तथा पद्म के तुल्य नेत्रों वाला है ।१००। सुन्दर नासिका वाला पद्म

हृदय-पद्मनाभ तथा श्री से समन्वित है। इसको कुन्दकली के समान अत्यन्त सुन्दर दन्तों की पंक्तियाँ हैं। दाहिने हाथ को प्रसारित करके स्थित सुन्दर केशों से युक्त यह है जो कि मुझको देख-देखकर मुस्करा रहा है। मैं ऐसे पुरुष को देखती हूँ।१०१।१०२। इस तरह सम्भ्रान्त मन वाली प्रवात से कदली की भाँति काँपती हुई स्थित उस कन्या से इस राजा ने फिर कहा—हे वत्से ! तू क्या कर रही है ?।१०३।

एवमुक्ते मुनिः प्राह नारदः संशयं गतः।
कियन्तो बाहवस्तस्य कन्ये ब्रूहि यथातथम्।१०४।
बाहुद्वयं च पश्यामीत्याह कन्या शुचिस्मिता।
प्राह तां पर्वतस्तत्र तस्य वक्षःस्थले शुभे।१०५।
किं पश्यसि च मे ब्रूहि करे किं वास्य पश्यसि।
कन्या तमाह मालां वै पंचरूपामनुत्तमाम्।१०६।
वक्षःस्थलेऽस्य पश्यामि करे कार्मुकसायकान्।
एवमुक्तौ मुनिश्रेष्ठौ परस्परमनुत्तमौ।१०७।
मनसा चिंतयन्तौ तौ मायेयं कस्य चिद्भवेत्।
मायावी तस्करो नूनं स्वयमेव जनार्दनः।१०८।
आगमो न यथा कुर्यात्कथमस्मन्मुखं त्विदम्।
गोलांगूलत्वमित्येवं चिंतयामास नारदः।१०९।

इस प्रकार से कहने पर संशय को प्राप्त होने वाले नारद मुनि ने कहा—हे कन्ये ! यह तो ठीक ठीक बतलाओ उसकी कितनी बाहु हैं ?।१०४। शुचिस्मित वाली उस कन्या ने कहा—मैं उसकी दो बाहु देख रही हूँ। तब वहाँ पर पर्वत मुनि ने उस कन्या से कहा—उसके शुभ वक्षःस्थल में तू क्या देख रही है और उसके हाथ में क्या तुझे दिखलाई देता है यह हमको बतला दे। तब उस कन्या ने उस मुनि से कहा था कि मैं उसके कण्ठ में पञ्चरूप वाली परम श्रेष्ठ माला देख रही हूँ।१०५। ।१०६। इस के शुभ वक्षःस्थल में माला और हाथों में कार्मुक (धनुष) और सायकों को मैं देखती हूँ ऐसा उस कन्या ने उन मुनियों को उत्तर दिया था। ऐसा कहने पर उन उत्तम मुनिश्रेष्ठों ने आपस में चिन्तन

करते हुए कहा कि यह किसी की माया हो सकती है। निश्चय ही माया-वी तस्कर स्वयं ही जनार्दन हैं ।१०७।१०८। वह ही यहाँ पर आ गया है। नहीं तो यह हमारा मुख यह कैसे कर दिया गया है। नारद ने फिर यही विचार किया था कि यह मुख गोलाङ्गूलल को इसी प्रकार से प्राप्त हुआ है।१०९।

पर्वतोपि यथान्यायं वानरत्वं कथं मम।
प्राप्तमित्येव मनसा चिंतामापेदिवांस्तथा। १०।
ततो राजा प्रणम्यासौ नारद पर्वतं तथा।
भवद्भयां किमिदं तत्र कृतं बुद्धिविमोहजम् ।१११।
स्वस्थौ भवन्तो तिष्ठेतां यथा कन्यार्थ मुद्यतो।
एवमुक्तो मुनिश्रेष्ठौ नृपसूचतुरुल्बणौ ।११२।
त्वमेव मोहं कुरुषे नावामिह कथंचन।
आवयोरेकमेषा ते वरयत्त्वेव मा चिरम् ।११३।
ततः सा कन्यका भूयः प्रणिपत्येष्टदेवताम्।
मायामादाय तिष्ठंतं तयोर्मध्ये समाहितम् ।११४।
सर्वाभरणसंयुक्त मतसीपुष्पसन्निभम्।
दीर्घबाहुं सुपुष्टांगं कर्णांतायतलोचनम् ।११५।
पूर्ववत्पुरुषं दृष्ट्वा मालां तस्मै ददौ हि सा।
अनन्तरं हि सा कन्या न दृष्टा मनुजैः पुनः ।११६।
ततो नादः समभवत् किमेतदिति विस्मितौ।
तामादाय गतो विष्णुः स्वस्थानं पुरुषोत्तमः ।११७।
पुरा तदर्थमनिशं तपस्तप्त्वा वरांगना।
श्रीमती सा समुत्पन्ना सा गता च तथा हरिम् ।११८।

पर्वत मुनि भी मेरा मुख वानर के तुल्य कैसे हो गया है इसकी चिन्ता को प्राप्त हो गये थे ।११०। तब राजा ने नारद और पर्वत दोनों को प्रणाम करके उनसे कहा—आप दोनों को यह क्या बुद्धि का विमोह उत्पन्न हो गया है ? यहाँ पर ऐसा क्या हो गया है ।१११। आप दोनों स्वस्थ होकर विराजमान होइये क्योंकि आप दोनों ही यहाँ पर कन्या

प्राप्त करने के लिए उपस्थित हुए हैं। ऐसा जब राजा ने कहा तो वे दोनों मुनिश्रेष्ठ बहुत क्रोधित होकर राजा से बोले—।११२। यहाँ पर हम दोनों किसी भी प्रकार से मोह को प्राप्त नहीं हुए हैं, तुम ही मोह करते हो। यह आपकी कन्या हम दोनों में से किसी भी एक का वरण करले इसमें विलम्ब नहीं करना चाहिए।११३। इसके पश्चात् उस कन्या ने पुनः अपने इष्ट देवता को प्रणाम किया जो कि माया के लेकर उन दोनों के मध्य में समाहित होकर स्थित था।११४। वह महापुरुष सभी आभूषणों से समलङ्कृत और अलसी के पुष्प के समान अति सुन्दर श्यामाभ वर्ण वाला था। दीर्घ वाहुओं से युक्त-सुपुष्ट अङ्गों वाला तथा कर्णों के पर्यन्त तक विशाल नेत्रों वाला था।११५। ऐसे पूर्व की भाँति उस परम मनोरम महापुरुष का दर्शन करके उसने उसी के गले में वह वर माला पहिना दी थी। इसके पश्चात् फिर मनुष्यों ने वह कन्या नहीं देखी थी।११६। इसके उपरान्त वह नारद हो गये थे—यह क्या हुआ इस प्रकार से दोनों विस्मित हुए थे। पुरुषोत्तम भगवान् विष्णु उस कन्या को साथ लेकर अपने स्थान को चले गये थे।१७। प्राचीन काल में उस वराङ्गना ने उसकी प्राप्ति के लिए ही बड़ी भारी निरन्तर तपस्या की थी और वही अब श्रीमती नाम धारिणी कन्या के स्वरूप में समुत्पन्न हुई थी और वह हरि को प्राप्त कर चुकी थी।११८।

तावुभौ मुनिशार्दूलो धिक्कृतावति दुःखितौ।
वासुदेवं प्रति तदा जग्मतुभवनं हरेः।११९।
तावागतो समीक्ष्याह श्रीमतीं भगवान्हरिः।
मुनिश्रेष्ठौ समायातौ गूहस्वात्मानमत्र वै।१२०।
तथेत्युक्त्वा च सा देवी प्रहसंती चकार ह।
नारदः प्रणिपत्याग्रे प्राह दामोदरं हरिम्।१२१।
प्रियं हि कृत वानद्य मम त्वं पर्वतस्य हि।
त्वमेव नून गोविंद कन्यां नां हृतवानसि।१२२।
विमोह्यावां स्वयं बुद्धया प्रताय सुरसत्तम।
इत्युक्तः पुरुषो विष्णुः पिधाय श्रोत्रमच्युतः।

पाणिभ्यां प्राह भगवान् भवद्भ्यां किमुदीरितम् ।१२३।
कामवानपि भावोयं मुनिवृत्तिरहो किल ।
एवमुक्तो मुनिः प्राह वासुदेवं स नारदः ।१२४।
कर्णमूले मम कथं गोलांगूलमुखं त्विति ।
कर्णमूले तमाहेदं वानरत्वं कृतं मया ।१२५।
पर्वतस्य मया विद्वन् गोलांगूलमुखं तव ।
मया तव कृतं तत्र प्रियार्थं नान्यथा त्विति ।१२६।
पर्वतोऽपि तथा प्राह तस्याप्येवं जगाद सः ।
शृण्वतोरुभयोस्तत्र प्राह दामोदरो वचः ।१२७।

वे दोनों मुनिशार्दूल हृदय में बहुत ही धिक्कृत हुए और अत्यन्त दुःखित भी हुए थे । इसके अनन्तर वे दोनों मुनि भगवान् वासुदेव के निकट उनके स्थान पर गये थे ।११९। उन दोनों को आये हुए देखकर भगवान् ने श्रीमती से कहा—यहाँ पर अपने आपको तुम छिपालो ।१२०। ऐसा ही होगा–यह कहकर उस देवी ने हँसते हुए वैसा ही किया था । देवर्षि नारद ने भगवान् को प्रणिपात करके उनसे कहा था ।१२१। हे भगवन् ! आज आपने मेरा और पर्वत मुनि का प्रिय कार्य किया ही हे गोविन्द ! आपने ही निश्चय रूप से उस कन्या का हरण किया हैं ।१२२। हम दोनों को विमोहित किया था और स्वयं अपनी बुद्धि से हे सुरश्रेष्ठ ! आपने हमको प्रतारित कर दिया था । इस तरह नारद के कहने पर भगवान् अच्युत पुरुषोत्तम ने दोनों अपने कानों को हाथों से ढककर फिर कहा–यह आपने अभी क्या कहा है । यह भाव तो काम वाला है और आप मुनि की वृत्ति वाले हैं । तब ऐसे कहे हुए नारद ने वासुदेव से कर्णमूल में कहा मेरा यह गोलांगूल मुख कैसे हुआ था । तब उनसे कर्णमूल में ही यह कहा गया था कि यह वानरत्व मैंने कर दिया था ।१२३।१२४।१२५। पर्वत का और तुम्हारा यह गोलांगूल सुख का हो जाना-सब मैंने ही किया था । यह सब मैंने तुम्हारे ही प्रिय हित के लिए किया था । इसके अतिरिक्त अन्य इसका कोई भी अभिप्राय नहीं था ।१२६। इसी प्रकार से पर्वत मुनि ने भी भगवान् ने

कहा था और उनको भी ऐसा ही उत्तर वासुदेव ने दे दिया था। इन दोनों के सुनते हुए वहाँ पर भगवान् दामोदर ने यह वचन कहा था।१२७।

प्रियं भवद्भ्यां कृतवान् सत्येनात्मानमालभे ।
नारदः प्राह धर्मात्मा आवयोर्मध्यतः स्थितः ।१२८।
धनुष्मान्पुरुषः कोत्र ता हृत्वा गतवान्किल ।
तच्छ्रुत्व वासुदेवोऽसौ प्राह तौ मुनिसत्तमौ ।१२९।
मायाविनो महात्मनो बहवः सन्ति सत्तमाः ।
तत्र सा श्रीमती नूनमदृष्ट्बा मुनिसत्तमौ ।१३०।
चक्रपाणिरहं नित्यं चतुर्बाहुरिति स्थितः ।
तां तथा नाहमैच्छ वै भवद्भ्यां विदितं हि तत् ।१३१।
इत्युक्तौ प्रणिपत्यैनमूचतुः प्रीति मानसौ ।
कोऽत्र दोषस्तत्र विभो नारायण जगत्पते ।१३२।
दौरात्म्यं तन्नृपस्यैव मायां हि कृतवानसौ ।
इत्युक्त्वा जग्मतुस्तस्माग्मुनीं नारदपर्वतौ ।१३३।
अम्बरीषं समासाद्य शापेनैनमयोजयत् ।
नारदः पर्वतश्चैव यस्मादावामिहागतौ ।१३४।
आहूय पश्चादन्यस्मै कन्यां त्वं दत्तवानसि ।
मायायोगेन तस्मात्त्वां तमो ह्यभिभविष्यति ।१३५।

भगवान् ने कहा—मैंने आप दोनों का ही प्रिय किया था—यह मैं बिल्कुल सत्य कह रहा हूँ। तब नारद मुनि ने कहा—वह धर्मात्मा हम दोनों के मध्य में धनुष धारण करने वाला पुरुष वहाँ पर कौन था जो कि उस कन्या का हरण करके चला गया था? यह श्रवण भगवान् वासुदेव ने उन दोनों मुनिश्रेष्ठों से कहा था। माया धारण करने वाले बहुत से श्रेष्ठ पुरुष महान् आत्मा वाले होते हैं। उस समय में उन दोनों मुनियों ने वहाँ पर उस श्रीमती को नहीं देखा था।१२८-१३०। भगवान् ने कहा—मैं तो चक्र को नित्य हाथ में रखने वाला हूँ और मेरे तो चार भुजायें हैं। मैं उसको उस रूप से नहीं चाहता था—यह सब आप दोनों को भली-भाँति विदित ही है।१३१। इस तरह से कहे गये उन दोनों

मुनियों ने भगवान् को प्रणाम करके कहा—हम तो दोनों ही प्रीति युक्त चित्त वाले हैं। हे जगत् के स्वामिन् ! हे विभो ! हे नारायण ! आपका इसमें क्या दोष है।१३२। यह दुष्टता तो उसी राजा की है। और उसी ने यह सब माया की थी—इस तरह से कहकर वे दोनों मुनि नारद तथा पर्वत राजा अम्बरीष के समीप में चले गये थे ।१३३। राजा अम्बरीष के पास पहुंच कर इसको शाप से योजित किया था। नारद और पर्वत मुनि जिस कारण से हम दोनों यहाँ आये थे। हमको बुलाकर हे राजन् ! तूने अपनी कन्या को दूसरे के लिए दे दिया था और यह माया का योग किया था अतएव यह तम तुझको ही अभिभूत करेगा ।१३४।१३५।

तेन चात्मानमत्यर्थं यथावत्त्वं न वेत्स्यसि ।
एवं शापे प्रदत्ते तु तमोराशिरथोत्थितः ।१३६।
नृपं प्रति ततश्चक्रं विष्णोः प्रादुरभूत्क्षणात् ।
चक्रवित्रासितं घोरं तावुभौ तम अभ्यगात् ।१३७।
ततः संत्रस्तसर्वांगौ धावमानौ महामुनी ।
पृष्ठतश्चक्रमालोक्य तमोराशिं दुरासदम् ।१३८।
कन्यासिद्धिरहो प्राप्ताह्यावयोरिति वेगितौ ।
लोकालोकांतमनिशं धावमानौ भयार्दितौ ।१३९।
त्राहित्राहीति गोविन्दं भाषमाणो भयार्दितौ ।
विष्णुलोकं ततो गत्वा नारायण जगत्पते ।१४०।
वासुदेव हृषीकेश पद्मनाभ जनार्दन ।
त्राह्यावां पुण्डरीकाक्ष नाथोऽसि पुरुषोत्तम ।१४१।
ततो नारायणश्चित्व श्रीमाञ्छ्रीवत्सलांछनः ।
निवार्य चक्रं ध्वांतं च भक्तानुग्रहकाम्यया ।१४२।

उस तम का यह प्रभाव होगा कि तू अपने आपको यथावत् नहीं जानेगा। इस प्रकार का ऋषियों का शाप देने पर इसके अनन्तर ही तमोराशि का उत्थान हो गया था ।१३६। ज्यों ही वह नृप के प्रति

जाने लगा उसी क्षण में भगवान् विष्णु का सुदर्शन चक्र वहाँ प्रादुर्भूत हो गया था। उस चक्र से अत्यधिक त्रस्त होकर वह तम उन्हीं दोनों ऋषियों की ओर चला गया था।१३७। इसके पश्चात् सम्यक् प्रकार से त्रस्त सम्पूर्ण अङ्गों वाले वे दोनों मुनि वहाँ से भागकर चले और अपने पीछे आते हुए उस अति दुरासद तमोराशि तथा सुदर्शन चक्र को उन्होंने देखा था।१३८। वे दोनों यह कहते हुए भागे चले जाते थे कि अच्छी हम दोनों की कन्या प्राप्त होने की सिद्धि हुई। वे बहुत ही वेग से दौड़ लगा रहे थे और भय से परम दुःखित होकर निरन्तर लोकालोकान्त तक भागते ही रहे थे।।१३९। भय से परम पीड़ित होते हुए गोविन्द का स्मरण कर यह पुकार लगा रहे थे कि हे नारायण! हे नाथ! हमारी रक्षा करो हमको त्राण प्रदान करो। अन्त वे विष्णु लोक में पहुंच गये थे।१४०। वहाँ पहुंच कर उन दोनों ने भगवान् से कहा—हे वासुदेव! हे पद्मनाभ! आप तो समस्त इन्द्रियों के स्वामी हैं तथा भक्त-जनों के दुःखों के अर्दन करने वाले हैं। हे पुण्डरीकाक्ष! आप परम श्रेष्ठ पुरुष हैं और सब के नाथ हैं। आप हम दोनों की रक्षा करो।।१४१। इसके अनन्तर श्रीमान् श्रीवत्स के लांच्छन वाले नारायण ने विचार कर उस चक्र को तथा तमोराशि को भक्तों पर अनुग्रह करने की इच्छा से निवारित कर दिया था।१४२।

अम्बरींषश्च मद्भक्तस्तथैतौ मुनिसत्तमौ।
अनयोरस्य च तथा हितं कार्यं यथाऽधुना।१४३।
आहूय तत्तमः श्रीमान् गिरा प्रह्लादयन् हरिः।
प्रोवाच भगवान् विष्णुः शृणुतां म इदं वचः।१४४।
ऋषिशापो न चैवासीदन्यथा च वरो मम।
दत्तो नृपाय रक्षार्थं नास्ति तस्यान्यथा पुनः।१४५।
अम्बरीषस्य पुत्रस्य नप्तुः पुत्रो महायशाः।
श्रीमान्दशरथो नाम राजा भवति धार्मिकः।१४६।
तस्याहमग्रजः पुत्रो रामनामो भयाम्यहम्।
तत्र मे दक्षिणो बाहुभरतो नाम वै भवेत्।१४७।

शत्रुघ्नो नाम सव्यश्च शेषोऽसौ लक्ष्मणः स्मृतः ।
तत्र मां समुपागच्छ गच्छेदानीं नृपं विना ।१४८।
मुनिश्रेष्ठौ च हित्वा त्वमिति स्माह च माधवः ।
एवमुक्तं तमो नाशं तत्क्षणाच्च जगाम वै ।१४९।

तब श्रीमान् हरि ने उस तम को बुलाकर कहा—राजा अम्बरीष मेरा परम भक्त है और ये दोनों मुनि भी मेरे भक्त हैं। मैंने इस राजा का और इन दोनों मुनियों का परम हित का कार्य अब किया है। हरि ने अपनी वाणी से तम को प्रसन्न करते हुये कहा था कि तुम मेरा यह वचन श्रवण कर लो। यह ऋषि का शाप नहीं था। यह तो अन्य प्रकार से मेरा वरदान ही था। यह नृप की रक्षा के लिए दिया गया है। इसका फिर अन्यथा नहीं होगा ।१४३।१४४।१४५। राजा अम्बरीष के पुत्र के नाती का महान् यश वाला पुत्र दशरथ नाम वाला राजा परम धार्मिक होगा ।१४६। उसका मैं सबसे बड़ा पुत्र रामचन्द्र नाम वाला होऊँगा। वहाँ पर उस समय में मेरा दक्षिण वाहु भरत नामधारी होगा और वाम वाहु शत्रुघ्न नाम वाला होगा। यह शेष लक्ष्मण होगा। उस समय तू मेरे पास आना। अब राजा को छोड़कर चला जा ।१४७। ।१४८। माधव ने कहा—अब तू इन दोनों श्रेष्ठ मुनियों को छोड़ दे। इस प्रकार से भगवान् के द्वारा कहे जाने पर वह तम उसी समय नाश को प्राप्त हो गया था और वहाँ से चला गया था ।१४९।

निवारितं हरेश्चक्रं यथापूर्वमतिष्ठत ।
मुनिश्रेष्ठौ भयान्मुक्तौ प्रणिपत्य जनार्दनम् ।१५०।
निर्गतौ शोकसंतप्तौ ऊचतुस्तौ परस्परम् ।
अद्यप्रभृति देहान्तमावां कन्यापरिग्रहम् ।१५१।
न करिष्याव इत्युक्त्वा प्रतिज्ञाय च तावृषी ।
योगध्यानपरौ शुद्धौ यथापूर्वं व्यवस्थितौ ।१५२।
अम्बरीषश्च राजासौ परिपाल्य च मेदिनीम् ।
सभृत्यज्ञातिसम्पन्नो विष्णुलोकं जगाम वै ।१५३।
मानार्थमंबरीषस्य तथैव मुनिसिंहयोः ।

रामो दाशरथिर्भूत्वा नात्मवेदीश्वरोऽभवत् ।१५४।
मुनयश्च तथा सर्वे भृग्वाद्या मुनिसत्तमाः ।
माया न कार्या विद्वद्भिरित्याहुः प्रेक्ष्य तं हरिम् ।१५५।

निवारित किया हुआ वह हरि भगवान् का चक्र भी पूर्व की भाँति अवस्थित हो गया था । दोनों मुनि भय से मुक्त हो गये थे और उन्होंने जनार्दन को प्रणिपात करके वहाँ से निर्गमन किया था । वे परम शोक से दोनों ही संतप्त हो रहे थे तथा परस्पर में कह रहे थे कि आज से फिर कभी भी हम दोनों किसी भी कन्या का परिग्रह नहीं करेंगे । ऐसा कहकर उन दोनों ऋषियों ने पक्की प्रतिज्ञा की थी । फिर वे दोनों ही अपने योग के ध्यान में परम शुद्ध होते हुए परायण हो गये थे और पूर्व की ही भाँति व्यवस्थित हो गये ।१५०।१५१।१५२। उस राजा अम्बरीष ने भली-भाँति पृथ्वी का परिपालन किया था और फिर वह अपने भृत्य-ज्ञाति सब को साथ लेकर विष्णु लोक को चला गया था ।।१५३। राजा अम्बरीष के मान की रक्षा के लिए तथा दोनों मुनियों के वचनों का पूर्ण पालन करने के लिए राजा दशरथ के पुत्र श्रीराम हुए थे आत्मवेदी ईश्वर नहीं हुए थे ।१५४। उस समय भृगु आदि समस्त श्रेष्ठतम मुनिगण भी उन हरि को देखकर यही कहने लगे थे कि विद्वान पुरुषों को माया कभी नहीं करनी चाहिए ।१५५।

नारदः पर्वतश्चैव चिरं ज्ञात्वा विचेष्टितम् ।
मायां विष्णोर्विनिंद्यैव रुद्रभक्तौ बभूवतुः ।१५६।
एतद्धि कथितं सर्वं मय युष्माकमद्य वै ।
अम्बरीषस्य माहात्म्यं मायावित्वं च वै हरेः ।१५७।
यः पठेच्छृणुयाद्वापि श्रावयेद्वापि मानवः ।
मायां विसृज्य पुण्यात्मा रुद्रलोकं स गच्छतिः ।१५८।
इदं पवित्रं परम पुण्यं वेदैरुदीरितम् ।
सायं प्रातः पठेन्नित्यं विष्णोः सायुज्यमाप्नुयात् ।१५९।

नारद और पर्वत मुनि चिरकाल तक उस विचेष्टित का ध्यान करके तथा भगावन् विष्णु की माया की विशेष रूप से निन्दा करके रुद्र के

भक्त हो गये थे ।१५६। मैंने यह सब राजा अम्बरीष का माहात्म्य और भगवान् हरि का मायावी होना आज आप लोगों के समक्ष में कह दिया है ।१५७। इस परम पवित्र चरित्र को जो भी कोई मनुष्य पढ़ेगा या श्रवण करेगा अथवा इस चरित्र का श्रवण करायेगा वह परम पुण्यात्मा माया का त्याग करके रुद्र लोक में चला जायेगा ।१५८। यह चरित्र परम पुण्यमय एवं अत्यन्त ही पवित्र है—इसको वेदों ने कहा है । इसका सायङ्काल तथा प्रातःकाल में पाठ करने वाला भगवान् विष्णु के सायुज्य की प्राप्ति किया करता है ।१५९।

॥ ७६—लक्ष्मी की उत्पत्ति—अलक्ष्मीवास योग्य स्थान ॥

मायावित्वं श्रुतं विष्णोर्देवदेवस्य धीमतः ।
कथं ज्येष्ठासमुत्पत्तिर्देवदेवाज्जनार्दनात् ।१।
वक्तुमर्हसि चास्माकं लोमहर्षण तत्त्वतः ।
अनादिनिधनः श्रीमान्धाता नारायणः प्रभुः ।२।
जगद्द्वैधमिदं चक्रे मोहनाय जगत्पतिः ।
विष्णुर्वै ब्राह्मणान्वेदान्वेदधर्मान् सनातनान् ।३।
श्रियं पद्मां तथा श्रेष्ठां भागमेकमकारयत् ।
ज्येष्ठामलक्ष्मीमशुभां वेदबाह्यान्नराधमान् ।४।
अधर्मं च महातेजा भागमेकमकल्पयत् ।
अलक्ष्मीमग्रतः सृष्ट्वा पश्चात्पद्मां जनार्दनः ।५।
ज्येष्ठा तेन समाख्याता अलक्ष्मीर्द्विजसत्तमाः ।
अमृतोद्भववेलायां विषानंतरमुल्बणात् ।६।
अशुभा सा तथोत्पन्ना ज्येष्ठा इति च वै श्रुतम् ।
ततः श्रीश्च समुत्पन्ना पद्मा विष्णुपरिग्रहः ।७।

इस अध्याय में अलक्ष्मी की उत्पत्ति और उसके आवास के स्थलों एवं वास के योग्य स्थानों का निरूपण किया जाता है । ऋषियों ने कहा—देवों के भी देव परम धीमान् भगवान् विष्णु का मायावी होना हम लोगों ने आपके श्री मुख से भली-भाँति श्रवण किया है । अब आप

यह वताइये कि देवों के देव जनार्दन से ज्येष्ठा की समुत्पत्ति कैसे हुई थी ? ।१। हे लोमहर्षण ! आप यह तत्त्व पूर्वक हमको बताने के लिए परम योग्य हैं । सूतजी ने कहा—प्रभु नारायण तो अनादि निधन तथा श्रीमान् एवं सबके धाता हैं ।२। जगत् के स्वामी ने मोहन के लिये इस जगत् को दो प्रकार का कर दिया है। भगवान् विष्णु ने ब्राह्मण वेद और सनातन वेद के धर्मों का तथा श्रेष्ठ पद्मा श्री का एक भाग किया था और उस महान् तेजस्वी ने ज्येष्ठा-अशुभा-अलक्ष्मी तथा वेद वाह्य अधम नर और अधर्म का एक अलग भाग की कल्पना की है । भगवान् ने पहिले अलक्ष्मी का ही सृजन किया था फिर इसके अनन्तर जनार्दन पद्मा का सृजन किया है ।३।४।५। उसने इसका नाम ज्येष्ठा रक्खा है । हे द्विजश्रेष्ठो ! इसको अलक्ष्मी कहते हैं । यह ज्येष्ठा अमृत की उत्पत्ति के समय में विष के अनन्तर उल्वण से वह अशुभा समुत्पन्न हुई थी जो कि ज्येष्ठा—इस नाम से श्रूपमाण होती थी। इसके अनन्तर पद्मा श्री समुत्पन्न हुई थी जो कि भगवान् विष्णु का परिग्रह हुई थी ।६।७।

दुःसहो नाम विप्रर्षिरुपयेमेऽशुभां तदा ।
ज्येष्ठां तां परिपूर्णोऽसौ मनसा वीक्ष्य धिष्ठिताम् ।८।
लोकं चचार हृष्टात्मा तया सह मुनिस्तदा ।
यस्मिन् घोषो हरेश्चैव हरस्य च महात्मनः ।९।
वेदघोषस्तदा विप्रा होमधूमस्तथैव च ।
भस्मांगिनो वा यत्रासंस्तत्र तत्र भयार्दिता ।१०।
पिधाय कर्णौ संयाति धावमाना इत स्ततः ।
ज्येष्ठामेवंविधां दृष्ट्वा दुःसहो मोहमागतः ।११।
तया सह वनं गत्वा चचार स महामुनिः ।
ततो महद्वने घोरे याति कन्या प्रतिग्रहम् ।१२।
न करिष्यामि चेत्युक्त्वा प्रतिज्ञाय च तामृषिः ।
योगज्ञानपरः शुद्धो यत्र योगीश्वरो मुनि ।१३।
तत्रायांतं महात्मानं मार्कंडेयमपश्यत ।
प्रणिपत्य महात्मानं दुःसहो मुनिमब्रवीत् ।१४।

एक दुःसह नाम वाले विप्रर्षि थे। उन्होंने उस समय में उस ज्येष्ठा को मन से अधिष्ठित देखकर परिपूर्ण होने वाले उस विप्रर्षि ने अशुभा के साथ विवाह किया था।८। तब वह मुनि उसके साथ परम प्रसन्न होकर लोक में चरण किया करता था। जिस स्थान में हरि के शुभ नाम का संकीर्त्तन-ध्वनि होती थी या महात्मा हर के नाम का घोष सुनाई देता था।९। जहाँ पर भी ब्राह्मणों के द्वारा वेद ध्वनि होती थी या होम का धूम होता था अथवा भस्म अंग पर धारण करने वाले जहाँ पर भी होते थे वहाँ पर यह ज्येष्ठा भय से भीत एवं दुःखित होकर और दोनों अपने कानों को ढांप कर इधर-उधर भागा करती थी। इस प्रकार से रहने वाली इस ज्येठा को देखकर वह विप्रर्षि मोह को प्राप्त हो गया था।१०।११। फिर वह महामुनि उसको साथ में लेकर वन में विचरण करने लगा था। उस घोर महान् वन में वह तप करता कि वह कन्या पतिग्रह को प्राप्त होगी किन्तु उसने मैं प्रतिग्रह नही करूँगी ऐसी उन ऋषि से प्रतिज्ञा की थी। उस स्थान पर योगीश्वर मुनि शुद्ध होकर योग ज्ञान में परायण रहा करता था।१२।१३। वहाँ पर एक बार उस मुनि ने आये हुए मार्कण्डेय मुनि का दर्शन प्राप्त किया था। ऋषि विप्रर्षि ने मार्कण्डेय मुनि को यथाविधि प्रणाम करके उनसे कहा था।१४।

भार्येयं भगवन्मह्यं न स्थास्यति कथंचन।
किं करोमीति विप्रर्षे ह्यनया सह भार्यया।१५।
प्रविशामि तथा कुत्र कुतो न प्रविशाम्यहम्।
शृणु दुःसह सर्वत्र अकीर्तिरशुभान्विता।१६।
अलक्ष्मीरतुला चेयं ज्येष्ठा इत्यभिभाषिता।
नारायणपरा यत्र वेदमार्गानुसारिणः।१७।
रुद्रभक्ता महात्मानो भस्मोद्धूलितविग्रहाः।
स्थिता यत्र जना नित्यं मा विशेथाः कथंचन।१८।
नारायण हृषीकेश पुण्डरीकाक्ष माधव।
अच्युतानन्त गोविंद वासुदेव जनार्दनः।१९।

रुद्र रुद्रेति रुद्रेति शिवाय च नमो नमः ।
नमः शिवतरायेति शङ्करायेति सर्वदा ।२०।
महादेव महादेव महादेवेति कीर्तयेत् ।
उमायाः पतये चैव हिरण्यपतये सदा ।२२।
हिरण्यबाहवे तुभ्यं वृषांकाय नमो नमः ।
नृसिंह वामनाचित्य माधवेति च ये जनाः ।२२।
वक्ष्यन्ति सततं हृष्टा ब्राह्मणाः क्षत्रियास्तथा ।
वैश्याः शूद्राश्च ये नित्यं तेषां धनगृहादिषु ।
आरामे चैव गोष्ठेषु न विशेषाः कथंचन ।२३।

हे भगवन् ! यह भार्या मेरे पास किसी प्रकार भी नहीं रहेगी । हे विप्रर्षे ! मैं इस भार्या के साथ क्या करूँ ? मैं कहाँ तो प्रवेश करूँ और मैं कहाँ प्रवेश नहीं करूँ ? मार्कण्डेय जी ने कहा—आप सुनिये, अशुभ से युक्त अकीर्त्ति सर्वत्र ही दुस्सह होती है ।१५।१६। यह अतुला अलक्ष्मी है और ज्येष्ठा—ही नाम से पुकारी जाती है । जहां पर भगवान् नारायण में परायण—रहने वाले वेदों के मार्ग का अनुसरण करने वाले रुद्र के भक्त-महान् आत्मा वाले भस्म से उद्धूलित शरीरों वाले मनुष्य जहाँ पर नित्य स्थित रहा करते हैं वहाँ आप किसी भी प्रकार से कभी प्रवेश न किया करें ।१७।१८। जहाँ पर हे नारायण—हृषीकेश-पुण्डरीकाक्ष-माधव-अच्युतानन्द-गोविन्द-वासुदेव-जनार्दन इन भगवान् के परम पवित्र एवं शुभ नामों को तथा रुद्र-रुद्र हे रुद्र ! शिव के लिये बारम्बार नमस्कार है । सर्वदा शिव तर एवं शङ्कर के लिए प्रणाम है—हे महादेव ! हे महादेव ! हे महादेव ! —इस प्रकार से शिव के शुभ तम नामों को पुकार कर कीर्त्तन किया जाता हो—उमा के पति के लिए—सदा हिरण्य पति के लिए तथा हिरण्य वाहु वाले तुम्हारे लिए तथा वृषाङ्क के लिये बारम्बार नमस्कार है । हे नृसिंह ! हे वामन ! हे माधव !—इस प्रकार से जहाँ पर मनुष्य बोलते हों-चाहे वे ब्राह्मण हों या क्षत्रिय-वैश्य तथा शूद्र ही हों भगवन्नामोच्चारण करके परम प्रसन्नता प्राप्त करने वाले रहते हों उनके धनगृहादि में-आरामोद्यानों में और गोष्ठ में आपको कभी

किसी भी प्रकार से प्रवेश नहीं करना चाहिए ।१९।२०।२१।२२।२३।

ज्वालामालाकरालं च सहस्रादित्यसन्निभम् ।
चक्रं विष्णोरतीवोग्रं तेषां हन्ति सदाशुभम् ।२४।
स्वाहाकारो वषट्कारो गृहे यस्मिन् हि वर्तते ।
तद्धित्वा चान्यमागच्छ सामघोषोथ यत्र वा ।२५।
वेदाभ्यासरता नित्यं नित्यकर्मपरायणाः ।
वासुदेवार्चनरता दूरतस्तान्विसर्जयेत् ।२६।
अग्निहोत्रं गृहे येषां लिंगार्चा वा गृहेषु च ।
वासुदेवतनुर्वापि चंडिका यत्र तिष्ठति ।२७।
दूरतो व्रज तान् हित्वा सर्वपापविवर्जितान् ।
निस्यनैमित्तिकैर्यज्ञैर्यजति च महेश्वरम् ।२८।
तान् हित्वा व्रज चान्यत्र दुःसहत्वं सहानया ।
श्रोत्रिया ब्राह्मणा गावो गुरवोऽतिथयः सदा ।२९।
रुद्रभक्ताश्च पूज्यन्ते यैर्नित्य तान् विवर्जयेत् ।
यस्मिन्प्रवेशो योग्यो मे तद्ब्रूहि मुनिसत्तम ।३०।

ऐसे भक्त पुरुषों के अशुओं को तो ज्वालाओं की मालाओं से महान् विकराल स्वरूप वाला सहस्रों सूर्यों के समान तेज से युक्त अत्यन्त उग्र भगवान् विष्णु का सुदर्शन चक्र सर्वदा हनन कर दिया करता है ।२४। जिस घर में स्वाहा कार तथा वषट् कार होता हो—इन ऐसे स्थलों का भी आपको परित्याग करके ही रहना चाहिए । जहाँ सामवेद के मन्त्रों का उद्घोष होता है तथा जो सदा वेदों के स्वाध्याभ्यास में रति रखने वाले निरन्तर उसमें संलग्न रहते हों एवं नित्य कर्मानुष्ठान में परायण रहने वाले लोग निवास करते हों तथा भगवान् वासुदेव की अर्चना में रत हों ऐसे स्थलों को तो आपको दूर से ही त्याग कर देना चाहिए ।२५।२६। जिन घरों में नित्य ही अग्निहोत्र होता हो तथा शिव की लिङ्गार्चना हुआ करती हो तथा वासुदेव की मूर्त्ति अथवा चण्डिका देवी की प्रतिमा जहाँ विराजमान हो ऐसे समस्त प्रकार के पापों से रहित स्थलों को छोड़कर आपको दूर ही से चल देना चाहिए । नित्य तथा

नैमित्तिक यज्ञों के द्वारा जहाँ पर महेश्वर का यजन लोग किया करते हैं उन स्थानों का भी त्याग करके ही अन्य स्थानों में इस अपनी भार्या के साथ दुस्सहता पूर्वक भले जाया करें। श्रोत्रिय ब्राह्मण-गौयें-गुरु वर्ग और अतिथि गण-रुद्र के भक्त जहाँ सदा पूज्य हुआ करते हैं नित्य ही उन स्थलों को आपको त्याग ही देना चाहिए। दुःसह ने कहा—हे मुनि-श्रेष्ठ ! अब आप मुझे वह स्थल बता देने की कृपा करें जिनमें मेरा प्रवेश योग्य होता हो।२७।२८।२९।३०।

त्वद्वाक्याद्भयनिर्मुक्तो विशान्मेषां गृहे सदा।
न श्रोत्रिया द्विजा गावो गुरवोऽतिथयः सदा।
यत्र भर्ता च भार्या च परस्परविरोधिनौ।३१।
सभार्यस्त्वं गृहं तस्य विशेथा भयवर्जितः।
देवदेवो महादेवो रुद्रस्त्रिभुवनेश्वरः।३२।
विनिंद्यो यत्र भगवान् विशस्व भयवर्जितः।
वासुदेवरतिर्नास्ति यत्र नास्ति सदाशिवः।३३।
जपहोमादिकं नास्ति भस्म नास्ति गृहे नृणाम्।
पर्वण्यभ्यर्चनं नास्ति चतुर्दश्यां विशेषतः।३४।
कृष्णाष्टम्यां च रुद्रस्य संध्यायां भस्मवर्जिताः।
चतुर्दश्यां महादेवं न यजन्ति च यत्र वै।३५।
विष्णोर्नामविहीना ये संगताश्च दुरात्मभिः।
नमः कृष्णाय शर्वाय शिवाय परमेष्ठिने।३६।
ब्राह्मणाश्च नरा मूढा न वदन्ति दुरात्मकाः।
तत्रैव सततं वत्स सभार्यस्त्वं समाविश।३७।

आपके वाक्य से मैं भय से विनिर्मुक्त होकर इन लोगों के घर में सदा प्रवेश किया करूँगा। मार्कण्डेय जी ने कहा—जहाँ पर श्रोत्रिय द्विज-गौऐं-गुरु वर्ग तथा अतिथि सदा निवास न किया करते हों और जहाँ पर भर्त्ता तथा भार्या में नित्य ही परस्पर में विरोध रहता हो वहाँ पर अपनी भार्या के साथ भय से रहित होकर उस घर में प्रवेश किया कीजिए। देवों के भी देव त्रिभुवन के स्वामी महादेव श्री रुद्र की जहाँ

निन्दा होती हो अर्थात् भगवान् की बुराई जिस घर में हुआ करती है उन घर में बिल्कुल भय से रहित होकर आप प्रवेश करिए। जहाँ भगवान् वासुदेव की रति नहीं हो और सदा शिव की भक्ति तथा अनुरक्ति का अभाव हो जप एवं होम आदि कुछ भी जहाँ पर नहीं होता हो और जिस घर में भस्म मनुष्यों के लगाने के लिए नहीं हो-पर्व के समय में अर्चन जहाँ नहीं होता हो तथा विशेष कर चतुर्दशी के दिन जहाँ पर यजन नहीं किया जाता हो-मास के कृष्णाष्टमी के दिन रुद्र की भस्म से वर्जित संध्या के समय में मनुष्य रहा करते हों और चतुर्दशी में महादेव का यजन नहीं किया करते हैं—जिस जगह मानव विष्णु के पवित्र नामोच्चारण से रहित रहा करते हों तथा दुष्ट आत्माओं वाले मनुष्य की सङ्गति किया करते हैं एवं 'कृष्ण के लिए नमस्कार है- परमेष्ठी शिव शर्व के लिए प्रणाम है'–इस प्रकार से जहां पर ब्राह्मण तथा मनुष्य मूढ़ता एवं दुष्टता के वश होकर नहीं बोला करते हैं–हे वत्स ! वहाँ पर ही तू अपनी भार्या के निरन्तर प्रवेश किया करो।३१।३२।३३।३४ ३५।३६।३७।

वेदघोषो न यत्रास्ति गुरुपूजादयो न च।
पितृकर्मविहोनांस्तु सभार्यस्त्वं समाविश ।३८।
रात्रौ रात्रौ गृहे यस्मिन् कलहो वर्तते मिथः।
अनया सार्धमनिशं विश त्वं भयवर्जितः। ३९।
लिंगार्चनं यस्य नास्ति यस्य नास्ति जपादिकम् ।
रुद्रभक्तिर्विनिंदा च तत्रैव विश निर्भयः।४०।
अतिथिः श्रोत्रियो वापि गुरुर्वा वैष्णवोपि वा।
न सन्ति यद्गृहे गावः सभार्यस्त्वं समाविशः।४१।
बालानां प्रेक्षमाणानां यत्रादत्त्वा त्वभक्षयन् ।
भक्ष्याणि तत्र संहृष्टः सभार्यस्त्वं समाविश ।४२।
अनभ्यर्च्य महादेवं वासुदेवमथापि वा ।
अहुत्वा विधिवद्यत्र तत्र नित्यं समाविश ।४३।
पाप कर्मरता मूढा दयाहीनाः परस्परम् ।

गृहे यस्मिन्समासन्ते देशे वा तत्र संविश ।४४।

जिस स्थान पर वेद के मन्त्रों की ध्वनि कभी भी नहीं होती है तथा गुरु वर्ग की अर्चना आदि सत्कृति नहीं हुआ करती है और जो लोग पितृ कर्म से विहीन होकर निवास किया करते हैं वहाँ पर ही तुम भार्या ज्येष्ठा के साथ प्रवेश किया करो ।३८। जिस घर में प्रत्येक रात्रि में आपस में कलह हुआ करता है वहाँ पर ही तुम भय से रहित होकर इस अपनी पत्नी के साथ बराबर प्रवेश किया करो ।३९। जिस पुरुष के घर में शिव के लिङ्ग का अर्चन नहीं होता है और जो पुरुष कभी भी मन्त्रों के जप आदि नहीं किया करता है जिस मानवके घर में भगवान् रुद्र की भक्ति का अभाव ही रहता है तथा उल्टी देवों की निन्दा की जाया करती है वहाँ तुम बिना किसी भय के प्रवेश किया करो ।४०। जिस स्थान में कोई अतिथि आकर सत्कार ग्रहण नहीं किया करता है और कोई वेदज्ञ श्रोत्रिय न रहता है गुरु तथा विष्णु का भक्त वैष्णव स्थिति नहीं करता है जिस घर में गौ नहीं रहती हैं ऐसे घरों में तुम भार्या के सहित प्रवेश किया करो ।४१। जिस घर में बालकों के देखते रहने पर उन्हें कुछ भी न देकर भक्ष्य पदार्थों को स्वयं मानव खा जाया करते हैं उस घर में तुम सपत्नीक सानन्द प्रवेश किया करो ।४२। महादेव अथवा भगवान् वासुदेव का अभ्यर्चन न करके तथा विधि पूर्वक हवन नहीं करके लोग रहा करते हैं उन घरों में नित्य ही तुम अपना प्रवेश किया करो ।४३। जहाँ मानव पाप कर्म में समारूढ़ होकर परस्पर में दया से रहित होते हुए निवास किया करते हैं उस घर में तथा देश में तू भली-भाँति प्रवेश करके निवास किया कर ।४४।

प्राकारागारविध्वंसा न चैवेड्या कुटुम्बिनी ।
तद्गृहं तु समासाद्य वस नित्यं हि हृष्टधीः ।४५।
यत्र कंटकिनो वृक्षा यत्र निष्पाववल्लरी ।
ब्रह्मवृक्षश्च यत्रास्ति सभार्यस्त्वं समाविश ।४६।
अगस्त्यार्कादयो वापि बन्धुजीवो गृहेषु वै ।
करवीरो विशेषेण नन्द्यावर्तमथापि वा ।४७।

मल्लिका वा गृहे येषां सभार्यस्त्वं समाविश ।
कन्या च यत्र गौ वल्लो द्रोही वा च जटी गृहे ।४८।
बहुला कदली यत्र सभार्यस्त्वं समाविश ।
तालं तमालं भल्लातं तित्तिडीखंडमेव च ।४९।
कदम्ब: खादिरं वापि सभार्यस्त्वं समाविश ।
न्यग्रोधं वा गृहे येषामश्वत्थ चूतमेव वा ।५०।
उदुंबरं वा पनसं सभार्यस्त्वं समाविश ।
यस्य काकगृहं निंबे आरामे वा गृहेपि वा ।५१।
दण्डिनी मुण्डिनी वापि सभार्यस्त्वं समाविश ।
एका दासी गृहे तत्र त्रिगवं पञ्चमाहिषम् ।५२।

प्राकार से समन्वित आगार में विध्वंस वाली कुटुम्बिनी ईडित करने के योग्य नहीं है । उसके गृह को प्राप्त करके प्रसन्न चित्त होकर वहां नित्य निवास करो ।४५। जहाँ पर काँटे वाले वृक्ष हों और जहाँ पर निष्पाव वल्लरी हो तथा जिस स्थान में ब्रह्म वृक्ष हो वहाँ पर ही अपना भार्या के सहित तुम निवास करो ।४६। अगस्त्य तथा अर्क आदि दूध वाले वृक्ष-बन्धु जीव-करवीर और विशेष रूप से तगर जिस गृह में हों अथवा मल्लिका लता जहाँ पर हो वहाँ पर तुमको अपनी भार्या के साथ में लेकर निवास करना चाहिए । जिस गृह में या स्थान में अपराजिता अजमोद की वल्ली-निम्ब तथा जटा मांसी हो वहाँ पर ही तुम भार्या के सहित अपना निवास करो । जिस स्थान में बहुदायत से कदली के पेड़ उगे हुये हैं वहाँ पर भार्या सहित निवास करना चाहिए । ताल-तमाल-भिलावा तिन्तड़ी खण्ड-कदम्ब एवं खदिर के वृक्ष हों वहाँ पर तुम निवास करो । जिनके घर में न्यग्रोध (वट) तथा अश्वत्थ (पीपल) एवं आम्र का वृक्ष हों और उदुम्वर (गूलर) तथा पनस (कटहल) का पेड़ हों वहाँ तुम निवास करो ।४५।४६।४७।४८।४९। जिसके नीम में कौए का घर हो तथा बाग में या घर में भी काकों का निवास स्थल बना हुआ हो तथा दण्ड विशिष्टा या नतमस्तका हो वहाँ पर भार्या के सहित निवास करो । जहाँ एक दासी-तीन गौ और पाँच भैंस

हों-छै अश्व तथा सात हाथी रहते हों वहाँ तुझे भार्या के साथ प्रवेश करना चाहिए ।५०।५१।५२।

षडश्वं सप्तमातंगं सभार्यस्त्वं समाविश ।
यस्य काली गृहे देवी प्रेतरूपा च डाकिनी ।५३।
क्षेत्रपालोथवा यत्र सभार्यस्त्व समाविश ।
भिक्षुबिंबं च नौ यस्य गृहे क्षपणकं तथा ।५४।
बौद्धं वा बिंबमासाद्यं तत्र पूर्ण समाविश ।
शयनासनकालेषु भोजनाटनवृत्तिषु ।५५।
येषां वदति नो वाणी नामानि च हरेः सदा ।
तद्गृहं ते समाख्यातं सभार्यस्य निवेशितुम् ।५६।
पाषंडाचारनिरताः श्रौतस्मार्तबहिष्कृताः ।
विष्णुभक्ति विनिर्मुक्ता महादेवविनिंदकाः ।५७।
नास्तिकाश्च शठा यत्र सभार्यस्त्वं समाविश ।
सर्वस्मादधिकत्वं ये न वदन्ति पिनाकिनः ।५८।
साधारणं स्मरंत्येनं सभार्यस्त्वं समाविश ।
ब्रह्मा च भगवान्विष्णुः शक्रः सर्वसुरेश्वरः ।५९।
रुद्रप्रसादजाश्चेति न वदन्ति दुरात्मकाः ।
ब्रह्मा च भगवान्विष्णुः शक्रश्च सम एव च ।६०।
वदन्ति मूढाः खद्योतं भानुं वा मूढचेतसः ।
तेषां गृहे तथा क्षेत्र आवासे वा सदाऽनया ।६१।
विश भुक्ष्व गृहं तेषां अपि पूर्णमनन्यधीः ।
येऽश्नंति केवलं मूढाः पक्वपन्नं विचेतसः ।६२।

जिस घर में काली देवी हो और प्रेत के स्वरूप वाली डाकिनी हो अथवा क्षेत्रपाल हो अर्थात् भैरव हो जिस स्थान पर किसी परि व्राजक की प्रतिमा तथा नग्न मूर्त्ति हो या बौद्ध-प्रतिमा हो वहाँ पर अपना पूर्णतया प्रवेश करो। जहाँ शयनासन के समयों में एवं भोजन तथा अरन की वृत्तियों में जिनकी वाणी हरि के नामों को सर्वदा नहीं बोला करती है वह गृह ही भार्या के सहित तुम्हारे निवास करने के लिए बताया गया

है ।५३।५४।५५।५६। दम्भ से परिपूर्ण आचार में निरत रहने वाले-श्रुति प्रतिपादित एवं स्मृति के द्वारा निर्दिष्ट धर्म से वहिष्कृत-विष्णु की भक्ति से रहित और महादेव की निन्दा करने वाले नास्तिक (ईश्वर की सत्ता के न मानने वाले) शठ जहाँ पर रहा करते हैं वहीं पर तुमको सपत्नीक निवास करना चाहिए । जो लोग भगवान पिनाकी (शिव) को सबसे अधिक नहीं कहा करते हैं और उनको एक साधारण-सा देव ही मानते हैं वहाँ पर तुम अपना निवास स्थल बनाओ । ब्रह्मा भगवान् विष्णु और देवों का राजा इन्द्र ।५७।५८।५९। ये सब रुद्र के प्रसाद से ही समुत्पन्न हुआ करते हैं ऐ । जहाँ के लोग नहीं कहते हैं और दुष्ट आत्मा वाले होते हैं । ब्रह्मा-विष्णु और इन्द्र ये सब समान ही होते हैं—ऐसा कहने वाले मूढ चित्त के महा मूढ लोग भानु (सूर्य) को भी खद्योत कहा करते हैं । उनके घर में-क्षेत्र में अथवा आवास के सदा इस अपनी पत्नी के साथ उनके पूर्ण भी गृह का अनन्य बुद्धि वाला होकर भोग करो । जो मूढ अज्ञान वाले केवल पके हुए अन्न को खाते हैं ।६०। ६१।६२।

स्नानमंगलहीनाश्च तेषां त्वं गृहमाविश ।
य: नारी शौचविभ्रष्टा देहसंस्कारर्वाजता ।६३।
सर्वभक्षरता नित्यं तस्या: स्थाने समाविश ।
मलिनास्या स्वयं मर्त्या मलिनांबरधारिण: ।६४।
मलदन्ता गृहस्थाश्च गृहे तेषां समाविश ।
पादशौचविनिर्मुक्ता: संध्याकाले च शायिन: ।६५।
संध्यायाम श्नुते ये वै गृहं तेषा समाविश ।
अत्याशनरता मर्त्या अतिपानरता नरा: ।६६।
द्यूतवादक्रियामूडा: गृहे तेषां समाविश ।
ब्रह्मस्वहारिणो ये चायोग्यांश्चैव यजन्ति वा ।६७।
शूद्रान्नभोजिनो वापि गृहं तेषां समाविश ।
मद्यपानरता. पापा मांस भक्षणतत्परा: ।६८।

परदाररता मर्त्या गृहं तेषां समाविशः ।
पर्वण्यनर्चाभिरता मैथुने वा दिवा रताः ।६९।
सध्यायां मैथुनं येषां गृहे तेषां समाविश ।७०।
रजस्वलां स्त्रियं गच्छेच्चांडालीं वा नराधमः ।७१।

और जो स्नान तथा मङ्गल से हीन होते हैं उनके गृह में तुम प्रवेश करो । जो नारी शुद्धता से भ्रष्ट रहती हो तथा अपने देह के संस्कारों से हीन होती है—सब प्रकार के भक्ष्य पदार्थों के भक्षण करने में रत नित्य ही रहा करती है उसके स्थान में तुम अपना प्रवेश करो । जो गृहस्थी मलिन मुख वाले और जो मनुष्य मैले वस्त्र धारण करने वाले हैं–जिनके दाँत मैले रहा करते हैं ऐसे गृहस्थों के घर तू अपना प्रवेश कर । जो पांदों (पैरों) की शुद्धि से रहित हों अर्थात् पैरों को नहीं धोया करते हैं तथा सन्ध्या के समय में शयन किया करते हैं एवं सन्ध्या के समय में जो खाया करते हैं उनके घर में तुझे प्रवेश करना चाहिए । जो मनुष्य अत्यधिक खाने में रति रखने वाले हों तथा अत्यन्त पान करने वाले हों और जो द्यूत एवं वाद की क्रिया करने वाले मूढ होते हैं उनके घर में तुमको प्रवेश करके अपना निवास बनाना चाहिए । जो ब्रह्मस्व अर्थात् ब्राह्मणों के धन-सम्पत्ति को हरण करने वालें हैं और अयोग्यों का यजन किया करते हैं—शूद्र के अन्न का भोजन करते हैं । मद्य पान करने में रति रखने वाले हैं—माँस भक्षण करने वाले हैं–पराई स्त्रियों से प्रेमानुराग करने वाले– पर्व दिनों से भी अर्चन न करने वाले तथा दिन के समय में ही मैथुन करने वाले मनुष्य जहाँ पर निवास किया करते हैं वहाँ अपना निवास बनालो । जो सन्ध्या के समय में मैथुन करने वाले पुरुष हों और जो नराधम रजस्वला स्त्री तथा चाण्डाल स्त्री का अभिगमन किया करते हैं उनके घर में निवास करो ।६३।६४।६५।६६।६७।६८।६९। ७०।७१।

कन्यां वा गोगृहे वाहि गृहं तेषां समाविश ।
बहुना किं प्रलापेन नित्यकर्मबहिष्कृताः ।७२।
रुद्रभक्तिविहीना ये गृहं तेषां समाविश ।
श्रृंगैर्दिव्यौषधैः क्षुद्रैः शेफ आलिप्य गच्छति ।७३।

भगद्रावं करोत्यस्मात्सभार्यस्त्वं समाविश ।
इत्युक्त्वा स मुनिः श्रीमान्निमार्ज्य नयने तदा ।७४।
ब्रह्मर्षिब्रह्मसंकाशस्तत्रैवांतर्द्धिमातनोत् ।
दुःसहश्च तथोक्तानि स्थानानि च समीयिवान् ।७५।
विशेषाद्देवदेवस्य विष्णोर्निंदारतात्मनाम् ।
सभार्यो मुनिशार्दूलः सैषा ज्येष्ठा इति स्मृता ।७६।
दुःसहस्तामुवाचेदं तडागाश्रममन्तरे ।
आस्व त्वमत्र चाहं वै प्रवेक्ष्यामि रसातलम् ।७७।
आवयोः स्थानमालोक्य निवासार्थं ततः पुनः ।
आगमिष्यामि ते पार्श्वमित्युक्ता तमुवाच सा ।७८।
किमश्नामि महाभाग को मे दास्यति वै बलिम् ।
इत्युक्तस्तां मुनिः प्राह याः स्त्रियस्त्वां यजन्ति वै ।७९।
बलिभिः पुष्पधूपैश्च न तासां च गृहं विश ।
इत्युक्त्वा त्वाविशत्तत्र पातालं बिलयोगतः ।८०।

जो किसी कन्या का अभिगमन करते हैं तथा गौओं के गृह में प्रसङ्ग किया करते हैं उन पुरुषों के घर में तुमको प्रवेश करके अपना आवास बनाना चाहिए। अत्यधिक कथन से क्या फल होगा निष्कर्ष रूप में यही कहते हैं कि जो पुरुष अपने नित्य कर्म से वहिष्कृत हों तथा भगवान् रुद्र देव की भक्ति से रहित हों और भग का द्रावण करने के लिए जननेन्द्रिय को श्रङ्ग, दिव्यौषधि और क्षुद्रों से प्रलिप्त कर अभिगमन किया करते हैं उनके घर में तुझे प्रवेश करना चाहिए। सूतजी ने कहा—इस प्रकार से इतना कहकर उस समय में उस महामुनि ने अपने नेत्रों का निर्मार्जन करके वह ब्रह्मा के सदृश ब्रह्मर्षि वहाँ पर ही अन्तर्धान हो गये थे। और दुःसह ने वे सब बताये हुए स्थानों की प्राप्ति की थी ।७२।७३।७४। ।७५। विशेष रूप से देवों के देव विष्णु तथा भगवान शिव की निन्दा करने में रत रहने वाले लोगों के स्थानों में जो कि मार्कण्डेय मुनि ने बतलाये थे वह मुनि शार्दूल दुःसह और ज्येष्ठा नाम वाली उसकी पत्नी ये दोनों गये थे ।७६। उस समय वह दुःसह अपनी भार्या ज्येष्ठा से

बोले—यहाँ जल का आश्रय तालाब हैं और निवास का आश्रम भी है। इसके मध्य में- जो पीपल का वृक्ष है उस पर तुम ठहरो मैं रसातल में प्रवेश करूँगा।७७। वहाँ हम दोनों के निवास करने का आश्रम देखकर तुम्हारे पास अभी कुछ समय में आ जाऊँगा। ऐसा कहने पर वह ज्येष्ठा उसकी भार्या उससे बोली—हे महाभाग ! मैं यहाँ पर क्या भोजन करूँगी और मुझे कौन यहाँ बलि देगा। इस बात का श्रवण कर दुःसह मुनि ने उससे कहा था—जो स्त्रियाँ तुम्हारा यजन किया करती हैं वे बलि और धूप दीप आदि सभी दिया करती हैं किन्तु तुम उनके घरों में प्रवेश मत करना। यह कहकर मुनि विल के द्वारा वहाँ पर पाताल में प्रवेश कर गया था।७८।७९।८०।

अद्यापि च विनिर्मग्नो मुनिः स जलसंस्तरे।
ग्रामपर्वतबाह्येषु नित्यमास्तेऽशुभा पुनः।८१।
प्रसंगाद्देवदेवेशो विष्णुस्त्रिभुवनेश्वरः।
लक्ष्म्या दृष्टस्तया लक्ष्मीः सा तमाह जनार्दनम्।८२।
भर्ता गतो महाबाहो बिलं त्यक्त्वा स मां प्रभो।
अनाथाहं जगन्नाथ वृत्तिं देहि नमोस्तु ते।८३।
इत्युक्तो भगवान्विष्णुः प्रहस्याह जनार्दनः।
ज्येष्ठामलक्ष्मीं देवेशो माधवो मधुसुदनः।८४।
ये रुद्रमनघं शर्वं शंकरं नील लोहितम्।
अम्बां हैमवतीं वापि जनित्रीं जगतामपि।८५।
मद्भक्तान्निदयन्त्यत्र तेषां वित्तं तवैव हि।
येपि चैव महादेवं विनिंद्यैव यजन्ति माम्।८६।
मूढा ह्यभाग्या मद्भक्ता अपि तेषां धनं तव।
यस्ताज्ञया ह्यहं ब्रह्मा प्रसादाद्वर्तते सदा।८७।
ये यजन्ति विनिंद्यैव मम विद्वेषकारकाः।
मद्भक्ता नैव ते भक्ता इव वर्तंति दुर्मदा-।८८।
तेषां गृहं धनं क्षेत्रमिष्टापूर्तं तवैव हि।
इत्युक्त्वा तां परित्यज्य लक्ष्म्याऽलक्ष्मीं जनार्दनः।८९।

वह मुनि आज तक भी उस जल संस्तर में विनिर्मग्न हो रहा है और वह अशुभा नित्य ही ग्राम पर्वत आदि बाह्य भागों में स्थित रहा करती है ।८१। प्रसङ्ग वश एक समय देवों के भी देव त्रिभुवन के स्वामी भगवान् विष्णु को उस लक्ष्मी ने देखा था और वह लक्ष्मी उन भगवान् जनार्दन से बोली—हे महान् बाहुओं वाले भगवन् ! हे प्रभो ! मेरा स्वामी यहाँ मुझे त्याग कर बिल में चला गया है हे जगतों के नाथ ! मैं इस समय बिल्कुल ही अनाथा हो गई हूँ । मुझे वृत्ति प्रदान करो । आपको मेरा प्रणाम है ।८२।८३। सूतजी ने कहा—इस प्रकार से कहे गये भगवान् जनार्दन देवेश-माधव-मधुसूदन विष्णु हँसकर उस ज्येष्ठा-अलक्ष्मी से बोले—श्री विष्णु ने कहा जो पुरुष अनघ रुद्र-शर्व-शङ्कर और नील लोहित की तथा हैमवती समस्त जगतों की जननी जगदम्बा की और मेरे भक्तों की यहाँ पर निन्दा किया करते हैं उनका जो सम्पूर्ण धन है वह सभी तेरा ही है । और जो महादेव की निन्दा करके मेरा यजन किया करते हैं वे महान् मूढ हैं और भाग्यहीन होते हैं । भले ही मेरे वे भक्त हैं उनका भी सब धन तेरा ही है । जिसकी आज्ञा से और प्रसाद से मैं और ब्रह्मा सदा वर्त्तमान रहते हैं उसकी निन्दा करके जो यजन किया करते हैं वे मेरे विद्वेष करने वाले ही होते हैं । वे मेरे भक्त ही नहीं हैं केवल दिखाने को ही भक्तों की तरह रहा करते हैं वे दुर्मद हैं । उनका सब धन-क्षेत्र और इष्टापूर्त्त सम्पूर्ण तेरा ही है । सूतजी ने कहा—ऐसा कहकर उस अलक्ष्मी का त्याग कर लक्ष्मी के साथ भगवान् जनार्दन ने जाप किया था ।८४।८५।८६।८७।८८।८९।

जजाप भगवान्रुद्र अलक्ष्मीक्षयसिद्धये ।
तस्मात्प्रदेयस्तस्यै च बलिर्नित्यं मुनीश्वराः ।९०।
विष्णुभक्तैर्न सन्देहः सर्वयत्नेन सर्वदा ।
अंगनाभिः सदा पूज्या बलिभिर्विविधैर्द्विजाः ।९१।
यः पठेच्छृणुयाद्वापि श्रावयेद्वा द्विजोत्तमान् ।
अलक्ष्मीवृत्तमनघो लक्ष्मीवाल्लँभते गतिम् ।९२।

भगवान् ने स्वयं उस अलक्ष्मी के क्षय करने के लिए रुद्र का जप

किया था। इसलिए हे मुनिश्वरो ! उस अलक्ष्मी के लिए नित्य ही बलि देना चाहिए। जो विष्णु के भक्तगण हैं उनको सभी प्रकार के प्रयत्नों के द्वारा सर्वदा उसे बलि अवश्य ही देना चाहिए इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है। हे द्विजगण ! अङ्गनाओं को उसका सदा ही विविध भाँति की बलियों के द्वारा पूजन करना चाहिए ।६०।६१। इस अलक्ष्मी के वृत्त को जो कोई भी पढ़ता है-श्रवण किया करता है या श्रेष्ठ द्विजों को श्रवण कराता है वह निष्पाप होकर लक्ष्मी वाला हो जाता है और शुभ गति को प्राप्त किया करता है ।६२।

॥ ७६—विष्णु-अष्टाक्षर, द्वादशाक्षर मन्त्र ॥

किंजपान्मुच्यते जन्तुः सर्वलोकभयादिभिः ।
सर्वपापविनिर्मुक्तः प्राप्नोति परमां गतिम् ।१।
अलक्ष्मीं वाथ संत्यज्य गमिष्यति जपेन वै ।
लक्ष्मीवासो भवेन्मर्त्यः सूत वक्तुमिहार्हसि ।२।
पुरा पितामहेनोक्तं वसिष्ठाय महात्मने ।
वक्ष्ये संक्षेपतः सर्वं सर्वलोकहिताय वै ।३।
शृण्वन्तु वचनं सर्वे प्रणिपत्य जनार्दनम् ।
देवदेवमजं विष्णुं कृष्णमच्युतमव्ययम् ।४।
सर्वपापहरं शुद्धं मोक्षद ब्रह्मवादिनम् ।
मनसा कर्मणा वाचा यो विद्वान्पुण्मकर्मकृत् । ।
नारायणं जपेन्नित्यं प्रणम्य पुरुषोत्तमम् ।
स्वपन्नारायणं देवं गच्छन्नारायणं तथा ।६।
भुंजन्नारायणं विप्रास्तिष्ठञ्जाग्रत्सनातनम् ।
उन्मिषन्निमिषवापि नमो नारायणेति वै ।७।

इस सातवें अध्याय में श्री महा विष्णु भगवान् का अष्टाक्षर मन्त्र और द्वादशाक्षर मन्त्र का माहात्म्य वर्णित किया जाता है। ऋषियों ने कहा—ऐसा कौन-सा मन्त्र है जिसके जाप करने से जन्तु समस्त लोक में भय आदि से मुक्त हो जाता है तथा सम्पूर्ण पापों से विनिर्मुक्त होकर

परम गति को प्राप्त किया करता है ? हे सूतजी ! यह कृपाकर आप बतलाइये कि मनुष्य जप के द्वारा इस अलक्ष्मी का त्याग करके लक्ष्मी के निवास वाला बन जाता है वह किस मन्त्र का जाप होता है ? ।१।२। सूतजी ने कहा—पहिले पितामह ने वसिष्ठ मुनि से, जो कि एक महान् आत्मा वाले थे, यह कहा था, उसे ही मैं समस्त लोकों के हित के लिए यहाँ संक्षेप में सब बतलाता हूँ।३। आप सब लोग भगवान् जनार्दन को प्रणिपात करके उसका श्रवण करो। भगवान् विष्णु देवों के भी देव हैं—अजन्मा हैं-अव्यय-अच्युत तथा साक्षात् श्री कृष्ण हैं।४। ये सम्पूर्ण पापों का हरण करने वाले हैं मोक्ष प्रदान करने वाले तथा ब्रह्मवादी हैं। वह परम पुण्यात्मा विद्वान् हैं जो मन से-वाणी से और कर्म से इनका जप किया करते हैं।५। पुरुषों में परम उत्तम भगवान् नारायण को प्रणाम करके उनका जाप करना चाहिए। शयन करते हुये देव नारायण का जाप करे-गमन करते हुए-भोजन करते हुए और स्थित रहते हुए सभी अवस्थाओं में परम सनातन भगवान् नारायण का जाप हे विप्रगण ! मनुष्य को करते रहना चाहिये। सर्वदा 'नमो नारायणाय' इस का जप तथा ध्यान रक्खे।६।७।

भोज्यं पेयं च लेह्यं च नमो नारायणेति च।
अभिमन्त्र्य स्पृशन्भुंक्ते स याति परमां गतिम्।८।
सर्वपापविनिर्मुक्तः प्राप्नोति च सतां गतिम्।
अलक्ष्मीश्च मया प्रोक्ता पत्नी या दुःसहस्य च।९।
नारायणपदं श्रुत्वा गच्छत्येव न संशयः।
या लक्ष्मीर्देवदेवस्य हरेः कृष्णस्य वल्लभा।१०।
गृहे क्षेत्रे तथावासे तनौ वसति सुव्रताः।
आलोड्य सर्वशास्त्राणि विचार्य च पुनः पुनः।११।
इदमेकं सुनिष्पन्नं ध्येयो नारायणः सदा।
किं तस्य बहुभिर्मंत्रैः किं तस्य बहुभिर्व्रतैः।१२।
नमो नारायणायेति मन्त्रः सर्वार्थसाधकः।
तस्मात्सर्वेषु कालेषु नमो नारायणेति च।१३।

जपेत्स याति विप्रेन्द्रा विष्णुलोकं सबांधवः।
अन्यच्च देवदेवस्य शृण्वन्तु मुनिसत्तमाः।१४।

भोज्य-पेय तथा लेह्य सभी पदार्थों को 'नमो नारायणाय'—इस मन्त्र से अभिमन्त्रित करके स्पर्श करे और फिर उसका उपभोग करे तो ऐसा मनुष्य अवश्य ही परम सद्गति को प्राप्त होता है।८। इस प्रकार से सर्वदा 'नमो नारायणाय' इस मन्त्र का जापक पुरुष समस्त पापों से विनिर्मुक्त होकर-सत्पुरुषों की सद्गति का लाभ किया करता है। जो अलक्ष्मी मैंने दुःसह की पत्नी बतलाई है वह नारायण इस पद को श्रवण करते ही चली जाया करती है—इसमें कुछ भी संशय नहीं है। जो भगवान हरि कृष्ण देवदेव की प्रिया महालक्ष्मी है वह गृह में-क्षेत्र में तथा आवास स्थान में और तनु में हे सुव्रतो ! सर्वदा निवास किया करती हैं। यह समस्त शास्त्रों का आलौड़न करके अर्थात् गहराई से सब शास्त्रों को देखकर तथा बार-बार भली-भाँति विचार करके यह निर्णय किया गया है।९।१०।११। यही एक बात सिद्ध हुई है कि सदा नारायण का ही ध्यान करना चाहिये। बहुत से मन्त्रों के जाप से क्या लाभ है और अधिक व्रतों से फिर क्या प्रयोजन है। एक 'नमो नारायणाय'—यही मन्त्र सम्पूर्ण अर्थों का साधन करने वाला होता है। इसलिए समस्त कालों में 'नमो नारायणाय'—इसी मन्त्र का जाप करना चाहिए। हे विप्रेन्द्रो ! वह मनुष्य अपने बान्धवों के सहित विष्णु लोक का चला जाया करता है। हे मुनिश्रेष्ठो ! अब देवों के देव भगवान् के अन्य मन्त्र के विषय में आप लोग श्रवण करो।१२।१३।१४।

मन्त्रो मया पुराभ्यस्तः सर्ववेदार्थसाधकः।
द्वादशाक्षरसंयुक्तो द्वादशात्मा पुरातनः।१५।
तस्यैवेह च माहात्म्यं संक्षेपात्प्रवदामि वः।
कश्चिद्द्विजो महाप्राज्ञस्तपस्तप्त्वा कथंचन।१६।
पुत्रमेकं तयोत्पाद्य संस्कारश्च यथाक्रमम्।
योजयित्वा यथाकालं कृतोपनयनं पुनः।१७।
अध्यापयामास तदा स च नोवाच किंचन।

न जिह्वा स्पन्दते तस्य दुःखितोऽभूद्द्विजोत्तमः ।१८।
वादेसुवेति नियतमैतरेयो वदत्यसो ।
पिता तस्य तथा चान्यां परिणीय यथाविधि ।१६।
पुत्रानुत्पादयामास तथैव विधिपूर्वकम् ।
वेदानधीत्य संपन्ना बभूवुः सर्वसंमताः ।२०।

पहिले मेरे अभ्यास में आया हुआ एक मन्त्र है जो सम्पूर्ण वेदों के अर्थों का साधन करने वाला है । वह द्वादश आत्मा वाला पुरातन बारह अक्षरों से संयुक्त मन्त्र होता है ।१५। अब मैं वहाँ पर उसी मन्त्र का माहात्म्य आपके सामने संक्षेप में बतलाता हूँ किसी महान् पण्डित ब्राह्मण ने तपस्या करके किसी प्रकार से एक पुत्र का उत्पादन किया था । उसके क्रमानुसार उसने समस्त संस्कार कराये थे जिन संस्कारों क जो समय था वे उसी समय में करा दिये थे । इनके अनन्तर अवसर प्राप्त होने पर उसका उपनयन संस्कार भी कराया था ।१६।१७। फिर उसका अध्यापन किया था किन्तु वह कुछ भी नहीं बोलता था । उसकी जिह्वा बिल्कुल भी स्पन्दन नहीं करती थी । इस कारण से उस ब्राह्मण को परम दुःख हुआ था । ।१८। यह ऐतरेय (सापत्न भ्राता) मन्त्र का एकदेश वासुदेव—यह ही बोलता था । उसके पिता ने यथाविधि अन्य भार्या का परिणय किया था ।१६। और उस अन्य भार्या में विधि पूर्वक पुत्रों को उत्पन्न किया था । वे सब वेदों का अध्ययन करके सर्व सम्मत एवं सम्पन्न हो गये थे ।२०।

ऐतरेयस्य सा माता दुःखिता शोकमूर्च्छिता ।
उवाच पुत्राः संपन्ना वेदवेदांगपारगाः ।२१।
ब्राह्मणैः पूज्यमाना वै मोदयन्ति च मातरम् ।
मम त्वं भाग्यहीनायाः पुत्रो जातो निराकृतिः ।२२।
ममात्र निधनं श्रेयो न कथंचन जीवितम् ।
इत्युक्तः स च निर्गम्य यज्ञवाटं जगाम वै ।२३।
तस्मिन्याते द्विजानां तु न मन्त्राः प्रतिपेदिरे ।
ऐतरेये स्थिते तत्र ब्राह्मणा मोहितास्तदा ।२४।

ततो वाणी समुद्‌भूता वासुदेवेति कीर्तनात् ।
ऐतरेयेस्य ते विप्राः प्रणिपत्य यथातथम् ।२५।
पूजां चक्रुस्ततो यज्ञं स्वयमेव समागतम् ।
ततः समाप्य तं यज्ञमैतरेयो धनादिभिः ।२६।
सर्ववेदान्सदस्याह ष षडंगान् समाहिताः ।
तुष्टुवुश्च तथा विप्रा ब्रह्माद्याश्च तथा द्विजाः ।२७।
ससजुः पुष्पवर्षाणि खेचराः सिद्धचारणाः ।
एवं समाप्य वै यज्ञमैतरेयो द्विजोत्तमाः ।२८।

ऐतरेय की जो माता थी वह विचारी बहुत ही दुःखित एवं शोक से मूर्च्छित थी । वह अपने पुत्र से बोली—सम्पन्न एवं वेद-वेदांगों के पारगामी पुत्र ब्राह्मणों के द्वारा पूज्यमान होते हुए अपनी माता को आनन्द देते हैं । मेरे भाग्य हीना के तू ऐसा निराकृति पुत्र उत्पन्न हुआ है ।२१। ।२२। इस दुःख से तो मेरी मृत्यु हो जावे—यही अच्छा है । इस दुःखमय जीवन से किसी भी प्रकार से कोई लाभ नहीं है । ऐसा कहने पर वह निकल कर यज्ञ वाट में चला गया था ।२३। उस ऐतरेय के वहाँ पहुंचने पर जो वहाँ यश वाट में ऋत्विज विप्र थे उन्हें उस समय कोई भी मन्त्र अवगत नहीं हुए थे । ऐतरेय के वहाँ स्थित होने पर वे सब ब्राह्मण मोहित हो गये थे । इसके अनन्तर वासुदेव–इसके कीर्त्तन से ऐतरेय की वाणी समुद्‌भूत हुई थी । तब तो उन समस्त ब्राह्मणों ने ऐतरेय को प्रणिपात करके उसकी यथाविधि पूजा की थी । इसके अनन्तर यज्ञ स्वयमेव समागत हुआ था । उस यज्ञ को ऐतरेय ने धनादि के द्वारा समा किया था । उसने उस सभा में षडङ्ग समस्त वेदों को कहा । फिर तो समस्त विप्र और ब्रह्माद्य द्विजों ने स्तवन किया था ।२४।२५।२६।२७। खेचर और सिद्ध चारणों ने पुष्पों की वर्षा की थी । हे द्विजोत्तमो ! इस प्रकार से उस ऐतरेय ने यज्ञ को समाप्त किया था ।२८।

मातरं पूजयित्वा तु विष्णोः स्थानं जगाम ह ।
एतद्वै कथितं सर्वं द्वादशाक्षरवैभवम् ।२९।
पठतां शृण्वतां नित्यं महापातकनाशनम् ।

जपेद्यः पुरुषो नित्यं द्वादशाक्षरमव्ययम् ।३०।
स याति दिव्यमतुलं विष्णोस्तत्परमं पदम् ।
अपि पापसमाचारो द्वादशाक्षरतत्परः ।३१।
प्राप्नोति परमं स्थानं नात्र कार्या विचारणा ।
किं पुनर्ये स्वधर्मस्था वासुदेवपरायणाः ।३२।
दिव्यं स्थानं महात्मानः प्राप्नुवंतीति सुव्रताः ।३३।

इसके उपरान्त उसने अपनी माता का अर्चन किया था और फिर भगवान् विष्णु के स्थान को चला गया था। यह मैंने आप लोगों के समक्ष में द्वादशाक्षर मन्त्र का वैभव बतला दिया है ।२९। इसके पठन करने से तथा श्रवण करने से नित्य ही महा पातकों का नाश होता है। जो पुरुष इस द्वादशाक्षर अव्यय मन्त्र का नित्य जाप करता है वह परम दिव्य एवं अतुल भगवान् विष्णु के परम पद को जाता है। पापों के समाचरण करने वाला भी हो और वह द्वादशाक्षर मन्त्र के जप में तत्पर रहता हो तो अवश्य ही परम पद की प्राप्ति कर लेता है—इसमें कुछ भी विचारणा नहीं करनी चाहिए। और जो अपने धर्म-कर्म में स्थित रहकर ही वासुदेव में परायण हों उनके विषय में तो कहा ही क्या जावे ।३०। ।३१।३२। महान् आत्मा वाले पुरुष हे सुन्दर व्रत वालो ! दिव्य स्थान की प्राप्ति किया करते हैं ।३३।

।। ७७–शिवषडाक्षर मंत्र ।।

अष्टाक्षरो द्विजश्रेष्ठा नमो नारायणेति च ।
द्वादशाक्षरमंत्रश्च मरम परमात्मनः ।१।
मंत्रः षडक्षरो विप्राः सर्ववेदार्थसंचयः ।
यश्चोंनमः शिवायेति मंत्रः सर्वार्थसाधकः ।२।
तथा शिवतरायेति दिव्यः पंचाक्षरः शुभः ।
मयस्कराय चेत्येवं नमस्ते शंकराय च ।३।
सप्ताक्षरोयं रुद्रस्य प्रधानपुरुषस्य वै ।
ब्रह्मा च भगवान्विष्णुः सर्वे देवाः सवासवाः ।४।

मंत्रैरेतैर्दिजश्रेष्ठा मुनश्च यजति तम् ।
शंकरं देवदेवेशं मयस्करमजोद्भवम् ।५।
शिवं च शंकरं रुद्रं देवदेवमुमापतिम् ।
प्राहुर्नमः शिवायेति नमस्ते शंकराय च ।६।
मयस्कराय रुद्राय तथा शिवतराय च ।
जप्त्वा मुच्येत वै विप्रो ब्रह्महत्यादिभिः क्षणात् ।७।

इस अध्याय में विष्णु मन्त्रों से भी श्रेष्ट शिव मन्त्र होते हैं—यह निरूपण करते हुए षडक्षर मन्त्र का इतिहास वर्णित किया जाता है। सूतसी ने कहा—हे द्विजों में श्रेष्ट वृन्द ! 'नमो नारायणाय' यह अष्टाक्षर मन्त्र और 'ओं नमो भगवते वासुदेवाय'—यह द्वादशाक्षर मन्त्र परमातमा विष्णु के परम श्रेष्ठतम मन्त्र है किन्तु हे विप्रगण ! शिव का षडक्षर मन्त्र "ओम् नमो शिवाय" यह सर्व वेदों के अर्थ का संचय स्वरूप है और समस्त अर्थों का साधक होता है ।१।२। तथा शिव तराय यह पाँच अक्षर वाला परम शुभ एवं दिव्य मन्त्र होता है और मयस्कराय नमस्ते शङ्कराय'—यह सप्ताक्षर मन्त्र प्रधान पुरुष रुद्रदेव का होता है। ब्रह्मा विष्णु भगवान् और इन्द्र के सहित सम्पूर्ण देवगण हे द्विजश्रेष्टो ! इन मन्त्रों से उस शिव का यजनार्चन किया करते हैं। देवों के भी देवेश्वर-भयस्कर-अजोद्भव-शिव-शङ्कर-रुद्र-देवदेव-उमापति शिव शङ्कर आपको नमस्कार है—ऐसा कहते हैं भयस्कर-रुद्र तथा शिव तर के लिये नमस्कार है-ऐसा जाप करके विप्र तत्क्षण ही ब्रह्म इत्यादि पापों से मुक्त हो जाया करता है ।३।४।५।६।७।

पुरा कश्चिद्द्विजः शक्तो धुंधुमूक इति श्रुतः ।
आसीत्तृतीये त्रेतायामावर्त्त च मनोः प्रभोः ।८।
मेघवाहनकल्पे वै ब्रह्मणः परमात्मनः ।
मेधो भूत्वा महादेवं कृत्तिवाससमोश्वरम् ।९।
बहुमानेन वै रुद्रं देवदेवो जनार्दनः ।
खिन्नोऽतिभाराद्रुद्रस्य निःश्वासोच्छ्वासवर्जितः ।१०।
विज्ञाप्य शितिकंठाय तपश्चक्रे बुजेक्षणः ।

तपसा परमैश्वर्यं बलं. चैव तथाद्भुतम् ।११।
लब्धवान्परमेशानाच्छंकरात्परमात्मनः ।
तस्मात्कल्पस्तदा चासोन्मेघवाहनसंज्ञया ।१२।
तस्मिन्कल्पे मुनेः शापाद्धुंधुमूकसमुद्भवः ।
धुंधुमूकात्मजस्तेन दुरात्मा च बभूव सः ।१३।
धुंधुमूकः पुरासक्तो भार्यया सह मोहितः ।
तस्यां वै स्थापितो गर्भः कामासक्तेन चेतसा ।१४।

पुराने समय में पहिले प्रभु मनु के आवर्त्त में तीसरे त्रेतायुग में कोई धुंधुमूक नाम वाला समर्थ द्विज श्रुत हुआ था ।८। मेघवाहन कल्प में परमात्मा ब्रह्मा का मेघ होकर कृत्ति वाला ईश्वर रुद्र को देवदेव जनार्दन बहुमान से वहन करते थे और रुद्र के अत्यन्त भार से खिन्न होकर निःश्वासोच्छ्वावास से रहित हो गये थे । तब अम्बुज के समान नेत्रों वाले ने शितिकण्ठ को विज्ञापित करके तप किया था । उस तपश्चरण के द्वारा परम ऐश्वर्य तथा अत्यद्भुत बल प्राप्त किया था जो कि परमात्मा परमेशान शङ्कर से पाया था । इस कारण से उस समय मेघ वाहन-इस नाम से कल्प हुआ था ।९।१०।११।१२। उस कल्प में मुनि के शाप से धुंधुमूक समुत्पन्न हुआ था । इससे धुंधुमूक का पुत्र बहुत ही दुरात्मा हुआ था ।१३। धुंधुमूक पहिले अपनी भार्या के साथ बहुत ही आसक्त एवं मोहित था और कामासक्त चित्त वाले ने उस भार्या में गर्भ स्थापित कर दिया था ।१४।

अमावास्यामहन्येव मुहूर्ते रुद्रदैवते ।
अंतर्वत्नी तदा भार्या भुक्ता तेन यथासुखम् ।१५।
असूत सा च तनयं विशल्याख्या प्रयत्नतः ।
रुद्रे मुहुर्ते मंदेन वीक्षिते मुनिसत्तमाः ।१६।
मातुः पितुस्तथारिष्टं स संजात स्तथात्मनः ।
ऋषी तमूचतुर्विप्रा धुंधुमूकं मिथस्तदा ।१७।
मित्रावरुणनामानौ दुष्पुत्र इति सत्तमौ ।
वसिष्ठः प्राह नीचोऽपि प्रभावाद्वै बृहस्पतेः ।१८।

पुत्रस्तवासौ दुर्बुद्धिरपि मुच्यते किल्बिषात्।
दुःखितो धुंधुमूकोऽसौ दृष्ट्वा पुत्रमवस्थितम् ।१६।
जातकर्मादिकं कृत्वा विधिवत्स्वयमेव च ।
अध्यापयामास च तं विधिनैव द्विजोत्तमाः ।२०।
तेनाधीतं यथान्यायं धौंधुमूकेन सुव्रताः ।
कृतोद्वाहस्तदा गत्वा गुरुशुश्रूषणे रतः ।२१।

अमावस्या के दिन में ही रुद्र दैवत मुहूर्त्त में उसी समय में उसने अपनी भार्या का उपभोग किया था और वह उसकी भार्या गर्भवती होगई थी ।१५। उस की भार्या ने जिसका नाप विशल्या था, पुत्र का प्रसव बड़े ही प्रयत्न से किया था । हे मुनिश्रेष्ठो ! यह प्रसव भी मन्द के द्वारा वीक्षित रुद्र मुहूर्त्त में हुआ था ।१६। वह पुत्र अपने लिये तथा माता और पिता के लिए अरिष्ट कारक उत्पन्न हुआ । उस समय में ऋषियों ने परस्पर में उसको धुंधुमूक कहा था ।१७। मित्रावरुण नाम वाले सत्तम उसे दुष्पुत्र कहते थे । वसिष्ठ ने कहा था कि यह नीच भी है किन्तु वृहस्पति के प्रभाव से यह दुष्ट बुद्धि वाला भी किल्विष से मुक्त हो जायेगा । यह धुंधुमूक अवस्थित पुत्र को देखकर अत्यन्त दुःखित हुआ था ।१८।१६। हे द्विजोत्तमो ! फिर उस धुंधुमूक ने उस पुत्र का जातकर्म आदि संस्कार विधि पूर्वक कराकर स्वयं ही विधि से अध्यापन कराने लगा था ।२०। उस धुंधुमूक के पुत्र ने यथा न्याय अध्ययन किया था । गुरु की शुश्रूषा में रत होने वाले इस का विवाह भी हो गया था ।२१।

अनेनैव मुनिश्रेष्ठा धौंधुमूकेन दुर्मदात् ।
भुक्त्वान्यां वृषलीं दृष्ट्वा स्वभार्यात्रद्दिवानिशम् ।२२।
एकशय्यासनगतो धौंधुमूको द्विजाधमः ।
तथा चचार दुर्बुद्धिस्त्यक्त्वा धर्मगतिं पराम् ।२३।
माध्वी पीता तया सार्धं तेन रागविवृद्धये ।
केनापि कारणेनैव तामुद्दिश्य द्विजोत्तमाः ।२४।
निहता सा च पापेन वृषली गतमंगला ।
ततस्तस्यास्तदा तस्य भ्रातृभिर्निहतः पिता ।२५।

माता च तस्य दुर्बुद्धे धौंन्धुमूकस्य शोभना ।
भार्या च तस्य दुर्बुद्धे: श्यालास्ते चापि सुव्रताः ।२६।
राज्ञा क्षणादहो नष्टं कुलं तस्याश्च तस्य च ।
गत्वासौ धौंधुमूकश्च येन केनापि लीलया ।२७।
दृष्ट्वा तु तं मुनिश्रेष्ठं रुद्रजाप्यपरायणम् ।
लब्ध्वा पाशुपतं तद्वै पुरा देवान्महेश्वरात् ।२८।
लब्ध्वा पंचाक्षरं चैव षडक्षरमनुत्तमम् ।
पुनः पंचाक्षरं चैव जप्त्वा लक्षं पृथक् पृथक् ।२९।
व्रतं कृत्वा च विधिना दिव्यं द्वादशमासिकम् ।
कालधर्मं गतः कल्पे पूजितश्च यमेन वै ।३०।

हे मुनिश्रेष्ठो ! इस धौन्धुमूक ने दुर्मद होने के कारण से एक अन्य वृषली को देखकर उसका रात दिन भार्या के समार उपभोग करने की प्रवृत्ति करली थी ।२२। यह धौंधुमूक ने पर धर्म की गति का त्याग करके दुष्ट बुद्धि वाला होकर एक ही शय्यासन पर स्थित होकर आचरण करने लग गया था । ।२३। उस दुष्ट ने उस वृष ली के साथ राग की वृद्धि के लिये माध्वी का पान किया था । किसी अन्यागम वित्त के लाभ आदि के कारण से उस पापी ने मङ्गल रहिता उस वृषली का वध कर दिया था । इसके अनन्तर उसके भाइयों ने उस धौंधुमूक के पिता का निहनन कर दिया था ।२४।२५। उस दुर्बुद्धि की माता और बहुत शोभना भार्या तथा उसके साले सभी निहत कर दिये गये थे ।२६। राजा के द्वारा इस तरह से उस वृषली का तथा उस धौंधुमूक का सम्पूर्ण कुल नष्ट कर दिया गया था । फिर यह धौंधुमूक जिस किसी भी प्रकार से प्रारब्ध की गति से वहाँ से निकल गया था ।२७। फिर यह वृहस्पति मुनि के पास पहुंचा जो मुनिश्रेष्ठ रुद्र मन्त्र के जप में तत्पर रहते थे । उनसे इसने पाशुव्रत व्रत प्राप्त किया था जो कि पहिले महेश्वर देव से मिला था । पञ्चाक्षर और षडक्षर मन्त्र प्राप्त किया था । इन दोनो मन्त्रों का पृथक् २ लक्ष जाप करके तथा बारह मास का विधि-विधान के सहित व्रत करके वह धौंधुमूक कल्प में काल धर्म को प्राप्त हुआ यम के द्वारा

पूजिम हुआ था ।२८।२६।३०।

उद्धृता च तथा माता पिता श्यालाश्च सुव्रताः ।
पत्नी च सुभगा जाता सुस्मिता च पतिव्रता ।३१।
ताभिर्विमानमारुह्य देवैः सेंद्रैरभिष्टुतः ।
गाणापत्यमनु प्राप्त रुद्रस्य दयितोऽभवत् ।३२।
तस्मादष्टक्षरान्मंत्रात्तथा व द्वादशाक्षरात् ।
भवेत्कोटिगुणं पुण्यं नात्र कार्या बिचारणा ।३३।
तस्माज्जपेद्धियो नित्यं प्रायुक्तेन विधानतः ।
शक्तिबीजसमायुद्वतं स याति परमां गतिम् ।३४।
एतद्वः कथितं सर्वं कथासर्वस्वमुत्तमम् ।
यः पठेच्छृणुयाद्वापि श्रावयेद्वा द्विजोत्तमान् ।३५।
स याति ब्रह्मलोकं तु रुद्रजाप्यमनुत्तमम् ।३६।

फिर इसने अपने माता-पिता का सुभगा पत्नी का और सालों का सब का उद्धार कर दिया था और वह उसकी शुचिस्मित वाली पत्नी पतिव्रता एवं अच्छे भाग वाली हो गई थी ।३१। फिर इन सब के साथ विमान में वह बैठकर इन्द्रादि देवों से अभिष्टुत होकर गणपत्य को प्राप्त कर रुद्रदेव का परम प्रिय हो गया था ।३२। उस अष्टाक्षर मन्त्र से तथा द्वादशाक्षर मन्त्र से करोड़ गुना पुण्य होता हैं इसमें कुछ भी विचारणा की आवश्यकता नहीं है ।३३। इसलिए पहिले बताये विधि-विधान से शक्ति बीज से समायुक्त इस मन्त्र का बुद्धिमान् पुरुष को जाप करना चाहिए । इस मन्त्र का जापक पुरुष परमगति को प्राप्त होता है ।३४। यह हमने सम्पूर्ण कथा का सर्वस्व तुम्हारे सामने भली-भाँति वर्णन कर दिया है । जो भी कोई उसका पठन करेगा या श्रवण करेगा तथा इसको किसी द्विजोत्तम को श्रवण करायेगा वह इस परम श्रेष्ट रुद्र पन्त्र के जप के प्रभाव से ब्रह्मलोक को प्राप्त करता है ।३५।३६।

॥ ७८–शिव का पशुपतित्व कथन ॥

देवैः पुरा कृतं दिव्य व्रतं पाशुपत शुभम् ।

ब्रह्मणा च स्वयं सूत कृष्णेनाक्लिष्टकर्मणा ।१।
पतितेन च विप्रेणा धौंधुमूकेन वै तथा ।
कृत्वा जप्त्वा गतिः प्राप्ता कथं पाशुपतं व्रतम् ।२।
कथं पशुपतिर्देवः शंकरः परमेश्वरः ।
वक्तुमर्हसि चास्माकं परं कौतूहलं हि नः ।३।
पुरा शापाद्विनिर्मुक्तो ब्रह्मपुत्रो महायशाः ।
रुद्रस्य देवदेवस्य मरुदेशादिहागतः ।४।
त्यक्त्वा प्रसादाद्रुद्रस्य उष्ट्रदेहमजाज्ञया ।
शिलादपुत्रमासाद्य नमस्कृत्य विधानतः ।५।
मेरुपृष्ठे मुनिवरः श्रुत्वा धर्ममनुत्तमम् ।
माहेश्वर मुनिश्रेष्ठा ह्यपृच्छन्न पुनः पुनः ।६।
नंदिन प्राणिपत्यैनं कथं पशुपतिः प्रभुः ।
वक्तुमर्हसि चास्माकं तत्सर्वं च तदाह सः ।७।
तत्सर्वं श्रुतवान् व्यासः कृष्णद्वैपायनः प्रभुः ।
तस्मादहनुमस्त्रुत्य युष्माकं प्रवदामि वै ।८।
सर्वे श्रृण्वंतु वचनं नमकृत्वा महेश्वरम् ।
कथं पशुपतिर्देवः पशवःके प्रकीर्तिताः ।९।
कैःप शैस्ते निबध्यंते विमुच्यंते च ते कथम् ।
सनत्कुमार वक्ष्यामि सर्वमेतद्यथातथम् ।१०।

इस अध्याय में ऋषियों का प्रश्न का वर्णन है जिस में यह पूछा गया है कि पशुपति शिव के पशु तथा पाश कौन हैं और किससे मोक्ष होता है। ऋषियों ने कहा—पहिले देवों ने यह पाशुपत शुभ व्रत किया था और हे सूतजी अक्लिष्ट कर्म वाले ब्रह्मा जी ने भी स्वयं इस व्रत को किया था। ।१। महान् पतित् धौंधुमूक विप्र ने इस व्रत को किया था और इसका जाप करके परम सद्गति को प्राप्त किया था सो वह पाशुपत व्रत किस प्रकार से होता है ? ।२। पशुपति देव परमेश्वर शङ्कर कैसे हैं—आप यह सब बताने के लिये परम योग्य हैं अतः इसे हमको बताइये। हमको इसके ज्ञान प्राप्त करने के लिये बड़ा भारी कौतुहल हो रहा

है। सूतजी ने कहा—पहिले ब्रह्मा के पुत्र सनत्कुमार जिनका कि महान् यश है शाप से विनिर्मुक्त हुए थे और वह शाप देवों के भी देव भगवान् रुद्र का था। फिर रुद्र के ही प्रसाद से उष्ट्र देह का त्याग कर मरुदेश से यहाँ पर आ गये थे।३।४। ब्रह्मा की आज्ञा से शिलाद के पुत्र के पास प्राप्त हुए थे और विधिपूर्वक उनको प्रणाम किया था।५। मुनिवर ने मेरु के पृष्ठ पर इस परमोत्तम धर्म के विषय में श्रवण किया था। उसी को बार-बार माहेश्वर व्रत को पूछा था।६। भगवान् नन्दी को प्रणाम करके यही पूछा था कि प्रभु पशुपति कैसे कहे गये हैं—यह सब हमको आप बताने की कृपा करें। तब उस नन्दी ने उससे कहा था। उस सब को कृष्ण द्वैपायन व्यास ने श्रवण किया था। उनसे मैंने अनुश्रवण किया था। उसे ही अब आप लोगों को बतलाता हूँ। आप लोग सब भगवान् महेश्वर को प्रणाम करके इसका श्रवण करो। सनत्कुमार ने शैलादि से प्रार्थना की थी देव पशुपति किस प्रकार से हैं और पशु कौन से हैं? किन पाशों के द्वारा वे निवद्ध किये जाया करते हैं और फिर किस रीति मुक्त होते हैं? शैलादि ने कहा—हे सनत्कुमार! मैं इस सब को यथार्थ रूप से आपको बताऊंगा।७।८।९।१०।

रुद्रभक्तस्य शांतस्य तव कल्याणचेतसः।
ब्रह्माद्याः स्थावरांताश्च देवदेवस्त धीमतः।११।
पशवः परिकीर्त्यंते संसारवशवर्तिनः।
तेषां पतित्वाद्भगवान् रुद्रः पशुपतिः स्मृतः १२।
अनादिनिधनो धाता भगवान्विष्णुरव्ययः।
मायापाशेन बध्नाति पशुवत्परमेश्वरः।१३।
स एव मोचकस्तेषां ज्ञानयोगेन सेवितः।
अविद्यापाशबद्धानां नान्यो मोचक इष्यते।१४।
तमृते परमात्मानं शंकरं परमेश्वरम्।
चतुर्विंशतितत्त्वानि पाशौ हि परमेष्ठिनः।१५।
तैः पाशैर्मोचयत्येकः शिवो जीवैरुपासितः।
निबध्नाति पशुनेकश्चतुर्विंशतिपाशकैः।१६।

स एव भगवान्रुद्रो मोचयत्यपि सेवितः ।
दशेंद्रियमयैः पाशैरंतःकरणसंभवैः ।१७।
भूततन्मात्रपाशैश्च पशून्मोचयति प्रभुः ।
इंद्रियार्थमयैः पाशैर्वद्धा विषयिणः प्रभुः ।१८।

आप भगवान् रुद्र के भक्त परम शान्त और कल्याण को चित्त में धारण करने वाले हैं। धीमान् देवों के देव के ब्रह्मा से आदि लेकर स्थावर पर्यन्त सब संसार में वर्त्तन करने वाले पशु कहे जाते हैं। भगवान् रुद्र उन सब के पति हैं इसीलिये वे पशुपति कहे गये हैं ।११। ।१२। अनादि और निधन से रहित धाता-अव्यत भगवान् विष्णु परमेश्वर माया के पाश से पशु की भाँति ही बाँधते हैं और वही ज्ञान योग के द्वारा सेवित होने पर उनके मोचन करने वाले होते हैं। अविद्या के पाश से वद्ध पुरुषों का अन्य कोई भी मोचक नहीं होता है। ।१३।१४। उन परमात्मा परम ईश्वर शङ्कर के बिना परमेष्ठी के ये चौबीस तत्व माश हैं ।१५। जीवों के द्वारा उपासना किये गये भगवान् एक शिव ही उन पाशों से मोचन किया करते हैं। और एक चौबीस तत्व स्वरूप पाशों से पशुओं को निवद्ध किया करता है ।१६। वह ही भगवान रुद्र सेवित होकर मोचन किया करते हैं जो कि अन्तःकरण में रहने वाले दश (कर्मेन्द्रिय-ज्ञानेन्द्रिय स्वरूप) इन्द्रियों के पाश होते हैं। और पंच भूत तथा पंच तन्मात्रा स्वरूप भी पाश हैं उन सबसे भी प्रभु मोचन किया करते हैं। प्रभु इन्द्रियों के अर्थ अर्थात् विषय स्वरूप पाशों के द्वारा विषयों के सेवन करने वाले जीवों को वद्ध करते हैं। वे ही विषयी प्राणी परमेश्वर की सेवा से बहुत ही शीघ्र फिर परम भक्त हो जाया करते हैं। भज्-यह धातु सेवा के अर्थ में ही कहा गया है ।१७।१८।

आशु भक्ता भवंत्येव परमेश्वरसेवया ।
भज इत्येश धातुर्वै सेवायां परिकीर्तितः ।१९।
तस्मात्सेवा बुधैः प्रोक्ता भक्तिशब्देन भूयसी ।
ब्रह्मादिस्तंवपर्यंतं पशुन्बद्धा महेश्वरः ।२०।
त्रिभिर्गुणमयैः पाशैः कार्यं कारयति स्वयम् ।

दृढेन भक्तियोगेन पशुभि: समुपासित: ।२१।
मोचयत्येव तान्सद्य: शंकर: परमेश्वर: ।
भजनं भक्तिरित्युक्ता वाङ्मन:कायकर्मभि: ।२२।
सर्वकार्येणहेतुत्वात्पाशच्छेदपटीयसीं ।
सत्य: सर्वग इत्यादि शिवस्य गुणचिंतना ।२३।
रूपोपादानचिंता च मानसं भजनं विदु: ।
वाचिकं भजन धीरा: प्रणवादिजपं विदु: ।२४।
कायिकं भजनं सद्भि: प्राणायामादि कथ्यते ।
धर्माधर्ममयै: पाशैर्बंधनं देहिनामिदम् ।२५।

इसीलिये बुध लोगों ने भक्ति शब्द के द्वारा जो कि भज् से वायाम्-इस धातु से बनता है, बहुत बड़ी सेवा ही कही गई है। ब्रह्मा से आदि लेकर स्तम्ब पर्यन्त महेश्वर तीन गुण (सत्त्व-रज-तम स्वरूप पाशों से पशुओं को वृद्ध किया करते हैं और इस कार्य को वे स्वयं ही कराते हैं। जब उन पशुओं का जो कि निबद्ध हुए हैं, अतिदृढ़ भक्ति का योग होता है और उसके द्वारा जिस समय भगवान् शङ्कर समुपासित उनके द्वारा होते हैं तो फिर वे परमेश्वर तुरन्त ही उन जीवों का मोचन कर दिया करते हैं। वाक्-मन और शरीर के द्वारा जो भजन अर्थात् सेवन है वही भक्ति कही गई हैं ।१९।२०। समस्त कार्यों के करने में हेतु होने से वह पाशों के छेदन करने में वहुत सी पटु है। उसका स्वरूप यही है कि शिव के स्वरूप को परम सत्य और सर्वत्र गमन करने वाला-ऐसा विचिन्तन करता रहे ।२१।२२। उनके स्वरूप तथा उपादानों का जो चिन्तन है वही मानस भजन कहा जाता है। प्रणव आदि का जाप करने को धीर पुरुष वाच्चिक भजन कहा करते हैं ।२३।२४। कायिक भजन सत्पुरुषों के द्वारा प्राणायाम आदि का करना बताया जाता है। धर्म तथा अधर्म स्वरूप वाले पाशों से देह धारियों का यह बन्धन होता है ।२५।

मोचक: शिव एवैको भगवान्परमेश्वर: ।
चतुर्विंशतितत्त्वानि मायाकर्मगुणा इति ।२६।
कीर्त्यंते विषयाश्चेति पाशा जीवनिबंधनात् ।

तैर्बद्धाः शिवभक्त्यैव मुच्यंते सर्वदेहिनः ।२७।
पंचक्लेशमयैः पाशैः पशून्बध्नाति शंकरः ।
स एव मोचकस्तेषां भक्त्या सम्यगुपासितः ।२८।
अविद्यामस्मितां रागं द्वेषं च द्विपदां वराः ।
वदंत्यभिनिवेशं च क्लेशान्पाशत्वमागतान् ।२९।
तमोमोहो महामोहस्तामिस्र इति पंडिताः ।
अंधतामिस्र इत्याहुरविद्यां पंचधा स्थिताम् ।३०।
तःञ्जीवान्मुनिशार्दूलाः सर्वांश्चैवाप्यविद्यया ।
शिवो मोचयति श्रीमान्नान्यः कश्चिद्विमोचकः ।३१।
अविद्यां तम इत्याहुरस्मितां मोह इत्यपि ।
महामोह इति प्राज्ञा रागं योगपरायणाः ।३२।

भगवान् एक शिव ही परमेश्वर है और वही इन पाशों से मोचन करने वाला है । चौबीस तत्व माया के कर्मगुण हैं और ये विषय कहे जाते है । जीवों के निबन्धन से यह पाश होते हैं । उनके द्वारा निवद्ध समस्त देहधारी शिव की भक्ति से ही मुक्त हुआ करते हैं ।२६।२७। भगवान् शंकर पाँख क्लेश मय पाशों से पशुओं का निवन्धन किया करते हैं । जो निवद्ध करने वाले हैं वे ही अच्छी तरह भक्ति पूर्वक सेवमान होने पर तथा समुपासित होकर उन सब का मोचक भी हुआ करते हैं ।२८। श्रेष्ठ पुरुष पाशत्व को प्राप्त होने वाले पाँच क्लेशों को कहते हैं जिनमें अविद्या-अस्मिता-राग द्वेष और अभिनिवेश ये पाँच क्लेश होते हैं ।२९। तम-मोह-महामोह-तामिस्र और अन्धतामिस्र इनको ही पण्डित लोग पाँच प्रकार की स्थित अविद्या कहते हैं ।३०। हे मुनिशार्दूलो ! अविद्या से युक्त उन समस्त जीवों को इस अविद्या से केवल एक शिव ही मोचन किया करते हैं । इनके अतिरिक्त अन्य कोई भी विमोचन करने वाला नहीं है ।३१। देहादि में जो कि अनात्म स्वरूप हैं आत्माभिमान करना जो तम है उसे ही अविद्या कहते हैं और अस्मिता का मोह भी कहते हैं । योग परायण प्राज्ञ लोग राग को महामोह कहते हैं ।३२।

द्वेषं तामिस्र इत्याहुरंधतामिस्र इत्यपि ।

तथैवाभिनिवेशं च मिथ्याज्ञानं विवेकिनः ।३३।
तमसोऽष्टविधा भेदा मोहश्चाष्टविधः स्मृतः ।
महामोहप्रभेदाश्च बुधैर्दश विचिंतताः ।३४।
अष्टादशविधं चाहुस्तामिस्रं च विचक्षणाः ।
अंधतामिस्रभेदाश्च तथाष्टादशधा स्मृताः ।३५।
अविद्ययास्य संबंधो नातीतो नास्त्यनागतः ।
भवेद्रागेण देवस्य शंभोरंगनिवासिनः ।३६।
कालेषु त्रिषु संबंधस्तस्य द्वेषेण नो भवेत् ।
मायातीतस्य देवस्य स्थाणोः पशुपतेर्विभोः ।३७।
तथैवाभिनिवे संबंधो न कदाचन ।
शंकरस्य शरण्यस्य शिवस्य परमात्मनः ।३८।
कुशलाकुशलैस्तस्य संबंधो नैव कर्मभिः ।
भवेत्यकालत्रये शंभोरविद्या तिवर्तिनः ।३९।
विपाकैः कर्मणां वापि न भवेदेव संगमः ।
कालेषु त्रिषु सर्वस्य शिवस्य शिवदायिनः ।४०।

द्वेष को तामिस्र और अन्धतामिस्र भी कहते हैं। वस्तुतः विषय के विधात होने पर जो क्रोध होता है उसे तामिस्र कहा जाता है और ममता के स्थान स्वरूप के रक्षरण करने का जो अभिनिवेश होता है उसे अन्धतामिस्र कहते हैं। विवेकी के मिथ्याज्ञान को भी कहा जाता है ।३३। इस तरह तम के आठ प्रकार होते हैं और मोह भी आठ प्रकार का होता है। बुध लोगों ने महामोह के दश प्रकार विचिन्तित किये हैं ।३४। विचक्षण लोगों ने तामिस्र को अट्ठारह तरह का बताया है। इसी प्रकार से अन्धतामिस्र के भेद भी अट्ठारह कहे गये हैं ।३५। अविद्या से इसका अतीत और अनागत सम्बन्ध नहीं है। अङ्ग निवासी शम्भुदेव के राग से होता है ।३६। तीनों कालों में उनका द्वेष से सम्बन्ध नहीं होता है क्योंकि पशुपति विभु स्थाणु देव माया से अतीत होते हैं ।३७। उसी प्रकार से अभिनिवेश के साथ भी कभी कोई सम्बन्ध नहीं होता है। शङ्कर शिव स्वरूप परम आत्मा और शरण्य हैं। ।३८।

तीनों काल में अविद्या का अति वर्त्त न करने वाले शम्भु का कुशल और अकुशल कर्मों से भी कोई सम्बन्ध नहीं है।३६। तीनों कालों में सब का प्रदान करने वाले शिवदायी शिव का कर्मों के विपाकों के साथ भी सङ्गम नहीं होता है।४०।

सुखदु:खैरसंस्पृश्य कालत्रितयवर्तिभिः।
स तैर्विनश्वरैः शंभुर्बोधानंदात्मकः परः।४१।
आशयैरपरामृष्टः कालत्रितयगोचरैः।
धियां पतिः स्वभूरेष महादेवो महेश्वरः।४२।
अस्पृश्यः कर्मसंस्कारैः कालत्रितयवर्तिभिः।
तथैव भोगसंस्कारैर्भगवानंतकांतकः।४३।
पुंविशेषपरो देवो भगवान्परमेश्वरः।
चेतनाचेतनायुक्तप्रपंचादखिलात्परः।४४।
लोके सातिशयत्वेन ज्ञानैश्वर्यं विलोक्यते।
शिवेनातिशयत्वेन शिवं प्राहुर्मनीषिणः।४५।
प्रतिसर्ग प्रसूतानां ब्रह्मणां शास्त्रविस्तरम्।
उपदेष्टा स एवादौ कालावच्छेदवर्तिनाम्।४६।
कालावच्छेदयुक्तानां गुरुणामप्यसौ गुरुः।
सर्वेषामेव सर्वेशः कालावच्छेदवर्जितः।४७।

काल त्रितय में अर्थात् भूत भविष्यत् वर्त्तमान इन तीनों कालों में बरतने वाले सुख-दुखों से वह असस्पृशय अर्थात् स्पर्श न करने के योग्य हैं क्योंकि ये सब विनश्वर होते हैं और शम्भु पर एवं बोधानन्दात्मक होते हैं।।४१। तीनों कालों में गोचर आशयों से बुद्धि के स्वामी स्वभू यह महेश्वर, महादेव अपरामृष्ट होते हैं।४२। यह अनन्ता कान्तक भगवान् काल त्रितय वर्त्ती कर्मों के संस्कारों से तथा भोगों के संस्कारों से भी स्पर्श न करने के योग्य होते हैं।४३। भगवान् परमेश्वर पुंविशेष पर देव हैं जो कि इस चेतन और अचेतन से युक्त सम्पूर्ण प्रपंच से परे है।४४। लोक में अतिशय के साथ ज्ञानैश्वर्य देखा जाता है और शिव (कल्याण) के अति शयत्व होने से ही मनीषीगण उन भगवान को 'शिव' इस शुभ

नाम से पुकारा करते हैं ।४५। प्रत्येक सर्ग में समुत्पन्न कालावच्छेद वर्त्ती ब्रह्माओं को शास्त्र को पूर्ण विस्तार वह ही ,भगवान् शिव उपदेश करने वाले होते हैं ।४६। कालावच्छेद वर्त्ती गुरुओं का भी यह शिव गुरु होते हैं। और कालावच्छेद से रहित होते हूए वह शिव सभी का सर्वेश्वर है ।४७।

अनादिरेष संबंधो विज्ञानोत्कर्षयोः परः ।
स्थितयोरीदृशः सर्वः परिशुद्धः स्वभावतः ।४८।
आत्मप्रयोजनाभावे परानुग्रह एव हि ।
प्रयोजनं समस्तानां कार्याणां परमेश्वरः ।४९।
प्रणवो वाचकस्तस्य शिवस्य परमात्मनः ।
शिवरुद्रादिशब्दानां प्रणवोपि परः स्मृतः ।५०।
शंभोः प्रणववाच्यस्य भावना तज्जपादपि ।
या सिद्धिः स्वपराप्राप्या भवत्येव न संशयः ।५१।
ज्ञानतत्त्वं प्रयत्नेन योगः पाशुपतः परः ।
उक्तस्तु देवदेवेन सर्वेषामनुकं पया ।५२।

यह विज्ञान और उत्कर्ष का पर एवं अनादि सम्बन्ध है । इन दोनों स्थित होने वालों का यह सम्बन्ध स्वभाव से ही सम्पूर्ण इस प्रकार का परिशुद्ध होता है ।४८। अपना कोई प्रयोजन न होने पर यह दूसरों पर अनुग्रह स्वरूप ही है और परश्वर समस्त कार्यों का प्रयोजन स्वरूप होते हैं ।४९। उस परमात्मा शिव का वाचक प्रणव है । शिव और रुद्र आदि शब्दों के मध्य में प्रणव भी परम श्रेष्ट कहा गया हे ।५०। प्रणव के द्वारा वाच्य शिव की भावना उस के जाप से ही की जाती है । यह जो सिद्धि होती है वह प्रणव के अतिरिक्त अन्य से अप्राप्य होती है-इस में कुछ भी संशय नहीं है ।५१। सब के ऊपर अनुकम्पा से देवों के देव ने अर्थात् आदित्य रूप शिव ने परम पाशुपत ज्ञान तत्व यत्न से अर्थात् याज्ञवल्क्य के परम तप से कहा है ।५२।

स होवाचैव याज्ञवल्क्यो यदक्षरं गार्ग्यवोगिनः ।
अभिवदंति स्थूलमनंतं महाश्चर्यमदीर्घमलोहितममस्तकमासा-

यमत एवो पूनारसमसंगमगंधमरसमचक्षुष्कमश्रोत्रमवाङ्म-
नोतेजस्कमप्रमाणमनुसुखमनामगोत्रममरमजरमनामयममृत-
मोंशब्दममृतसंवृतमपूर्वमनपर मनंतमबाह्यं तदाश्राति किं-
चन न तदाश्नाति किंचन ।५३।

एतत्कालव्यये ज्ञात्वा परं पाशुपतं प्रभुम् ।
योगे पाशुपते चास्मिन् यस्यार्थः किल उत्तमे ।५४।

कृत्वोंकारं प्रदीपं मृगय गृहपतिं सूक्ष्ममाद्यतरस्थ संयम्य
द्वारवासं पवनपटुतरं नायकं चेंद्रियाणाम् ।
वाग्जालैः कस्य हेतोर्विभटसि तु भयं दृश्यते नैव किंचिद्दैहस्थ
पश्य शभुं भ्रमसि किमु परे शास्त्रजालेन्धकारे ।५५।

एवं सम्यग्बुधैर्ज्ञात्वा मुनीनामथ चोक्तं शिवेन ।
असमरस पंचधा कृत्वाभयं चात्मानि योजयेत् ।५६।

वह प्रसिद्ध सूर्योपदिष्ट याज्ञवल्क्य ने कहा ही है अर्थात् निश्चय के साथ बोला है। हे जागि ! जो कि अयोगी का नाश शून्य शिव वस्तु स्थूल विराट् रूप है। योगी तो उसे अनन्त महदाश्चर्य कहकर अभिवन्दना किया करते हैं। वे श्रुति की भाँति वर्णन किया करते हैं वह लम्बत्व से शून्य है आरक्त वर्ण से रहित—उपरि भाग से वर्जित-अस्तमित रूप वाला अतएव नित्यानन्द रस रूप-स्पर्श शून्य-अगन्ध-अरस-अचक्षुष्क अर्थात् रूप रहित-शब्द शून्य-मन और वाणी से अतीत-अदाहक-अन्य प्रमाण से शून्य-सुखकारक-नाम एवं गोत्र से रहित-मृति विरहित-रोग शून्य-वय की हानि से रहित-मोक्ष स्वरूप-सुधा रूप-अनाच्छादित-भाग से रहित-अन्त से शून्य वहिर्देश से रहित एवं ओंकार शब्द के द्वारा प्रतिपाद्य वह ब्रह्म सब का भोग किया करता है और किसी कर्म का भोग नहीं किया करता है ।५३। यह ऐसा पाशुपत योग है। इस परमोत्तम पाशुपत योग में जिस पुरुष की आस्था एवं प्रयोजन हो वह इस का ज्ञान प्राप्त करके अन्त समय में प्रभु के ही सान्निधय में पहुंच कर उसी में प्रवेश किया करता है ।५४। यदि इस प्रकार का वह परमेश कहाँ पर विराजमान रहता है—यदि शंका है तो उसका यही उत्तर है कि ओंकार

प्रदीप बनाकर उस गृहपति अन्तर्यामी परम सूक्ष्म का अन्वेषण करना चाहिए और पवन से भी शीघ्रगामी इन्द्रियों के द्वार पर निवास करने वाले अपने मन को वश में करके ही उसका अन्वेषण किया जा सकता है। वाग्जालों से इस विषय में विवाद नहीं करके उसकी खोज करो। इसमें कुछ भी भय नहीं होता है। अपनी ही देह में स्थित भगवान शम्भु का दर्शन प्राप्त करलो। द्वैतादि के अन्धकार स्वरूप इन शास्त्रों के जाल में अपने मन को भ्रान्त मत करो।५५। इस प्रकार से भगवान् शिव के द्वारा मुनियों के लिये कहे हुए अर्थ को बुध लोग भली-भाँति विचार करके आनन्द रूप आत्म स्वरूप को पञ्च कोश रूप करके आतमा में अभय रूप मोक्ष की प्राप्ति करें।५६।

॥७९–शिवजी प्रकृति से जीव का बँधन ॥

भूय एव ममाचक्ष्व महिमानमुमापतेः।
भवभक्त महाप्राज्ञ भगवन्नंदिकेश्वर।१।
सनत्कुमार संक्षेपात्तव वक्ष्याम्यशेशतः।
महिमानं महेशस्य भवस्य परमेष्ठिनः।२।
नास्य प्रकृतिबंधोऽभूद्‌बुद्धि बंधो न कश्चन।
न चाहंकारबंधश्च मनोबधश्च नोऽभवत्।३।
चित्तबन्धो न तस्याभूच्छ्रोत्रबंधो न चाभवत्।
न त्वचां चक्षुषां वापि बंधो जज्ञे कदाचन।४।
जिह्वाबंधो न तस्याभूद्‌घ्राणबंधो न कश्चन।
पादबंधः पाणिबंधो वाग्बंधश्चैव सुव्रत।५।
उपस्थेंद्रिय बंधश्च भूततन्मात्रबंधनम्।
नित्यशुद्धस्वभावेन नित्यबुद्धो निसर्गतः।६।
नित्यमुक्त इति प्रोक्तो मुनिभिस्तत्त्ववेदिभिः।
अनादि मध्यनिष्ठस्य शिवस्य परमेष्ठिनः।७।
बुद्धि सूते नियोगेन प्रकृतिः पुरुषस्य च।
अहंकारं प्रसूतेऽस्या बुद्धिस्तस्य नियोगतः।८।

इस अध्याय में शिव का प्राकृत बन्ध और उनकी आज्ञा से सब का सर्ग तथा सर्व कार्य का प्रवर्त्तन निरूपित किया जाता हैं। सनत्कुमार ने कहा—हे भगवन् नन्दिकेश्वर ! आप तो भगवान् भव के परम भक्त हैं और आप महान् पण्डित हैं। अतः पुनः भगवान् उमापति शिव की महिमा को कृपा कर वर्णित कीजिए।१। शैलादि ने कहा—हे सनत्कुमार ! मैं परमेष्ठी महान् ईश भव को महिमा तुम्हारे सामने सम्पूर्ण संक्षेप में कहता हूँ।२। भगवान् शिव को प्रकृति का कोई बन्ध नहीं हुआ था और कोई भी बुद्धि बन्ध भी नहीं होता है। अहंकार बन्ध तथा मनोबन्ध भी नहीं हुआ है।३। चित्त बन्ध-श्रोत्र बन्ध-त्वचाओं का बन्ध और चक्षुबन्ध उनको कोई भी नहीं हुआ था।४। जिह्वाबन्ध-घ्राण बन्ध-पाद-पाणि बन्ध-वाग्बन्ध-उपस्थेन्द्रिय बन्ध तथा भूतों और तन्मात्राओं का बन्ध तात्पर्य यह है कि किसी प्रकार का भी कोई प्राकृतिक बन्ध शिव को नहीं होता है। वह नित्य शुद्ध स्वभाव से निसग से ही नित्य बुद्ध होते हैं।५।६। तत्व के वेत्ता मुनियों के द्वारा वह भगवान् शिव नित्य मुक्त कहे गये हैं। अनादि मध्य में निष्ठ परमेष्ठी पुरुष शिव की आज्ञा से प्रकृति बुद्धि को प्रसूत करती हैं। शिव के नियोग से इस प्रकृति की बुद्धि फिर अहंकार का प्रसव किया करती है।७।८।

अन्तर्यामाति देहेषु प्रसिद्धस्य स्वयभुवः।
इन्द्रियाणि दशैक च तन्मात्राणि च शासनात्।९।
अहंकाराऽतिसंसूत शिवस्य परमेष्ठिनः।
तन्मात्राणि नियोगेन तस्य संसुवते प्रभोः।१०।
महाभूतान्यशेषेण महादेवस्य धीमतः।
ब्रह्मादीनां तृणांतं हि देहिनां देहसंगतिम्।११।
महाभूतान्यशेषाणि जनयति शिवाज्ञया।
अध्यवस्यति सर्वाऽन्बुद्धिस्तस्याज्ञया विभोः।१२।
अन्तर्यामीति देहेषु प्रसिद्धस्य स्वयम्भुवः।
स्वभावसिद्धमैश्वर्यं स्वभावादेव भूतयः।१३।
तस्याज्ञया समस्तार्थानहकारोऽतिमन्यते।

चित्तं चेतयते चापि मनः संकल्पयत्यपि ।१४।
श्रोत्रं शृणोति तच्छक्त्या शब्दस्पर्शादिकं च यत् ।
शम्भोराज्ञाबलेनैव भवस्य परमेष्ठिनः ।१५।

समस्त देहों में अन्तर्यामी-इस नाम से प्रख्यात परमेष्ठी भगवान् शिव के नियोग से जो कि स्वयम्भू है ये दश इन्द्रियाँ तथा एक मन और तन्मात्रायें समुत्पन्न होते हैं ।६। उसी की आज्ञा से अहंकार पञ्च तन्मात्राओं को समुत्पन्न किया करता है। परम धीमान् महादेव की आज्ञा से महाभूत प्रसूत हुआ करते हैं। ब्रह्मा से आदि लेकर तृण के अन्त तक देह धारियों की देह की सङ्गति को ये महाभूत भगवान् शिव की आज्ञा से ही करते हैं और उसी विभु के नियोग से यह बुद्धि सम्पूर्ण अर्थों को अध्यवसित किया करती हैं ।१०।११।१२। इन समस्त शरीरों में अन्तर्यामी के नाम से प्रसिद्ध स्वयम्भू शिव का ऐश्वर्य तो स्वभाव सिद्ध होता है और ये सब विभूतियाँ भी स्वाभाविक स्वरूप से हुआ करती हैं ।१३। उस प्रभु की आज्ञा से ही अहङ्कार समस्त अर्थों को अति माना करता है। परमेष्ठी भव शम्भु की आज्ञा से ही चित्त चिन्तन करता है—मन संकल्प किया करता है—श्रोत्र श्रवण करता हैं और त्वचा स्पर्श करती है इसी भाँति समस्त इन्द्रियाँ अपना २ विषय ग्रहण किया करती हैं ।१४।१५।

वचनं कुरुते वाक्यं नादानादि कदाचन ।
शरीराणामशेषाणां तस्य देवस्य शासनात् ।१६।
करोति पाणिरादानं न गत्यादि कदाचन ।
सर्वेषामेव जन्तूनां नियमादेव वेधसः ।१७।
विहारं कुरुते पादो नोत्सर्गादि कदाचन ।
समस्तदेहिवृन्दानां शिवस्यैव नियोगतः ।१८।
उत्सर्गं कुरुते पायुर्न वदेत कदाचन ।
जन्तोर्जातस्य सर्वस्य परमेश्वरशासनात् ।१६।
आनन्द कुरुते शश्वदुपस्थं वचनाद्विभोः ।
सर्वेषामेव भतानामीश्वरस्यैव शासनात् ।२०।

अवकाशमशेषाणां भूतानां संप्रयच्छति ।
आकाशं सर्व्वदा तस्य परमस्यैव शासनात् ।२ ।

उसी देव के शासन से वाणी वचन बोला करती है समस्त शरीरों के सम्पूर्ण कार्य उस देव की आज्ञा से ही हुआ करते हैं ।१६। देहधारियों का हाथ केवल आदान का ही कार्य करता है गति का काम नहीं करता है—इस तरह से वेधा के नियम एवं शासन से ही सब जन्तुओं के कार्य हुआ करते हैं जो भी उसने जैसा कुछ नियम बना दिया है उसी के अनुसार होता है ।१७। पैर बिहार ही किया करते हैं उत्सर्ग आदि काम नहीं करते हैं। यह भी सब देहियों का कार्य शिव के ही नियोग से हुआ करता है। इन्द्रियों का अपना २ कार्य ही सब किया करती हैं। एक दूसरे के कार्य को कभी नहीं करती है। पायु मलोत्सर्ग करने वाली इन्द्रिय केवल अपना कार्य मल का त्याग करने का ही करती है और बोलने का काम नहीं करती है। यह ऐसा नियम उत्पन्न होने वाले जन्तु का शिव ही की आज्ञा से हुआ करता है। ।१८।१९। उपस्थेन्द्रिय केवल आनन्द का ही उपभोग किया करती हैं अन्य कुछ भी देहधारी का कार्य नहीं करती है—यह भी शिव के ही नियोग के कारण ही ऐसा किया करती है ।२०। यह आकाश समस्त प्राणियों को अवकाश का प्रदान सदा उसी प्रभु की आज्ञा से किया करता है ।२१।

निर्देशेन शिवस्यैव भेदैः प्राणादिभिर्निजैः ।
बिभर्त्ति सर्वभूतानां शरीराणि प्रभंजनः ।२२।
निर्देशाद्देवदेवस्य सप्तस्कधगतो मरुत् ।
लोकयात्रां वहत्येव भेदैः स्वैरावहादिभिः ।२३।
नागाद्यैः पंचभिर्भेदैः शरीरेषु प्रवर्तते ।
अपदेशेन देवस्य परमस्य समीरणः ।२४।
हव्यं वहति देवानां कव्य कव्याशिनामपि ।
पाकं च कुरुते वह्निःशकरस्यैव शासनात् ।२५।
भुक्तमाहारजातं यत्पचते देहिनां तथा ।
उदरस्थः सदा वह्निर्विश्वेश्वरनियोगतः ।२६।

संजीवयंत्यशेषाणि भतान्याप स्तदाज्ञया ।
अविलंघ्या हि सर्वेषामाज्ञा तस्य गरीयसी ।२७।
चराचराणि भतानि विभर्त्येव तदाज्ञया ।
आज्ञया तस्य दे वस्य देवदेव: पुरंदर: ।२८।
जीवतां व्याधिभि: पीडां मृतानां यातनाशतैः ।
विश्वंभर: सदाक ल लोकै: सर्वैरलंध्यया ।२६।
दे वान्पात्यसुरान् हति त्रैलोक्यमखिलं स्थित: ।
अधार्मिकाणां वै नाशं करोति शिवशासनात् ।३०।

यह प्रभज्जन (वायु) अपने प्राण-अपान आदि-भेदों के द्वारा सब शरीर धारियों के शरीरों का भरण प्रभु की ही आज्ञा से किया करता है ।२२। सात स्कन्धों में रहने वाला यह मरत् स्वच्छन्द आवहनों के भेदों के द्वारा सब लोक यात्रा का वहन किया करता है ।२३। नाग-कूर्म आदि पाँच भेदों के द्वारा यह वायु उसी परमेश के लिए नियोग से शरीरों में प्रवृत्त हुआ करता है।२४। भगवान् शङ्कर के शासन से ही यह उदर में स्थित वह्नि देह धारियों के आहार मात्र का पाचन किया करता है। यह अग्नि कव्य के अशन करने वाले देवताओं को हव्य और कव्य का वहन करके उन्हें पहुंचा देता है तथा पाक भी भगवान् शङ्कर के ही शासन से यह अग्नि किया करता है। ।२५।२६। उसी की आज्ञा से जल समस्त प्राणियों को संजीवित किया करता है। महेश्वर भगवान् की आज्ञा सबसे अधिक महत्व रखने वाली है और वह सब के लिए ही लङ्घन न करने के योग्य हुआ करती है ।२७। चर और अचर प्राणी समस्त उसकी आज्ञा से ही भरण किया करते हैं। देवराज इन्द्रदेव भी शिव की आज्ञा से ही अपने प्राप्त हुए अधिकारों में प्रवृत्त होता हूँ ।२८। समस्त लोकों के द्वारा अलघनीय शिव की आज्ञा से भगवान् विश्वम्भर सदा काल में जीवितों को सैकड़ों व्याधियों के द्वारा तथा मृतकों को नरकों सैकड़ों प्रकार की यातनों से दण्डित किया करता है ।२६। शिव के शासन से वह देवों की रक्षा करते हैं और असुरों का हनन किया करते हैं तथा सम्पूर्ण त्रैलोक्य में स्थित रहते हैं। जो भी अधार्म्मिक पुरुष हैं उनका

नाश किया करते हैं ।३०।

वरुण: सलिलैर्लोकान्संभावयति शासनात् ।
मज्जवत्याज्ञया तस्य पाशैर्बध्नाति चासुरान् ।३१।
पुण्यानुरूपं सर्वेषां प्राणिनां संप्रयच्छति ।
वित्तं वित्तेश्वरस्तस्य शासनात्परमेष्ठिन: ।३२।
उदयास्तमये कुर्वन्कुरुते कालम ज्ञया ।
आदित्यस्तस्य नित्यस्य सत्यस्य परमात्मन: ।३३।
पुष्पाण्यौषधिजातानि प्रह्लादयदि च प्रजा: ।
अमृतांशु: कलाधार: कालकालस्य शासनात् ।३४।
आदित्या वसवो रुद्रा अश्विनौ मरुतस्तथा ।
अन्याश्च देवता: सर्वास्तच्छासनविनिर्मिता: ।३५।
गधर्वा देवसंघाश्च सिद्धि: साध्याश्च चारणा: ।
यक्षरक्ष: पिशाचाश्च स्थिता: शास्त्रेषु वेधस: ।३६।
ग्रहनक्षत्रताराश्च यज्ञा वेदास्तपांसि च ।
ऋषीणां च गणा: सव शासनं तस्य धिष्ठिता: ।३७।
कव्याशिनां गणा: सप्तसमुद्रा गिरिसिंधव: ।
शासने तस्य वर्तन्ते काननानि सरांसि च ।३८।
कला: काष्ठा निमेषाश्च मुहूर्ता दिवसा: क्षपा: ।
ऋत्वब्दपक्षमासाश्च नियोगात्तस्य धिष्ठिता: ।३९।
युगमन्वंतराण्यस्य शंभोस्तिष्ठति शासनात् ।
पराश्चैव परर्धाश्च कालभेदास्तथापरे ।४०।

महेश्वर के शासन से ही वरुण देव सलिल के द्वारा लोकों को सभावित करते हैं अर्थात् पालन किया करते है और उन्हीं की आज्ञा से लोकों को ही वरुणदेव निमन्त्रित करते हैं और उसके पाशों से असुरों का बन्धन करता है ।३१। उस परमेष्ठी के आदेश से बित्तों का स्वामी यक्षराज पुण्यों के अनुकूल समस्त प्राणियों को धन देता है ।३२। उस नित्य सत्य परमात्मा की आज्ञा से आदित्य उदय और अस्त के समय तथा काल को किया करता है ।३३। उस काल के भी काल के शासन

से कला को धारण करने वाला अमृतांशु (चन्द्रमा) पुष्प और सम्पूर्ण औषधियों को तथा प्रजा को आह्लादित किया करता है ।३४। आदित्य-वसु-रुद्र-अश्विनीकुमार तथा मरुत् एवं अन्य देवगण समस्त उसी के शासन से विनिर्मित हुए हैं ।३५। गन्धर्व-देव मङ्ग-सिद्ध-साध्य-चारण-यक्ष-राक्षस-पिशाच ये सब वेधा के शासन में स्थित रहा करते हैं ।३६। ग्रह नक्षत्र-तारा-यज्ञ-वेद-तप और सम्पूर्ण ऋषियों के गण उसी शिव के शासन में अधिष्ठित रहा करते हैं ।३७। काव्य का उपभोग करने वाले सब पितृगण-सातों समुद्र-गिरि सिन्धु कानन और सरोवर ये सभी उस महेश्वर भगवान् के ही शासन में रहते हैं ।३८। कला काष्ठा-मुहूर्त्त-दिवस-रात्रि-ऋतु-वर्ष-पक्ष-मास ये सम्पूर्ण उस परमेश्वर के नियोग से अधिष्ठित होते हैं ।३९। युग मन्वन्तर भी इस भगवान् शम्भु के ही शासन से स्थित होते हैं तथा पर और परार्ध जो समस्त काल के भेद होते हैं, वे सभी शिव के नियोग से हुआ करते हैं ।४०।

देवानां जातयश्चाष्टौ तिरश्चां पंच जातयः ।
मनुष्याश्च प्रवर्तंते देवदेवस्य धीमतः ।४१।
जातानि भूतवृंदानि चतुर्दशसु योनिषु ।
सर्वलोकनिषणानि तिष्ठंत्यस्यैव शासनात् ।४२।
चतुर्दशसु लोकेषु स्थिता जाताः प्रजाः प्रभोः ।
सर्वेश्वरस्य तस्यैव नियोगवशवर्तिनः ।४३।
पातालानि समस्तानि भुवनान्यस्य शासनात् ।
ब्रह्मांडानि च शेषाणि तथा सावरणानि च ।४४।
वर्तमानानि सर्वाणि ब्रह्मांडानि तदाज्ञया ।
वर्तंते सर्वभूताद्यैः समेतानि समंततः ।४५।
अतीतान्यप्यसंख्यानि ब्रह्मांडानि तदाज्ञया ।
प्रवृत्तानि पदार्थौघैः सहितानि समंततः ।४६।
ब्रह्मांडानि भविष्यंति सह वस्तुभिरात्मवतैः ।
करिष्यंति शिवस्याज्ञां सर्वैरावरणैः सह ।४७।

देवों की आठ प्रकार की जातियाँ—तिर्यक् योनि वालों की पाँच

जातियाँ तथा सब मनुष्य धीमान देवों के भी देव के शासन से प्रवृत्त हुआ करते हैं।४१। चौदह प्रकार की योनियों में समुत्पन्न होने वाले भूतों के वृन्द जो कि सब लोकों में निषण्ण रहा करते हैं इसी के शासन से स्थित हैं।४२। चौदह लोकों में स्थित तथा उद्भूत होने वाली प्रजा प्रभु सर्वेश्वर उसके ही नियोग के वश वर्त्ती होते हैं।४३। पाताल आदि समस्त सातों लोक और भुवन-शेष ब्रह्माण्ड तथा साधारण वर्त्तमान सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड जो कि सब भूतों से समन्वित है उस की आज्ञा से वर्त्तमान रहा करते हैं।४४।४५। जो असंख्य ब्रह्माण्ड अतीत हो चुके हैं सम्पूर्ण पदार्थों के समूह से संयुत होकर सभी ओर से प्रवृत्त हुए थे वे भी उस परमेश्वर देव की आज्ञा प्राप्त कर हुए थे।४६। जो ब्रह्माण्ड आगे भविष्य में भी अपनी सम्पूर्ण वस्तुओं के सहित समुत्पन्न होंगे वे सब आवरणों के साथ शिव की आज्ञा का पालन करने वाले ही होंगे।४७।

॥ ८०—उमामहेश्वर की श्रेष्ठ विभूति ॥

विभूतीः शिवयोर्मह्यमाचक्ष्व त्वं गणाधिप।
परापरविदां श्रेष्ठ परमेश्वरभावित।१।
हतं ते कथयिष्यामि विभूतीः शिवयोरहम्।
सनत्कुमार योगींद्र ब्रह्मणस्तनयोत्तम।२।
परमात्मा शिवः प्रोक्तः शिवा सा च प्रकीर्तिता।
शिवमेवेश्वरं प्राहुर्मायां गौरीं विदुर्बुधाः।३।
पुरुषं शङ्कर प्राहुर्गौरीं च प्रकृतिं द्विजाः।
अर्थः शम्भुः शिवा वाणी दिवसोऽजः शिवा निशा।४।
साप्ततन्तुर्महादेवो रुद्राणी दक्षिणा स्मृता।
आकाशं शंकरो देवः पृथिवी शंकरप्रिया।५।
समुद्रो भगवान् रुद्रो बेला शैलेन्द्रकन्यका।
वृक्षः शूल युधो देवः शूलपाणिप्रिया लता।६।
ब्रह्मा हरोपि सावित्री शंकरार्धशरीरिणी।

विष्णु र्महेश्वरो लक्ष्मीर्भवानी परमेश्वरी ।७।

इस अध्याय में महेश्वर की श्रेष्ठ विभूति का पृथक वर्णन तथा भक्ति के वर्धक लिङ्गार्चन का निरूपण किया जाता है। सनत्कुमार ने कहा—हे गणाधिप! आप तो घर और अपर सब के ाता हैं और परमेश्वर भगवान् के परम भावित श्र भक्त हैं। अब आप कृपा करके शिव और उमा की पृथक २ विभूतियों का वर्ण न कर हमको बतलाइये ।१। तब नन्दिकेश्वर ने कहा—अच्छा, बड़े हर्ष की बात है, अब मैं उमा महेश्वर की विभूतियों का वर्ण न करता हूं। हे सनत्कुमार! आप तो इस सब के श्रवण करने के योग्य पात्र हैं क्योंकि परम योगीन्द्र हैं, और ब्रह्मा के उत्तम आत्मज हैं।२। शिव ही परमात्मा-इस शुभ नाम ले कहे गये हैं और उमादेवी शिवा इस शुभ नाम से प्रकीर्त्तित हुई हैं। भगवान् शिव को ही ईश्वर कहा करते हैं। और बुद्ध लोग गौरी को माया कहते हैं।३। हे द्विजवृन्द! भगवान् शङ्कर को ही पुरुष नाम से कहा जाता है तथा जगज्जन ी गौरी को प्रकृति कहते हैं। शिवा वाणी हूँ तो शम्भु उस वाणी का अर्थ हैं वह अज दिवस है तो शिवा निशा हैं ।४। महादेव सप्त तन्तु (यज्ञ) हैं और रुद्राणी देव उस यज्ञ की दक्षिणा हैं—ऐसा कहा गया है। भगवान् शङ्कर आकाश स्वरूप हैं और वह शङ्कर की प्रिया देवी पृथिवी के स्वरूप वाली हैं।५। भगवान् रुद्र समुद्र हैं तो उस सागर की वेला शैलेन्द्र की कन्या पार्वती हैं। शूल के आयुध धारण करने वाले प्रभु शम्भु वृ हैं तो शूलपाणि की प्रियतमा देवी लता स्थानीया हैं जो उस वृक्ष के ही समाश्रित रहने वाली हैं।६। हर ही ब्रह्मा हैं और शंकर की अर्धाङ्गिनी पार्वती सावित्री के समान हैं। महेश्वर देव विष्णु हैं उस समय परमेश्वरी भवानी साक्षात् महालक्ष्मी के स्वरूप वाली हैं।७।

वज्रपाणिर्महादेवः शची शैलेन्द्रकन्यका।
जातवेदाः स्वयं रुद्रः स्वाहा शर्वार्धकायिनी ।८।
यमस्त्रियम्बको देवस्तत्प्रिया गिरिकन्यका।
वरुणो भगवान् रुद्रो गौरी सर्वार्थ दायिनी ।९।

बालेन्दुशेखरो वायुः शिवा शिवमनोरमा ।
चन्द्राध मौलिर्यक्षेंद्रः स्वयमृद्धिः शिवा स्मृता ।१०।
चंद्रार्धशेखरश्चन्द्रो रोहिणी रुद्रवल्लभा ।
सप्तसप्तिः शिवः कांता उमादेवी सुवर्चला ।११।
षण्मुखस्त्रिपुरध्वंसी देवसेना हरप्रिया ।
उमा प्रसूतावैं ज्ञया दक्षो देवो महेश्वरः ।१२।
पुरुषाख्योः मनुः शम्भुः शतरूपा शिवप्रिया ।
विदुर्भत्रानीमाकूतिं रुचिं च परमेश्वरम् ।१३।
भृगुर्भगाक्षिहा देवः ख्यातिस्त्रिनयनप्रियाः ।
मरीचिर्भगवान्रुद्रः संभूमिर्वल्लभा विभोः ।१४।

महादेव जिस समय में वज्रपाणि महेन्द्र होते हैं उस समय शैलेन्द्र तनया पार्वती शची के(इन्द्राणी के) स्वरूप में अवस्थित रहा करती हैं। स्वयं ही रुद्रदेव जातवेद (अग्निदेव) होते हैं तो शिवर्धाङ्गिनी जगदम्बा उस वह्नि की प्रिया स्वाहा होती हैं ८। त्रियम्बक देव यम के स्वरूप में जब अवस्थित होते हैं तो गिरिकन्या भवानी उसकी प्रिया के रूप में रहा करती हैं। भगवान् रुद्र वरुण के स्वरूप में स्थित होते है तो गौरी सर्वार्थों के प्रदान करने वाली होतीं हैं ।९। वालेन्द्र को मस्तक में धारण करने वाले भगवान् भव जब वायु होते हैं तो शिवा शिव की मनोरमा होती हैं। यन्द्रार्ध मौलि शिव) यक्षराज हैं तो शिवा स्वयं उसकी ऋद्धि के स्वरूप में स्थित हुआ करती हैं ।१०। अर्ध चन्द्र को धारण करने वाले भगवान् शिव चन्द्र के स्वरूप में रहते हैं तो उस समय रुद्र की बल्लभा पार्वती रोहिणी के रूप में रहा करती हैं। शिव सप्तसप्ति (सूर्य) होते हैं तो उमा उसकी कान्ता सुवर्चला हुआ करती हैं ।११। त्रिपुरासुर के हनन करने शिव जब षण्मुख कीर्त्तिय के स्वरूप में होते हैं तो हरप्रिया पार्वती देवसेना के स्वरूप वाली रहा करती हैं। उमा को प्रसूति जानना चाहिये और दक्ष प्रजापति के स्वरूप में देव महेश्वर को समझना चाहिए ।१२। पुरुष नाम वाला मनु शम्भु हैं तो शिव की प्रिया शतरूपा हैं। भवानी को आकूति तो परमेश्वर

को रुचि जान लेना चाहिए।१३। भग की अक्षियों के हनन करने वाले शम्भु भृगु हैं तो त्रिनयन की प्रिया पार्वती ख्याति हैं। भगवान् रुद्र मरीचि ऋषि हैं तो विभु की वल्लभा गौरी सभूति होती हैं।१४।

विदुर्भवानीं रुचिरां कविं च परमेश्वरम्।
गंगाधरोंगिरा ज्ञेयः स्मृतिः साक्षादुमा स्मृता।१५।
पुलस्त्य शशभृन्मौलि प्रीतिः कांता पिनाकिनः।
पुलहस्त्रिपुरध्वंसी दया कालरिपुप्रिया।१६।
क्रतुर्दक्षक्रतुध्वंसी संनधिर्दयिता विभोः।
त्रिनेत्रोऽत्रिरुमा साक्षादनसूया स्मृता बुधैः।१७।
ऊर्जामाहुरुमां वृद्धां वसिष्ठ च महेश्वरम्।
शंकरः पुरुषाः सर्वे स्त्रियः सर्वा महेश्वरी।१८।
पुल्लिंगशब्दवाच्या ये ते च रुद्रः प्रकीर्तिताः।
स्त्रीलिंगशब्दवाच्या याः सर्वा गौर्या विभूतयः।१९।
सर्वे स्त्रीपुरुषाः प्रोक्तास्तयोरेव विभूतयः।
पदार्थशक्तयो यायास्ता गौरीति विदुर्बुधाः।२०।
सासा विश्वेश्वरी देवी स च सर्वो महेश्वरः।
शक्तिमन्तः पदार्था ये स च सर्वो महेश्वरः।२१।

भवानी को रुचिरा तो परमेश्वर को कवि कुछ लोग जानते हैं। गंगा को शिर पर धारण करने वाले शिव गिरा हैं तो उमा साक्षात् उसकी स्मृति स्वरूपिणी होती हैं।१५। शशभृत्त् पुलस्त्य हैं तो उस दशा में पिनाकी प्रिया प्रीति होती है। त्रिपुर के ध्वंश करने वाले पुलह होते हैं तो कालारिपु की प्रिया दया होती है।१६। दक्ष के ऋतु को ध्वंस करने वाले शिव जब ऋतु के स्वरूप में होते हैं उस समय में विभु की दयिता संनति होती हैं। त्रिनेत्र अत्रि हैं तो उमा साक्षात् अनुसूया वुधों के द्वारा कही गयी हैं।१७। उमा को वृद्धा ऊर्जा और महेश्वर को वसिष्ठ कहते हैं। ये समस्त पुरुष शंकर के स्वरूप वाले हैं और सब स्त्रियाँ महेश्वरी के रूप वाली होती हैं।१८। जो भी कोई लोकों में पुल्लिग शब्द के द्वारा वाच्य होते हैं वे सब रुद्र ही के स्वरूप कहे गये

हैं। और जो स्त्री लिंग शब्दों द्वारा कहे जाते हैं वे सभी देवी गौरी की ही विभूतियाँ होती हैं।१६। ये सब स्त्री और पुरुष उन दोनों शिव और उमा की ही विभूतियाँ होती हैं। जो जो भी पदार्थों की शक्तियाँ होती हैं उन सब को बुध लोग गौरी ही कहा करते हैं। वह शक्ति जितनी भी हैं वे सब विश्वेश्वरी देवी हैं और वे सब पदार्थ जो शक्तियों के धारण करने वाले होते हैं सम्पूर्ण महेश्वर हैं।२०।२१।

अष्टौ प्रकृतयो देव्या मूर्तय: परिकीर्तिता: ।
तथा विकृतयस्तस्या देहबद्धविभूतय: ।२२।
विस्फुलिंगा यथा तावदग्नौ च बहुधा स्मृता: ।
जीवा: सर्वे तथा शर्वो द्वंद्वसत्त्वमुपागत: ।२३।
गौरीरूपाणि सर्वाणि शरीराणि शरीरिणाम् ।
शरोरिणस्तथा सर्वे शंकरांशा व्यवस्थिता: ।२४।
श्राव्यं सर्वमुमारूपं श्रोता देवो महेश्वर: ।
विषयित्वं विभुर्धत्ते विषयात्मकतामुमा ।२५।
स्प्रष्टव्यं वस्तुजातं तु धत्ते शंकरवल्लभा ।
स्प्रष्टा स एव विश्वात्मा बालचंद्रार्धशेखर: ।२६।
दृश्यवस्तु प्रजारूपं बिभर्ति भुवनेश्वरी ।
द्रष्टा विश्वेश्वरो देव: शशिखंडशिखामणि: ।२७।
रसजातमुमारूपं घ्रेयजातं च सर्वश: ।
देवो रसयिता शंभु र्घ्राता च भुवनेश्वर: ।२८।

आठ प्राकृतियाँ देवी की मूर्त्तियाँ कही गई हैं। तथा देह की भाँति विभूतियाँ उसकी विकृतियाँ होती हैं।२२। जिस प्रकार से अग्नि में बहुत सारे विस्फुलिंग कहे गये हैं उसी तरह से ये समस्त जीवात्मा होते हैं और शिव द्वन्द्वसल को प्राप्त हो जाते हैं।२३। इन शरीर के धारण करने वाले प्राणियों जो सम्पूर्ण शरीर हैं वे सभी गौरी के स्वरूप वाले ही होते हैं और सब शरीर शंकर भगवान् के अंश व्यवस्थित होते हैं।२४। जो भी कुछ श्राव्य विषय है वह सब ही देवी उमा का स्वरूप है और उसका श्रोता अर्थात् श्रवण करने वाला महेश्वर

देव हैं। विषयित्व के स्वरूप को विभु महेश्वर धारण करने हैं और उमा देवी विषयों के स्वरूव को प्राप्त किया करती है।२५। सृजन करने के योग्य जो समस्त वस्तु जात हैं उन सब का स्वरूप शंकर की प्रियतमा धारण करती हैं और उन सब का सृजन करने वाला विश्वात्मा वालचन्द्र को मस्तक पर धारण करने वाले प्रभु शिव हैं।२६। प्रजा के रूप वाली जो भी कोई दृश्य वस्तु हैं उन सब को भुवनेश्वरी धारण किया करती हैं और उन सब को देखने वाला द्रष्टा साक्षात् देव शशि के खण्ड को मस्तक में मणि की भाँति धारण करने वाले शिव होते हैं।२७। सम्पूर्ण रस जात और सब सूँघने के योग्य वस्तु मात्र उमा का ही स्वरूप है। उन रस युक्त वस्तुओं के आनन्द को ग्रहण करने वाले तथा घ्राता भुवनेश्वर साक्षात् शम्भु ही होते हैं।२८।

मंतव्यवस्तुतां धत्ते महादेवी महेश्वरी।
मता स एव विश्वात्मा महादेवो महेश्वरः।२९।
बोद्धव्य वस्तु रूपं च बिभर्ति भववल्लभा।
देवः स एव भगवान् बोद्धा वालेन्दुशेखरः।३०।
पीठाकृतिरुमा देवी लिंगरूपश्च शंकरः।
प्रतिष्ठाप्य प्रयत्नेन पूजयति सुरासुराः।३१।
येये पदार्थालिंगांकास्तेते शर्वविभूतयः।
अर्था भगांकिता येये तेते गौर्या विभूतयः।३२।
स्वर्गपाताललोकांतब्रह्मांडावरणाष्टकम्।
ज्ञेयं सर्वमुमारूपं ज्ञाता देवो महेश्वरः।३३।
बिभर्ति क्षेत्रतां देवी त्रिपुरांतकवल्लभा।
क्षेत्रज्ञत्वमथो धत्तो भगवानंधकांतकः।३४।
शिवलिंगं समुत्सृज्य यजन्ते चान्य देवताः।
स नृपः सह देशेन रौरवं नरकं व्रजेत्।३५।

महादेवी महेश्वरी मन्तव्य वस्तुता के स्वरूप को धारण किया करती हैं और उन सब का मन्ता विश्वात्मा महेश्वर महादेव ही होते

हैं ।२९। भव की वल्लभा उमादेवी वोध करने के योग्य वस्तुओं के रूप को धारण किया करती हैं और वालेन्दु शेखर भगवान् शिव उन सब का वोद्धा होते हैं ।३०। पीठ के आकार में स्थित उमा देवी हैं और लिग के स्वरूप में साक्षात् शंकर होते हैं जो उस पीठ पर ऊपर विरानमान हैं। सुर और असुर प्रयत्न करके ही उसका प्रतिष्ठा करके फिर यजनार्चन किया करते हैं ।३१। जो जो पदार्थ लिंग के अङ्क वाले होते हैं वे सब ही शिव की ही विभूति होती हैं और भगांक वाले जो जो भी पदार्थ हैं वे सब गौरी की विभूतियाँ हुआ करती हैं ।३२। स्वर्ग से पाताल लोक के अन्त तक ब्रह्माण्ड का अष्टा वरण सब ज्ञान महेश्वर देव होते हैं ।३३। देवी क्षेत्रता के स्वरूप को धारण किया करती हैं जो कि भगवान् त्रिपुरान्तक की वल्लभा हैं और भगवान् अन्धकान्तक शिव क्षेत्रतत्व के स्वरूप वाले होते हैं ।३४। भगवान् शिव के लिंग का त्याग करके जो अन्य देवों का भजनार्चन किया करते हैं उस देश का राजा अपनी समस्त प्रजा के साथ रौरव नरक को जाया करता है ।३५।

शिवभक्तो न यो राजा भक्तोऽन्येषु सुरेषु यः ।
स्वपतिं युवतिस्त्यक्त्वा यथा जारेषु राजते ।३६।
ब्रह्मादयः सुराः सर्वे राजानश्च महर्द्धिकाः ।
मानवा मुनयश्चैव सर्वे लिंगं यजन्ति च ।३७।
विष्णुना रावण हत्वा ससैन्यं ब्रह्मणः सुतम् ।
स्थापितं विधिवद्भक्त्या लिंग तीरे नदीपतेः ।३८।
कृत्वा पापसहस्राणि हत्वा विप्रशतं तथा ।
भावातसम श्रितो रुद्रं मुच्यते नात्र संशयः। ३९।
सर्वे लिंगमया लोकाः सर्वे लिंगे प्रतिष्ठिताः ।
तस्मादभ्यर्चयेल्लिगं यदीच्छेच्छाश्वत पदम् ।४०।
सर्वाकारौ स्थितावेतौ नरैः श्रेयोऽर्थिभिः शिवौ ।
पूजनीयौ नमस्कार्यौ चिंतनीयौ च सर्वदा ।४१।

जो राजा शिव का भक्त न होकर अन्य देवों का यजन किया

करता है और अन्य देवों का भक्त बन जाता है वह इसी भाँति होता है जैसे कोई युवती अपने पति का त्याग करके ज्वर के साथ प्रणय किया करती है ।३६। ब्रह्मा आदि से लेकर सब देवता महान् समृद्ध राजा लोग तथा धनिक मानव और मुनिगण सभी लिंग का यजन किया करते हैं ।३७। भगवान् विष्णु ने ब्रह्मा के पुत्र रावण को सेना के सहित हनन करके नदियों के स्वामी समुद्र के तट पर विधिवत् शिव के लिंग की स्थापना भक्तिपूर्वक की थी ।३८। सहस्रों प्रकार के पापों को करके तथा सैकड़ों विप्रों का हनन भी करके जो भक्ति के भाव से भगवान् रुद्र का समाश्रय ग्रहण कर लेता वह सभी पापों से मुक्त हो जाया करता है—इसमें कुछ भी संशय नहीं है ।३९। यदि शाश्वत पद की इच्छा करता है तो उसे केवल लिंग का ही यजन करना चाहिए क्योंकि सभी लिंग मय कहे गये हैं और सभी लिंग में प्रतिष्ठित होते हैं ।४०। सम्पूर्ण आकार में स्थित ये दोनों शिव और शिवा जो हैं उनका श्रेय के चाहने वाले पुरुष को पूजन करना चाहिए । इन दोनों का ही चिन्तन और सर्वदा नमस्कार करना चाहिए । ।४१।

।। ८१–शिव का जगत उत्पत्ति कारण ।।

मूर्तयोऽष्टौ ममाचक्ष्व शंकरस्य महात्मनः ।
विश्वरूपस्य देवस्य गणेश्वर महामते ।१।
हन्त ते कथयिष्यामि महिमानमुमापतेः ।
विश्व रूपस्य देवस्य सरोजभवसंभव ।२।
भूरापोग्निर्मरुद्व्योम भास्करो दीक्षितः शशी ।
भवस्य मूर्तयः प्रोक्ताः शिवस्य परमेष्ठिनः ।३।
खात्मेंदुवह्निसूर्यांभोधराः पवन इत्यपि ।
तस्याष्ट मूर्तयः प्रोक्ता देवदेवस्य धीमतः ।४।
अग्निहोत्रेर्पिते तेन सूर्यात्मनि महात्मनि ।
तद्विभूतीस्तथा सर्वे देवास्तृप्यन्ति सर्वदाः ।५।
वृक्षस्य मूलसेकेन यथा शाखोपशाखिकाः ।

तथा तस्यार्चया देवास्तथा स्युस्तद्विभूतयः ।६।
तस्य द्वादशधा भिन्नं रूपं सूर्यात्मकं प्रभोः ।
सर्वदेवात्मकं शाज्यं यजंति मुनिपुंगवाः ।७।

इस अध्याय में महेश की आठ मूर्त्तियों को ही विशेष रूप से इस विश्व के उत्पादन का कारण प्रकीर्त्तित किया जाता है । सनत्कुमार ने कहा—महान् आत्मा वाले भगवान् शंकर की आठ मूर्त्तियों के विषय में हम लोगों को आप बताइए । हे गणों के ईश्वर ! आप तो महान् मति वाले हैं और देवों के भी देव विश्वरूप प्रभु महेश्वर के गण के अधिपति हैं ।१। नन्दिकेश्वर ने कहा—मैं भगवान् उमापति की महिमा तुम्हारे सामने कहूँगा । मुझे बड़ी ही इस प्रश्न से प्रसन्नता होती है । आप तो कमल से उद्भव ग्रहण करने वाले ब्रह्मा के पुत्र हैं और विश्वरूप देव के भक्त हैं ।२। परमेष्ठी शिव की भूमि-जल-अग्नि-मरुत्-व्योम-भास्कर-दीक्षित और शशि ये आठ मूर्त्तियाँ हैं ।३। उस धीमान् देवों के देव की अन्तरिक्ष-जीवात्मा इन्दु-वह्नि-सूर्य-जल-भूमि और पवन ये भी आठ मूर्त्तियाँ कही गई हैं ।४। अग्निहोत्र में सूर्यस्वरूप महात्मा परमात्मा के अर्पित होने पर वृक्ष शाखा उपशाखा सदृश उसकी विभूतियाँ अर्थात् उसके अंश सब का प्रदान करने वाले देवता तृप्त हो जाया करते हैं ।५। जिस प्रकार वृक्ष के मूल के सींचने से उसकी सभी शाखा और उप शाखाओं की उस सिंचन से तृप्ति हो जाया करती है उसी भाँति उस एक ही शिव की अर्चना से उसकी विभूति स्वरूप समस्त देवों की तृप्ति हुआ करती है ।६। उस प्रभु के सूर्य स्वरूप भिन्न द्वादश रूप होते हैं और वह सर्व देव स्वरूप है अतएव श्रेष्ठमुनिगण उस पूज्य का यजन किया करते हैं ।७।

अमृताख्या कला तस्य सर्वस्यादित्यरूपिणः ।
भूतसंजीवनी चेष्टा लोकेस्मिन् पीयते सदा ।८।
चद्राख्यकिरणास्तस्य धूर्जटेर्भास्करात्मनः ।
ओषधीनां विवृद्धयर्थं हिमवृष्टिं वितन्वते ।९।
शुक्लाख्या रश्मयस्तस्य शंभोर्मार्तंडरूपिणः ।

धर्मं वितन्वते लोके सस्यपाकादिकारणम् ।१०।
दिवाकरात्मनस्तस्य हरिकेशाह्वयः करः ।
नक्षत्र पोषकश्च व प्रसिद्धः परमेष्ठिनः ।११।
विश्वकर्माह्वयस्तस्य किरणो बुधपोषकः ।
सर्वेश्वरस्य देवस्य सप्तसमिस्वरूपिणः ।१२।
विश्व व्यच इति ख्यातः किरणस्तस्य शूलिनः ।
शुक्रपोषकभावेन प्रतीतः सूर्यरूपिणः ।१३।
संयद्वसुरिति ख्यातो यस्य रश्मिस्त्रिशूलिनः ।
लोहितांगं प्रपुष्णाति सहस्रकिरणात्मनः ।१४।

सम्पूर्ण आदित्य के रूप वाले उस शिव की अमृत नाम वाली कला भूतों को संजीवन देने वाली इष्ट होती है और इस लोक में सर्वदा पान की जाया करती है ।८। भास्कर के स्वरूप वाले भगवान् शिव की चन्द्र नामक किरणें ओषधियों की विशेष वृद्धि के लिए हिम की वृष्टि का विस्तार किया करती हैं ।९। उस मार्त्तण्ड रूपी शम्भु की शुक्ल नाम वाली किरणें सस्यों के परिपाक करने के कारण स्वरूप धर्म (धाम) का विस्तार किया करती हैं ।१०। दिवाकर के स्वरूप वाले उस परमेष्ठी शिव की हरिकेश नाम वाली किरण नक्षत्रों का पोषण करने वाली प्रसिद्ध हैं ।११। विश्वकर्मा नाम वाली उसकी किरण बुध की पोषक होती है जो कि सूर्य के स्वरूप वाले सब के ईश्वर और देवों के भी देव शिव हैं ।१२। उस शूली की एक किरण विश्व व्यच इस नाम से प्रसिद्ध है और सूर्यरूप वाले शिव की वह किरण शुक्र के पोषक भाव से प्रतीत की गई है ।१३। जिस त्रिशूली की जो कि सहस्र किरण के स्वरूप वाले हैं, एक किरण से द्वसु इस नाम से ख्यात होती है जो कि लोहिताङ्ग का पोषण करने वाली है ।१४।

अर्वावसुरिति ख्यातो रश्मिस्तस्य पिनाकिनः ।
बृहस्पतिं प्रपुष्णाति सर्वदा तपनात्मनः ।१५।
स्वराडिति समाख्यातः शिवस्यांशुः शनैश्चरम् ।
हरिदश्वात्मनस्तस्य प्रपुष्णाति दिवानिशम् ।१६।

सूर्यात्मकस्य देवस्य विश्वयोनेरुमापतेः ।
सुषुम्णाख्यः सदा रश्मिः पुष्णापति शिशिरद्युतिम् ॥१७
सौम्यानां वसुजातानां प्रकृतित्वमुपागता ।
तस्य सोपाह्वया मूर्तिः शकरस्य जगद्गुरोः ॥१८
तस्य सोमात्मक रूप शुक्रत्वेन व्यवस्थितम् ।
शरीरभाजां सर्वेषां देवस्यांतक शासिनः ॥१९
शरीरिणामशेषाणां मनस्येव व्यवस्थितम् ।
वपुः सोमात्मकं शंभोस्तस्य सर्वजगद्गुरोः ॥२०
शंभोः षोडशधाभिन्ना स्थितामृतकलात्मनः ।
सर्वभूतशरीरेषु सोमाख्या मूर्तिरुत्तमा ॥२१

एक तपनात्मा पिनाकी की एक अर्वावसु नाम वाली किरण प्रसिद्ध है वह सर्वदा वृहस्पति का पोषण किया करती है ॥१५॥ हरि दश्वात्मा उस शिव की 'स्वराट्'–इस नाम से ख्यात होने वाली किरण अहर्निश शनैश्चर का पोषण किया करती है॥१६॥विश्व की योनि उमापति सूर्य के स्वरूप में स्थित देवकी सुषुम्णा नाम वाली रश्मि (किरण) सर्वदा शिशिर द्युति का पोषण करती है ॥१७॥ इस जगत् के गुरु भगवान् शङ्कर की सौम्य वसु जातों की अर्थात् सकल मयूखों की प्रकृतित्व को प्राप्त होने वाली सोम नाम वाली मूर्ति है ॥१८॥ उसका सोमात्मक रूप शुक्रत्व से व्यवस्थित है और वह अन्तक का शासन करने वाले देव का समस्त शरीर धारियों को होता है ॥१९॥ समस्त जगत् के गुरु भगवान् शम्भु का वह सोमात्मक शरीर समस्त शरीर धारियों के मन में ही व्यवस्थित है ॥२०॥ अमृत कलात्मा शम्भु की सोलह प्रकार से भिन्न स्थित रहने वाली उत्तम मूर्ति समस्त शरीरों में सोम नाम वाली होती है ॥२१॥

देवान्पितॄंश्च पुष्णाति सुधयामृतया सदा ।
मूर्तिः सोमाह्वया तस्य देवदेवस्य शासितुः ॥२२
पुष्णात्योषधिजातानि देहिनामात्मशुद्धये ।
सोमाह्वया तनुस्तस्य भवानोमिति निर्दिशेत् ॥२३

यज्ञानां पतिभावेन जीवानां तपसामपि ।
प्रसिद्धरूपमेतद्वै सोमात्मक मुमापतेः ॥२४
जलानामोषधानां च पतिभावन विश्रुतम् ।
सोमात्मकं वपुस्तस्य शंभोर्भगवतः प्रभोः ॥२५
देवा हिरण्मया सृष्टः परस्परात्रिविकिनः ।
करणानामशेषाणां देवतानां निराकृतिः ॥२६
जीवत्वेन स्थिते तस्मिञ्छिवे सोमात्मके प्रभौ ।
मधुरा विलयं याति सर्वलोकैकरक्षिणी ॥२७
यजमानाह्वया मूर्तिः शिवा हव्यैरहर्निशम् ।
पुष्णाति देवताः सर्वाः कव्यैः पितृगणानपि ॥२८

उस शासिता देवों के देव की सोम नाम वाली मूर्त्ति सदा सुधा से अमृत के द्वारा देवों को और पितृगण को पोषित किया करती है ॥२२॥ उसकी सोम नाम वाली मूर्त्ति, जिसको भवानी देखना चाहिए, देहधारियों की आत्म-शुद्धि के लिए ओषधि जातों को पुष्ट किया करती है ॥२॥ यज्ञों को-जीवों की तथा तपों की पतिभाव से उमापति का यह सोमात्मक रूप प्रसिद्ध है ॥२४॥ भगवान् प्रभु शम्भु का सोमात्मक वपु जल और ओषधियों के पति भाव से विश्रुत है ॥२५॥ परस्पर में आत्मा की आत्मा विचार वाले को विचारित देव शिव समस्त चक्षुरादि करणों के तदभिमानी सूर्यादि देवों की बिना आकृति वाला हिरण्मय अग्राह्य होता है ॥१६॥ सोमात्मक उस प्रभु के शिव के जीवत्व रूप से स्थित होने पर सर्वलोकों की एक ही रक्षा करने वाली मधुरा विलय को प्राप्त हो जाती है ॥२७॥ शिव की यजमान नाम वाली मूर्त्ति अहर्निश हव्यों के द्वारा सम्पूर्ण देवों का तथा कव्यों के द्वारा समस्त पितृगणों का पोषण किया करती है ॥२८॥

यजमानाह्वया या सा तनुश्चाहुतिजा तया ।
वृष्ट्या भावयति स्पष्टं सर्वमेव परापरम् ॥२९
अन्तःस्थं च बहिःस्थं च ब्रह्मांडानां स्थितं जलम् ।
भूतानां च शरीरस्थं शंभोर्मूर्तिर्गरीयसी ॥३०

नदीनाममृतं साक्षान्ना दानामपि सर्वदा ।
समुद्राणां च सर्वत्र व्यापी सर्वमुमापतिः ॥३१
सजाविनो समस्तानां भूतानामेव पाविना ।
अंबिका प्राणसंस्था या मूतिरंबुमयी परा ॥३२
अंतःस्थश्च बहिःस्थश्च ब्रह्मांडानां विभावसुः ।
यज्ञानां च शरीरस्थः शंम्भामूर्तिर्गरोयसा ॥३३
शरीरस्था च भूतानां श्रेयसी मूतिरैश्वरी ।
मूर्तिः पावक संस्था या शंभोरत्यतपूजिता ॥३४
भेदा एकोनपचाशद्वेदविद्भिरुदाहृताः ।
हव्यं वहति देवानां शम्भार्यज्ञात्मकं वपुः ॥३५

यजमानाख्या अर्थात् यजमान नाम वाली मूर्त्ति है उसके द्वारा आहूजिता जो तनु है वह वृष्टि से सम्पूर्ण परापर को स्पष्ट रूप से भावित करती है ॥२६॥ अन्तःस्थ और बाहिर में स्थित तथा ब्रह्माण्ड में स्थित जो जल है एव भूतों के शरीर में स्थित जल शम्भु की अधिक बड़ी मूर्त्ति है ॥३०॥ सर्वदा नदियों का नदों का और सर्वत्र सागर का व्यापी अमृत सब उमापति है ॥३१॥ संजीवनी तथा सम्पूर्ण भूतों की पाविनी प्राण संस्था जो परा अम्बुमयी मूर्त्ति है वह अम्बिका है ॥३२॥ अन्तःस्थ और बाहःस्थ ब्रह्माण्डो का बिभावसु तथा यज्ञों का शरीर में स्थित रहने वाला विभावसु शम्भु भगवान् की गरीयसी मूर्त्ति है ॥३३॥ भूतों के शरीर में स्थित रहने वाली ईश्वर की कल्याणमयी मूर्त्ति है । पावक में संस्थित जो शम्भु की मूर्त्ति है वह अत्यन्त पूजित होती है ॥३४॥वेद के वेत्ताओं ने उनचास इसके भेद बताये हैं । शम्भु का यज्ञ स्वरूप वपु देवों के हव्य का वहन किया करता है ॥३५॥

कव्यं पितृगणानां च हूयमानं द्विजातिभिः ।
सर्वदेवमयं शम्भोः श्रेष्ठमग्यात्मकं वपुः ॥२६
वर्दात वेदशास्त्रज्ञा यजति च यथाविधि ।
अंतःस्थो जगदंडानां बहिःस्थश्च समीरणः ॥३७
शरीरस्थश्च भूतानां शैवी मूर्तिः पटीयसी ।

प्राणाद्या नागकूर्माद्या आवहाद्याश्च वायवः ।।३८
ईशानमूर्तेरेकस्य भेदाः सर्वे प्रकीर्तिताः ।
अंतःस्थं जगदण्डानां बहिःस्थं च वियद्विभोः ।।३९
शरीरस्थं च भूतानां शंभामूर्तिर्गरीयसी ।
शम्भोर्विश्वंभरा मूर्तिः सर्वब्रह्माधिदेवता ।।४०
चराचराणां भूतानां सर्वेषां धारणे मता ।
चराचराणां भूतानां शरीराणि विदुर्बुधाः ।।४१
पंचकेनेशमूर्तीनां समारब्धानि सर्वथा ।
पंचभूतानि चन्द्रार्कावात्मेति मुनिपुंगवाः ।।४२

भगवान् शम्भु का यज्ञात्मक वपु द्विजाति के द्वारा हूयमान होकर पितृगण के कव्य का वहन किया करता है । शम्भु का सब देवमय अग्नि के स्वरूप वाला वपु अति श्रेष्ठ है ।।३६।। वेदों के तथा शास्त्रों के ज्ञाता ऐसा कहते हैं और विधि के अनुसार यजन किया करते हैं । जगत् के अण्डों का अन्दर में रहने वाला तथा बाहिर में स्थित समीरण पवन) तथा शरीर में भूतों के रहने वाला पवन भगवान् शिव की पटीयसी मूर्ति है । प्राण-अपान आदि तथा नाग-कूर्म-कृकल आदि एवं आवहादि जो वायु हैं ये सब एक ही ईशान मूर्ति के भेद बताये गये हैं । जगदण्डों के अन्तःस्थ और बहिस्थ और भूतों के शरीर में स्थित विभु का जो विद्यत् (गगन) है वह शम्भु की एक अधिक बड़ी मूर्ति होती है । सर्व ब्रह्म की अधि देवता शम्भु की विश्व का भरण करने वाली मूर्ति है ।।३७।।३८।।३९।।४०।। चर और अचर अर्थात् स्थावर-जंग समस्त भूतों के धारण करने में मानी हुई जो मूर्ति है उसे बुध लोग जों चराचरों के शरीर हैं सर्वथा पृथिव्यादि पंच भूतों के द्वारा उत्पादित जाना करते हैं ।।१४।। यह पाँच भूतों का पंचक ईष की ही मूर्तियों का हैं जिनसे कि भूतों के शरीर समारब्ध होते हैं । ये पाँच पृथिव्यादि भूत-चन्द्र-अर्क (सूर्य) और आत्मा ये कुल आठ शिव की मूर्त्तियाँ होती है जैसा कि पूर्व में भी बताया जा चुका है ।।४२।।

मूर्तयोऽष्टौ शिवस्याहुर्देवदेवस्य धीमतः ।

आत्मा तस्याष्टमीमूर्तिर्यजमानाह्वया परा ॥४३
चराचर शरीरेषु सर्वेष्वेव स्थिता तदा ।
दाक्षित ब्राह्मण प्राहुरात्मानं च मुनीश्वराः ॥४४
यजमानाह्वया मूर्तिः शिवस्य शिवदायिनः ।
मूर्तयोऽष्टौ शिवस्यैता वंदनीयाः प्रप्रत्नतः ॥४५
श्रेयोर्थिभिर्नरैर्नित्यं श्रेयासामेकहेतवः ॥४६

ये आठों मूर्त्तियाँ धीमान् देवों के भी देव भगवान् शम्भु की हैं—ऐसा ही कहा गया है । आत्मा इसकी आठवीं मूर्त्ति होती है जो कि पर यजमान के नाम से कही जाती है ॥४३॥ ये चराचर के शरीरों में सभी में ही स्थित हैं उस समय मुनीश्वर लोग दीक्षित ब्राह्मण और आत्मा को कहते हैं ॥४४॥ कल्याण के दाता शिव की यजमान नाम वाली मूर्त्ति होती है । ये सब शिव की आठों ही मूर्त्तियाँ प्रयत्नपूर्वक वन्दना करने के योग्य हैं । ये सब श्रेय के एकमात्र कारण स्वरूप हैं अतः जो श्रेय का सम्पादन करने के इच्छुक मनुष्य हैं उनको इसकी वन्दना अवश्य ही करनी चाहिए ॥४५-४६॥

॥ ८२-शंकर की पृथक्-पृथक् मूर्ति वर्णन ॥

भूयोऽपि वद मे नंदिन् महिमानमुमापते ।
अष्टमूर्तेर्महेशस्य शिवस्य परमेष्ठिनः ॥१
वक्ष्यामि ते महेशस्य महिमानमुमापतेः ।
अष्टमूर्तेर्जगद्व्याप्य स्थितस्य परमेष्ठिनः ॥२
चराचराणां भूतानां धाता विश्वंभरात्मकः ।
शर्व इत्युच्यते देवः सर्वशास्त्रार्थपारगैः ॥३
विश्वंम्भर त्मनस्तस्य सर्वस्य परमेष्ठिनः ।
विकेशी कथ्यते पत्नी ततयोंगारकः स्मृतः ॥४
भव इत्युच्यते देवो भगवान्वदेवादिभिः ।
संजीवनस्य लोकानां भवस्य परमात्मनः ॥५
उमा संकीर्तिता देवी सुतः शुक्रश्च सूरिभिः ।

सप्तलोकांडकव्यापी सर्वलोकैकरक्षिता ।।६
वह्न्यात्मा भगवान्देवः स्मृतः पशुपतिर्बुधैः ।
स्वाहा पत्न्यात्मनस्तस्य प्रोक्ता पशुपतेः प्रिया ।।७

इस अध्याय में भगवान् शङ्कर की पृथक् २ मूर्त्तियों का वर्णन किया जाता है । सनत्कुमार ने कहा—हे नन्दिन् ! आप परमेष्ठी महेश शिव जिनकी कि अष्ट मूर्त्तियाँ होती हैं उन उमा के पति की महिमा को और भी फिर वर्णन करिये और मुझे श्रवण कराने की कृपा कीजिए ।।१।। नन्दिकेश्वर ने कहा-मैं आपको उमा के पति महेश की महिमा का वर्णन करूंगा । परमेष्ठी इनकी ये आठ मूर्त्तियाँ इश जगत् को व्याप्त करके स्थित रहती हैं ।।२।। जो समस्त शास्त्रों के पारगामी मनीषीगण हैं उनके द्वारा यह देव सम्पूर्ण चराचरों के धाता विश्वम्भर स्वरूप वाले शर्व-इस शुभ नाम से कहे जाया करते हैं ।।३।। उस विश्वम्भरात्मा परमेष्ठी की विकेशी पत्नी और अङ्गारक तनय कहा गया है ।।४।। वेद वादी विद्वानों के द्वारा भगवान् देव भव इस नाम से कहे जाते हैं । सलिलात्मक जल देहधारी देव को भव कहा जाया करता है । वह परमात्मा भव लोकों का संजीवन होता है ।।५।। सूरिगण के द्वारा उमादेवी कही गई है और शुक्र सुन बताया गया है । जो कि सात लोकों के अण्डकों में व्यापक है और समस्त लोकों का एक ही रक्षा करने वाला है ।।६।। अग्नि के स्वरूप वाले जो भगवान् देव हैं वे बुधों के द्वारा पशुपति कहे गये हैं उनकी अपनी प्रिया पशुपति की स्वाहा वताई गई हैं ।।७।।

षण्मुखो भगवान्देवी बुधैः पुत्र उदाहृतः ।
समस्तभुवनव्यापी भर्ता सर्वशरीरिणाम् ।।८
पवनात्मा बुधैर्देव ईशान इति कीर्त्यते ।
ईशानस्य जगत्कर्तुर्देवस्य पवनात्मनः ।।९
शिवा देवी बुधैरुक्ता पुत्रश्चास्य मनोजवः ।
चराचराणां भूतानां सर्वेषां सर्व कामदः ।।१०
व्योमात्मा भगवान्देवो भीम इत्युच्यते बुधैः ।
महामहिम्नो देवस्य भीमस्य गगनात्मनः ।।११

दिशो दश स्मृता देव्यः सुतः सर्गश्च सूरिभिः ।
सूर्यात्मा भगवान्देवः सर्वेषां च विभूतिदः ॥१२
रुद्र इत्युच्यते देवैर्भगवान् भुक्तिमुक्तिदः ।
सूर्यात्मकस्य रुद्रस्य भक्तानां भक्तिदायिनः ॥१३
सुवर्चला स्मृता देवी सुतश्चास्य शनैश्चरः ।
समस्तसौम्यवस्तूनां प्रकृतित्वेन विश्रुतः ॥१४

पण्डितों के द्वारा भगवान् षण्मुख देव पुत्र कहे गये हैं जो कि सम्पूर्ण भवनों में व्यापक रहने वाला तथा समस्त शरीर धारियों का भर्त्ता है ॥८॥ पवनात्मक अर्थात् पवन के स्वरूप वाले जो शिव हैं उसे लोगों के द्वारा ईशान-ऐसा कहा जाता है। वह ईशान इस जगत् के करने वाले पवन के स्वरूप में स्थित देव हैं ॥९॥ बुधों के उनकी प्रिय शिवा देवी कही गई है और इनका पुत्र मनो जब होता है। जो समस्त चर एवं अचर भूतों के सब कामनाओं के प्रदान करने वाला है ॥१०॥ उन शिव की आठ मूर्त्तियों में जो एक व्योम स्वरूप वाली मूर्त्ति है उसे बुधों के द्वारा "भीम"—इस नाम से कहा जाता है। उस गगनात्मा देव भीम की महान् महिमा होती है ॥११॥ उस देव की देवियाँ सूरिगण ने दशों दिशाऐं बताई हैं और सर्ग उसका सुत कहा गया हैं। सूर्य के स्वरूप वाले जो भगवान् देव हैं वे सभी को विभूति प्रदान करने वाले होते हैं ॥१२॥ वे भुक्ति और मुक्ति दोनों को प्रदान करने वाले देव "रुद्र"-इस नाम वाले कहे जाते हैं। सूर्य्यात्मा भगवान् देव की जो कि रुद्र अपने भक्तों को भक्ति के प्रदान करने वाले होते हैं, उनकी सुवर्चला नाम धारिणी देवी हैं और शनैश्वर पुत्र होता है। समस्त सौम्य वस्तुओं का जो प्रकृतित्व से ही विश्रुत होता है ॥१४॥

सोमात्मको बुधैर्देवो महादेव इति स्मृतः ।
सोमात्मकस्य देवस्य महादेवस्य सूरिभिः ॥१५
दयिता रोहिणी प्रोक्ता बुधश्चैव शरीरजः ।
हव्यकव्यस्थितिं कुर्वन् हव्यकव्याशिनां तदा ॥१६
यजमानात्मको देवो महादेवो बुधैः प्रभुः ।

उग्र इत्युच्यते सद्‌भिरीशानश्चे ति चापरैः ।।१७
उग्राह्वयस्य देवस्य यजमानात्मनः प्रभोः ।
दीक्षा पत्नी बुधैरुक्ता संतानाख्यः सुतस्तथा ।।१८
शरीरिणां शरीरेषु कठिनं कोंकणादिवत् ।
पार्थिवं तद्वपुर्ज्ञे यं शर्वतत्वं बुभुत्सुभिः ।।१९
देहेदेहे तु देवेशो देहभाजां यदव्ययम् ।
वस्तुद्रव्यात्मकं तस्य भवस्य परमात्मनः ।।२०
ज्ञेयं च तत्वविद्‌भिर्वै सर्ववेदार्थपारगैः ।
आग्नेयः परिणामो यो विग्रहेषु शरीरिणाम् ।।२१
मूर्तिः पशुपतिर्ज्ञेया सा तत्वं वेत्तुमिच्छुभिः ।
वायव्यः परिणामो यः शरीरेषु शरीरिणाम् ।।२२

वह सोमात्मक अर्थात सोम के स्वरूप वाले देव बुधों के द्वारा महा-देव'— इस नाम से कहे गये हैं । उन सोम स्वरूप धारी महादेव देव की दयिता सूरियों के द्वारा रोहिणी बताई गई है और बुध उनका पुत्र कहा गया है । जो हव्य तथा कव्य का अशन करने वाले देव एवं पितर होते हैं उनकी हव्य-कव्य की स्थिति का करते हुए यजमानात्मक प्रभु देव महादेव कहा गया है और बुध लोगों ने ऐसा कहा है । सत्पुरुषों के द्वारा वह "उग्र" ऐसा तथा अपर लोगों के द्वारा "ईशान"–यह कहा जाता है ।।१५।।१६।।१७।। उग्र-इस शुभ नाम वाले जो देव हैं उन यजमान स्वरूप वाले प्रभु की पत्नी बुधों ने दीक्षा बताई है और उनका सुत सन्तान नाम वाला कहा गया है ।।१८।। अब तक उन भगवान् शिव की आठ मूर्त्तियों का नाम और उनकी पुत्री तथा पुत्रों का नाम आदि बता-कर अब उनके शरीर के तत्तद्‌भागों को बतलाते हैं शरीर धारियों के शरीरों में उनका पार्थिव शरीर अत्यन्त ही कठिन है जो कि शर्व के तत्व के जिज्ञासु पुरुषों को कोंकण आदि की भांति जान लेना चाहिए । कोंकण-यह एक देश के भाग विशेष का नाम है ।।१९।। देह धारियों के देह-देह में देवेश हैं और जो अव्यय वस्तु द्रव्यात्मक है । वह उस परमात्मा सब का ही स्वरूप है ।।२०।। सम्पूर्ण वेदों के पारगामी तत्वों के वेत्ताओं

के द्वारा उसे जान लेना चाहिए । शरीर धारियों के शरीरों में जो आग्नेय परिणाम है अर्थात् अग्नि के द्वारा अग्नि जैसा परिपाक होता है वह पशुपति की ही मूर्त्ति तत्वों के जानने की इच्छा वालों को समझनी चाहिए । तात्पर्य यह है कि शरीर में भोज्य वस्तु का परिपाक आदि जो अग्नि किया करती है वह शम्भु का ही स्वरूप होता है । इसी प्रकार से शारीरियों के शरीरों में वायुकृत भी परिणाम हुआ करता है ।।२१-२२

बुधैरीशेति सा तस्य तनुर्ज्ञेया न संशयः ।
सुषिरं यच्छरीरस्थमशेषाणां शरीरिणाम् ।।२३
भीमस्य सा तनुर्ज्ञेया तत्त्वविज्ञानकांक्षिभिः ।
चक्षुरादिगतं तेजो यच्छरीरस्थमंगिनाम् ।।२४
रुद्रस्यापि तनुर्ज्ञेया परमार्थं बुभुत्सुभिः ।
सर्वभू शरीरेषु मनश्चंद्र त्मकं हि यत् ।।२५
महादेवस्य सा मूर्ति र्बोद्धव्या तत्त्वचिंतकैः ।
आत्मा यो यजमानख्यः सर्वभूतशरीरगः ।।२६
मूर्तिरुग्रस्त सा ज्ञेया परमात्मबुभुत्सुभिः ।
जातानां सर्वभूतानां चतुर्दशसु योनिषु ।।२७
अष्टमूर्तेरनन्यत्वं वदंति परमर्षयः ।
सप्तमूर्तिमयान्याहूरीशस्याँगानि देहिनाम् ।।२८

उस वायव्य परिणाम का बुध लोगों ने ईशा-यह तनु बताया है और उन्हें इसी भांति समझ लेना चाहिए इसमें कुछ भी संशय नहीं है । समस्त शरीरियों के शरीर में स्थित जो सुषिर होता है उसे तत्वों के विज्ञान की आकाङ्क्षा रखने वालों को भीम का ही शरीर समझना चाहिए । अङ्गधारियों के शरीर में स्थित जो चक्षु आदि में गत तेज होता है वह परमार्थ के जिज्ञासुओं को भगवान् रुद्र का ही तेजोमय शरीर समझना चाहिए । समस्त भूतों के शरीरों में जो एक मन के स्वरूप वाला चन्द्रात्मक होता है उसे भी तत्व चिन्तकों के द्वारा एक महादेव की ही मूर्त्ति जाननी चाहिए । जो सभी प्राणियों के शरीरों में रहने वाला जीवात्मा है जिसका कि यजमान यह नाम होता है ।।२३।।

॥२४-२६॥ उसे परमात्मा के तत्व के जानने की जिज्ञासा रखने वालों को उस की मूर्त्ति ही समझनी चाहिए। चतुर्दश योनियों में समुत्पन्न प्राणियों के अन्दर परमर्षि लोग अब मूर्त्ति का अनन्यत्व बतलाते हैं। देहधारियों के अंग ईश की सात मूर्त्तियों से परिपूर्ण हुआ करते हैं ॥२७-२८॥

आत्मा तस्याष्टमी मूर्तिः सर्वभूतशरीरगा।
अष्टमूर्तिमिमं देवं सर्वलोकात्मकं विभुम् ॥२९
भजस्व सर्वभावेन श्रेयः प्राप्तुं यदीच्छसि :
प्राणिनो यस्य कस्यापि क्रियते यद्यनुग्रहः ॥३०
अष्टमूर्तेर्महेशस्य कृतमाराधनं भवेत्।
निग्रहश्चेत कृतो लोके देहिनो यस्य कस्यचित् ॥३१
अष्टमूर्तेर्महेशस्य स एव विहितो भवेत।
यद्यवज्ञा कृता लोके यस्य कस्य चिदंगनिः ॥३२
अष्टमूर्तेर्महेशस्य विहिता सा भवेद्विभोः।
अभयं यत प्रदत्तं स्य दंगिनो यस्य कस्यचित् ॥३३
आराधन कृतं तस्मादष्टमूर्तेर्न संशयः।
सर्वोपकारकरणं प्रदानमभयस्य च ॥३४
आराधन तु देवस्य अष्टमूर्तेर्न संशयः।
सर्वोपकारकरणं सर्वानुग्रह एव च ॥३५
तदर्च्चनं परं प्रहुरष्टमूर्तेर्मुनीश्वराः।
अनुग्रहणमन्येषां विधातव्यं त्वयांगिनाम् ॥३६
सर्वाभयप्रदानं च शिवाराधनमिच्छता ॥३७

यह जीवात्मा उस महेश्वर की आठवीं मूर्त्ति है जो कि समस्त प्राणियों के शरीरों में गमनशील रहता है। इस प्रकार से इन आठ मूर्त्तियों वाले सर्व लोकात्मक विभु देव सर्वत्रो भाव से भजन करो यदि इस संसार में रहकर श्रेय प्राप्त करने की इच्छा रखते हो। अष्टमूर्त्ति के विश्वरूप होने से उसके आराधन करने का प्रकार बतलाया जाता है। जिस किसी प्राणी पर यदि वह अनुग्रह करते हैं तो अवश्य ही श्रेय

प्राप्ति हो जाती है ।। २९।।३० ।। अतएव अष्टमूर्त्ति महेश का आराधन करना ही चाहिए । यदि किसी भी प्राणी पर कोई निग्रह इस लोक में करना है तो वह भी अष्टमूर्त्ति महेश के ही द्वारा वह दण्ड भी किया हुआ होता है । जिस किसी देहधारी की लोक में अवज्ञा की गई है तो वह भी अष्टमूर्त्ति महेश की ही की हुई होती है । जिस किसी अंगधारी को अभय यदि दिया हुआ होता है तो यह भी उसी अष्टमूर्त्ति विभु का होता है । अतएव भगवान् अष्टमूर्त्ति के किये हुए आराधन से यह सभी कुछ होता है—इसमें संशय नहीं है । सब प्रकार के उपकरणों (साधनों) का करना अर्थात प्राप्त करना और अभय का प्रदान करना यह अष्टमूर्त्ति वाले देव के ही आराधन से ही हुआ करता है—इस में लेशमात्र भी संशय नहीं है । सब उपकारों का करना और सब प्रकार का अनुग्रह प्राप्त करना—इसके लिये मुनीश्वरों ने अष्टमूर्त्ति भगवान का अर्चन करना ही पर बनाया है । शिव के आराधन की इच्छा करने वाले तुझे भी अन्य अंगियों पर अनुग्रह और सब प्रकार से अभय का दान करना चाहिए ।।३१-३७।।

।।८३—शिव का सर्वतत्वात्मक-स्वरूप ।।

पंच ब्रह्माणि मे नंदिन्नाचक्ष्व गणसत्तम ।
श्रेयःकरणभूतानि पवित्राणि शरीरिणाम् ।।१
शिवस्यैव स्वरूपाणि पंच ब्रह्माह्वयानि ते ।
कथयामि यथातत्त्वं पद्मयोनेः सुतोत्तम ।।२
सर्वलोकैकसंहर्ता सर्वलोकैकरक्षिता ।
सर्वलोकैकनिर्माता पंचब्रह्मात्मकः शिवः ।।३
सर्वेषामेव लोकानां यदुपादानकारणम् ।
निमित्तकारणं चाहुस्य शिवः पंचधा स्मृतः ।।४
मूर्तयः पंच विख्याताः पंच ब्रह्म ह्वयाः पराः ।
सर्वलोकशरण्यस्य शिवस्य परमात्मनः ।।५
*क्षेत्रज्ञः प्रथमा मूर्तिः शिवस्य परमेष्ठिनः ।

भोक्तृप्रकृतिवर्गस्य भोग्यस्येशानसंज्ञितः ।।६
स्थाणोस्तत्पुरुषाख्या च द्वितीया मूर्तिरुच्यते ।
प्रकृतिः स हि विज्ञेया परमात्मगुहात्मिका ।।७

(शिव का सर्वतत्वात्मक स्वरूप) इस अध्याय में पंच ब्रह्म स्वरूप वाले शम्भु का समस्त तत्वों के स्वरूप वाला स्फुट स्वरूप का निरूपण किया जाता है । सनत्कुमार ने कहा—हे गणों में परम श्रेष्ठ नन्दिन् ! आप मुझे श्रेय के करण भूत और शरीर धारियों के लिये परम पवित्र पंच ब्रह्मों को बताने की कृपा कीजिए ।।१।। नन्दिकेश्वर ने कहा-हे पद्म योनि ब्रह्मा के श्रेष्ठ पुत्र ! ये पंच ब्रह्म नाम वाले शिव के ही स्वरूप होते हैं उन्हें मैं तुमको बतलाता हूँ और यथा तत्व कहूँगा ।।२।। समस्त लोकों का एक संहार करने वाला सम्पूर्ण लोकों का एक रक्षा करने वाला और लोकों का एक निर्माण करने वाला शिव पंच ब्रह्मात्मक होते हैं । वह समस्त लोकों का एक ही उपादान कारण और निमित्त कारण भी होता है । इस प्रकार से यह शिव पांच प्रकार के कहे गये हैं ।।३-४।। समस्त लोकों के शरण्य (रक्षक) परमात्मा शिव की पांच मूर्त्तियाँ विख्यात हैं । पाँच ब्रह्म नाम वाली परा है ।।५।। परमेष्ठी शिव मूर्त्तियाँ विख्यात हैं । पांच ब्रह्म नाम वाली परा हैं ।।५।। परमेष्ठी शिव की प्रथमा मर्ति क्षेत्रज्ञ है । ईशान संज्ञा वाला भोगने के योग्य प्रकृति वर्ग के भोक्ता है ।।६।। स्थाणु की तत्पुरुष नाम वाली द्वितीया मूर्त्ति कही जाती है । वह प्रकृति परमात्मा की मुख्य अधिकरण भूत जननी चाहिए ।।७।।

अघोराख्या तृतीया च शंभोर्मूर्तिर्गरीयसी ।
बुद्धेः सा मूर्तिरित्युक्ता धर्माद्यष्टांगसंयुता ।।८
चतुर्थी वामदेवाख्या मूर्तिः शंभोर्गरीयसी ।
अहंकारात्मकत्वेन व्याप्य सर्वं व्वस्थिता ।।९
सद्योजाताह्वया शंभोः पंचमी मूर्तिरुच्यते ।
मनस्तत्वात्मकत्वेन स्थिता सर्वशरीरिषु ।।१०
ईशानः परमो देवः परमेष्ठी सनातनाः ।
श्रोत्रेंद्रियात्मकत्वेन सर्वभूतेष्ववस्थितः ।।११

स्थितस्तत्पुरुषो देवः शरीरेषु शरीरिणाम् ।
त्वगिंद्रयात्मकत्वेन तत्त्वविद्भिरुदाहृतः ॥१२
अघोरोपि महादेवश्च क्षुरात्मतया बुधंः ।
कोतितः सर्वभूतानां शरोरेषू व्यवस्थितः ॥१३
जिह्वेंद्रिय त्मकत्वेन वामदेवोपि विश्रुतः ।
अङ्गभाजामशेषाण मगेषु परिधिष्ठितिः ॥१४

शम्भु की अघोर नाम वाली तीसरी मूर्त्ति है जो कि गरीयसी होती है। वह मूर्त्ति बुद्धि की कही गई है जो कि धर्म आदि अष्टांग-संयुत होती है ॥८॥ शम्भु की चौथी गरीयसी अर्थात् अधिक बड़ी वामदेव-इस अभिधाना वलीमूर्त्ति होती है। यह मूर्ति अहकारात्मक होने से सब को ब्याप्त करके व्यवस्थित होती है॥९॥सद्योजाता-इस नाम वाली भगवान् शम्भु की पांचवीं मूर्ति कही जाया करतो है। जो समस्त त्वात्मक होने से सम्पूर्ण शरीर धारियों में स्थित रहा करली है।।१०॥ ईशान परम देव परमेष्ठी और सनातन हं और श्रोत्रेन्द्रियात्मकत्व होने से सब भूतों में अवस्थित रहते हैं ॥११॥ शरीरियों के शरीरों में त्वगिन्द्रियात्मक होने तत्पुरुष देव स्थिति रहते हैं—ऐसा तत्वों के वेत्ताओं के द्वारा कहा गया है ॥१२॥ चक्षु रात्मकत्व होने से अघोर देव भी समस्त भूतों के शरीरों में व्यवस्थित रहते हं–ऐसा बुधों के द्वारा कीर्त्तित किया गया है ॥१३॥ वामदेव भी जिह्वा इन्द्रिय के स्वरूप से अंग वालों के अशेष अंगों में परिधिष्ठित होने वाले प्रसिद्ध हैं ॥१४॥

घ्राणेद्रियात्मकत्वेन सद्योजातः स्मृतो बुधैः ।
प्राणभाजां समस्तानाँ विग्रहेषु व्यवस्थितः ॥१५
सवष्वेव शरारेषु प्राणभाजां प्रतिष्ठितः ।
वागिंद्रियात्मकत्वेन बुधैराशान उच्यते ॥२६
पाणींद्रियात्मकत्वेन स्थितस्तत्पुरुषो बुधैः ।
उच्यते विग्रहेष्वेव सर्वविग्रहधारिणाम् ॥१७
सर्व विग्रहिणा देहे ह्यघोरोपि व्यवस्थितः ।
पादंद्रियात्मकत्वेन कातितस्तत्त्ववेदिभिः ॥१८

पार्थिवद्रियात्मकत्वेन वामदेवो व्यवस्थितः ।
सर्वभूतनिकायानां कायेषु मुनिभि स्मृतः ॥१६
उपस्थात्मतया दवः सद्योजातः स्थितः प्रभुः ।
इष्यते वदशास्त्रज्ञै र्देहषु प्राणधारिणाम् ॥२०
ईशान प्राणिनां दव शब्दतन्मात्ररूपिणाम् ।
आकाशजनक प्राहमु निवृंदारकप्रजाः ॥२१

सद्योजात घ्राणेन्द्रिय के स्वरूप से समस्त प्राण धारियों के शरीरों में व्यवास्थित रहत है ऐसा बुधजनों के द्वारा कहा गया ह ॥ १५ ॥ ईशान वागिन्द्रियात्मकतया समस्त प्राणियों के शरीरों में प्रतिष्ठित ह यह बुधों के द्वारा कहा जाता ह ॥१६॥ सम्पूर्ण विग्रह (शरार धारियों के शरीरो मे पाणीन्द्रिय के स्वरूपता से तत्पुरुष स्थित रहते हैं ऐसा मनीषिया के द्वारा कहा जाया करता है ॥१७॥ तत्वो क वेत्ता लोगों के द्वारा कीर्त्तित किया गया है कि अघोर भी समस्त विग्रह धारियों के देहों म पादेन्द्रियात्मकत्व स स्थित है ॥१८॥ वामदेव पांयु (मलोत्सर्ग करने वाला) इन्द्रिय के स्वरूप स समस्त प्राणियों के निकायो के शरीर में स्थित ह । एसा मुनियों न प्रतिपादन किया ह ॥१६॥ सद्योजात प्रभु प्राण धारियों के देहों में उपस्थात्मता से (जननेन्द्रिय के स्वरूप से) अवस्थित रहा करते हं मुनियों के द्वारा, जो कि वेदों और शास्त्रों के पूर्ण ज्ञाता हं, एसा प्रतिपादन किया जाता है ।२०। मुनि वृन्दारक प्रजा यह कहते ह कि शब्द तन्मात्र के रूप वाले प्राणियों के देव ईशान हैं जो कि आकाश के जनक हे ॥२१॥

प्राहुस्तत्पुरुषं दवं स्पर्शतन्मात्रकात्मकम् ।
समारजनकं प्राहुर्भगवंतं मुनोश्वराः ॥२२
रूपतन्मात्रक देवमघोरमपि घोरकम् ।
प्राहुर्वेदविदो मुख्या जनक जातवेदसः ॥२३
रसतन्मात्ररूपत्वात् प्रथितं तत्ववेदिनः ।
वामदेवमपां प्राहुजनकत्वेन संस्थितम् ॥२४
सद्योजातं महादेवं गंधतन्मात्ररूपिणम् ।

भूम्यात्मानं प्रशंसति सर्वतत्वार्थवेदिनः ॥२५
आकाशात्मानमीशानमादिदेवं मुनीश्वराः।
परमेण महत्वेन सभूतं प्राहुरद्भुतम् ॥२६
प्रभु तत्पुरुषं देवं पवनं पवनात्मकम्।
समस्तलोकव्यापित्वात्प्रथितं सूरयो विदुः ॥२७
अर्थाचिततया ख्यातमघोरं दहनात्मकम्।
कथयंति महात्मानं वेदवाक्यार्थवेदिनः ॥२८

तत्पुरुष देव को स्पर्श तन्मात्र के स्वरूप वाला कहते हैं। मुनीश्वर भगवान् को समीर का जन्म देने वाला कहते है ॥२२॥ घोरक देव अघोर को भी रूप तन्मात्रा के स्वरूप में रहने वाला वेदों के ज्ञाता लोग जो कि परम प्रमुख है कहा करते हैं जो कि जातवेदा का समुत्पन्न करने वाला होता है ॥२३॥ वामदेव भगवान् को रस की तन्मात्रा के स्वरूप वाला होने से तत्व वेदा पुरुष उसे जलों का जनक बतलाते हैं ॥२४॥ सद्योजात को गन्ध की तन्मात्रा के रूप वाला कहते हैं और उसे सर्व तत्वार्थ के ज्ञाता लोग भूम्यात्मा एवं भूमि को जनन करने वाला कहा करते है ॥२५॥ मुनीश्वर लोग ईशान को आकाशात्मा करते हैं जो कि आदिदेव है और इस परम महत्व से सम्भव होने वाला अद्भुत बतलाते है ॥२६॥ तत्पुरुष देव प्रभु को पवनात्मक पवन कहते है जो कि सूरियों के द्वारा सर्वलोक व्यापित्व होने वाला प्रसिद्ध है ॥२७॥ अर्चितत्व होने से अघोर दहनात्मक प्रसिद्ध होते है। जो वेदों के वाक्यार्थ के ज्ञाता पुरुष हैं वे इन महान् आत्मा वाले को ऐसा ही कहते है ॥२८॥

तोयात्मकं महादेवं वामदेवं मनोरमम्।
जगत्संजीवनत्वेन कथितं मुनयो विदुः ॥२९
विश्वंभरात्मकं देवं सद्योजातं जगद्गुरुम्।
चराचरैकभर्तारं परं कविवरा विदुः ॥३०
पंचब्रह्मात्मकं सर्वं जगत्स्थावरजंगमम्।
शिवानंदं तदित्याहुर्मुनयस्तत्वदर्शिनः ॥३१
पंचविंशतितत्वात्मा प्रपंचे यः प्रदृश्यते।

पंचब्रह्मात्मकत्वेन स शिवो नान्यतां गतः ।।३२
पंचविंशतितत्त्वात्मा पंचब्रह्मात्मकः शिवः ।
श्रेयोर्थिभिरतो नित्य चिन्तनीयः प्रयत्नतः ।।३३

परम मनोरम वासदेव को सम्पूर्ण जगत् के संजीवनत्व होने से मुनीश्वर लोग तोपात्मक कहा करते हैं ।।२६।। सद्योजात देव को विश्वम्भरात्मक जगद्गुरु तथा चराचर का एक ही भरण करने वाला परम स्वामी कविवर कहते हैं ।।३०।। यह सम्पूर्ण स्थावर जगात्मक जगत् पंच ब्रह्मात्मक है । तत्वदर्शी मुनीश्वर वृन्द उसे शिवानन्द कहा करते हैं ।।३१।। जो पंचीस तत्वों के स्वरूप वाला इस जगत के प्रपंच में दिखलाई दिया करता है वह पच ब्रह्मात्मक रूप से शिव ही है अन्य कोई भी नहीं है ।।२३।। पर्चविशतितत्वात्मा पच ब्रह्मात्मक शिव ही है, अतएव श्रेय सम्पादक करने की इच्छा रखने वालों को उसका प्रयत्नपूर्वक नित्य ही चिन्तन करना चाहिए ।।३३।।

।।८४—श्री महेश्वर का सर्व स्वरूप ।।

भूयोऽपि शिवमाहात्म्यं समाचक्ष्व महामते ।
सर्वज्ञो ह्यसि भूताना मधिनाथ महागुण ।।१
शिवमाहात्म्यमेकाग्रः श्रृणु वक्ष्यामि ते मुने ।
वहुभिर्बहुधा शब्दः कीर्त्तितं मुनिसत्तमैः ।।२
सदसद्रूपमित्याहुः सदसत्पतिरित्यपि ।
तं शिवं मुनियः कचित्प्रवदंन्ति च सूरयः ।।३
भूतभावविकारेण द्वितीयेन स उच्यते ।
व्यक्तं तेन विहीनत्वादव्यक्तमसदित्यपि ।।४
उभे ते शिवरूपेहि शिवादन्यं न विद्यते ।
तयोः पतित्वाच्च शिवः सदसत्पतिरुच्यते ।।५
क्षराक्षरात्मकं प्राहुः क्षराक्षरपरं तथा ।
शिवं महेश्वरं केचिन्मुनयस्तत्वचिंतकाः ।।६
उक्तमक्षरमव्यक्तं व्यक्तं क्षरमुदाहृतम् ।

रूपे ते शंकरस्यैव तस्मान्न पर उच्यते ।।७

महेश्वर का सर्व स्वरूप । इस अध्याय में सर्व रूप महेश्वर को ऋषियों ने बहुत प्रकार से वर्णित किया है अतः उसकी तत्तत् संज्ञा का वर्णन किया जाता है । सनत्कुमार ने कहा–हे महान् मति वाले ! आप पुनरपि भगवान् शिव का माहात्म्य वर्णन कीजिए । आप तो सभी कुछ के ज्ञाता हैं, समस्त प्राणियों के अधिनाथ हैं और महान् गुणों वाले हैं । शैलादि ने कहा—हे मुनिवर ! आप एकाग्र मन वाले होकर श्रवण करो, मैं आप से भगवान् शिव का माहात्म्य कहता हूँ । इस माहात्म्य को श्रेष्ठ मुनिगणों ने बहुत प्रकार से अनेक शब्दो के द्वारा कहा है ।।१।। ।।२।। उस शिव को कुछ मुनिगण ने सद् और असद् रूप वाला कहा हैं—कतिपय मुनियों ने सत् तथा असत् का पति भी उसको बतलाया है ।।३।। द्वितीय भूतभाव विकार से वह व्यक्त सद्रूप कहा जाता है और उससे विहीन होने के कारण से अव्यक्त असत् भी वह कहे जाते हैं ।।४।। वे सत् और असत् दोनों ही रूप शिव के ही हैं । शिव से अन्य कुछ भी नहीं है । उन दोनों (सत् और असत्) के पति होने से भगवान् शिव सदसत्पति कहे जाते हैं ।।५।। अब सांख्य दर्शन के मत के अनुसार बताया जाता है–कुछ तत्त्व के चिन्तन करने वाले मुनिगण उस महेश्वर शिव को क्षर थता अक्षर स्वरूप वाला तथा क्षराक्षर से पर कहते है । ।।६।। अक्षर को अव्यक्त और क्षर को व्यक्त बताया गया है । वे दोनों ही रूप भगवान् शङ्कर के ही होते हैं अतः उससे पर नही कहा जाता है ।।७।।

तयोः परः शिवः शांतः क्षराक्षरपरो बुधैः ।
उच्यते परमार्थेन महादेवो महेश्वरः ।।८
समस्तव्यक्तरूपं तु ततः स्मृत्वा स मुच्यते ।
समष्टिव्यष्टिरूपं तु समष्टिव्यष्टिकारणम् ।।९
वदति केचिदाचार्याः शिवं परमकारणम् ।
समष्टि विदुरव्यक्तं व्यष्टि व्यक्तं मुनीश्वराः ।।१०
रूपे ते गदिते शंभोर्नास्त्यन्यद्वस्तुसंभवम् ।
तयोः कारणभावेन शिवो हि परमेश्वरः ।।११

उच्यते योगशास्त्रज्ञैः समष्टिव्यष्टिकारणम् ।
क्षेत्रक्षेत्रयरूपी च शिवः कैश्चिदुदाहृतः ।।१२
परमात्मा परं ज्योतिर्भगवान्परमेश्वरः ।
चतुर्विंशतितत्त्वानि क्षेत्रशब्देन सूरयः ।।१३
प्राहुः क्षेत्रज्ञशब्देन भोक्तारं पुरुषं तथा ।
क्षेत्रक्षेत्रविदावेते रूपे तस्य स्वयंभुवः ।।१४

बुधजनों के द्वारा महान् देव महेश्वर परमार्थ रूप से क्षर-अक्षर से पर-परम शान्त एवं शिव अर्थात् कल्याणमय कहे जाया करते हैं। सम्पूर्ण प्राणिमय क्षर होता है और कूटस्थ अक्षर कहा जाता है ।।८।। उस सकल भूतो के स्वरूप वाले भगवान् शिव का स्मरण करके वह जीव मुक्त हो जाता है। अब योगियों के मत से बताते हैं—कुछ मत्स्येन्द्रादि आचार्यगण उन शिव को समष्टि और व्यष्टि के स्वरूप वाला तथा इस समष्टि एवं व्यष्टि का कारण रूप बतलाते हैं ।।९।। कुछ आचार्यचरण उस शिव को परम कारण कहा करते हैं। मुनीश्वर अव्यक्त को ही समष्टि तथा व्यक्त को व्यष्टि कहते हैं ।।१०।। वे दोनो ही शिव के ही रूप हैं और शिव से भिन्न अन्य वस्तु से होने वाला कोई भी इस जगत् का कारण नहीं हैं ।।११।। कुछ योग शास्त्र के ज्ञाताओं के द्वारा इस समग्र समष्टि और व्यष्टि का कारण क्षेत्र-क्षेत्रज्ञ के रूप वाला वह भगवान् शिव ही कहा गया है ।। १२ ।। सूरिगण अर्थात् महा मनीषी लोग उस परम आत्मा-परम ज्योति-भगवान् और परमेश्वर कहते हैं। ये चौबीस तत्व ही क्षेत्र शब्द के द्वारा कहे जाते हैं ।।१३।। क्षेत्रज्ञ-इस शब्द के द्वारा इन सब का भोक्ता पुरुष कहा गया है। ये क्षेत्र और क्षेत्र के ज्ञाता उस स्वयम्भू के ही दोनों रूप होते हैं ।।१४।।

न किंचिच्च शिवादन्यदिति प्राहुर्मनीषिणः ।
अपरब्रह्मरूपं तं परब्रह्मात्मकं शिवम् ।।१५
केचिदाहुर्महादेवमनादि निधनं प्रभुम् ।
भूतेंद्रियांतःकरणप्रधानविषयात्मकम् ।।१६
अपरं ब्रह्म निर्दिष्टं परं ब्रह्म चिदात्मकम् ।

ब्रह्मणो ते महेशस्य शिवस्यास्य स्वयंभुवः ।।१७
शकरस्य परस्यैव शिवादन्यन्न विद्यते ।
विद्याविद्यास्वरूपी च शकरः कैश्चिदुच्यते ।।१८
धाता विधाता लोकानामादिदवा महश्वरः ।
विद्येति च तमेवाहुरविद्येति मुनीश्वराः ।।१९
प्रपचजातमखिल त स्वरूपे स्वयभुवः ।
भ्रांतिविद्या परं चेति शिवरूपमनुत्तमम् ।।२०
अवाप्तुं मुनयो योगात्काचदागमवेदिनः ।
अर्थेपु बहुरूपेषु विज्ञान भ्रातिरुच्यते ।।२१

महा मनीषीगण तो यही कहते हैं कि शिव के अतिरिक्त अन्य कोई भी वस्तु है ही नहीं । उसी को शब्द ब्रह्मादि का स्वरूप तथा उसी शिव को पर ब्रह्मात्मक कहा जाता है ।।१५।। कुछ लोग उसे अनादि निधन अर्थात् आदि तथा अन्त से रहित-महान् देव-प्रभु और जीवों के इन्द्रियाँ तथा अन्तकरण जो हैं उनके शाब्दादिक विषयो के स्वरूप वाले शिव को बताते हैं ।।१६।। अपर ब्रह्म और चिदात्मक अर्थात् ज्ञानस्वरूप परब्रह्म निर्दिष्ट किये गये हैं । वे दोनों ही ब्रह्म पर और अपर स्वयम्भू इस महेश शिव के ही स्वरूप हैं ।।१७।। यह शङ्कर ही पर है । इस शिव से अन्य कुछ भी नहीं होता है । कुछ के विद्या और अविद्या के रूप वाला शङ्कर कहे जाते हैं ।।१८।। इन समस्त लोको का धाता-विधाता तथा आदिदेव महेश्वर हो विद्या- इस शब्द के द्वारा कहा जाता है । मुनीश्वर इसी को विद्या कहते हैं ।।१९।। यह सम्पूर्ण प्रपच जात भी शिव का ही एक स्वरूप है । भ्रान्ति-विद्या और पर ये सब परम उतम शिव के ही स्वरूप होते हैं । क्योंकि उस शिव के अतिरिक्त अन्य तो कोई भी वस्तु है ही नहीं ।।२०।। कुछ-मुनिगण उस योग के द्वारा प्राप्त किया करते हैं और कुछ आगमों के महान् ज्ञाता होते हैं । इस प्रकार से बहुत-से रूप वाले अर्थों में जो विशेष प्रकार का ज्ञान होता है वही भ्रान्ति कही जाती है ।।२१।।

आत्माकारेण संवित्तिर्बुधैर्विद्येति कीर्त्यते ।

विकल्परहितं तत्त्वं परमित्यभिधीयते ॥२२
तृतीयरूपमीशस्य नान्यत्किचन सर्वतः ।
व्यक्ताव्यक्तज्ञरूपीति शिवः कैश्चिन्निगद्यते ॥२३
विधाता सर्वलोकानां धाता च परमेश्वरः ।
त्रयोविंशतितत्त्वानि व्यक्तशब्देन सूरयः ॥२४
वदंत्यव्यक्तशब्देन प्रकृतिं च परां तथा ।
कथयंतिज्ञशब्देन पुरुषं गुणभोगिनम् ॥२५
तत्र्य शांकरं रूपं नान्यत्किचिदशांकरम् ॥२६

जो आत्माकार से संवित्ति होती है उसे बुधजनों के द्वारा विद्या-इस नाम के द्वारा कहा जाता है। जो विकल्प से बिल्कुल रहित तत्त्व होता है वह ही परम्-इस शब्द के द्वारा कथित किया जाता है ॥२२॥ उस ईस का तीसरा अन्य कुछ भी रूप नहीं होता है। यह सब प्रकार से देख लिया गया है। कुछ के द्वारा व्यक्त और अव्यक्त का ज्ञाता ही शिव का रूप है—ऐसा भी कहा जाता है ॥२३॥ सम्पूर्ण लोकों का विधाता (रचयिता) और धाता (पोषक) एवं परमेश्वर तथा तेईस तत्वों का समुदाय ये सब व्यक्त शब्द के द्वारा सूरि (विद्वान्) गण से स्पष्ट कहा गया है ॥२४॥ यह तीनों का समुदाय सब शङ्कर का ही स्वरूप होता है। अशाङ्कर अर्थात् शङ्कर से भिन्न तो कुछ भी है ही नहीं ॥२५॥२६॥

॥८५—शिव के पृथक्-पृथक् नाम-रूप ॥

पुनरेव महाबुद्धे श्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः ।
बहुभिर्बहुधा शब्दैः शब्दितानि मुनीश्वरैः ॥१
पुनःपुन प्रवक्ष्यामि शिवरूपाणि ते मुने ।
बहुधिर्बहुधा शब्दैः शब्दितानि मुनीश्वरैः ॥२
क्षेत्रज्ञ प्रकृतिर्व्यक्तं कालात्मेति मुनीश्वरैः ।
उच्यते कैश्चिदाचार्यैरागमार्णवपारगैः ॥३
क्षेत्रज्ञ पुरुषं प्राहः प्रधानं प्रकृतिं बुधाः ।
विकारजातं नि शेषं प्रकृतेर्व्यक्तमित्यपि ॥४

प्रधानव्यक्तयोः कालः परिणामैककारणम् ।
तच्चतुष्टयमीशस्य रूपाणां हि चतुष्टयम् ॥५
हिरण्यगर्भं पुरुषं प्रधानं व्यक्तरूपिणम् ।
कथयंति शिवं केचिदाचार्याः परमेश्वरम् ॥६
हिरण्यगर्भः कर्तास्य भोक्ता विश्वस्य पूरुषः ।
विकारजातं व्यक्ताख्यं प्रधानं कारणं परम् ॥७

शिव के पृथक् २ नाम तथा रूप । इस अध्याय में बहुत से मुनिगणों के द्वारा वर्णित भगवान् शिव के अनेक नाम तथा रूपों को ही बतलाया जाता है । सनत्कुमार बोले—हे महान् बुद्धि वाले ! मुनीश्वरों ने अनेक प्रकार से विभिन्न बहुत शब्दों के द्वारा शिव-स्वरूप तथा उनके नाम वर्णित किये हैं । मैं तो तत्त्व स्वरूप से उनको पुनः श्रवण करने की इच्छा करता हूँ । शैलादि ने कहा—हे मुनिवर ! में आपके समक्ष में जो मुनीश्वरों ने वहुधा बहुत से शब्दों के द्वारा उनको कहा है बार-बार बताऊँगा ॥१॥२॥ वेद रूपी सागर के पारगामी अर्थात् वेदार्थ तत्वों के परिपूर्ण ज्ञाता मुमीश्वरों ने जो कि महान् आचार्य हुए हैं । ऐसे कुछ ने क्षेत्रज्ञ-प्रकृति-व्यक्त-कालात्मा इन नामों से उसका वर्णन किया है ॥३॥ बुध लोग क्षेत्रज्ञ पुरुष को कहते हैं और प्रकृति को प्रधान कहा करते हैं । सम्पूर्ण विकृति से समुत्पन्न यह दृश्य स्वरूप को प्रकृति का व्यक्त रूप भी कहा जाता है ॥४॥ प्रधान और व्यक्त का परिणाम का एक कारण काल है—यह चोगड्डा अर्थात् चारों का समुदाय ही ईश के रूपों का चतुष्टय होता है ।५। कुछ आचार्य्यगण उस परमेश्वर शिव को हिरण्यगर्भ-पुरुष-प्रधान और व्यक्त रूप वाला इन अन्य चार प्रकार की संज्ञाओं वाला कहते हैं ॥६॥ हिरण्यगर्भ तो इस सम्पूर्ण विश्व का कर्त्ता अर्थात् स्रष्टा है और पुरुष इसके भोग करने वाला भोक्ता होता है । जितना भी विकृति से समुत्पन्न यह समस्त प्रपंच है वही व्यक्त-इस नाम से कहा जाता है एवं प्रधान इस सब का परम कारण होता है ॥७॥

तेषां चतुष्टयं बुद्धेः शिवरूपचतुष्टयम् ।
प्रोच्यते शकरादन्यदिस्त वस्तु न किंचन ।८

पिंडजातिस्वरूपी तु कथ्यते कैश्चिदीश्वर: ।
चराचरशरीराणि पिंडाख्यान्यखिलान्यपि ।।९
सामान्यानि समस्तानि महासामान्यमेव च ।
कथ्यंते जातिशब्देन तानि रूपाणि धीमत: ।।१०
विराट् हिरण्यगर्भात्मा कैश्चिदीशो निगद्यते ।
हिरण्यगर्भो लोकानां हेतुर्लोकात्मको विराट् ।।११
सूत्राव्याकृतरूपं तं शिव शंसंति केचन ।
अव्याकृतं प्रधानं हि तद्रूपं परमेष्ठिन: ।।१२
लोकायेनैव तिष्ठति सत्रे मणिगणा इव ।
तत्सूत्रमिति विज्ञेयं रूपमद्भुतविक्रमम् ।।३
अन्तर्मासी पर: कैश्चित्कैश्चिदीश: प्रकीर्त्यते ।
स्वयंज्योति: स्वयंवेद्य: शिव: शम्भुर्महेश्वर: ।।१४

यह चतुष्टय अर्थात् हिरण्यगर्भ आदि चारों का समुदाय एक बुद्धि का चतुष्टय है और यह शिव के स्वरूप के चार भिन्न भेद होते हैं तथा इनमें भी भगवान् शंकर से पृथक् अन्य कुछ भी नहीं है ।।८।। कतिपय महापुरुषों के द्वारा वह ईश्वर पिण्ड जाति के स्वरूप वाला कहा जाता है । ये समस्त चर और अचर के स्वरूप वाले पिण्ड इस नाम वाले कहे गये हैं ।।९।। सम्पूर्ण सामान्य पार्थिवत्व द्रव्यत्वादि और महा सामान्य द्रव्यादि त्रिक वृत्ति सत्त्वरूप जाति शब्द से कहे गये हैं वे उस धीमान् के रूप होते हैं ।।१०।। कुछ विद्वानों के द्वारा हिरण्य गर्भात्मा विराट् ईश कहा जाता है । लोकात्मक विराट् हिरण्यगर्भ लोकों का हेतु है ।।११।। कुछ लोग उस शिव को सूत्राव्याकृत रूप कहते हैं । परमेष्ठी का अव्याकृत प्रधान तद्रूप है ।।१२।। ये समस्त लोक जिसके द्वारा ही सूत्र में मणियों के समूह की भाँति स्थित रहते हैं । उस सूत्र को अद्भुत विक्रम वाला रूप समझना चाहिए ।।१३।। कुछ लोग उसे पर अन्तर्यामी और कतिपय विद्वान् पुरुषों के द्वारा वह ईश कहा जाता है । महेश्वर शम्भु शिव स्वयं वेद्य अर्थात् जानने के योग्य हैं और स्वयं ज्योति स्वरूप हैं ।।१४।।

सर्वेषामेव भतानांमंतर्यामी शिव: स्मृत: ।

सर्वेषामेव भूतानां परत्त्वात्पर उच्यते ।।१५
परमात्मा शिवः शंभुः शंकरः परमेश्वरः ।
प्राज्ञतैजसविश्वाख्यं तस्य रूपत्रयं विदुः ।।१६
सुषुप्तिस्वप्नजाग्रंतमवस्थात्रय मेव तत् ।
विराट् हिरण्यगर्भाख्यमव्याकृतपदाह्वयम् ।।१७
तुरीयस्य शिवस्यास्य अवस्थात्रयगामिनः ।
हिरण्यगर्भः पुरुषः काल इत्येव कीर्तिताः ।।१८
तिस्रोऽवस्था जगत्सृष्टिस्थितिसंहारहेतवः ।
भवविष्णुविरिंचाख्यमवस्थात्रयमोशितुः ।।१९
आराध्य भक्त्या मुक्ति च प्राप्नुवंति शरीरिणः ।
कर्त्ता क्रिया च कार्यं च करण चेति सूरिभिः ।।२०
शभोश्चात्वारि रूपाणि कीर्त्यंते परमेष्ठिनः ।
प्रमाता च प्रमाणं चा प्रमेय प्रमितिस्तिथा ।।२१

समस्त प्राणियों के हृदय में स्थित अन्तर्यामी शिव कहे गये हैं। समस्त भूतों से परत्व होने के कारण यह पर कहे जाते हैं ।।१५।। शम्भु परमात्मा-शिव शंकर और परमेश्वर हैं। उसके प्राज्ञ-तैजस और विश्वाख्य ये तीन रूप जाने गये हैं ।।१६।। ये सुषुप्ति-स्वप्न और जाग्रत तीन अवस्थाऐं ही होती हैं। विराट् हिरण्यगर्भाख्य और अव्याकृत यदाह्वय अर्थात् अव्याकृत पद के नाम वाले होते हैं ।।१७।। तीनों अवस्थाओं में गमन करने वाले इस तुरीय शिव के हिरण्यग-पुरुष और काल ये ही नाम प्रकीर्त्तित हुए हैं ।।१८।। तीन अवस्थाऐं हैं जो जगत् का सृजन-जगत् की स्थिति या पालन और सहार का कारण नामों वाली हैं। उस ईशिता के ही भव विष्णु और विरंचि नाम वाली तीन अवस्थाऐं होती हैं जिनमें क्रम से संहार-स्थिति और सृजन का पृथक् कम का सम्पादन होता है ।।१९।। इसका समाराधन भक्ति से करके शरीर धारी प्राणी मुक्ति को प्राप्त किया करते हैं। सूरिगण के द्वारा वह कर्त्ता-कार्य क्रिया और करण कहा जाता है ।।२०।। उस परमेष्ठी के चार रूप कीर्त्तित किये जाते हैं जिनके नाम प्रमाता-प्रमाण प्रमेय और प्रमिति होते हैं ।।२१।।

चत्वार्येतानि रूपाणि शिवस्यैव न संशयः ।
ईश्वराव्याकृतप्राण विराट्भूतेंद्रियात्मकम् ।।
शिवस्यैव विकारोऽयं समुद्रस्येव वीचयः ।
ईश्वरं जगतामाहुर्निमित्तं कारण तथा ।।२३
अव्याकृतं प्रधानं हि तदुक्तं वेदवादिभिः ।
हिरण्यगर्भः प्राणाख्यो विराट् लोकात्मकः स्मृतः ।।२४
महा भूतानि भूतानि कार्याणि इन्द्रियाणि च ।
शिवस्यैतानि रूपाणि शंसंति मुनिसत्तमाः ।।२५
परमात्मा शिवादन्यो नास्तीति कवयो विदुः ।
शिवजातानि तत्त्वानि पंचविंशन्मनीषिभिः ।।२६
उक्तानि न तदन्यानि सलिलादूर्मिवृंदवत् ।
पंचविंशत्पदार्थेभ्यः शिवतत्त्वं परं विदुः ।।२७
तानि तस्मादनन्यानि सुवर्णाकटकादिवत् ।
सदाशिवेश्वराद्यानि तत्त्वानि शिवतत्त्वतः ।।२८
जातानि न तदन्यानि मृद्द्रव्यं कुंभभेदवत् ।
माया विद्या क्रिया शक्तिर्ज्ञानशक्ति क्रियामयी ।।२९
जाताः शिवान्न संदेहः किरणा इव सूर्यतः ।
सर्वात्मकं शिवं देवं सर्वाश्रयविधायिनम् ।।३०
भजस्व सर्वभावेन श्रेयश्चेत्प्राप्तुमिच्छसि ।।३१

ये चारों रूप ईश्वर-अव्याकृत प्राण-विराट् तथा भूतेन्द्रियात्मक शिव के ही होते हैं—इसमें कुछ भी संशय नहीं है । ।।२२।। समुद्र की तरङ्गों के समान यह भगवान् शिव का ही विकार है। वह सम्पूर्ण जगतों का ईश्वर जाना गया है तथा निमित्त कारण भी है ।।२३।। वेदों के वादियों के द्वारा वह अव्याकृत प्रधान कहा गया है। हिरण्य गर्भ प्राणाख्य लोकात्मक विराट् कहा गया है ।।२४।। मुनिश्रेष्ठगण महाभूत-भूत और इन्द्रियाँ ये सब उसके भगवान् शिव के ही रूप एवं कार्य करते हैं ।।२५।। शिव से अन्य कोई परमात्मा नहीं है ऐसा कवि लोग उसको ही पर कहते हैं। मनीषियों के द्वारा पचीस तत्वों को शिव से समुत्पन्न

कहा जाता है ।।२६।। उनसे अन्यों को सलिल से ऊर्मियों के समूह के समान ही कहा गया है । इन पच विशति (पच्चीस) पदार्थों से शिव तत्त्व पर जाना गया है ।।२७।। वे सब उससे अन्य नहीं होते हैं जैसे सुवर्ण से कटक स्वरूप में भिन्नाकृति वाला होकर भी सुवर्ण से अन्य पदार्थ कभी नहीं होता है । सदाशिव आदि तत्त्व शिव तत्त्व से ही उत्पन्न हुए हैं और उससे अनन्य हैं अर्थात् अन्य नहीं हुआ करते हैं जिस प्रकार से मिट्टी का द्रव्य कुम्भ आदि भेद हुआ करता है । मिट्टी से समुत्पन्न होकर कुम्भ इस नाम से एक विशेष भेद वाला कुम्भ यह नाम मात्र होने पर भी मिट्टी से वह अन्य नहीं होता है । माया-विद्या-क्रिया-शक्ति-क्रिया मयी ज्ञानशक्ति ये सब शिव से समुत्पन्न हुई हैं और सूर्य से उत्पन्न उसकी किरणों के ही तुल्य होती हैं—इसमें कुछ भी संशय नहीं है । शिव सर्वात्मक और सब के आश्रयों का करने वाला देव है ।।२८।।२९।।३०।। यदि श्रेय प्राप्त करने की इच्छा करते हो तो उसी को सर्वतो भाव से भजन करो ।।३१।।

।।८६—रुद्र के विग्रह से विश्वोत्पत्ति ।।

भूयो देवगणश्रेष्ठ शिवमाहात्म्यमुत्तमम् ।
शृण्वतो नास्ति मे तृप्तिस्त्वद्वाक्यामृतपानतः ।।१
कथं शरीरी भगवान् कस्माद्रुद्रः प्रतापवान् ।
सर्वात्मा च कथं शम्भुः कथं पशुपतं व्रतम् ।।२ ।।
कथं वा देवमुख्यैश्च श्रुतो दृष्टश्च शंकरः ।
अव्यक्तादभवत्स्थाणुः शिवः परकमारणम् ।।३
स सर्वकारणापेत ऋषिर्विश्वाधिकः प्रभु ।
देवानां प्रथमं देवं जायमानं मुखाम्बुजात् ।।४
ददर्श चाग्रे ब्रह्माणं चाज्ञया तमवैक्षत ।।
दृष्टो रुद्रेण देवेशः ससर्ज सकलं च सः ।।५
वर्णाश्रमव्यवस्थाश्च स्थापयामास वै विराट् ।
सोमं ससर्ज यज्ञार्थं सोमादिदमजायत ।।६

चरुश्च वह्निर्यज्ञश्च वज्रपाणि: शचीपति: ।
विष्णुर्नारायण: श्रीमान् सर्वं सोममयं जगत् ।।७

रुद्र के विग्रह से विश्वोत्पत्ति) इस अध्याय में सगुण रुद्र भगवान् के विग्रह से इस विश्व की उत्पत्ति और देवों को उपदेश वर्णित किया गया है । सनत्कुमार ने कहा हे देव के गणों में श्रेष्ठ ! आप के मुखनि:सृत वाक्यामृत के पान करने से अभी मुझे तृप्ति नहीं हुई है । यद्यपि मैंने सब श्रवण किया है उस परमोत्तम भगवान् शिव के माहात्म्य को पुन: श्रवण करना चाहता हूँ ।।१।। भगवान् कैसे शरीरधारी हुए और रुद्र किस तरह प्रताप वाले बने ? सर्वात्मा शम्भु किस तरह हैं और पाशुपत व्रत किस प्रकार का है ! मुख्य देवों ने शंकर उसे किस भाँति श्रवण किया था तथा देखा था ? शैलादि ने कहा—परम कारण शम्भु स्थाणु अव्यक्त से हुए थे ।।१-३।। जो कि सब के परम कारण स्वरूप-इस संसार रूप मण्डप के स्तम्भ-कल्याणात्मक शिव प्रभु मुखाम्बुज से समस्त देवताओं के पहिले समुत्पन्न हुए थे ।।४।। अपने सामने उन शिव प्रभु ने ब्रह्मा को देखा था और पारमेश्वरी आज्ञा के सहित दृष्टिपात किया था । रुद्र के द्वारा दृष्ट (देखे गये) उम देवेश ने सकल जगत् का सृजन किया था ।।५।। उस विराट् ने वर्णों और आश्रमों की व्यवस्था स्थापित की थी और यज्ञ के लिये सोम का सृजन किया था और फिर सोम से यह उत्पन्न हुआ था।।६।।चरु-वन्हि-यज्ञ-वज्र हाथ में धारण करने वाले इन्द्र देव जो शची के स्वामी हैं और श्रीमान् विष्णु नारायण—ये सब जगत् इस प्रकार से सोममय हैं ।।७।।

रुद्राध्यायेन ते देवा रुद्रं तुष्टुवुरीश्वरम् ।
प्रसन्नवदनस्तस्थौ देवानां मध्यत: प्रभु: ।।८
अपहृत्य च विज्ञानमेषामेव महेश्वर: ।
देवा ह्यपृच्छंस्तं देवं को भवानिति शंकरम् ।।९
अब्रवीद्भगवान्रुद्रो ह्यहमेक: पुरातन: ।
आसं प्रथम एवाहवर्तामि च सुरोत्तमा. ।।१०
भविष्यामि च लोकेऽस्मिन्मत्तो नान्य: कुतश्चन ।

व्यतिरिक्तं न मत्तोऽस्ति नान्यत्किंचित्सुरोत्तमाः ॥११
नित्योऽनित्योऽहमनघो ब्रह्माहं ब्रह्मणस्पतिः ।
दिशश्च विदिशश्चाहं प्रकृतिश्च पुमानहम् ॥१२
त्रिष्टुब्जगत्यनुष्टुप् च च्छदोहं तन्मयः शिवः ।
सत्योहं सर्वगः शान्तस्त्रेताग्निर्गौरवं गुरुः ॥१३
गौरहं गह्वरश्चाहं नित्यं गहनगोचरः ।
ज्येष्ठोहं सर्वतत्वानां वरिष्ठोहमपां पतिः ॥१४

उन देवगण ने रुद्राध्याय के द्वारा ईश्वर रुद्र का स्तवन किया था। उस समय में प्रभु रुद्रदेव प्रसन्न मुख वाले होकर सम्पूर्ण देव के मध्य में स्थित हो रहे थे ॥८॥ महेश्वर देव ने इन सब का विशेष ज्ञान का उस समय अपहरण करके ही अपनी स्थिति बनाई थी। समस्त देवों ने भगवान् शंकर से पूछा था-"आप कौन हैं ?" ॥९॥ तब भगवान् रुद्र ने उन से कहा था—मैं एक परम पुरातन था, हे सुरोत्तमो ! मैं ही सबसे प्रथम यह वर्त्तन किया करता हूँ ॥१०। हे श्रेष्ठ देवगण ! इस लोक में मैं ही होऊंगा और मुझसे अन्य कहीं भी कोई नहीं है। मुझसे व्यतिरिक्त भी अन्य कुछ नहीं है ॥११॥ मैं नित्य-अनित्य मैं हूँ। ब्रह्मणस्पति अनघ ब्रह्मा मैं हूँ-दिशा और विदिशा, प्रकृति और पुमान् मैं हूँ ॥१२॥ त्रिष्टुप्, जगती और अनुष्टुप् तन्मय शिव मैं ही छन्द स्वरूप हूँ। सत्य-सर्वत्र गमन करने वाला-शान्त त्रेताग्नि गौरव-गुरु मैं हूँ ॥१३॥ मैं ही गौ हूँ और गहन गोचर नित्य गह्वर भी मैं हूँ। मैं समस्त तत्वों सबसे ज्येष्ठ (बड़ा) और वरिष्ट अपाम्पति हूँ ॥१४॥

आपोह भगवानीशस्तेजोहं वेदैरप्यहम् ।
ऋग्वेदोहं यजुर्वेदः सामवेदोहमात्मभू ॥१५
अथर्वणोहं मन्त्रोहंतथा चांगिरसां वरः ।
इतिहासपुराणानि कल्पोह कल्पनाप्यहम् ॥१६
अक्षरं च क्षरं चाह क्षांतिः शान्तिरह क्षमा ।
गुह्योहं सर्ववेदेषु वरेण्योहमजोप्यहम् ॥१७
पुष्करं च पवित्रं च मध्यं चाह ततः परम् ।

बहिश्चाहं तथा चांतः पुरस्तादहमव्ययः ।।१८
ज्योतिश्चाहं तमश्चाहं ब्रह्मा विष्णुर्महेश्वरः ।
बुद्धिश्चाहमहंकारस्तन्मात्राणींद्रियाणि च ।।१९
एवं सर्वं च मामेव यो वेद सुरसत्तमाः
स एव सर्ववित्सर्वं सर्वात्मा परमेश्वरः ।।२०
गां गोभिर्ब्राह्मणान्सर्वा ब्राह्मण्येन हवींषि च ।
आयुषायुस्तथा सत्य सत्येन सुरसत्तमाः ।२१
धर्मं धर्मेण सर्वांश्च तर्पयामि स्वतेजसा ।
इत्यादौ भगवानुक्त्वा तत्रैवां स ग्धीयत ।।२२
नापश्यंत ततो देवं रुद्रं परमकारणम् ।
ते देवाः परमात्मानं रुद्रं ध्यायंति शंकरम् ।। ३
सनारायणका देवाः सेंद्राश्च मुनयस्तथा ।
तथोर्ध्वबाहवो देवा रुद्रं स्तुन्वति शंकरम् ।। ४

मैं ही जल हूं तथा भगवान् ईश-तेज तथा वेदि भी मैं ही हूँ ऋग्वेद, यजुर्वेद एवं सामवेद और आत्मन् मैं हूँ ।।१५। मैं अङ्गिरसों में श्रेष्ठ चतुर्थ वेद स्वरूप अथर्वण मन्त्र मैं हूँ—इतिहास भारतादि रूप-कर्म प्रयोग रचनात्मक कल्प तथा जगत्प्रकलृप्ति कल्पना भी मैं ही हूँ ।।१६।। अक्षर क्षर-क्षान्ति-शान्ति क्षमा मैं ही हूँ। समग्र वेदों में परम गुह्य-वरेण्य और अज भी मैं हूँ ।।१७।। पवित्र पुष्कर अर्थात् हृत्सरोज रूप तथा उसका मध्यभाग-वहिर्भाग-अन्तर्भाग-पुरस्तात् और अव्यय मैं ही हूँ ।।१८।। ज्योति-तम-ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर भी मैं हूँ। बुद्धि-अहङ्कार-तन्मात्रा और समस्त इन्द्रियगण मैं हूँ ।।१९।। हे सुरश्रेष्ठो ! इस तरह से सभी कुछ जो मुझ को ही जानता है वह ही सर्ववेत्ता-सर्व-सर्वात्मा और परमेश्वर है ।।२०।। मैं वाणी को वेदो के द्वारा, ब्राह्मण्य से सम्पूर्ण ब्रह्मणों को और हवियों को, आयु से आयु को, सत्य से सत्य को मैं तृप्त करता हूं। हे सुरसत्तमो ! धर्म से धर्म को और अपने तेजसे सब का तर्पण किया करता हूँ—इतना कहकर भगवान् वहां पर ही अन्तर्हित हो गये थे ।।२१।।२२।। इसके पश्चात् देवों ने उस परम कारण रुद्रदेव को नहीं

देखा था। वे देवगण परमात्मा रुद्र स्वरूप शंकर का ध्यान किया करते है। नारायण के साहत तथा इन्द्र के साथ देवगण तथा मुनीवृन्द सब ऊपर को वाहु वाले होकर भगवान् रुद्र शकर का स्तवन करते हैं ॥२३॥२४॥

॥ ८७—ब्रह्मादि देवों द्वारा महेश स्तुति ॥

य एष भगवान् रुद्रो ब्रह्म विष्णुमहेश्वराः।
स्कंदश्चापि तथा चंद्रो भुवनानि चतुदश।
अश्विनौ ग्रहताराश्च नक्षत्राणि च ख दिशः ॥१
भूतानि च तथा सूयः सोमश्चाष्टौ ग्रहास्तथा।
प्राणः कालो यमो मृत्युरमृतः परमेश्वरः ॥२
भूतं भव्यं भविष्यच्च वर्तमानं महेश्वर :।
विश्वं कृत्स्नं जगत्सर्वं सत्यं तस्मै नमोनमः ॥३
त्वमादौ च तथा भूतो भूर्भुवः स्वस्तथैव च।
अंते त्वं विश्वरूपोऽसि शार्षं तु जगतः सदा ॥४
ब्रह्मैकस्त्वं द्विस्त्रिधार्थमधश्च त्व सुरेश्वरः
शांतिश्च त्वं तथा पुष्टिस्तुष्टिश्चाप्यहुतं हुतम् ॥५
विश्वं चव तथाशिवं दत्तं वादत्तमीश्वरम्।
कृतं चाप्यकृत देवं परमप्यपर ध्रुवम्।
परायणं सतां चव ह्यसतामपि शकरम् ॥६
अपामसोमममृता अभूमागन्म ज्योतिरविदाम देवान्।
किं नूनमस्मान्कृणवदरातिः किमु धूर्तिरमृत मर्त्यस्य ॥७

(ब्रह्मादि देवों के द्वारा महेश-स्तुति) इस अध्याय में ब्रह्मादि देवता के द्वारा की हुई शंकर की स्तुति-पाशुपत व्रत और उनके प्रसाद का निरूपण किया जाता है। देवों ने कहा—जो यह भगवान् रुद्र है वही ब्रह्मा-विष्णु तथा महेश्वर हैं और वही स्कन्द-इन्द्र एव चोदह भुवन है। अश्विनीकुमार-ग्रह-तारा-नक्षत्र-अन्तरिक्ष-दिशाऐं-सम्पूर्ण-भूत-सूर्य सोम एवं आठ ग्रह-प्राण-काल-यम-मृत्यु-अमृत-परमेश्वर-भूत-भव्य और वर्त्तमान

आदि यह सम्पूर्ण विश्व एवं समस्त जगत् भगवान् महेश्वर ही का स्वरूप है उस सत्य रूप के लिये हमारा सब का नमस्कार है और बारम्बार प्रणाम है ।।१-३।। हे महेश्वर देव ! आप ही आदि हैं तथा भूर्भुवः स्वः भी आप ही हैं । आप अन्त में विश्वरूप हैं और सर्वदा इस जगत् के शीर्ष हैं ।।४।। आप अद्वितीय ब्रह्म हैं जिसके कि प्रकृति एवं पुरुष हो तथा ब्रह्मा-विष्णु और महेश्वर तीन रूप अर्थ होते हैं अर्थात् उसी अद्वितीय एक के ये सब स्वरूप होते हैं । हे सुरेश्वर ! तुम सब के आधार हो, आप शान्ति-पुष्टि तुष्टि-दुत और अदुत भी हो ।।५।। आप विश्व अविश्व, दत्त-अदत्त और ईश्वर हैं । आप कृत-अकृत,परदेव-अपर, ध्रुव सत्पुरुषों के परायण और असत्पुरुषों के भी परायण शंकर हैं ।।६।। हमने नेत्रों से इस शिव स्वरूप अमृत का पान किया था । उस अमृत पान से हम लोग मुक्त हो गये । शैव ज्योति के धाम को जाना चाहिए क्योंकि कामादि के विजिगीषु देवों को नहीं जानते हैं । यह शिवाराधन के शत्रु कामादि हम को क्या कर देंगे । इस विनाश शील शरीर आदि वाले मानव की इस विनाश शीलता का मिट जाना अमृत कहा गया है या कुछ भी नहीं है ।।७।।

एतज्जगद्धितं दिव्यमक्षरं सूक्ष्ममव्ययम् ।।८
प्राजापत्यं पवित्रं च सौम्यमग्राह्यमव्ययम् ।
अग्राह्येणापि वा ग्राह्यं वायव्यन समीरणः ।।९
साम्यन सौम्य ग्रसति तेजसा स्वेन लीलया ।
तस्मै नमोऽन्सहर्त्रे महाग्रासाय शूलिने ।।१०
हृदिस्था देवताः सर्वा हृदि प्राणे प्रतिष्ठिताः ।
हृदि त्वमसि योनित्यं तिस्रो मात्राः परस्तु सः ।।११
शिरश्चोत्तरतश्चैव पादौ दक्षिणतस्तथा ।
यो वै चोत्तरतः साक्षात्स आकारः सनातनः ।।१२
ओंकारो यः स एवेह प्रणवो व्याप्य तिष्ठति ।
अनंतस्तारसूक्ष्मं च शुक्लं वैद्युतमेव च ।।१३
परं ब्रह्म स ईशान एको रुद्रः स एव च ।

भवान्महेश्वरः साक्षान्महादेवो न संशयः ॥१४
ऊर्ध्वमुन्नामयत्येव स आकारःप्रकीर्तितः ।
प्राणानवाति यस्तस्मात् प्रणवः परिकीर्तितः ॥१५

यह शिव स्वरूप जगत् का हित-दिव्य-अक्षर-सूक्ष्म और अव्यय है ॥८॥ यह प्राजापत्य अर्थात् सब का जनक-पावन-शान्त-वायु सम्बन्धी स्पर्श गुण से वायु की भांति अग्राह्य मन से ग्राह्य भी स्वकाय सौम्य चन्द्र तेज से परम शान्त अपने भक्त के अन्तकरण को अपने में लीन करता है उस मह तत्व को भी ग्रसने वाले अपसहर्त्ता भगवान् शूली के लिये नमस्कार है ॥८-१०॥ हृदय में स्थित समस्त देवता हैं और हृदयाधिकरण प्राण में प्रतिष्ठित हैं जो कि प्राण स्वरूप आप हृदय में नित्य रहते हो और वह नादाख्य मात्रा रूप है ॥११॥ अब उस ओंकार रूप का वर्णन किया जाता है—शिर मूर्ध स्थानापन्न अकार उत्तर भाग है तथा पाद अर्थात् पादस्वामापन्न मकार साक्षात् मध्यभाग दक्षिण में है। जो उकार उत्तर भाग में संश्लिष्ट है वह सनातन ओंकार शिव है। वह ही ओंकार प्रणव है जो यहाँ व्याप्य होकर स्थित होता है। वह अनन्त-तार-सूक्ष्म वैद्युत-शुक्ल परब्रह्म-ईशान और एक प्रणव परिकीर्तित किया गया है ॥१२-१५॥

सर्वं व्याप्नोति यस्तस्मात्सर्वव्यापी सनातनः ।
ब्रह्मा हरिश्च भगवानाद्यंत नोपलब्धवान् ॥१६
तथान्ये च ततोऽनन्ता रुद्रः परमकारणम् ।
यस्तारयति संसारात्तार इत्यभिधीयते ॥१७
सूक्ष्मो भूत्वा शरीराणि सर्वदा ह्यधितिष्ठति ।
तस्मात्सूक्ष्मः समाख्याता भगवान्नीललोहितः ॥१८
नीलश्च लोहितश्चैव प्रधानपुरुषान्वयात् ।
स्कंदतेऽस्य यतः शुक्रं तथा शुक्रमपैति च ॥१९
विद्योतयति यस्तस्माद्वैद्युतः परिगीयते ।
बृहत्त्वाद्बृंहणत्वाच्च बृहते च परापरे ॥२०
तस्माद्बृंहति यस्माद्धि परं ब्रह्मेति कीर्तितम् ।

अद्वितीयोऽथ भगवांस्तुरीयः परमेश्वरः ॥२१

वह उच्चार्य माण ओंकार सम्पूर्ण शरीर को ऊपर को उन्नमित किया करता है—प्राणों की रक्षा करता है अतएव वह 'प्रणव'—इस नाम से कहा गया है। वह सब को व्याप्त करके स्थित रहता है इसी कारण से वह सनातन एव सर्वव्यापी है। ब्रह्मा-हरि भगवान् ने उसके आद्यन्त को प्राप्त नहीं किया था ॥१६॥ तथा अन्यों ने भी किसी ने उसे प्राप्त नहीं किया है। इसीलिये वह अनन्त है और रुद्र रूप परम कारण है। जो इस संसार से सन्तारण करता है अतएव वह 'तार'–इस नाम वाला कहा जाया करता है ॥१७॥ वह सूक्ष्म होकर समस्त शरीरों में व्याप्त होता हुआ सर्वदा अधिष्ठित रहता है। इसीलिये वह भगवान् नील लोहित 'सूक्ष्म'—इस नाम से समाख्यात होते हैं ॥१८॥ प्रधान-पुरुष के सयोग से नील और लोहित इसका शुक्र स्यन्दित होकर पर स्थान को जाता है अतएव 'शुक्र'–इस नाम से कहा गया है ॥१९॥ जो वह विद्योतित किया करता है इसीलिय उसे 'वैद्युत'–इस नाम वाला परिगीत किया जाता है। परावर ऐहिका मुष्मिक रूप में जो कि वृहत् है वह वृहित अर्थात् पोषित किया करता है इसी कारण से उसे 'ब्रह्म'–इस नाम से कहा गया है। वह तुरीय भगवान् परमेश्वर अद्वितीय है ॥२०॥२१॥

ईशानमस्य जगतः स्वर्दृशां चक्षुरीश्वरम् ।
ईशानमिंद्रसूरयः सर्वषामपि सर्वदा ॥
ईशानः सर्वविद्यानां यत्तदीशान उच्यते ।
यदीक्षते च भगवान्निरीक्ष्यमिति चाज्ञया ॥
आत्मज्ञानं महादेवो योग गमयति स्वयम् ।
भगवांश्चोच्यते देवो देदेववो महेश्वरः ॥ ४
सर्वांल्लोकान्क्रमेणव यो गृह्णति महेश्वरः ।
विसृजत्येष देवेशा वासयत्यपि लीलया ॥२५
एषो हि देवः प्रदिशोऽनुसर्वाः पूर्वो हि जातः स उ गर्भे अंतः ।
स एव जातः स जनिष्यमाणः प्रत्यङ्मुखास्तिष्ठति सर्वतोमुखः ॥२६

उपासितव्यं यत्नेन तदेतत्सद्भिरव्ययम् ।
यतो वाचो निवर्तते ह्यप्राप्य मनसा सह ॥२७
तदग्रहणमेवेह यद्वाग्वदति यत्नतः ।
अपरं च परं वेति परायणमिति स्वयम् ॥२८

इस जगत् के ईशान स्वामी को स्वर्गलोक के देखने वालों के नेत्र के सहस्र नियन्ता को इन्द्र प्रमुख सूरिगण सर्वदा सब का ईशान करते हैं ॥२२॥ समस्त विद्याओं के ईशान स्वामी हैं इस कारण से भी वह 'ईशान'--- इस नाम से कहे जाते हैं। यह शिव की ईशान संज्ञा का हेतु निरूपित किया गया है। अब इनकी जो भगवत्-यह संज्ञा होती है उस का हेतु बतलाते हैं–देखने के योग्य भावों को देखते हैं। महादेव स्वयं आत्म ज्ञान योग्य का अवगमन करते हैं अतएव देवों के देव महेश्वर 'भगवान्'––इस नाम वाले कहे जाते हैं ॥२३॥२४॥ जो सम्पूर्ण लोकों को क्रम से ही ग्रहण किया करते है इसलिये महेश्वर हैं। यह देवेश सब का विसृजन करते हैं और लीला से ही उनको निवासित भी किया करते हैं ॥२५॥ यह देव विश्वरूप से क्रीड़ा करते हुए समस्त दिशाओं के स्वरूप वाले हैं। अर्थात् सम्पूर्ण दिशाओं में व्याप्त रहने वाले हैं। यह इसी प्रकार से काल व्यापक भी है क्योंकि अनादि सिद्ध प्रभु ब्रह्माण्डोहर में प्रविष्ट होकर वह स्वयं ही उत्पन्न हुए हैं और वह ही जनिष्यमाण होते हुए सर्व काल व्यापक होकर स्थित रहा करते हैं ॥२६॥ जहाँ मन के साथ वाणी भी निवृत्त होती है और किसी की भी पहुँच वहाँ तक नहीं होती है ऐसे अव्यय स्वरूप उस प्रभु की सत्पुरुषों को सदा प्रयत्नपूर्वक उपासना करनी चाहिए ॥२७॥ वाणी बड़े यत्न से उसके विषय में कहती है तो भी वह यहाँ ग्रहण नहीं किया जाता है। वह पर है अथवा अपर है या स्वयं परायण है ॥२८॥

वदंति वाचः सर्वज्ञं शंकरं नीललोहितम् ।
एष सर्वो नमस्तस्मै पुरुषः पिंगलः शिवः । २९
स एष स महारुद्रो विश्वं भूतं भविष्यति ।
भुवनं बहुधा जातं जायमानमितस्ततः ॥३०

हिरण्यबाहुर्भगवान् हिरण्यपतिरीश्वरः ।
अंबिकापतिरीशानो हेमरेता वृषध्वजः ॥३१
उमापतिर्विरूपाक्षो विश्वसृग्विश्ववाहनः ।
ब्रह्माणं विदधे योऽसौ पुत्रमग्रे सनातनम् ॥३२
प्रहिणोति स्म तस्यैव ज्ञानमात्मप्रकाशकम् ।
तमेकं पुरुषं रुद्रं पुरुहूतं पुरुष्टुतम् ॥३३
बालाग्रमात्रं हृदयस्य मध्ये विश्वं देवं वह्निरूप वरेण्यम् ।
तमात्मस्थं येऽनुपश्यंति धीरास्तेषां शांतिः शाश्वती नेतरेषाम् ३४
महतो यो महीयांश्च ह्यणोरप्यणुरव्ययः ।
गुहायां निहितश्चात्मा जंतोरस्य महेश्वरः ॥३५

वाणी नील लोहित शंकर को सर्वज्ञ कहती हैं। यह ब्रह्मात्मक पिङ्गल पुरुष शिव स्वरूप हैं उनके लिये नमस्कार है ॥२६॥ वह महारुद्र जो यह विश्व अचेतन जड़ सृष्टि स्वरूप है और भूत चेतनात्मक है और चौदह भुवनों के स्वरूप में बहुत रूपों में समुत्पन्न होकर वर्त्तमान हैं ॥३०॥ हिरण्य बाहु-भगवान्-हिरण्य पति-ईश्वर अम्बिका पति-ईशान-हेम-रेता-वृषध्वज-उमापति-विरूपाक्ष विश्व सृक्-विश्व वाहन-इन नामों वाला जो प्रभु है उसने पहिले सनातन ब्रह्मा को पुत्र बनाया था। उसको ही आत्मा के प्रकाश कर देने वाला ज्ञान प्रदान किया था वह एक पुरुष रुद्र-पुरुहूत-तुरुष्टुत-बालाग्रमात्र-हृदय के मध्य में विश्व देव-वाह्नि रूप-वरेण्य और आत्मा में स्थित उसको जो धीर देखते हैं उनको शाश्वती शान्ति हुआ करती है अन्य किन्हीं को नहीं होती है ॥३१।३२।३३॥ ॥३४॥ जो महान् से भी महीयान् है और जो अणु से भी अणु है-अव्यय है। वह महेश्वर इस जन्तु के गुहा में निहित आत्मा स्वरूप है ॥३५॥

वेश्मभूतोऽस्य विश्वस्य कमलस्थो हृदि स्वयम् ।
गह्वरं गहनं तत्स्थं तस्यांतश्चोर्ध्वतः स्थितः । ३६
तत्रापि दह्रं गगनमोंकारं परमेश्वरम् ।
बालाग्रमात्रं तन्मध्ये ऋतं परमकारणम् ॥३७

सत्यं ब्रह्म महादेव पुरुषं कृष्णपिंगलम् ।
ऊर्ध्वरेतसमीशानं बिरूपाक्षमजोद्भवम् ॥३८
अधितिष्ठति योनिं यो योनिं वाचैक ईश्वरः ।
देहं पंचविधं येन तमीशानं पुरातनम् ॥३६
प्राणेष्ववतर्मनसो लिंगमाहुर्यस्मिन्क्रोधो या च तृष्णा क्षमा च ।
तृष्णां छित्त्वा हेतुजालस्य मूलं बुद्ध्याचिंत्यं स्थापयित्वा च रुद्रे ४०
षकं तमाहुर्वै रुद्रं शाश्वतं परमेश्वरम् ।
परात्परतरं वापि परात्परतरं ध्रुवम् ॥४१
ब्रह्मणो जनक विष्णोर्बह्नेर्वायोः सदाशिवम् ।
ध्यात्वाग्निन च शोध्यांग विशोध्य च पृथक्पृथक् ॥४२

इस विश्व का वेशभ (घर) भूत हृदय में स्वयं कमल में स्थित है। उसके अन्दर और ऊपर उसमें स्थित गह्वर गहन है। वहाँ पर भी बालाग्रमात्र दहर संज्ञा वाला गगन है और उसके मध्य में परमार्थ रूप से सत्य एवं परम कारण प्रणव स्वरूप परमेश्वर शिव स्थित हैं ॥३६॥ ॥३७॥ सत्य-ब्रह्म-महादेव-पुरुष कृष्ण पिङ्गल-ऊर्ध्वरेता-ईशान-विरूपाक्ष अजोद्भव और योनि में जो अधिष्ठित होता है वह सकल योनि में एक ही ईश्वर होता है जिस योनि के प्रवेश के द्वारा पंच कोशात्मक देह को ग्रहण किया करता है। उसी पुरुष के देखने से स्थायी शान्ति प्राप्त होती है। प्राणियों में मन के अन्तर में वह लिङ्ग रूप कहा गया है। जिसमें क्रोध और जो तृष्णा तथा क्षमा है। उस तृष्णा का छेदन करके बुद्धि से हेतुजात के मूल रूप जो अचिन्त्य है उसे रुद्र में स्थापित करे ॥३८॥ ॥३९॥४०॥ उस रुद्र को एक ही कहते हैं। वह रुद्र शाश्वत परमेश्वर और परात्परतर एव ध्रुव है ॥४१॥ वह सदाशिव ब्रह्मा–विष्णु–वायु और वह्नि का जनक होता है। रं बीज स्वरूप अग्नि के द्वारा पृथक्-पृथक् ध्यान करके अङ्गो का संशोधन करना चाहिए ॥४२॥

पंचभूतानि संयम्य मात्राविधिगुणक्रमात् ।
मात्राः पंच चतस्रश्च त्रिमात्रादिस्ततः परम् ॥४३
एकमात्रममात्र हि द्वादशांते व्यवस्थितम् ।

स्थित्वा स्थाप्यामृतो भूत्वा व्रतं पाशुपतं चरेत् ॥४४
एतद्व्रतं पाशुपत चरिष्यामि समासतः ।
अग्निमाधाय विधिवद्दग्यजु सामसभवैः ॥४५
उपोषितः शुचिः स्नातः शुक्लांबरधरः स्वयम् ।
शुक्लयज्ञोपवीतीच शुक्लमाल्यानुलेपनः ॥४६
जुहुयाद्विरजो विद्वान् विरजाश्च भविष्यति ।
वायवः पच शुध्यंतां वाङ् मनश्चरणादयः ॥४७
श्रोत्रं जिह्वा ततः प्राणस्ततो बुद्धिस्तथैव च ।
शिरः पाणिस्तथा पार्श्वं पृष्ठोदरमनंतरम् ॥४८
जंघे शिश्नमुपस्थं च पायुमेढ्र तथैव च ।
त्वचा मांसं च रुधिरं मेदोऽस्थीनि तथैव च ॥४९
शब्दः स्पर्शं च रूपं च रसो गंधस्तथैव च ।
भूतानि चैव शुध्यंतां देहे मेदादयस्तथा ॥५०
अन्नं प्राणो मनो ज्ञान शुध्यंतां वै शिवे च्छया ।
हुत्वाज्येन समिद्भिश्च चरुणा च यथाक्रमम् ॥५१
उपसंहृत्य रुद्राग्नि गृहात्वा भस्म यत्नतः ।
अग्निरित्यादिना धीमान् विमृज्यांगानि संस्पृशेत् ॥५२

अपने देह के आरम्भक जो पंच भूत हैं उनका मात्राविधि क्रम से अर्थात् शब्दादि गुणों की उत्पत्ति के क्रम से प्रविलापन करे। पृथिव्यादि पाँच मात्रा हैं—वे चार हों—फिर तीन और दो होकर एक हो तथा मात्रा रहित हो जावे तथा द्वादश तत्वों के अन्त तक हो। इस प्रकार से व्यवस्थित होकर अमृत हो जावे और ऐसी स्थति में होकर फिर पाशुपत व्रत समाचरण करना चाहिए ॥४३॥४४॥ ऋक्-यजु और सामवेद के मन्त्रों के द्वारा विधि-विधान के साथ अग्नि का आधान करके इस पाशुपत व्रत को सक्षेप से करूंगा। ऐसा व्रत का संकल्प है। पाशुपत व्रत करने वाला उपवास करे शुचि होवे-स्नान करे और फिर स्वयं शुक्ल वस्त्र धारण करे शुक्ल यज्ञोपवीत वाला और शुक्ल माला तथा अनुलेपन से युक्त होकर हवन करे। विरजा दीक्षा से युक्त एवं भस्म का

धारण करना भी विद्वान् होना चाहिए तभी इस पाशुपत व्रत की पात्रत सम्पन्न होती है । अपने सम्पूर्ण अङ्गियाङ्गों की शुद्धि इस प्रकार करे—मेरी पाँचों वायु शुद्ध होवें वाक-मन और चरण आदि शुद्ध हों–॥४५॥ ॥४६॥४७। श्रोत्र–जिह्वा–प्राण–बुद्धि शिर--पाणि–पार्श्वभाग-पृष्ठभाग-उदर-दोनों जाँघें–शिम्नोपस्थ–पायु--मेढ़्-त्वचा-मांस–रुधिर--भेद-अस्थियाँ–शब्द–स्पर्श-रूप–रस-गन्ध–समस्त मन तथा देह में जो भेदादि हैं वे सब शुद्धि को प्राप्त होवें । भगवान् की शिव की इच्छा से मेरे अन्न-प्राण-मन और ज्ञान के समस्त कोश शुद्ध होवें । समिधाओं और घृत से अग्नि में हवन कर करके तथा चरु से क्रमानुसार आहूतियाँ देकर रुद्राग्नि का उपसंहार करे एवं यत्नपूर्वक फिर भस्म ग्रहण करे । 'अग्नि'—इत्यादि मन्त्रों के द्वारा बुद्धिमान पुरुष को अङ्गों का विमार्जजन कर उस भस्म से संस्पर्श करना चाहिए ॥४८॥४९॥५०॥५१॥५२॥

एतत्पाशुपत दिव्यं व्रतं पाशविमोनचम् ।
ब्राह्मणानां हित प्रोक्त क्षत्रियाणां तथैव च ॥ ५२
वैश्यानामपि योग्यानां यतीनां तु विशेषतः ।
वानप्रस्थाश्रमस्थानां गृहस्थानां सतामपि ॥५४
विमुक्तिर्विधिनानेन दृष्टवा वै ब्रह्मचारिणाम् ।
अग्निरित्यादिना भस्म गृहीत्वा ह्यग्निहोत्रजम् ॥५५
सोऽपि पाशुपतो विप्रो विमृज्यांगानि संस्पृशेत् ।
भस्मच्छन्ना द्विजो विद्वान् महापातकसंभवैः । ५६
पापैर्विमुच्यते सद्यो मुच्यते च न संशयः ।
वीर्यमग्नेर्यतो भस्म वीर्यवान्भस्मसंयुतः ॥५७
भस्मस्नानरतो विप्रो भस्मशायी जितेंद्रियः ।
सर्वपापविनिर्मुक्तः शिवसायुज्य मप्नुयात् ॥५८

इस प्रकार से यह पाशुतत व्रत होता है जो पाशों का विमोचन करने वाला है । यह पाशुपत व्रत ब्राह्मणों को बहुत हित करने वाला है तथा क्षत्रिय और वैश्यों का भी हित सम्पादक होता है जो इसके करने के योग्य होते हैं । यतियों के सिये तो यह व्रत विशेष रूप हित करने

वाला है। जो वानप्रस्थ आश्रम में स्थित हैं या जो सत्पुरुष गार्हस्थ्य आश्रम में स्थित हैं उन सब के हित का सम्पादन करने वाला यह पाशुपत व्रत होता है। ।।५३।।५४।। ब्रह्मचारियों की इस विधि से विमुक्ति देखकर "अग्नि" इत्यादि मन्त्र के द्वारा अग्निहोत्र से समुत्पन्न भस्म ग्रहण करे और वह पाशुपत व्रत करने वाला विप्र विमार्जन कर अङ्गों का संस्पर्श करे। भस्म से च्छन्न विद्वान् द्विज महान् पातकों से तथा पापों से तुरन्त ही विमुक्त हो जाया करता है इसमें तनिक भी संशय नहीं है। यह भस्म अग्नि का वीर्य है। इसके संस्पर्श से भस्म संयुत पुरुष भी वीर्यवान् हो जाता है ।।५५।।५६।। भस्म के द्वारा स्नान करने में रति रखने वाला विप्र-भस्म में शयन करने वाला और इन्द्रियों को जीत लेने वाला विप्र समस्त प्रकार के पापों से विमुक्त होकर अन्त में भगवान् शिव के सायुज्य की प्राप्ति करता है ।।५७।।५८।।

तस्मात्सर्वप्रयत्नेन भूत्यंग पूजयेद्बुधः।
रेरेकारो न कर्तव्यस्तुंतुंकारस्तथैव च ।।५९
न तत्क्षमति देवेशो ब्रह्मा वा यदि केशवः।
मम पुत्रो भस्मधारी गणेशश्च वरानने ।।६०
तेषां विरुद्धं यत्त्याज्यं स याति नरकार्णवम्।
गृहस्थो ब्रह्महीनोपि त्रिपुंड्रं यो न कारयेत् ।।६१
पूजा कर्म क्रिया तस्य द न स्न नं तथैव च।
निष्फलं जायते सर्वं यथा भस्मनि वै हुतम् ।।६२
तस्माच्च सर्वक र्येषु त्रिपुंड्रं धारयेद्बुधः।
इत्युक्त्वा भगवान्ब्रह्मा स्तुत्वा देवैः समं प्रभुः ।।६३
भस्मच्छन्नैः स्वयं छन्नो विरराम विशांपते।
अथ तेषां प्रसादार्थं पशूनां पतिरीश्वरः ।।६४
सगणश्चांवया सार्धं स न्निध्यमकरोत्प्रभुः।
अथ संनिहितं रुद्रं तुष्टुवुः सू पुंगवम् ।।६५
रुद्राध्यायेन सर्वेशं देवदेव मुमापतिम्।
देवोपि देवानालोक्य घृणया वृषभध्वजः ।।६६

तुष्टोस्मीत्याह देवेभ्यो वरं दातुं सुरारिहा ॥६७

इसलिये सब प्रयत्नों के द्वारा बुध पुरुष को भूति के द्वारा अङ्गों का पूजन करना चाहिए तथा रेरेकार एवं तुंतुंकार नहीं करना चाहिए ॥५६॥ भगवान् शिव देवी से भस्म के धारण करने वाले की महिमा कहते हुए बतलाते हैं कि हे वरानने ! इसे देवों के ईश ब्रह्मा-केशव और भस्म धारण करने वाला मेरा पुत्र गणेश भी उसको क्षमा नहीं करते हैं अतः उनके जो विरुद्ध हो उसे त्याग देना चाहिए अन्यथा वह पुरुष नरकार्णव में जाकर गिरा करता है। तप आदि से शून्य भी गृहस्थ पुरुष जो त्रिपुण्ड्र को धारण नहीं करता है उसकी सम्पूर्ण अर्चन-क्रिया-कर्म-दान-स्नान आदि निष्फल हो जाया करते हैं। उसका सभी कुछ किया हुआ इसी भाँति होता हैं जैसे भस्म में किया हुआ हवन विफल होता है ॥५६॥६०॥६१॥६२॥ इसलिये समस्त कार्यों में बुध पुरुष को त्रिपुण्ड्र धारण करना चाहिए। इतना कहकर भगवान् प्रभु ब्रह्मा देवों के साथ स्तवन करके जो कि सब भस्म से छन्न थे हे विशाम्पते ! स्वयं भी भस्म से छन्न होकर विरत हो गये थे। ॥६३॥ इसके अनन्तर उन सब के प्रसाद के लिये पशुओं के पति ईश्वर प्रभु ने समस्त गणों के तथा जगदम्बा के साथ सान्निध्य किया था। फिर सुरों में परम श्रेष्ठ संनिहित भगवान् रुद्र की सब स्तुति करने लगे ॥६४॥६५॥ सब के स्वामी देवों के देव उमा के पति का स्तवन रुद्राध्याय से किया था। भगवान् वृषभध्वज शिव भी देवों को वहाँ स्तुति करते हुए देखकर कृपा कर बोले—॥६६॥ सुरों के शत्रुओं का हनन करने वाले प्रभु शिव ने देवों को वरदान प्रदान करने के लिये उनसे कहा—मैं तुम से परम प्रसन्न एवं सन्तुष्ट हूँ' ॥६७॥

८८—रविमंडल में उमा महेश पूजा—विधि ॥

तं प्रभुं प्रीतमनसं प्रणिपत्य वृषध्वजम् ।
अपृच्छन्मुनयो देवाः प्रीतिकटकितत्वचः ॥१
भगवन् केन मार्गेण पूजनीयो द्विजातिभिः ।
कुत्र वा केन रुपेण वक्तुमर्हसि शंकर ॥२

कस्याधिकारः पूजायां ब्राह्मणस्य कथं प्रभो ।
क्षत्रियाणां कथं देव वैश्यानां वृषभध्वज ।।३
स्त्रीशूद्राणाँ कथं वापि कुंडगोलादिनां तु वा ।
हिताय जगताँ सर्वमस्माकं वक्तुमर्हँसि ।।४
तेषाँ भावं समालोक्य मुनीनाँ नीललोहितः।।
प्राह गंभीरया वाचा मंडलस्थः सदाशिवः ।।५
मंडले चाग्रतो पश्यन्देवदेव सहोमया ।
देवाश्च मुनयः सर्वे विद्युत्कोटिसमप्रभम् ।।६
अष्टबाहुं चतुर्वक्त्रं द्वादशाक्षं महाभुजम् ।
अर्धं नारीश्वर देवं जटामुकुटधारिणम् ।।७

(रविमण्डल में उमा-महेश की पूजा-विधि) इस अध्याय में मुनि और देवों के द्वारा पूछे गये भगवान् महेश्वर से रवि के मण्डल में ज्ञात पूजन की विधि का निरूपण किया जाता है। शैलादि ने कहा—प्रीति से संयुत मन वाले वृषभध्वज प्रभु को प्रणाम करके प्रेम से रोमञ्चित शरीर वाले देवगण और मुनियों ने उनसे पूछा था ।।१।। देवों ने कहा—हे भगवन् ! हे शङ्कर ! द्विजातियों को किस मार्ग के द्वारा अर्थात् किस विधान से वहां पर और किस रूप से पूजा करनी चाहिए—इसे आप बताने के योग्य होते हैं ।।२।। हे प्रभो ! किस ब्राह्मण का पूजा करने में अधिकार होता है । हे वृसभध्वज ! क्षत्रियों तथा वैश्यों को किस प्रकार से पूजा करनी चाहिए ? ।।३।। स्त्री तथा शूद्रों को एवं कुण्ड और गोलक आदि को किस प्रकार से अर्चना करनी चाहिए (पति के होते हुए पर पुरुष से और पति के अभाव में जार से समुत्पन्न सन्तति गोलक कुण्डक कही जाती हैं)। हे प्रभो ! समस्त जगतों के हित के लिये यह आप हमको बता देने के योग्य होते हैं !।४।। सूतजी ने कहा—भगवात् नील लोहित शिव ने उनके भावों को भली-भाँति समझ कर मण्डल में स्थित भगवान् सदाशिव प्रभु गम्भीर वाणी से बोले–।।५।। मण्डल में आगे उमा के सहित देवों के भी देव का दर्शन करते हुए समस्त मुनिगण और देवों के सामने विद्युत्कोटि के समान प्रभा से युक्त आठ बाहुओं

वाले-चार मुखों से संयुत-वारह नेत्रों वाले तथा महान् भुजाओं से समन्वित प्रभु विद्यमान हैं। वे अर्ध नारीश्वर, देव जटा तथा मुकुट के धारण करने वाले हैं ॥६॥७॥

सर्वाभरणसंयुक्तं रक्तमालानुलेपनम् ।
रक्तांवरधरं सृष्टिस्थितिसंहारकारकम ॥८
तस्य पूर्वमख पीतं प्रसन्नं पुरुषात्मकम ।
अघोरं दक्षिणं वक्त्र नीलांजनचयोपमम ॥६
दंष्ट्राकरालमत्युग्रं ज्वालामालासमावृतम ।
रक्तश्मश्रुं जटायुक्त चोत्तरे विद्रुमप्रभम ॥१७
प्रसन्न वामदेवाख्य वरद विश्वरूपिणम ।
पश्चिम वदन तस्य गोक्षीरधवल शुभम ॥११
मुक्ताफलमयैर्हारैर्भूषित तिलकोज्ज्वलम ।
सद्योजातमुख दिव्त भास्करस्ये स्मरारिणः ॥१२
आदित्यमग्रतो पश्यन्पूर्ववच्चतुराननम ।
भास्कर पुरतो देव चतुर्वक्त्रं च पूर्ववत ॥१३
भानुं दक्षिणतो देव चतुवंक्त्र च पूर्ववत
रविमुत्तरतो पश्यन्पूर्ववच्चतुराननम ॥१४

वह समस्त प्रकार के आभूषणों से युक्त है रक्त वर्ण कीमाला और अनुलेपन वाले हैं—रक्त वस्त्र धारध किये हुए हैं-इस सम्पूर्ण सृष्टि की स्थिति और संहार के करने वाले है ॥८॥ उनका पूर्व मुख पीव-प्रसन्न और तत्पुरुष रूप है। दक्षिण मुख अघोर और नील अंजन के ढेर के समान है ॥६॥ दंष्ट्रा से कराल, अत्तन्त उग्र और ज्वाला की माला से समावृत-रक्तश्मश्रू से यक्त जटा से समन्वित तथा बिद्रुम की प्रभा के समान प्रभा वाला उत्तर में है ॥१०॥ परम प्रसन्न वामदेव नाम वाला-वर देने वाला विश्व के रूप से युक्त और गौ के दुग्ग के तुल्य श्वेत एवं शुभ उसका पश्चिम मुख है ॥११॥ मुक्ता फलों से परिपूर्ण हारों से विभूषित तिलक से अत्यन्त समुज्ज्वल स्मर के अरि भास्कर का सद्योजात मुख परम दिव्य है ॥१२॥ अब उनके परिवार देवों को बतलाया जाता

है—शिव के ही सदृश आगे आदित्य जो कि चार मुख वाले हैं उसको देख रहे हैं। सामने पूर्ववत् अर्थात् शिव के ही समान चार मुख वाले भास्कर देव हैं ॥१३॥ पूर्व की भाँति चार मुखों से युक्त दक्षिण में भानु देव हैं। उत्तर में शिव के ही तुल्य चतुरानन रवि हैं जिनको कि देखा था ॥१४॥

विस्तारां मंडले पूर्वे उत्तरां दक्षिणे स्थिताम् ।
बोधनीं पश्चिमे भागे मंडलस्य प्रजापतेः ॥१५
अध्यायनीं च कौदेर्यामेकवक्त्रां चतुर्भु जाम् ।
सर्वाभरणसंपन्नाः शक्तयः सर्वसमताः ॥१६
ब्रह्माणं दक्षिणे भागे विष्णुं वामे जनार्दनम् ।
ऋग्यजुःसाममार्गेण मूर्तित्रयमयं शिवम् ॥१७
ईशानं वरदं देवमीशानं परमेश्वरम् ।
ब्रह्मासनस्थं वरदं धर्मज्ञानासनोपरि ॥१८
वैराग्यैश्वर्यसंयुक्ते प्रभूते विमले तथा ।
सारं सर्वेश्वरं देवमाराध्यं परमं सुखम् ॥१६
सितपंकजमध्यस्थं दीप्त द्यौ रभिसंवृतम् ।
दीप्तां दीपशिखाकारां सूक्ष्मां विद्यु त्प्रभां शुभाम् ॥ २०
जयामग्निशिखाकारां प्रभां कनकसप्रभाम्
विभूतिं विद्रु मप्रख्यां विमलां पद्ममन्निभाम् ॥२१
अमोघां कर्णिकाकारां विद्यु तं विश्ववर्णिनीम् ।
चतुर्वक्त्रां चतुर्वर्णां देवी वै सर्वतोमुखीम् ॥२२

पूर्व मण्डल में विस्तारा-दक्षिण में स्थित उत्तरा-पश्चिम भाग में प्रजापति के मण्डल की बोधनी और कौवेदी में चार भुजाओं वाली और एक वक्त्र से युक्त अध्यायनी इस प्रकार से सम्पूर्ण आभरणों से समन्वित एवं सर्व सम्मत शक्तियाँ हैं ॥१५॥१६ दक्षिण भाग में ब्रह्मा वाम भाग में जनार्दन विष्णु तथा ऋक्, यजु और साम के मार्ग से तीन मूर्तियों से परिपूर्ण शिव हैं ॥१७॥ वर प्रदान करने वाले ईशान देव-परमेश्वर ईशान धर्म और-ज्ञान के आसन के ऊपर वरद ब्रह्मासन पर संस्थित हैं ॥१८॥

वैराग्य और ऐश्वर्य से संयुक्त-प्रभूत एवं विमल आसन पर हैं जो सार स्वरूप-आराधना करने के योग्य एवं परम सुख स्वरूप देव हैं ।।१९।। द ा पंकज के मध्य भाग में संस्थित और दीप्ताद्य पहिले बताई हुई नौ शक्तियों से अभिसंवृत हैं । दीप्ता-दीप की शिखा के आकार वाली सूक्ष्मा विद्युत्प्रभा-शुभा-जया-अग्नि की शिखा के आकार वाली-प्रभा-कनकसप्रभा विभूति-विद्रुमप्रख्या विमला-पद्म सन्निभा-अमोघा-कर्णि के आकार से युक्ता-विद्युत्-विश्व वर्णिनी-चार मुख वाली-चार वर्णों से सयुत और सर्वतोमुखो देवी को देखा था ।।२०।।२१।।२२।।

सोममंगारकं देवं बुधं बुद्धिमतां वरम् ।
बृहस्पतिं बृहद्बुद्धिं भार्गवं तेजसां निधिम् ।।२२
मंदं मंदगतिं चैव समतात्तस्य ते सदा ।
सूर्यः शिवो जगन्नाथः सोमः साक्षादुमा स्वयम् ।।२४
पंचभूतानि शेषाणि तन्मयं च चराचरम् ।
दृष्ट्वैव मुनयः सर्वे देवदेवमुमापतिम् ।।२५
कृतांजलिपुटाः सर्वे मुनयो देवतास्तथा ।
अस्तुवन्वाग्भिरिष्टाभिर्वदं नीललोहितम् ।।२६
नमः शिवाय रुद्राय कद्रुद्राय प्रचेतसे ।
मीढुष्टमाय सर्वाय शिपिविष्टाय रंहसे ।।२७
प्रभूते विमले सारे ह्याध रे परमे सुखे ।
नवशक्त्यावृतं देवं पद्मस्थं भास्कर प्रभुम् ।।२८

उसके चारों ओर सदा सोम-अङ्गारक देव बुद्धिमानों में परम श्रेष्ठ बुध-बृहद बुद्धि वाले वृहस्पति-तेजों की खान भार्गव (शुक्र एवं मन्दगति से चलने वाले शनैश्चर को देखा था । सूर्य-शिव-जगन्नाथ सोम और साक्षात् स्वयं उमा तथा शेष भौमादि ग्रह रूप वाले पंच भूत गगनादि समस्त चर और अचर तन्मय है । इस प्रकार से समस्त मुनियों ने देवों के भी देव उमा पति प्रभु का दर्शन करके हाथ जोड़ लिये थे तथा सब देव और मुनियों ने वरद भगवान् नील लोहित अपनी इष्ट वाणियों के द्वारा स्तुति की थी । ।।२३।।२४।।२५।।२६।। ऋषियों ने कहा भगवान्

शिव-रुद्र-कद्रुद्र-प्रचेता के लिये हमारा सब का नमस्कार है। मीढुष्टम-सर्व-शिपि विष्ट-रंह के लिये नमस्कार है ।।२७।। प्रभूत-विमल-सार-परम सुख आधार पर संस्थित-नव शक्तियों से समावृत पद्मपर स्थित भास्कर प्रभु देव को हमारा प्रणाम है ।।२८।।

आदित्यं भास्करं भानुं रविं देवं दिवाकरम् ।
उमां प्रभां तथा प्रज्ञां संध्यां सावित्रिकामपि ।।२९
विस्तारामुत्तरां देवीं बोधनीं प्रणमाम्यहम् ।
आप्यायनीं च वरदां ब्रह्माणं केशवं हरम् ।३०
सोमादिवृंदं च यथाक्रमेण संपूज्य मंत्रैर्विहितक्रमेण ।
स्मरामि देवं रविमंडलस्थं सदाशिवं शंकरमादिदेवम् ।।३१
इन्द्रादिदेवांश्च तथेश्वरांश्च नारायणं पद्मजमादिदेवम् ।
प्रागाद्यधोर्ध्वं च यथाक्रमेण वज्रादिपद्मं च तथा स्मरामि ३२
सिंदूरवर्णाय समंडलाय सवर्णवज्राभरणाय तुभ्यम् ।
पद्माभनेत्राय सपकजाय ब्रह्मेंद्रनारायणकारणाय ।।३३।
रथं च सप्ताश्वमनूरुवीरं गणं तथा सप्तविधं क्रमेण ।
ऋतुप्रवाहेण च वालखिल्यान्स्मरामि मदेहगणक्षयं च ।।३४
हुत्वा तिलाद्यैर्विविधैस्तथाग्नौ पुन: समाप्यैव तथैव सर्वम् ।
उद्वास्य हृत्पंकजमध्यसंस्थं स्मरामि बिंबं तव देवदेव ।।३५

आदित्य-भास्कर-भानु रवि-देव-दिवाकर को हमारा नमस्कार है। उमा-प्रभा प्रज्ञा-सन्ध्या-सावि त्रिका-विस्तारा-उत्तरा देवी और बोधनी को मैं प्रणात करता हूँ। आप्यायनी-वरदा को मेरा प्रणाम है। ब्रह्मा-केशव-हर और सोमादि के वृन्द की यथा बिधि एवं क्रम के अनुसार विहित क्रम से भली-भाँति मन्त्रों के द्वारा पूजन करके रवि के मण्डल में संस्थित आदिदेव सदाशिव शङ्कर का मैं स्मरण करता हूँ ।२९।३०।।३१।। इन्द्रादि देवों का-तथा ईश्वरों का-नारायण-पद्मज-आदिदेव-यथाक्रम से प्रागादि अधोर्ध्व तथा वज्रादि पद्म का मैं स्मरण करता हूँ ।।३२।। सिन्दूर जैसे वर्ण वाले-मण्डल से युक्त और सुवर्ण यज्ञ के आभरण वाले आप के लिये मैं प्रणाम करता हूँ तथा स्मरण करता हूँ। पद्माभ नेत्र

वाले–सपङ्कज-ब्रह्मा, इन्द्र और नारायण के भी कारण स्वरूप के लिये नमस्कार है ॥३२।३३ सात अश्वों से युक्त रथ-अरुरुवीर गण तथा वसन्तादि के क्रम से सात प्रकार के गण जो कि ऋतुओं के प्रवाह से होते हैं और मंदेह गण क्षय अर्थात् तन्नामक असुर नाशक एवं वाल खिल्यों का मैं स्मरण करता हूँ ॥३४॥ हे देवदेव ! तिल आदि विविध पदार्थों के द्वारा अग्नि में आहूतियाँ देकर और फिर सम्पूर्ण कृत्य को उसी भाँति समाप्त करके आपके मण्डल विश्व को जो कि हृदय कमल के मध्य में संस्थित है निकाल कर मैं स्मरण करता हूं ॥३५॥

स्मरामि बिंबानि यथाक्रमेण रक्तानि पद्मामललोचनानि
पद्मं च सव्ये वरद च वामे करे तथा भूषितभूषणानि ॥३६
दंष्ट्राकरालं तव दिव्यवक्त्र विद्युत्प्रभ दैत्यभयकरं च ।
स्मरामि रक्षाभिरत द्विजानां मदह रक्षोगणभर्त्सनं च ॥३७
सोमं सितं भूमिजमग्निवर्णं चामीकराभं बुधमिंदुसूनुम् ।
बृहस्पतिं काचनसन्निकाश शुक्रं सितं कृष्णतरं च मदम् ॥३८
स्मरामि सव्यमभयं वाममूरुगतं वरम् ।
सर्वेषां मदपयत महादेव च भास्करम् ॥३९
पूर्णेंदुवर्णेन च पुष्पगधप्रस्थेन तोयने शुभेन पूर्णम् ।
पात्र दृढ ताम्रमय प्रकल्प्य दास्ये तवार्घ्य भगवन्प्रसीद ॥ ४०
नमः शिवाय देवाय ईश्वराय कपर्दिने ।
रुद्राय विष्णवे तुभ्यं ब्रह्मणे सूर्यमूर्तये ॥४१
यः शिवं मंडले दव संपूज्यैव समाहतः ।
प्रातर्मध्याह्ने मायाह्ने पठेत्स्तवमनुत्तमम् ॥४२
इत्थं शिवेन सायुज्यं लभते नात्र सशयः ॥४३

मैं पद्मामललोचन यथाक्रम से रक्त विम्बों का स्मरण करता हूँ। दक्षिण में पद्म को और वाम कर में वरद को तथा भूषित भूषणों का स्मरण करता हूँ ॥३६॥ आपका दिव्य मुख दंष्ट्राओं से कराल है और वह विद्युत् के तुल्य प्रभा से युक्त है एवं दैत्यों को भय समुत्पन्न करने वाला है। मन्देह नामक राक्षसों के समुदाय का नाश करने वाला एवं भर्त्सना

देने वाला है और द्विजों की रक्षा करने में निरत है उसका मैं स्मरण करता हूँ । ।।३७।। सित वर्ण वाले सोम-अग्नि के समान मङ्गल-सुवर्ण के तुल्य इन्दु के पुत्र बुध काञ्चन के सदृस वृहस्पति-श्वेत शुक्र और अत्यन्त कृष्ण वर्ण वाले शनि-अभय सव्य तथा अरुगत वर वाम-मन्दपथत सब के कारण स्वरूप भास्कर महादेव का मैं स्मरण करता हूं ।।३८।। ।।३९।। पूर्ण इन्दु के वर्ण वाले पुण्य एवं गन्ध प्रस्थ से युक्त शुभ तोय के द्वारा दृढ़ ताम्रमय पात्र को प्रकल्पित करके हे भगवन् ! मैं आपको अर्घ्य देता हूं आप प्रसन्न होइये ।।४०।। शिव देव के लिये नमस्कार है । ईश्वर कपर्दी-रुद्र-विष्णु-सूर्य की मूर्ति वाले ब्रह्म आपके लिये नमस्कार है ।।४१।। सूतजी ने कहा—जो इस प्रकार से मण्डल में समाहित होकर शिव देव का भली भांति पूजनार्चन करके प्रातः-मध्याह्न और सायङ्काल में इस सर्वोतम स्तव का पाठ किया करता है वह इस प्रकार से भगवान् शिव के सायुज्य को प्राप्त होता है—इसमें कुछ भी संशय नहीं है । ।।४२।।४३।।

।। ८९– महेश्वर पूजा में अधिकार निरूपण ।।

अथ रुद्रो महादेवो मंडलस्थः पितामहः ।
पूज्यो वै ब्राह्मणानां च क्षत्रियाणां विशेषतः ।।१
वैश्यानां नैव शूद्राणां शुश्रूषां पूजकस्य च ।
स्त्रीणां नैवाधिकारोऽस्ति पूजादिषु न संशयः ।।२
स्त्रीशूद्राणां द्विजेन्द्रैश्च पूजया तत्फलं भवेत् ।
नृपाण मुपकारार्थं ब्राह्मणाद्यैर्विशेषतः ।।३
एवं संपूजयेर्वै ब्राह्मणाद्याः सदाशिवम् ।
इत्युक्त्वा भगवान् रुद्रस्तत्रै वांतरधात्स्वयम् ।।४
ते देवा मुनयः सर्वे शिवमुद्दिश्य शंकरम् ।
प्रणेमुश्च महात्मानो रुद्रध्यानेन विह्वलाः ।।५
जग्मुर्यथागतं देवा मुनयश्च तपोधनाः ।
तस्मादभ्यर्चयेन्नित्यमादित्यं शिवरूपिणम् ।।६

धम कामार्थमुक्त्यथं मनसा कर्मणा गिरा ।
रोमहर्षण सर्वज्ञ सर्वशास्त्रभृतां वर ।।७
व्यासशिष्य महाभाग वाह्नेय वद सांप्रतम् ।
शिवेन देवदेवेन भक्तानां हितकाम्यया ।।८

(महेश्वर पूजा के अधिकार निरूपण) इस अध्याय में मण्डलार्चन में शिव के द्वारा अधिकारी बताये गये हैं और अग्नियोक्त विधान से शैव दीक्षा का निरूपण किया जाता है। सूतजी ने कहा--इसके अनन्तर मण्डल में स्थित पितामह रुद्र महादेव ब्राह्मणो का और विशेष कर क्षत्रियों का और वैश्यों का पूज्य होता है ।।१।। शूद्रों को इस प्रकार से पूज्य नहीं होता है और स्त्रियों को भी इस विधि से पूजा करने का अधिकार नहीं है। इनको तो जो मण्डल की पूजा करने का अधिकारी है उसकी शुश्रूषा से ही मण्डल-पूजा का फल प्राप्त होता है। स्त्री और शूद्रों को द्विजेन्द्रों के द्वारा की हुई पूजा के द्वारा ही फल प्राप्ति हुआ करती है। राजाओं के उपकार के लिये ब्राह्मणादि के द्वारा पूजन कराने से अपने आप से किये हुए से भी अधिक फल वाली होती है ।।२।।३।। इस प्रकार से ब्राह्मण आदि लोगों को सदा सदाशिव का पूजन करना चाहिए—इतना कहकर भगवान् रुद्र स्वयं वहाँ पर ही अन्तर्धान हो गये थे ।।४।। वे समस्त देवगण और मुनिगण भगवान् शिव का उद्देश्य करके महात्मा रुद्र के ध्यान में विकुल होते हुए प्रणाम करने लगे ।।५।। त्रय के धन वाले देव और मुनि लोग जैसे ही आये थे चले गये थे। इस लिये शिव स्वरूप वाले भगवान् आदित्य का नित्य ही अर्चन करना चाहिए ।।६।। धर्म-काम-अर्थ और मुक्ति के लिये मन-कर्म और वाणी के द्वारा यजन करना चाहिए। ऋषियों ने कहा–हे रोमहर्षण ! आप तो सभी कुछ के ज्ञाता हैं और समस्त शास्त्रों को धारण करने वालों में परम श्रेष्ठ हैं। हे महान् भाग्य वाले श्री व्यास देव के शिष्य ! अब आप हमारे सामने वाह्नेय विधान का वर्णन कीजिए जिसे देवों के देव भगवान् शिव ने अपने भक्तों की हित- कामना से कहा है ।।७।।८।।

वेदात् षडंगादुद्धृत्य सांख्ययोगाच्च सर्वतः ।

तपश्च विपुलं तप्त्वा देवदानवदुश्च म् ॥९
अथदेशादिसंयुक्तं गूढमज्ञाननिंदितम् ।
वर्णाश्रमकृतैधर्मैर्विपरीत कचित्समम् ॥१०
शिवेन कथित शास्त्र धर्मकामार्थमुक्तये ।
शतकोटिप्रमाणेन तत्र पूजा कथ विभोः ॥११
स्नानयोगादयो वापि श्रोतुं कौतूहल हि नः ।
पुरा सनत्कुमारेण मेरुपृष्ठे सुशोभने ॥१२
पृष्टो नंदीश्वरो देवः शैलादिः शिवसंमतः ।
पृष्टोय प्रणिपत्यैव मुनिमुख्यैश्च सर्वतः ॥१३
तस्मै सनत्कुमाराय नंदिना कुलनंदिना ।
कथितं यच्छिवज्ञान शृण्वतु मुनिपुङ्गवाः ॥१४

भगवान् शिव ने इसे षडङ्गों बाले देव से उद्धृत करके और सब और से सांख्य योग से इनका उद्धरण करके कहा है । देव तथा दानवों के द्वारा भी परम दुश्चर बहुत तप करके अथ देश आदि से संयुक्त गूढ और अज्ञान निन्दित तथा वर्णाश्रम कृत धर्मों से विपरीत और कहीं पर उनके ही समान भगवान् शिव ने धर्म-काम-अर्थ और मुक्ति के लिये इस शास्त्र का कथन किया है । । वहाँ पर शत कोटि प्रमाण से विभु की पूजा कैसे होती है ॥९॥१०॥११॥ हमको स्नान योग आदि सब के श्रवण करने का महान् कौतूहल हो रहा है । सूतजी ने कहा—पहिले परम शोभन मेरु पृष्ठ पर सनत्कुमार ने शिव के परम समस्त देव शैलादि नन्दीश्वर से पूछा था मुनियों में परम प्रमुखों के द्वारा प्रणिपात करके उनसे इस प्रकार पूछा गया था ॥१२॥१३॥ उस सनत्कुमार से कुलनन्दी नन्दी ने जो शिव का ज्ञान कहा था, हे मुनिश्रेष्ठो ! उसका अब आप लोग श्रवण करें ॥१४॥

शैवं संक्षिप्य वेदोक्तं शिवेन परिभाषितम् ।
स्तुतिनिन्दादिरहितं सद्यः प्रत्ययकारकम् ॥१५
गुरुप्रसादजं दिव्यमनायासेन मुक्तिदम ।
भगवन्सर्वभूतेश नंदीश्वर महेश्वर ॥१६

कथं पूजादय: शभोर्धर्मकामार्थमुक्तये ।
वक्तुमर्हसि शैलादे विनयेनागताय मे ।१७।
सप्रेक्ष्य भगवान्नदो निशम्य वचनं पुन: ।
कालवेलाधिकाराद्यमवदद्वदतां व॒र: ।१८।
गुरुत: शास्त्रतश्चैवमधिकारं ब्रवीम्यहम् ।
गौरवादेव संज्ञेषा शिवाचार्यस्य नान्यथा ।१९।
स्वयमाचरते यस्तु अचारे स्थापयत्यपि ।
आचिनोति च शास्त्रार्थानाचार्यस्तेन चोच्यते ।२०।
तस्माद्वेदार्थतत्त्वज्ञमाचार्यं भस्मशायिनम् ।
गुरुमन्वेषयेद्भक्त: सुभग प्रियदर्शनम् ।२१।

भगवान् शिव ने उस वेद में कहे हुए शैव ज्ञान को संक्षिप्त करके कहा था। वह स्तुति और निन्दा आदि से रहित है तथा तुरन्त ही विश्राम कराने वाला है ।१५। गुरु के प्रसाद से उत्पन्न होने वाला परम दिव्य है और बिना ही किसी आयास के मुक्ति का प्रदान करने वाला है । सनत्कुमार ने कहा—हे भगवन् ! समस्त भूतों के स्वामिन् ! हे नन्दीश्वर ! हे महेश्वर ! हे शैलादे ! विनय पूर्वक आये हुए मुझे आप धर्म कामार्थ और मुक्ति के लिए शम्भु की पूजा आदि को बताने के योग्य होते हैं ।१६।१७। सूतजी ने कहा भगवान् नन्दी ने भली-भाँति देखकर और पुन: वचन का श्रवण करके बोलने वालों में परम श्रेष्ठ ने काल वेलाधिकार से जिसको कहा था ।१८। शैलाद्रि ने कहा – मैं गुरु से और शास्त्र से इस प्रकार से अधिकार को बताता हूं । शिवाचार्य के गौरव से यह संज्ञा है अन्यथा नहीं है ।१९। जो स्वयं आचरण किया करता है और अन्यों को भी आचार में स्थापित करता है तथा शास्त्र के अर्थों का सब ओर से चयन किया करता है वह व्यक्ति ही 'आचार्य'— इस नाम से कहा जाता है ।२०। इस कारण से वेदों के अर्थों के तत्वों के ज्ञाता-भस्म में शयन करने वाले गुरु आचार्य का भक्त का अन्वेषण करना चाहिए जो कि सुभग एवं देखने में भी प्रिय लगता है ।२१।

प्रतिपन्नं जनानंद श्रुतिस्मृतिपथानुगम् ।

विद्ययाभयदातारं लौल्यचापल्यवर्जितम् ।२२।
आचारपालकं धीरं समयेषु कृतास्पदम् ।
तं दृष्ट्वा सर्वभावेन पूजयेच्छिववद्गुरुम् ।२३।
आत्मना च धनेनैव श्रद्धावित्तानुसारतः ।
तावदाराधयेच्छिष्यः प्रसन्नोऽसौ यथा भवेत् ।२४।
सुप्रसन्ने महाभागे सद्यः पाशक्षयो भवेत् ।
गुरुर्मान्यो गुरुः पूज्यो गुरुरेव सदाशिवः ।२५।
संवत्सरत्रय वाथ शिष्यान्विप्रान्परीक्षयेत् ।
प्राणद्रव्यप्रदानेन आदेशैश्च इतस्ततः ।२६।
उत्तमश्चाधमे योज्यो नीच उत्तमवस्तुषु ।
आकृष्टास्ताडिता वापि ये विषादं न यांति वै ।२७।
ते योग्याः शिववर्मिष्ठाः शिवधर्मपरायणाः ।
संयता धर्मसंपन्नाः श्रुतिस्मृतिपथानुगा ।२८।

आचार्य ऐसा ही होना चाहिए जो प्रतिपन्न अर्थात् शरणागति में आ गये हैं उन पुरुषों को आनन्द प्रदान करने वाला हो और श्रुति तथा स्मृति के मार्ग का अनुगमन करने वाला हो। आचार्य सर्वदा अपनी विद्या के द्वारा अभय के देने वाला होता है तथा चंचलता एव अस्थिरता से रहित होना चाहिए ।२२। सत्पुरुषों के आचार का पूर्णतया पालन करने वाला तथा समयों पर अर्थात् सन्ध्या आदि के काल पर समुचित स्थानों पर स्थित रहने वाले हों–ऐसे उपर्युक्त गुणों से विशिष्ट आचार्य को प्राप्त कर उस गुरुदेव की शिव की भाँति पूजा करनी चाहिए ।२३। अपने शरीर और मन से और श्रद्धा तथा वित्त के अनुसार धन के द्वारा भी शिष्य को तब तक गुरु की समाराधना करनी चाहिये जब तक वह पूर्णतया प्रसन्नता प्राप्त कर लेवें ।२४। महाभाग गुरु के प्रसन्न हो जाने पर तुरन्त ही सम्पूर्ण पापों का क्षय हो जाया करता हैं। गुरु परम मान्य एवं पूजा के योग्य होते हैं और गुरु ही साक्षात् सदाशिव हैं ।२५। गुरु देव आचार्य को प्रारम्भ में तीन वर्ष तक विप्र शिष्यों की भली-भाँति परीक्षा करनी चाहिए। प्राण-द्रव्य के प्रदान के द्वारा तथा इधर-उधर

के अनेकों आदेशों के देने के द्वारा जाँच करे ।२६। उत्तम तथा अधम प्रकार के कार्यों में योजित करे और उत्तम एवं अधम वस्तुओं में उन्हें आकृष्ट करे। ताड़ना देने पर भी जो शिष्य विषाद को प्राप्त नहीं होते हैं अर्थात् गुरु के द्वारा ताड़ित होकर भी खिन्नता नहीं होती है ।२७। वे ही शिष्य वस्तुतः शिष्य धर्म के पालन करने के योग्य हुआ करते हैं। ऐसे शिष्य शिव धर्म में निष्ठित होते हैं और शिव धर्म में परायण भी होते हैं। परम संयत-धर्म से सम्पन्न एवं श्रुति-स्मृति मार्ग के अनुयायी हुआ करते हैं ।२८।

सर्वद्वंद्वसहाधीरा नित्यमुद्युक्तचेतसः।
परोपकारनिरता गुरुशुश्रूषणे रताः ।२९।
आर्जवा मार्दवाः स्वस्था अनुकूलाः प्रियवदाः।
अमानिनो बुद्धिमंतस्त्यक्तस्पर्धा गतस्पृहाः ।३०।
शौचाचारगुणोपेता दम्भमात्सर्यवर्जिताः।
योग्या एव द्विजाः सर्वे शिवभक्तिपरायणाः ।३१।
एवंवृत्तसमोपेता वाङ्मनःकायकर्मभिः।
शोध्या एवंविधाश्चैव तत्त्वानां च विशुद्धये ।३२।
शुद्धो विनयसंपन्नो मिथ्याकटुकवर्जितः।
गुर्वाज्ञापालकश्चैव शिष्योऽनुग्रहमर्हति ।३३।
गुरुश्च शास्त्रवित्प्राज्ञस्तपस्वी जनवत्सलः।
लोकाचाररतो ह्येव तत्त्वविन्मोक्षदः स्मृतः ।३४।
सर्वलक्षणसंपन्नः सर्वशास्त्रविशारदः।
सर्वोपायविधानज्ञस्तत्त्वहीनस्य निष्फलम् ।३५।

सब प्रकार के द्वन्द्वों को सहन करने वाले-धीर-नित्य ही उद्युक्त चित्त वाले-दूसरों के उपकार में निरत रहने वाले तथा गुरु की सेवा में अनुराग करने वाले-सरल चित्त से युक्त-कोमल व्यवहार वाले-नीरोग-अनुकूल-प्रिय बोलने वाले-अमानी-बुद्धिमान् स्पर्धा के भाव को छोड़ देने वाले-किसी भी प्रकार की इच्छा न रखने वाले-शौच एवं आचार के गुणों से समन्वित दम्भ तथा मत्सरता का त्याग वाले इस प्रकार से

योग्य और शिव की भक्ति में जो परायण द्विज हों वे ही शिष्यता के प्राप्त करने के अधिकारी हुआ करते हैं ।२९।३०।३१। इस प्रकार के आचरण से युक्त मन-वाणी और कर्म के द्वारा जो हों ऐसे ही तत्वों की विशुद्धि के लिए शोधन करने के योग्य अधिकारी होते हैं ।३२। जो शुद्ध विनय से सम्पन्न मिथ्या भाषण और कूटक्ति करने वाला न हो तथा गुरु की आज्ञा का पूर्ण पालन करने वाला हो वह ही शिष्य गुरु चरण की अनुकम्पानुग्रह का वास्तविक पात्र हुआ करता है ।३३। और गुरु भी शास्त्रों का वेत्ता-प्रास- तपस्वी सर्व साधारण शिष्यों पर वात्सल्य रखने वाला-लौकिक आचारों में रति रखने वाला मोक्ष का दाता तथा तत्त्वों का ज्ञान रखने वाला बताया गया है । जो गुरु हो उसमें उपर्युक्त गुण सभी होने चाहिये । ।३४। गुरु सभी लक्षणों से सुसम्पन्न तथा समस्त शास्त्रों का पण्डित होना चाहिए । सब प्रकार के उपायों के विधानों का ज्ञाता गुरु होवे । जो तत्वहीन है वह तो निष्फल ही होता है ।३५।

स्वसंवेद्ये परे तत्त्वे निश्चयो यस्य नात्मनि ।
आत्मनोऽनुग्रहो नास्ति परस्यानुग्रहः कथम् ।३६।
प्रबुद्धस्तु द्विजो यस्तु स शुद्धः साधयत्यपि ।
तत्त्वहीने कुतो बोधः कुतो ह्यात्मपरिग्रहः ।३७।
परिग्रहविनिर्मुक्तास्ते सर्वे पशवोदिताः ।
पशुभिः प्रेरिता ये तु सर्वे ते पशवः स्मृताः ।३८।
तस्मात्तत्त्व वदो ये तु ते मुक्ता मोचयंत्यपि ।
संवित्तिजननं तत्त्वं परानंदसमुद्भवम् ।३९।
तत्त्वं तु विदितं येन स एवानंददर्शकः ।
न पुनर्नाममात्रेण संवित्तिरहितस्तु यः ।४०।
अन्योऽन्यं तारयेन्नैव किं शिला तारयेच्छिलाम् ।
येषां तन्नाममात्रेण मुक्तिर्वै नाममात्रिका ।४१।
योगिनां दर्शनाद्वापि स्पर्शनाद्भाषणादपि ।
सद्यः संजायते चाज्ञा पाशोपक्षयकारिणी ।४२।

जिसकी आत्मा में स्वसंवेद्य पर तत्व में निश्चय नहीं होता है वह स्वयं अपने ऊपर ही अनुग्रह करने अर्थात् अपना श्रेय सम्पादन करने में असमर्थ होता है तो फिर दूसरे (शिष्य) का कैसे अनुग्रह (कल्याण) कर सकता है ? ।३६। जो द्विज प्रबुद्ध है और शुद्ध है वह तो साधन भी कर सकता है किन्तु जो तत्वहीन है उसमें बोध कैसे हो सकता है और क्या उसको आत्म परिग्रह हो सकता है ? ।३७। जो आत्म परिग्रह अर्थात् आत्म-ज्ञान से रहित हैं वे सब पशु ही कहे गये हैं और ऐसे पशु स्वरूप गुरुओं से जो प्रेरणा प्राप्त करने वाले वे भी पशु ही कहे गये हैं ।३८। इसलिए 'अपने और पराये कल्याण के लिए तत्वज्ञान परमावश्यक है । जो पुरुष तत्त्व वेत्ता हैं वे स्वयं भी मुक्त हो चुकते हैं और फिर अन्य शिष्यों को भी मुक्त कर दिया करते हैं । संवित्ति का उत्पन्न हो जाना ही तत्व होता है जो कि परानन्द को उत्पादित किया करता है ।३९। जिसने तत्व का ज्ञान प्राप्त कर लिया है वह ही आनन्द का दर्शक होता है । जो संवित्ति से रहित होता है वह केवल नाम मात्र से आनन्द को दि .ने वाला नहीं हो सकता है ।४०। परस्पर में ऐसा पुरुष कभी उद्धार नहीं किया करता है क्या कोई शिला किसी शिला को तार सकती है ? जिनके नाम मात्र से ही नाम मात्र की ही मुक्ति होती हैं वास्तविकी कभी नहीं हुआ करती है ।४१। योगियों के दर्शन से-स्पर्श करने से अथवा उनके साथ भाषण से भीं पाशों के उपक्षय करने वाली आज्ञा अर्थात् अनुग्रह तुरन्त ही होती है ।४२।

अथवा योगमार्गेण शिष्यदेहं प्रविश्य च ।
बोधयेदेव योगेन सर्वतत्त्वानि शोध्य च ।४३।
षडर्धशुद्धिविहिता ज्ञानयोगेन योगिनाम् ।
शि.ष्य परीक्ष्य धर्मज्ञं धार्मिकं वेदपारगम् ।४४।
ब्राह्मणं क्षत्रियं वैश्यं बहुदोषविवर्जितम् ।
ज्ञानेन ज्ञेयमालोक्य कर्णात् कर्णागतेन तु ।४५।
दीपाद्दीपो यथा चान्यः संचरेद्विधिवद्गुरुः ।
भौवनं च पदं चैव वर्णाख्यं मात्रमुत्तमम् ।४६।

कालाध्वरं महाभाग तत्त्वाख्यं सर्वसंमतम् ।
भिद्यते यस्य सामर्थ्यादाज्ञामात्रेण सवतः ।४७।
तस्य सिद्धिश्च मुक्तिश्च गुरुकारुण्यसंभवा ।
पृथिव्यादीनि भूतानि आविशंति च भौवने ।४८।
शब्दः स्पर्शस्तथा रूपं रसो गंधश्च भावतः ।
पदं वर्णाख्यकं विप्र बुद्धींद्रियविकल्पनम् ।४९।
कर्मेन्द्रियाणि मात्र हि मनो बुद्धिरतः परम् ।
अहकारमथाव्यक्तं कालाध्वरमिति स्मृतम् ।५०।
पुरुषादिविरिंच्यंतमुन्मनत्वं परात्परम् ।
तथेशत्वमिति प्रोक्तं सर्वतत्त्वार्थ बोधकम् ।५१।
अयोगी नैव जानाति तत्त्वशुद्धिं शिवात्मिकाम् ।५२।

गुरु का सामर्थ्य-समन्वित कर्त्तव्य बताते हुए कहते हैं–अथवा गुरु देव योग के मार्ग के द्वारा स्वयं शिष्य के देह में प्रवेश करके उसकी शुद्धि करके योग से ही समस्त तत्वों को बोधित कर दिया करते हैं ।४३। योगियों के ज्ञान योग से षडर्ध अर्थात् गुण त्रय की शुद्धि हो जाती है। शिष्य की गुरु को परीक्षा कर लेनी चाहिए कि वह धर्म का ज्ञाता-धर्म का आचरण करने वाला-वेदों के ज्ञान का पारगामी है ।४४। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य कोई भी इनमें द्विजातियों में से हो जो कि बहुत से दोषों से वर्जित हो फिर कान से कान में आये हुए अर्थात् गुरु परम्परा के मार्ग से प्राप्त होने वाले ज्ञान के द्वारा ज्ञेय का अवलोकन करे ।४५। जिस प्रकार से एक दीपक से दूसरा दीपक जला दिया जाता है वैसे ही गुरु को विधि-विधान से संवरण करना चाहिए। भवन में होने वाला पद वर्ण नाम वाला उत्तम मात्र होता है ।४६। हे महाभाग सनत्कुमार! कालाध्वर सब का सम्मत तत्त्वाख्य अर्थात् सकल तत्वों की संज्ञा वाला होता है। उसकी शक्ति के प्रभाव से सर्व गुरु की आज्ञा मात्र से जिस शिष्य की भिद्यमान होता है उस शिष्य की सिद्धि और मुक्ति तो गुरुदेव की करुणानुकम्पा से ही उत्पन्न होने वाली होती है। भौवन पद में पृथिवी आदि भूत आविष्ट हुआ करते हैं ।४७।४८। शब्द स्पर्श-रूप-

रस और गन्ध स्वभाव से हे सनत्कुमार विप्र ! पाँच ज्ञानेन्द्रियों का विकल्पम वर्णाख्य यह होता है ।४९। कर्मेन्द्रिय मात्र उस संज्ञा वाली हैं और मन बुद्धि आदि का चतुष्टय कालाध्वर कहा गया है ।५०। मानुष आनन्द से आरम्भ करके ब्रह्म पद पर्यन्त परात्पर श्रेष्ठ मनस्कत्व होता हैं वह समस्त तत्वों का अब बोधक ईशत्व कहा गया है । जो योगी नहीं हैं वह शिव स्वरूपा तत्व शुद्धि को नहीं जान सकते हैं जो कि कल्याण रूपा होती है ।५१।५२।

॥ ६०—तंत्रोक्त शिव दीक्षा विधि ॥

परीक्ष्य भूमिं विधिवद्गंधवर्णरसादिभिः ।
अलंकृत्य वितानाद्यैरीश्वरावाहनक्षमाम् ।१।
एकहस्तप्रमाणेन मण्डलं परिकल्पयेत् ।
आलिखेत्कमलं मध्ये पञ्चरत्नसमन्वितम् ।२।
चूर्णैरष्टदलं वृत्तं सितं वा रक्तमेव च ।
परिवारेण सयुक्तं बहुशोभासमन्वितम् ।३।
आवाह्य कर्णिकायां तु शिवं परमकारणम् ।
अर्चयेत्सर्वयत्येन यथाविभवविस्तरम् ।४।
दलेषु सिद्धयः प्रोक्ताः कर्णिकायां महामुने ।
वैराग्यज्ञाननालं च धर्मकदं मनोरमम् ।५।
वामा ज्येष्ठा च रौद्री च काला विकरणी तथा ।
बलविकरणी चैव बलप्रमथिनी क्रमात् ।६।
सर्वभूतस्य दमनी केसरेषु च शक्तयः ।
मनोन्मनी महाया कर्णिकायां शिवासने ।७।

(तन्त्रोक्त शिव-दीक्षा विधि) इस अध्याय में शैव दीक्षा की तन्त्रोक्त विधि और शिव-पूजा के शुभ नियमों का निरूपण किया जाता है तथा उसका फल भी बतलाया जाता है । सूतजी ने कहा—प्रथम तो गन्ध-वर्ण और रसादि से भूमि की विधि के साथ परीक्षा करनी चाहिए इसके उपरान्त वितानादि के द्वारा उस भूमि को समलंकृत करे जो कि ईश्वर

के आवाहन करने के योग्य हो जावे ।१। फिर एक हाथ के प्रमाण वाला वहाँ पर मण्डल परिकल्पित करना चाहिए । उसके मध्य में पाँचों रत्न से सहित कमल का आलेख करे।२। चूर्णों से आठ दल वाला वृत्ताकारा श्वेत अथवा रक्त परिवार से संयुक्त बहुत ही अधिक शोभा से सम्पन्न बनाना चाहिये ।३। उस कमल की जो कर्णिका है उसमें परम कारण स्वरूप भगवान् शिव का आवाहन स्थापनादि करे । फिर अपने वैभव के विस्तार के अनुरूप समस्त यत्नों से अर्चना करनी चाहिए ।४। हे महामुनिवर ! उस लिखित कमल के दलों में अणिमा-महिमा आदि आठ सिद्धियाँ बताई गई हैं और शिवासन कर्णिका में वैराग्य ज्ञान के नाल वाला मनोरम धर्म कन्द का ध्यान करना चाहिए ।५। उसके केसरों में वामादिक आठ शक्तियाँ हैं जिनके नाम ये हैं-वामा-ज्येष्ठा-रौद्री काली-विकरणी-बलविकरणी और क्रम से बल प्रमथिनी है । और आठवीं सर्वभूत दमनी होती है । मनोन्मनी महामाया कमल की कर्णिका में शिवासन पर होती है ।६ ७।

वामादेवादिभिः सार्धं द्वंद्वन्यायेन विन्यसेत् ।
मनोन्मनं महादेवं मनोन्मन्याथ मध्यतः ।८।
सूर्यसोमाग्निसंबधात्प्रणवाख्यं शिवात्मकम् ।
पुरुष विन्यसेद्वक्त्रं पूर्वे पत्रे रविप्रभम् ।९।
अघोर दक्षिणे पत्रे नीलांजनचयोपमम् ।
उत्तरे वामदेवाख्यं जपाकुसुमसन्निभम् ।१०।
सद्य पश्चिम पत्रे तु गोक्षीरधवलं न्यसेत् ।
ईशान कर्णिकायां तु शुद्धस्फटिकसन्निभम् ।११।
चंद्रमंडलसंकाशं हृदयायेति मंत्रतः ।
वाह्नेये रुद्रदिग्भागे शिरसे धूम्रवर्चसे ।१२।
शिखायै च नमश्चेति रक्ताभे नैर्ऋते दले ।
कवचायांजनाभाय इति वायुदले न्यसेत् ।१३।
अस्त्रायाग्निशिखाभाय इति दिक्षु प्रविन्यसेत् ।
नेत्रेभ्यश्चेति चैशान्यां पिंगलेभ्यः प्रविन्येसत् ।१४।

इस समस्त शक्तियों को वामदेव आदि जो उनके स्वामी हैं उनके साथ दाम्पत्य रूप से विन्यस्त करनी चाहिए। मध्य में मनोन्मनी के सहित मनोन्मन महादेव का विन्यास करे।८। सोम-सूर्य और अग्नि के सम्बन्ध से अत्र नेत्र रूप से प्रणव आख्या वाले शिवात्मक पुरुष को जिसकी रवि के तुल्य प्रभा है पूर्व पत्र में वक्त्र का न्यास करना चाहिए।९। नीलाञ्जन के समूह के समान अघोर को दक्षिण पत्र में विन्यस्त करे और उत्तर में जया के पुष्प के तुल्य वामदेव नाम वाले का विन्यास करना चाहिए।१०। गौ के क्षीर के समान धवल वर्ण वाले सद्य को पश्चिम पत्र में न्यस्त करे और विशुद्ध स्फटिक मणि के समान आभा वाले ईशान को कर्णिका में विन्यस्त करना चाहिये।११। 'चन्मण्डल संकाशा"—इत्यादि मन्त्र के द्वारा हृदयाय नमः—इस प्रकार से अङ्ग का न्यास करना चाहिए। वाह्नेय रुद्र दिग्भाग में शिर से नमः-धूम्र वर्चसे शिखायै नमः-रक्ताभ नैर्ऋत दल में अञ्जनाभाय कवचाय नमः-इस प्रकार से न्यास करना चाहिए।१२।१३। अग्नि शिखाभाया अस्त्राय-इस रीति से दिशाओं में प्रविन्यास करे। पिङ्गल नेत्रों के लिए ऐशानी दिशा में न्यास करे।१४।

शिवं सदा शिवं देवं महेश्वरमतः परम्।
रुद्रं विष्णुं विरिंचिं च सृष्टिन्यायेन भावयेत्।१५।
शिवाय रुद्ररूपाय शांत्यतीताय शंभवे।
शांताय शांतदैत्याय नमश्चद्रमसे तथा।१६।
वेद्याय विद्याधाराय वह्नये वह्निवर्चसे।
कालायै च प्रतिष्ठायै तारकायांतकाय च।१७।
निवृत्त्यै धनदेवाय धारायै धारणाय च।
मंत्रैरेतैमहाभूतविग्रहं च सदाशिवम्।१८।
ईशानमुकुट देवं पुरुषास्यं पुरातनम्।
अघोर हृदयं हृष्टं वामगुह्यं महेश्वरम्।१९।
सद्यमूर्ति स्मरेद्देवं सदसद्व्यक्तिकारणम्।
पञ्चवक्त्रं दशभुजमष्टत्रिंशत्कलामयम्।२०।

सद्यमष्टप्रकारेण प्रभिद्य च कलामयम् ।
वामं त्रयोदशाविधैर्विभिद्य वितत प्रभुम् ।२१।
अघोरमष्टधा कृत्वा कलारूपेण संस्थितम् ।
पुरुषं च चतुर्धा वै विभज्य च कलामयम् ।२२।
ईशानं पंचधा कृत्वा पंचमूर्त्या व्यवस्थितम् ।
हंसहंसेति मंत्रेण शिवभक्त्या समन्वितम् ।२३।

शिव सदाशिव और देव महेश्वर इससे भी पर रुद्र विष्णु और विरञ्चि को सर्ग, स्थिति और लय के क्रम से भावना का आधार बनावे ।१५। अब गगन आदि पाँच भूतों के विग्रह का स्तवन करने वाले पाँच मन्त्रों को कहते हैं—रुद्ररूप वाले शिव-शान्त्यतीत शम्भु-शान्त-शात दैत्य चन्द्रमा के लिए नमस्कार है ।१६। वेद्य-विद्या के आधार-वह्नि-वह्नि-वर्चस-काल-प्रतिष्ठा-तारक दैत्य के अन्तक के लिए नमस्कार है ।१७। निवृति-धनदेव-धारा-धारणा-इन मन्त्रों के द्वारा महाभूतविग्रह श्री सदा-शिव ईशान मुकुट, देव, पुरातन, पुरुषास्य अघोर हृदय-हृष्ट-वाम गुह्य-महेश्वर-सद्यमूर्त्ति-देव का स्मरण करना चाहिए जो सत् और असत् व्यक्ति का कारण है, जिसके पाँच मुख हैं-दश भुजाएँ हैं और जो अड़-तीस कलाओं से परिपूर्ण है ।१८।१९।२०। उस सद्य कलामय प्रभु का आठ प्रकार से प्रभेद करे तथा वितत प्रभु वाम को तेरह प्रकारों से विभेदन करे। अघोर को आठ प्रकार से विभिन्न करे जो कि कला रूप से संस्थित है। कलामय पुरुष का चार प्रकारों से प्रभेद करे तथा ईशान को पाँच प्रकार से प्रभिन्न करे जो पाँच मूर्त्तियों में व्यवस्थित रहा करता है। शिव की भक्ति से समन्वित 'हंस-हंस,–इस मन्त्र के द्वारा करे। "हंस हंसाय विघ्नहे परम हंसाय धीमहि। तन्नो हंसः प्रचोदयात्"–यह हंस गायत्री मन्त्र होता है ।२१।२२।२३।

ओंकारमात्रमोंकारमंकारं समरूपिणम् ।
आ ई ऊ ए तथा अंबानुक्रमेणात्मरूपिणम् ।२४।
प्रधानसहितं देवं प्रलयोत्पत्तिवर्जितम् ।
अणोरणीयांसमजं महतोऽपि महत्तमम् ।२५।

उर्ध्वरेतसमीशानं विरूपाक्षमुमापतिम् ।
सहस्त्रशिरसं देवं सहस्त्राक्ष सनातनम् ।२६।
सहस्त्रहस्तचरणं नादांतं नादविग्रहम् ।
खद्योतसदृशाकारं चद्ररेखाकृति प्रभुम् ।२७।
द्वादशांते भ्रुवोर्मध्ये तालुमध्ये गले क्रमात् ।
हृद्देशेऽवस्थितं देवं स्वानदममृतं शिवम् ।२८।
विद्युद्वलयसंकाशं विद्युत्कोटिसमप्रभम् ।
श्यामं रक्तं कलाकारं शक्तित्रयकृतासनम् ।२९।
सदाशिवं स्मरेद्देवं तत्त्वत्रयसमन्वितम् ।
विद्यामूर्तिमय देव पूजयेच्च यथाक्रमात् ।३०।

ओङ्कार मात्र अर्थात् प्रणव से जिसको भीयमान् किया जाता है उसका सो त्राण करता है वह ओङ्कार मात्र ब्रह्म रूप है। अकार मकार सम ब्रह्म तुल्य रूप वाला सम रूपी अर्थात् सगुण रूप वाला है। आ-ई-ऊ और ए-ये चारों वर्ण चतुष्कोश रूप देवता के वाचक हैं। ए-अम्बा है इसी प्रकार के अनुक्रम से देवी-गणेश सूर्य और विष्णु के क्रम से पञ्चाय-तनरूप विग्रह से युक्त हैं। ऐसे आत्मरूपी-प्रलयता उत्पत्ति से रहित प्रधान के सहित देव हैं। जो अणु से भी अणीमान्-अजन्मा-महान् से भी महत्तम-ऊर्ध्वरेता-ईशान विरूपाक्ष-सहस्र शिरों वाले-सहस्र नेत्रों से युक्त-सनातन उमा के पति-सहस्र हाथों और चरणों वाले-अन्त में नाद वाले अर्थात् प्रणव स्वरूप-नाद के द्वारा प्रतिपाद्य विग्रह वाले सूर्य के सदृश आकार वाले एवं चन्द्र के समान आकृति से समन्वित प्रभु को द्वादशान्त परतत्व में भ्रूमों के मध्य में तालु मध्य में-क्रम से गले में और स्वानन्द, अमृत, शिव देव को जो कि हृद्देश में अवस्थित रहते हैं विद्युत के वलय के तुल्य हैं, विद्युत्कोटि के समान प्रभा से युक्त हैं, श्याम-रक्त, कलाकार एवं तीनों शक्तियों का आसन करने वाले और तत्व त्रय से समन्वित देव सदाशिव हैं उनका स्मरण करना चाहिए और यथा-क्रम विद्या की मूर्त्ति से पूर्ण देव की पूजार्चना करनी चाहिए।२४।२५। ।२६।२७।२८।२९।३०।

लोकपालांस्तथास्त्रेण पूर्वाद्यान्पूजयेत् पृथक् ।
चरुं च विधिनासाद्य शिवाय विनिवेदयेत् ।३१।
अर्धं शिवाय दत्त्वैव शेषार्धेन तु होमयेत् ।
अघोरेणाथ शिष्याय दापयेद्भोक्तुमुत्तमम् ।३२।
उपस्पृश्य शुचिर्भूत्वा पुरुष विधिना यजेत् ।
पंचगव्यं ततः प्राश्य ईशानेनाभिमंत्रितम् ।३३।
वामदेवेन भस्मांगी भस्मनोद्धूलयेत्क्रमाम् ।
कर्णयोश्च जपेद्देवीं गायत्री रुद्र देवताम् ।३४।
ससूत्रं सपिधानं च वस्त्रयुग्मेन वेष्टितम् ।
तत्पूर्व हेमरत्नौघैर्वासित वै हिरण्मयम् ।३५।
कलशान्विन्यसेत्पंच पंचभिर्ब्राह्मणैस्तलः ।
होमं च चरुणा कुर्याद्यथाविभवविस्तरम् ।३६।
शिष्यं च वासयेद्भक्तं दक्षिणे मंडलस्य तु ।
दर्भशय्यासमारूढं शिवध्यानपरायणम् ।३७।
अघोरेण यथान्यायमष्टोत्तरशतं पुनः ।
घृतेन हुत्वा दुःस्वप्नं प्रभाते शोधयेन्मलम् ।३८।

अस्त्रों से युक्त पूर्वाद्य इन्द्रादि लोक पालों का पृथक् पूजन करे और चरु प्राप्त करके विधि के सहित शिव को समर्पित करना चाहिए ।३१। आधा चरु का भाग तो शिव को निवेदित करे तथा शेषार्थ भाग से होम करना चाहिए। होम के अनन्तर जो हुत शेष चरु हो उसे शिष्य को भोजन करने के लिए दिला देना चाहिए ।३२। उपस्पर्शन करके तथा पूर्णतया शुचि होकर विधि विधान से पुरुष का यजन करना चाहिए । ईशान मन्त्र से अभिमन्त्रित करके पंचगव्य का प्राशन करे ।३३। वाम देव मन्त्र से भस्म पूर्ण अङ्गों वाला बनें और क्रम से भस्म से उद्धूलित करना चाहिए और कानों में रुद्र देवता वाली गायत्री देवी का जाप करे ।३४। होम के पूर्व किये जाने वाले कृत्य बतलाते हैं सूत्र से युक्त तथा ढक्कन के सहित वस्त्र युग्म से भली-भाँति एवं इसके पूर्व हेम-रत्नों के समूह से वासित हिरण्मय पाँच कलशों को विन्यास करे। अपने

वैभव के विस्तार के अनुसार पाँच ब्राह्मणों के द्वारा चरु से होम करना चाहिए ।३५।३६। मण्डल के दक्षिण भाग से शिष्य का स्वायन करे। वह शिष्य परम भक्त और शिव के ध्यान में परायण होना चाहिए। उसे दर्भों की शय्या निर्मित कर उस पर समारूढ़ करे। प्रातःकाल में अघोर मन्त्र के द्वारा घृत से एक सौ आठ बार आहूतियाँ देकर दुःस्वप्न मल का शोधन करे ।३७।३८।

एवं चोपोषितं शिष्य स्नातं भूषितविग्रहम् ।
नववस्त्रोत्तरीयं च सोष्णीषं कृतमंगलम् । ६।
दुकूलाद्येन वस्त्रेण नेत्रं बद्धा प्रवेशयेत् ।
सुवर्णपुष्पसंमिश्रं यथाविभवविस्तरम् ।४०।
ईशानेन च मंत्रेण कुर्यात्पुष्पांजलिं प्रभोः ।
प्रदक्षिणात्रयं कृत्वा रुद्राध्यायेन वा पुनः ।४१।
केवलं प्रणवेनाथ शिवध्यानपरायणः ।
ध्यात्वा तु देवदेवेशमीशाने संक्षिपेत्स्वयम् ।४२।
यस्मिन्मंत्रे पतेत्पुष्पं तन्मंत्रस्तस्य सिध्यति ।
शिवांभसा तु संस्पृश्य अघोरेण च भस्मना ।४३।
शिष्यमूर्धनि विन्यस्य गंधाद्यैः शिष्यमर्चयेत् ।
वारुणं परमं श्रेष्ठं द्वारं वै सर्ववर्णिनाम् ।४४।
क्षत्रियाणां विशेषेण द्वारं वै पश्चिमं स्मृतम् ।
नेत्रावरणमुन्मुच्य मंडलं दर्शयेत्ततः ।४५।

इस प्रकार से जो उपोषित शिष्य है उसको स्नान कराकर तथा उसके शरीर भूषित कराके, नवीन वस्त्र और उत्तरीय से युक्त एवं उष्णीष (शिरो वस्त्र) के सहित मङ्गल किये जाने वाले शिष्य के दुकूलादि वस्त्र से नेत्र बाँधकर प्रवेश करना चाहिए। फिर अपनी धन की शक्ति के अनुसार सुवर्ण से युक्त पुष्प ग्रहण कर ईशान मन्त्र के द्वारा प्रभु को पुष्पाजलि समर्पित करे ! फिर रुद्राध्याय के द्वारा तीन परिक्रमा करे ।३६।४०।४१। शिव के ध्यान में पूर्णतया परायण होकर केवल प्रणव से ही स्वयं देवों के देव का ध्यान करे और ईशान में

संक्षिप्त करे।४२। मन्त्र की सिद्धि के अनुमायक के विषय में कहते हैं कि जिस मन्त्र में पुष्प का पात हो जावे वही मन्त्र उसको सिद्ध हो जाता है। मङ्गलादेक और अघोर भस्म से संस्पर्श करके शिष्य के मस्तक पर अपने हाथ को रखकर गन्धादि प्रमुख पूजनोपचारों के द्वारा शिष्य का समर्चन करे। प्रवेश द्वार के विषय में बताते हैं कि समस्त वर्ण वालों के लिए वरुण द्वार परम श्रेष्ठ होता है।४३।४४। क्षत्रियों के लिये विशेष रूप से पश्चिम द्वारा बताया गया है। नेत्रों को जो वस्त्र से आवृत किया था उसे आवरण के वस्त्र को हटाकर मण्डल का दर्शन कर देना चाहिए।४५।

कुशासने संस्थाप्य दक्षिणामूर्त्तिमास्थितः।
तत्त्वशुद्धि ततः कुर्यात्पंचतत्वप्रकारतः।४६।
निवृत्या रुद्र पर्यंतमंडमंडोद्भवात्मज।
प्रतिष्ठया तदूर्ध्वं च यावदव्यक्तगोचरम्।४७।
विश्वेश्वरांतं वै विद्या कलामात्रेण सुव्रत।
तदूर्ध्वमार्गं संशोध्य शिवभक्त्या शिवं नयेत्।४८।
समर्चनाय तत्वस्य तस्य भोगेश्वरस्य वै।
तत्त्वत्रयप्रभेदेन चतुर्भिरुत वा तथा।४९।
होमयेदंग मत्रेण शांत्यतीतं सदाशिवम्।
सद्यादिभिस्तु शांत्यंतं चतुर्भिः कलया पृथक्।५०।
शांत्यतीतं मुनिश्रेष्ठ ईशानेनाथवा पुनः।
प्रत्येक मष्टोत्तरशतं दिशाहोमं तु कारयेत्।५१।
ईशान्यां पंचमेनाथ प्रधानं परिगीयते।
समिदाज्यचरूँल्लाजान्सर्षपांश्च य वांस्तिलान्।५२।
द्रव्याणि सप्त होतव्यं स्वाहांत प्रेणवादिकम्।
तेषां पूर्णाहुतिर्विप्र ईशानेन विधीयते।३।

दक्षिणा मूर्त्ति संज्ञा वाले शिव के ध्यान में समास्थित होकर कुशा के आसन पर शिष्य को सन्निवेशित करके फिर पंच तत्त्वों के प्रकार से तत्त्व शुद्धि करे।४६। पार्थिवादि लय पर्यन्त क्रम से अहङ्कारा वि

वाले रुद्र पर्यन्त हे ब्रह्माण्डोद्भव के आत्मज ! निवृत्ति द्वारा तथा अहङ्कार के ऊपर प्रकृति पर्यन्त स्थिति के द्वारा हे सुव्रत ! ज्ञान की कला की पूर्णता से पुरुष पर्यन्त ज्ञान प्राप्त करके उसके भी ऊपर भगवान् शिव के प्राप्ति पथ को शिव की भक्ति के द्वारा ही संशोधित करके अर्थात् शिव की परम भक्ति से निरावरण कराके तुरीय शिव की प्राप्ति शिष्य को करानी चाहिए ।४७।४८। योगेश्वर उससे तत्व की समंचना के लिए पुरुष प्रकृति और ईश के तत्व त्रय के क्रम से अथवा अहङ्काराद्वि चारों के द्वारा शान्त्यतीत सद्यादि चार के द्वारा शान्त्यन्त सदाशिव का हे मुनिश्रेष्ठ ! ईशान मन्त्र से होम करे । फिर प्रत्येक दिग्देवता का अष्टोत्तरशत दिशा हाम करना चाहिए ।४९।५०।५१। ईशान दिशा में पञ्चम ईशान मन्त्र से प्रधान याग परिगीत किया जाता है । समिधा-घृत-चरु-लाजा-सर्षप-यव-तिल इन सात द्रव्यों का आदि में प्रणव तथा अन्त में स्वाहा के द्वारा हवन करना चाहिए । हे विप्र ! उनकी पूर्णाहुति ईशान मन्त्र के द्वारा ही की जाती है ।५२।५३।

सहंसेन यथान्यायं प्रणवाद्येन सुव्रत ।
अघोरेण च मंत्रेण प्रायश्चित्तं विधीयते ।५४।
जयादिस्विष्टपर्यंतमग्निकार्यं क्रमेण तु ।
गुण संख्याप्रकारेण प्रधानेन च योजयेत् ।५५।
भूतानि ब्रह्मभिर्वापि मौनी बीजादिभिस्तथा ।
अथ प्रधानमात्रेण प्राणापानौ नियम्य च ।५६।
षष्ठेन भेदयेदात्मप्रणवांतं कुलाकुलम् ।
अन्योऽन्यमुपसंहृत्य ब्रह्माणं केशवं हरम् ।५७।
रुद्रे रुद्रं तमीशाये शिवे देवं महेश्वरम् ।
तस्मात्सृष्टिप्रकारेण भावयेद्भवनाशनम् ।५८।
स्थाप्यात्मानममुं जीवं ताडनं द्वारदर्शनम् ।
दीपनं ग्रहणं चैव बंधन पूजया सह ।५९।
अमृतीकरण चैव कारयेद्विधिपूर्वकम् ।
षष्ठांतं सद्यसंयुक्तं तृतीयेन समन्वितम् ।६०।

डंत संहृतिः प्रोक्ता पंचभूतप्रकारतः ।
साद्याद्य षष्ठसहित शिखांतं सफडंतकम् ।६१।
ताडनं कथितं द्वार तत्त्वानामपि योगिनः ।
प्रधान सपुटीकृत्य तृतीयेन च दीपनम् ।६२।

हे सुव्रत ! आदि में प्रणव लगाकर हंस गायत्री मन्त्र के सहित अघोर मन्त्र से प्रायश्चित्त किया जाता है ।५४। जयाभ्यातानादि होम से युक्त स्विष्ट कृत के अन्त तक अग्नि का कार्य क्रम तीन प्रकार से और पूर्वोक्त प्रधान होम से युक्त करना चाहिए ।५५। अब दीक्षा विधि का उपसंहार बताया जाता है । गुरु को मौन से युक्त होकर पृथिवी आदि भूतों को सद्योजातादि मन्त्र के द्वारा केवल ईशान मन्त्र से त्राणायानों को नियमित करके षष्ठ "नमोहिरण्य वाहवे"—इस मन्त्र से आत्म वाचक गणाव के अन्त नाद से व्याप्त ब्रह्मरन्ध्र का भेदन करना चाहिए । ब्रह्मा केशव और हर का अन्योन्य उपसंहार करे । संहार मूर्त्ति रुद्र को रुद्र में, महेश्वर देव को ईशान शिव में सृष्टि के प्रकार से भाव नाशन रुद्र का चिन्तन करना चाहिये ।५६।५७।५८। इस शिष्य जीव को रुद्र संस्थापित करके ताड़न द्वार दर्शन दीपन ग्रहण पूजा के साथ बन्धन और अमृती करण शिष्य के द्वारा विधि पूर्वक कराना चाहिये । उपसंहृति का प्रकार बतलाते हुये कहते हैं कि सद्य संज्ञा वाले मन्त्र का आद्य जो कि तृतीय अघोर मन्त्र समन्वित है फट् जिसके अन्त में होता है इस प्रकार कीपृथिवी आदि पञ्च भूत प्रकार से संहृति कही गई है । योगी-जन दीक्षा के योग वाले आदि में रहने वाले सद्य षष्ठ के सहित शिखान्त और सफडन्तक ताड़न एवं तत्वों का द्वार भी कहा गया है । तीसरे अघोर मन्त्र से सम्पुटित करके प्रधान ईशान मन्त्र ही दीपन कहा गया है ।५९।६०।६१।६२।

आद्येन संपुटीकृत्य प्रधानं ग्रहणं स्मृतम् ।
प्रधानं प्रथमेनैव संपुटीकृत्य पूर्ववत् ।६३।
बंधन परिपूर्णेन प्लावनं च मृतेन च ।
शांत्यतीता ततः शान्ति विद्या नाम कलामला ।६४।

प्रतिष्ठा च निवृत्तिश्च कलासंक्रमणं स्मृता ।
तत्ववर्णकलायुक्तं भुवनेन यथाक्रमम् ।६५।
मंत्रैः पादैः स्तवं कुर्यादिशोध्य च यथाविधि ।
आद्येन योनिबीजेन कल्पयित्वा च पूर्ववत् ।६६।
पूजासंप्रोक्षण विद्धि ताडनं हरणं तथा ।
संहृतस्य च संयोगं विक्षेपं च यथाक्रमम् ।६७।
अर्चना च तथा गर्भधारणं जननं पुनः ।
अधिकारो भवेद्भानोर्लयश्चैव विशेषतः ।६८।
उत्तमाद्यं तथांत्येन योनिबीजेन सुव्रत ।
उद्धारे प्रोक्षणे चैव ताडने च महामुने ।६९।
अघोरेण फडंतेन संसृतिश्च न संशयः ।
प्रतितत्त्वं क्रमो ह्येष योग मार्गेण सुव्रतः ।७०।

आद्य सद्य मन्त्र से सम्पुटी करण करके प्रधान मन्त्र जो होता है वही ग्रहण कहा जाता है । जहाँ पूर्व की भाँति ही प्रथम मन्त्र से ही प्रधान का सम्पुटी करण होता है वहाँ बन्धन होता हो जाता है और समग्र अमृत से त्र्यम्बक मन्त्र से प्लावन एवं अमृती करण होता है । इस पूर्वोक्त विधि के अनन्तर शान्त्यतीता प्रतिष्ठा नाम कला अमला विद्या है और शान्ति निवृत्ति नाम कला बताई गई है । प्रतिष्ठा और निवृत्ति कला संक्रमण कहा गया है । तत्त्व वर्ण कला अर्थात् आकार से आदि लेकर विसर्ग के अन्त तक षोड़श को भुवनाष्टक के साथ यथाक्रम पूर्वोक्त कलाओं का संक्रमण करना चाहिये ।६३।६४।६५। पादों से अर्थात् शिव के प्रतिपादकों मन्त्रों से विशोधन करके विधि के अनुसार स्तवन करे और इसके पूर्व 'ह्रीं' इस योनि बीज से पूर्व की तरह कल्पना कर लेवे ।६६। पूजा-सम्प्रोक्षण-ताड़न-हरण-अत्यन्त शुद्ध मन का संयोग और यथाक्रम विक्षेप-अर्चना वागीशी गर्भ में स्थापन और पुनः जनन भानु का अधिकार और विशेष रूप से तत्सदृश ज्ञान निवारक तथा अविद्या नाश होता है—ऐसा जानो ।६७।६८। हे सुव्रत ! हे महामुने ! हे सनत्कुमार ! जिसमें उत्तम ईशान मन्त्र अन्तिम योनि बीज के साथ हो

उसे उद्धार प्रोक्षण और ताड़न में जानना चाहिए। अघोर फडन्त से संसृति होती है—इसमें संशय नहीं है यह योग मार्ग से प्रति तत्व क्रम होता है ।६९।७०।

मुष्टिना चैव यावच्च तावत्कालं नयेत्क्रमात् ।
विषुवेण तु योगेन निवृत्त्यादि शिवांतिकम् ।७१।
एकत्र समतां याति नान्यथा तु पृथक् पृथक् ।
नासाग्रे द्वादशांतेन पृष्ठेन सह योगिनाम् ।७२।
क्षांतव्यमिति विप्रेंद्र देवदेवस्य शासनम् ।
हेमराजतताम्राद्यैर्विधिना कल्पितेन च ।७३।
सकूर्चेन सवस्त्रेण तंतुना वेष्टितेन च ।
तीर्थांबुपूरितेनैव रत्नगर्भेण सुव्रत ।७४।
संहितामंत्रितेनैव रुद्राध्यायस्तुतेन च ।
सेचयेच्च ततः शिष्यं शिवभक्तं च धार्मिकम् ।७५।
सोऽपि शिष्यः शिवस्याग्रे गुरोरग्रे च सादरम् ।
वह्नेश्च दीक्षां कुर्वीत दीक्षितश्च तथाचरेत् ।७६।
वरं प्राणपरित्यागश्छेदनं शिरसोऽपि वा ।
न त्वनभ्यर्च्य भुंजीयाद्भगवतं सदाशिवम् ।७७।

मुष्टि से अर्थात् तत्सदृश प्राणायाम से जब तक स्थित रहे उतने काल पर्यन्त विषुव योग से निवृत्ति आदि शिवान्तिक को प्राप्त करना चाहिए ।७१। एक ही स्थान में तुल्यता को प्राप्त होता है पृथक् २ अन्य स्थानों में नहीं होता है। नासिका के अग्रभाग में योनियों के चरमावयव भूत द्वादशान्त परम तत्व शिव के साथ समता के प्राप्त करने को तुल्यता प्राप्ति कहा गया है ।७२। हे विप्रेन्द्र ! सुख दुःखादि के द्वन्द्व को दीक्षित के द्वारा सहन करना चाहिए-यह देवों के देव भगवान् शिव का नियोग है। अब शिष्य की दीक्षाभिषेक की विधि को बतलाते हैं—सुवर्ण चाँदी अथवा ताम्रादि धातु में विधिपूर्वक निर्मित पात्र हो जो कि कूर्च के सहित एवं वस्त्र से युक्त होना चाहिये तथा तन्तु से वेष्टित भी होवे। जिसके मध्य में रत्न हों और तीर्थों के जल से परिपूर्ण किया जावे। संहिता के मन्त्रों से अभिमन्त्रित और रुद्राध्याय के द्वारा संतुत करके उस

पात्र से शिव के भक्त परम धार्मिक शिष्य का सेचन करना चाहिए ।७३। ७४।७५। वह शिष्य भी भगवान् शिव के आगे-गुरु और वह्नि के आगे आदर के सहित दीक्षा ग्रहण करे और फिर दीक्षित होकर उसी प्रकार का आचरण भी करे ।७६। प्राणों को त्याग करना पड़े तो वह अधिक उत्तम है और मस्तक का छेदन भी होता हो तो उसे भी स्वीकार कर लेना ज्यादा अच्छा है किन्तु भगवान् शिव की अभ्यर्चना करने के पूर्व भोजन करना उचित नहीं है अर्थात् बिना शिव के पूजन किए कभी भोजन नहीं करना चाहिए ।७७।

एवं दीक्षा प्रकर्तव्या पूजा चौव यथाक्रमम् ।
त्रिकालमेककालं वा पूजयेत्परमेश्वरम् ।७८।
अग्निहोत्रं च वेदाश्च यज्ञाश्च बहुदक्षिणाः ।
शिवलिंगार्चनस्यैते कलांशेनापि नो समाः ।७९।
सदा यजति यज्ञेन सदा दानं प्रयच्छति ।
सदा च वायुभक्षश्च सकृद्योऽभ्यर्चयेच्छिवम् ।८०।
एककालं द्विकालं वा त्रिकाल नित्यमेव वा ।
येऽर्चयंति महादेवं ते रुद्रा नात्र संशयः ।८१।
नारुद्रस्तु स्पृशेद्रुद्र नारुद्रो रुद्रमर्चयेत् ।
नारुद्रः कीर्तयेद्रुद्रं नारुद्रो रुद्रमाप्नुयात् ।८२।
एवं संक्षेपतः प्रोक्तो ह्यधिकारिविधिक्रमः ।
शिवार्चनार्थं धमार्थकाममोक्षफलप्रदः ।८३।

इसी प्रकार से दीक्षा करनी चाहिये और क्रम के अनुसार पूजा भी करनी चाहिए । परमेश्वर का पूजन प्रतिदिन तीन बार अथवा एक ही समय में अवश्य ही पूजन करना चाहिए ।७८। अग्निहोत्र-वेद-यज्ञ जिनमें कि बहुत अधिक दक्षिणा दी जाती है–ये सभी भगवान् शिव के लिंग की अर्चना के एक कलांश को भी समता नहीं कर सकते हैं ।७९। जो भक्त एक बार भी शिव लिंग की अर्चना करता है वह सदा ही यज्ञ का यजन किया करता है—शिव पूजन सर्वदा ही दान दिया करता है और वह सदा वायु का भक्षण करने वाला ही होता है ।८०। एक समय में-

दो काल में तथा तीनों कालों में नित्य ही जो महादेव की अर्चना किया करते हैं वे साक्षात् रुद्र ही होते हैं–इसमें तनिक भी संशय नहीं है ।८१। जो रुद्र से भिन्न है वह कभी रुद्र का स्पर्श नहीं किया करता है और अरुद्र कभी रुद्र की अर्चना भी नहीं करता है। अरुद्र रुद्र का कभी कीर्त्तन नहीं करता है और जो रुद्र नहीं है वह रुद्र की प्राप्ति भी नहीं करता है ।८२। इस प्रकार से यह संक्षेप में अधिकारी और विधि का क्रम बता दिया गया है जो कि शिव की अर्चना करने के लिए है और धर्म अर्थ काम तथा मोक्ष का प्रदान करने वाला है ।८३।

॥९१–सौर स्नान विधि निरूपण ॥

स्नानयागादिकर्माणि कृत्वा वै भास्करस्य च ।
शिवस्नानं ततः कुर्याद्भस्मस्नानं शिवार्चनम् ।१।
षष्ठेन मृदमादाय भक्त्या भूमौ न्यसेन्मृदम् ।
द्वितीयेन तथाभ्युक्ष्य तृतीयेन च शोधयेत् ।२।
चतुर्थेनैव विभजेन्मलमेकेन शोधयेत् ।
स्नात्वा षष्ठेन तच्छेषां मृदं हस्तगतां पुनः ।३।
त्रिधा विभज्य सर्वं च चतुर्भिमध्यमं पुनः ।
षष्ठेन सप्तवाराणि वामं मूलेन चालभेत् ।
दशवारं च षष्ठेन दिशो बंधः प्रकीर्त्तितः ।४।
वामेन तीर्थं सव्येन शरीरमनुलिप्य च ।
स्नात्वा सर्वैः स्मरन् भानुमभिषेकं समाचरेत् ।५।
श्रृंगेण पर्णपुटकैः पालाशेन दलेन वा ।
सौरै रेभिश्च विविधैः सर्वसिद्धिकरैः शुभैः ।६।
सौराणि ज प्रवक्ष्यामि वाष्कलाद्यानि सुव्रत ।
अङ्गानि सर्वदेवेषु सारभूतानि सर्वतः ।७।
ॐ भूः ॐ भुवः ॐ स्वः ॐ महः ॐ जनः ॐ तपः
ॐ सत्यम् ॐ ऋतम् ॐ ब्रह्म ।
नवाक्षरमयं मंत्र बाष्कलं परिकीर्तितम् ।

न क्षरतीति लोकानि ऋतमक्षरमुच्यते ।
सत्यमक्षरभित्युक्तं प्रणवादिनमोंतकम् ।८।

(सौर स्नान विधि निरूपण)—इस अध्याय में यथा विधि सौर स्नान और वाष्कलादि मनुष्यों के द्वारा भास्कर भगवान् की अर्चा का निरूपण किया जाता है–शैलादि ने कहा—शिव के अर्चन करने का अधिकार तभी प्राप्त होता है जब पहिले भगवान् भास्कर का अर्चन मानव पूर्ण कर लिया करता है । अतएव भास्कर का याग-स्नान आदि कर्मों को करके ही फिर शिव स्नान-भस्म स्नान और शिवार्चन आदि करे ।१। सौर स्नान की विधि को बताते हुए कहते हैं षष्ठ मन्त्र से (ओम् तपः) मिट्टी लेकर भक्ति से उसे भूमि में स्थापित करे । द्वितीय 'ॐ भुवः'—इस मन्त्र से अभ्युक्षण करके फिर तृतीय 'ॐ स्वः' इस मन्त्र से शोधन करना चाहिए । ।२। फिर चौथे 'ॐ महः' इस मन्त्र से मल का विभाजन करे और प्रथम 'ॐ भूः'—इस मन्त्र के द्वारा शोधन करना चाहिए । फिर छटे 'ॐ तपः'—इस मन्त्र से स्नान करके उस शेष मृत्तिका को पुनः हाथ में लेकर तीन बार विभाग करके फिर चारों मन्त्रों से मध्यम को विभक्त करे । छटे मन्त्र के द्वारा सात वार बाँये हाथ को मूल मन्त्र से आलभन करे और दश वार छटे मन्त्र से दिशाओं का बन्ध बताया गया है ।३।४। वाम से तीर्थ का आलभन करके फिर सव्य अर्थात् दाहिने हाथ से शरीर का अनुलोपन करे और स्नान करके समस्त मन्त्रों के द्वारा भगवान् सूर्य का स्मरण करते हुए तीर्थ जल का अभिषेक नरना चाहिए ।५। शृङ्ग से यत्तों के पुटकों के द्वारा अथवा पलाश के दल से अभिषेक करना चाहिए । फिर इन विविध 'ॐ भूः भुवः' इत्यादि परम शुभ तथा समस्त सिद्धियों के करने वाले मन्त्रों के द्वारा अभिषेक करे ।६। हे सुव्रत ! समस्त देवों में परम सार भूत वाष्कलादि अङ्गों को मैं बताऊँगा ।७। ॐ भूः-ॐ भुवः ॐ स्वः ॐ महः-ॐ जनः-ॐ तपः ॐ सत्यम् ॐ ऋतम्-ॐ ब्रह्म-ये नवाक्षर मन्त्र वाष्कल कहे गये हैं । इसकी यौगिकाक्षर संज्ञा बताते हैं—सात लोक प्रलह की अवधि तक क्षरित अर्थात् नष्ट नहीं होते हैं और ऋत अर्थात् अक्षर कहा जाता है।

प्रणव से आदि लेकर नमः—इसके अन्त तक सत्य अक्षर कहा गया है ।८।

ॐ भूर्भुवः सुवः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि ।
धिया यो नः प्रचोदयात् ।
ॐ नमः सूर्याय खखोल्काय नमः ।९।
मूलमंत्रमिदं प्रोक्तं भास्करस्य महात्मनः ।
नवाक्षरेण दीप्तास्यं मूलमंत्रेण भास्करम् ।१०।
पूजयेदगमंत्राणि कथयामि यथाक्रमम् ।
वेदादिभिः प्रभूताद्यं प्रणवेन च मध्यमम् ।११।
ॐ भूः ब्रह्म हृदयाय ॐ भुवः विष्णुशिरसेॐस्वःरुद्रशिखायं
ॐभूर्भुवः स्वः ज्वाला मालिनीशिखायै ॐ महः महेश्वराय
कवचाय ॐजनः शिवाय नेत्रेभ्य ॐतपःतापकायअस्त्राय फट् ।
मंत्राणि कथितान्येवं सौराणि विविधानि च ।
एतैः शृङ्गादिभिः पात्रैः स्वात्मानमभिषेचयेत् ।१२।
ताम्रकुंभेन वा विप्रः क्षत्रियो वैश्यो एव च ।
सकुशेन सपुष्पेण मंत्रैः सर्वैः समाहितः ।१३।
रक्तवस्त्रारीधानः स्वाचामेद्विधिपूर्वकम् ।
सूर्यश्चेति दिवा रात्रौ चाग्निश्चेति द्विजोत्तमः ।१४।

अब मूल मन्त्र बताते हैं—'ॐ भूर्भुवः सुवः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि । धियो यो नः प्रचोदयात् । ॐ नमः सूर्याय खखोल्काय नमः' ।९। यह भगवान् भास्कर का मूल मन्त्र बताया गया है । इस नवाक्षर मूल मन्त्र से दीप्त मुख वाले महात्मा भास्कर का पूजन करना चाहिए अब अङ्ग मात्रों का क्रम के अनुसार कहता हूँ जो कि प्रणव से अभूत आद्य वाला और वेदादि व्याहृतियों से मध्यम है ।१०।११। सात अङ्ग मन्त्र ये होते हैं—ॐ भूः ब्रह्म हृदयाय-ॐ भुवः विष्णु शिरसे-ॐ स्व. रुद्र शिखायै ॐ भूर्भुवः स्वः ज्वाला मालिनी शिखायै-ॐ महः महेश्वराय कवचाय ॐ जनः शिवाय नेत्रेभ्यः-ॐ तापकाय अस्त्राव फट् । ये सौर विविध मन्त्र बता दिये गये हैं । इन मन्त्रों से शृङ्गादि पात्रों के द्वारा स्वात्मा का अभिषेचन करना चाहिये ।१२। विप्र-क्षत्रिय और वैश्य ही

अर्थात् शूद्रादि को छोड़कर कुशों और पुष्पों के सहित अथवा ताम्र कुम्भ से समाहित होकर इन समस्त मन्त्रों से अभिषेक करें।१३। रक्त वर्ण के वस्त्र का परिधान करने वाला द्विजोत्तम 'सूर्यश्च'–इत्यादि मन्त्र से दिन में और 'अग्निश्च'—इत्यादि मन्त्र से सायङ्काल में विधि पूर्वक आचमन करे।१४।

आपः पुनंतु मध्यान्हे मंत्राचमनमुच्यते ।
षष्ठेन शुद्धि कृत्वैव जपेदाद्यमनुत्तमम् ।१५।
वौषडंतं तथा मूलं नवाक्षरमनुत्तमम् ।
करशाखा तथांगुष्ठमध्यमानामिकां न्यसेत् ।१६।
तले च तर्जन्यंगुष्ठं मुष्टिभागानि विन्यसेत् ।
नवाक्षरमयं देहं कृत्वांगैरपि पावितम् ।१७।
सूर्योऽहमिति संचित्य मंत्रै रेतैर्यथाक्रमम् ।
वामहस्तगतैरद्भिर्गंधसिद्धार्थकान्वितैः ।१८।
कुशपुंजेन चाभ्युक्ष्य मूलाग्रै रष्टधा स्थितैः ।
आपो हिष्ठादिभिश्चैव शेषमाघ्राय वै जलम् ।१९।
वामनासापुटेनैव देहे संभावयेच्छिवम् ।
अर्घ्यमादाय देहस्थं सव्यनासापुटेन च ।२०।
कृष्णवर्णेन बाह्यस्थं भावयेच्च शिला गतम् ।
तर्पयेत्सर्वदेवेभ्य ऋषिभ्यश्च विशेषतः ।२१।
भूतेभ्यश्च पितृभ्यश्च विधिनार्घ्यं च दापयेत् ।
व्यापिनीं च परां ज्योत्स्नां संध्यां सम्यगुपासयेत् ।२२।

मध्यान्ह के समय में 'आपः पुनन्तु'—इत्यादि मन्त्र के द्वारा आचमन करना बताया जाता है। षष्ठ मन्त्र से शुद्धि करके ही आद्य सर्वोत्तम वौषडन्त नवाक्षर मन्त्र का एक प्रहर तक जाप करना चाहिए।१५। कर न्यास बताते हुए कहते हैं–कर की शाखायें जो अंगुष्ठ-मध्यमा-अनामिका तर्जनी तल और मुष्ठि भाग हैं उनमें विन्यास करना चाहिए। यह देह नवाक्षर मय है- ऐसा करके पूर्वोक्त अङ्ग मन्त्रों के द्वारा पावित्त करना चाहिए।१६।१७। मैं स्वयं सूर्य हूँ ऐसा चिन्तन करके इन

मन्त्रों के द्वारा यथाक्रम से गन्ध और सिद्धार्थक से युक्त वाँये हाथ में रहने वाले जल से कुश पुंज के द्वारा मूलाग्र आठ प्रकार से स्थित 'आयोदिष्ठा मयो भुवः' –इत्यादि मन्त्रों से अभ्युक्षण करे और शेष जल को वाम नासा पुट से सूँघकर देह में शिव का चिन्तन करना चाहिये। उस आघ्राण जल को लेकर जो कि अपने देह में स्थित अज्ञान है उसे कृष्ण वर्ण वाले ष्ठाय पुरुष के सहित नाम नासिका के पुट के द्वारा वाह्यस्थ करके शिलागत होने की भावना करनी चाहिए। फिर सम्पूर्ण देवों का तथा विशेष रूप से ऋषियों का तर्पण करना चाहिए ।१८। ।१६।२०।२१। भूतों के लिए और पितृगण के लिए विधि के साथ अर्घ्य देना चाहिए। फिर परा व्यापिनी ज्योत्स्ना सन्ध्या की भली-भाँति उपासना करे ।२२।

प्रातर्मध्याह्नसायाह्ने अर्घ्यं चैव निवेदयेत् ।
रक्तचंदनतोयेन हस्तमात्रेण मंडलम् ।२३।
सुवृत्तं कल्पयेद्भूमौ प्रार्थयेत द्विजोत्तमाः ।
प्राङ्मुखस्ताम्रपात्रं च सगंध प्रस्थपूरितम् ।२४।
पूरयेद्गंधतोयेन रक्तचंदनकेन च ।
रक्तपुष्पैस्तिलैश्चैव कुशाक्षतसमन्वितैः ।२५।
दूर्वापामार्गगव्येन केवलेन घृतेन च ।
आपूर्य मूलमंत्रेण नवाक्षरमयेन च ।
जानुभ्यां धरणीं गत्वा देवदेवं नमस्य च ।२६।
कृत्वा शिरसि तत्पात्रमर्घ्यं मूलेन दापयेत्
अश्वमेधायुतं कृत्वा यत्फलं परिकीर्तितम् ।२७।
तत्फलं लभते दत्त्वा सौरार्घ्यं सर्वसमंतम् ।
दत्त्वैवार्घ्यं यजेद्भक्त्या देवदेवं त्रियंबकम् ।२८।

प्रतिदिन तीन बार प्रातःकाल-मध्याह्न और सायङ्काल में अर्घ्य समर्पित करना चाहिए। अब सौर अर्घ्य की विधि बतलाते हुए कहते हैं कि भूतों से रक्त चन्दन के जल से एक हाथ भर के प्रणाम वाला सुवृत्त मण्डल की कल्पना करे और प्रार्थना करनी चाहिए। पूर्व की ओर मुख

करके स्थित हो प्रस्थ पूरित गन्ध से युक्त ताम्रपात्र को रक्त चन्दन वाले गन्ध जल से पूरित कर देवे । उसमें रक्त वर्ण के पुष्प-तिल-कुश-अक्षत-दूर्वा-अपामार्ग-गव्य अथवा केवल घृत से ही भरकर रक्खे । इसकी पूर्त्ति नवाक्षर मय मूल मन्त्र से करे । घुटनों को पृथ्वी पर टेककर देवों के देव को नमस्कार करके शिर पर उस पात्र को करके मूल मन्त्र के द्वारा अर्घ्य देना चाहिये । इसका फल एक अयुत अश्वमेध के समान बताया गया है ।२३।२४।२५।२६।२७। अयुत (दश सहस्र) अश्व-मेध यज्ञों के तुल्य ही सौर अर्घ्य का सर्व समस्त फल देने वाला प्राप्त किया करता है । इस अर्घ्य को देकर फिर भक्ति भाव के साथ भगवान् देवदेव त्र्यम्बक का यजन करना चाहिए ।२८।

अथवा भास्करं चेष्ट्वा आग्नेय स्नानमाचरेत् ।
पूर्ववद्धै शिवस्नानं मंत्रमात्रेण भेदितम् ।२९।
दतधावनपूर्वं च स्नानं सौरं च शांकरम् ।
विघ्नेशं वरुणं चैव गुरुं तीर्थे समर्चयेत् ।३०।
बद्धा पद्मासनं तीर्थे तथा तीर्थं समर्चयेत् ।
तीर्थं संगृह्य विधिना पूजास्थानं प्रविश्य च ।३१।
मार्गेणार्घ्य पवित्रेण तदाक्रम्य च पादुकम् ।
पूर्ववत्करविन्यासं देहविन्यासमाचरेत् ।३२।
अर्घ्यस्य सादनं चैव समासात्परिकीर्तितम् ।
बद्धा पद्मासनं योगी प्राणायामं समभ्यसेत् ।३३।
रक्तपुष्पाणि संगृह्य कमलाद्यानि भावयेत् ।
आत्मनो दक्षिणे स्थाप्य जलभांडं च वामतः ।३४।
ताम्रपात्राणि सौराणि सर्वकामार्थसिद्धये ।
अर्घ्यपात्र समादाय प्रक्षाल्य च यथाविधि ।३५।

भास्कर की समार्चना के अनन्तर सबसे पूर्व शिवार्चन करना चाहिए और उसके लिए शिव स्नान करे । उसी स्नान की विधि बताते हुये कहा जाता है कि सूर्य का यजन करके आग्नेय स्नान करे । सौर स्नान की भाँति ही शिव स्नान भी मन्त्र द्वारा पूर्ववत् होता है केवल मन्त्रों का

ही भेद होता है ।२६। पूर्व में दन्त धावन आदि शारीरिक कृत्य समाप्त करके सौर तथा फिर शाङ्कर स्नान करना चाहिए । विघ्नों के स्वामी गणेश-वरुण और गुरु का अर्चन तीर्थ में करे ।३०। तीर्थ में पद्मासन बाँधकर स्थित हो जावे और फिर तीर्थ की अर्चना करनी चाहिए। विधि के साथ तीर्थ का संगृह करे और फिर पूजा के स्थान में प्रवेश करना चाहिए ।३१। अर्घ्य से पवित्र मार्ग के द्वारा तथा पादुकायें धारण कर वहाँ प्राप्त होवे । पूर्व में बताये हुए करन्यास तथा अङ्गों के विन्यास करने चाहिए ।३२। अर्घ्य का सादन संक्षेप में कीर्त्तित किया गया है । योगी को पद्मासन बाँधकर प्राणायाम करने का अभ्यास करना चाहिऐ ।३३। रक्त वर्ण के पुष्पों का संग्रह करने तथा कमल आदि की भावना करनी चाहिए । इन पुष्पों को अपने दाहिनी ओर रक्खों और जल के पात्र को बाँई ओर स्थापित करना चाहिए ।३४। सौर ताम्र पात्र सम्पूर्ण कामों की सिद्धि के लिए होते हैं । अर्घ्य पात्र को लेकर उसे विधि अनुसार प्रक्षालन करे ।३५।

पूर्वोक्तेनांबुना सार्धं जलभांडे तथैव च ।
अस्त्रोदकेन चैवार्घ्यमर्घ्यद्रव्यसमन्वितम् ।३६।
संहितामन्त्रित कृत्वा संपूज्य प्रथमेन च ।
तुरीयेण वगुंठ्यैव स्थापयेदात्मनो परि ।३७।
पाद्यमाचमनीयं च गंधपुष्पसमन्वितम् ।
अंभसा शोधिते पात्रे स्थापयेत्पूर्ववत्पृथक् ।
संहितां चैव विन्यस्य कवचेनावगुंठ्य त्र ।३८।
अर्घ्यांबुना समभ्युक्ष्य द्र याणि त्र विशेषतः ।
आदित्यं च जपेद्देवं सर्वदेवनमस्कृतम् ।३९।
आदित्यो वै तेज ऊर्जो बल यशो विवर्धति ।
इत्यादिना नमस्कृत्य कल्पयेदासनं प्रभोः ।४०।

पहिले कहे हुए जल के साथ उसी प्रकार से जल के पात्र में अर्घ्य द्रव्यों से युक्त अर्घ्य को अस्त्रोदक से देना चाहिए ।३६। संहिता के मन्त्र से अभिमन्त्रित करके तथा प्रथम मन्त्र से भली-भाँति पूजन करके एवं

तुरीय मन्त्र से अवगुण्ठन करके अपने ऊपर स्थापित करना चाहिए ।३७। पाद्य तथा आचमनीय को गन्ध एवं पुष्पों से समन्वित करके पूर्व की भाँति जल से शोधित किये हुए पात्र में पृथक् स्थापित करें । संहिता का विन्यास करके और कवच से अवगुण्ठित करके अर्घ्य के जल से विशेष तौर पर द्रव्यों का अभ्युक्षण करे । फिर समस्त देवों के द्वारा वन्द्यमान आदित्य देव का जाप करना चाहिए ।३८।३९। आदित्य निश्चय ही तेज-ऊर्ज बल और यश को विशेष रूप से बढ़ाते हैं—इत्यादि के द्वारा नमस्कार करके प्रभु के आसन की कल्पना करनी चाहिए ।४०।

प्रभूतं विमलं सा माराध्यं परमं सुखम् ।
आग्नेय्यादिषु कोणेषु मध्यमांतं हृदा न्यसेत् ।४१।
अंगं प्रविन्यसेच्चैव बीजमंकुरमेव च ।
नालं सुषिन्संयुक्तं सूत्रकंटकसंयुतम् ।४२।
दल दल ग्रं सुश्वेत हेमाभं रक्तमेव च ।
कर्णिकाकेसरोपेतं दीप्ताद्यैः शक्तिभिर्वृतम् ।४३।
दीप्ता सूक्ष्मा जया भद्रा विभूतिर्विमला क्रमात् ।
अघोरा विकृता चैव दीप्ताद्याश्चाष्टशक्तयः ।४४।
भास्कराभिमुखाः सर्वाः ।
कृतांजलिपुटाः शुभाः ।
अथवा पद्महस्ता वा सर्वाभरणभूषिता ।४५।
मध्यतो वरदां देवीं स्थापयेत्सर्वतोमुखम् ।
आवाहयेत्ततो देवीं भास्करं परमेश्वरम् ।४६।
नवाक्षरेण मंत्रेण बाष्कलोक्तेन भास्करम् ।
आवाहने च सान्निध्यमनेनैव विधीयते ।४७।

प्रभूत-विमल-सार-आराध्य-परम-सुख आसनों को आग्नेय आदि कोणों में और समस्त मध्यमान्त अर्थात् महरन्त व्याहृति चतुष्टय को हृदय से न्यास करना चाहिए ।४१। पूर्वोक्त अंग का न्यास करे पर बीज धर्म कन्द रूप-अंकुर-छिद्र युक्त नाल-सूत्र कण्टक से संयुक्त दल-सुश्वेत, रक्ताभ-हेमाभ दलाग्र और दीप्ता आदि शक्तियों से युक्त तथा कर्णिका

एवं केसर से समन्वित कमल का चिन्तन करना चाहिए ।४२।४३। अब दीप्ता आदि आठ शक्तियों को बतलाते हैं–उन आठ शक्तियों के नाम ये हैं–दीप्ता-सूक्ष्मा-जया-भद्रा-विभूति-विमला-अघोरा और विकृता ये आठ शक्तियाँ हैं ।४४। ये समस्त शक्तियाँ भास्कर के अभिमुख रहने वाली हैं । ये परम शुभ एवं अञ्जलि पुट को बाँधे हुए रहा करती हैं । अथवा ये पद्म हाथों में लिए रहती हैं और सम्पूर्ण आभरणों से विभूषित होती हैं ।४५। इन सब के मध्य में सर्वतोमुखी-वरदा गायत्री देवी को स्थापित करे और इसके अनन्तर देवी का आवाहन करें । परमेश्वर भास्कर देव का वाष्कलोक्त नवाक्षर मन्त्र के द्वारा आवाहन में सान्निध्य करे ।४६।४७।

मुद्रा च पद्ममुद्राख्या भास्करस्य महात्मनः ।
मूलेनार्घ्यं ततो दद्यात्पाद्यमाचमनं पृथक् ।४८।
पुनरर्घ्यप्रदानेन बाष्कलेन यथाविधि ।
रक्तपद्मानि पुष्पाणि रक्तचंदनमेव च ।४९।
दीपधूपादिनैवेद्यं मुखवासादिरेव च ।
तांबूलवर्तिदीपाद्यं बाष्कलेन विधीयते ।५०।
आग्नेय्यां च तथैशान्यां नैर्ऋत्यां वायुगोचरे ।
पूर्वस्यां पश्चिमे चैव षट्प्रकारं विधीयते ।५१।
नेत्रांतं विधिनाऽभ्यर्च्य प्रणवादिनमोंतकम् ।
कर्णिकायां प्रवि यस्य रूपकध्यान माचरेत् ।५२।
सर्वे विद्युत्प्रभाः शांता रौद्रमस्त्रं प्रकीर्तितम् ।
दंष्ट्राकरालवदनं ह्यष्टमूर्ति भंयकरम् ।५३।
वरदं दक्षिणं हस्तं वामं पद्मविभूषितम् ।
सर्वाभरणसंपन्ना रक्तस्रगनुलेपनाः ।५४।
रक्तांबरधराः सर्वा मूतयस्तस्य संस्थिताः ।
समंडलो महादेवः सिंदूरारुण विग्रहः ।५५।

महान् आत्मा वाले भगवान् भास्कर की पद्ममुद्रा नाम वाली मुद्रा होती है । इसके अनन्तर मूल मन्त्र से अर्घ्य देना चाहिए और पाद्य तथा

आचमन पृथक् देवे ।४८। पुनः अर्घ्य प्रदान के द्वारा जो कि वाष्कल से यथा विधि ही जाना चाहिए । रक्त चन्दन-रक्त वर्ण वाले पुष्प एवं कमल धूप-दीप-नैवेद्य-मुख वासादि ताम्बूल और आर्त्ति दीप आदि वाष्कल मन्त्र से ही की जाती है ।४६।५०। छै प्रकार का यजन किया जाता है-पूर्व-पश्चिम-आग्नेयी-ऐशानी-नैर्ऋत्य और वायव्य दिशोपदिशाओं में किया जाता है ।५१। प्रणव से आदि लेकर नमः—इसके अन्त तक विधि से तत्तद वयव शब्दों के द्वारा नेत्रान्त तक अभ्यर्चन करके अपने हृदय कमल की कर्णिका में विन्यास करे और फिर प्रतिबिम्ब का ध्यान करना चाहिए ।५२। सम्पूर्ण हृदय आदि परम शान्त और विद्युत के समान प्रभा से परिपूर्ण हैं और रौद्र अरूज है । छंष्ट्रा से विकराल वदन वाले आठ मूर्त्तियों (शक्तियों) से युक्त भयङ्कर हैं ।५३। दक्षिण हाथ से वरदान देने वाले और वाम-हस्त में पद्म शोभित हो रहा है । उसकी समस्त मूर्त्तियाँ सम्पूर्ण भूषणों से विभूषित हैं तथा रक्त स्रक् और रक्त अनुलेपन से युक्त हैं । सभी रक्त वर्ण के वस्त्र धारण किये हुए हैं । इस प्रकार से संस्थित मूर्त्तियों का ध्यान करना चाहिए । सिन्दूर से अरुण विग्रह वाले मण्डल से युक्त महादेव हैं ।५४।५५।

पद्महस्तोऽमृतास्यश्च द्विहस्तनयनः प्रभुः ।
रक्ताभरणसंयुक्तो रक्तस्रगनुलेपनः ।५६।
इत्थंरूपधरं ध्यायेद्भास्कर भुवनेश्वरम् ।
पद्मबाह्ये शुभं चात्र मंडलेषु समंततः ।५७।
सोममंगारकं चैव बुधं बुद्धिमतांवरम् ।
बृहस्पतिं महाबुद्धिं रुद्रपुत्रं च भार्गवम् ।५८।
शनैश्चरं तथा राहुं केतुं धूम्रं प्रकीर्तितम् ।
सर्वे द्विनेत्रा द्विभुजा राहुश्चोर्ध्वशरीरधृक् ।५९।
विवृत्तास्योंजलिं कृत्वा भ्रुकुटीकुटिलेक्षणः ।
शनैश्चरश्च दंष्ट्रास्यो वरदाभयहस्तधृक् ।६०।
स्वैःस्वैर्भावैः स्वनाम्ना च प्रणवादिनमोंतकम् ।
पूजनीयाः प्रयत्नेन धर्मकामार्थसिद्धये ।६१।

सप्तसप्तगणांश्चैव बहिर्देवस्य पूजयेत् ।
ऋषयो देवगंधर्वाः पन्नागाप्सरसां गणाः ।६२।
ग्रामण्यो यातुधानाश्च तथा यक्षाश्च मुख्यतः ।
सप्ताश्वान् पूजयेदग्रे सप्तच्छंदोमयान् विभोः ।६३।
वालखिल्यगण चैव निर्माल्यग्रहणं विभोः ।
पूजयेदासनं मूर्तेर्देवतामपि पूजयेत् ।६४।

भुवनेश्वर भगवान् भास्कर का ध्यान इस प्रकार से करना चाहिए कि उनके हस्त में पद्म है और वे अमृत मुख वाले हैं । उनके दो हस्त तथा दो नयन हैं और रक्त आभरण से युक्त एवं लाल माला और अनुलेपन वाले हैं ।५६। ऐसे स्वरूप वाले सूर्य देव का ध्यान करे । चारों ओर मण्डलों में इनके पद्म हैं जो कि परम शुभ हैं ।५७। सूर्य देव के आस पास अन्य सौम-भौम बुध जो कि बुद्धिमानों में अतिश्रेष्ठ हैं—महान् बुद्धिशाली वृहस्पति-रुद्र पुत्र भार्गव-शनैश्चर-राहु-केतु और धूम्र स्थित हैं । ये सभी दो नेत्र और दो भुजा वाले हैं । राहु ऊर्ध्व शरीर के धारण करने वाला है ।५८।५६। मण्डलों में इन सब की पूजा करनी चाहिए । राहु विवृत (खुले हुये) मुख वाला है और अञ्जलि करके भृकुटियों से कुटिल दृष्टि वाला है । शनैश्चर दंष्ट्रा से युक्त मुख वाला तथा वर और अभय हाथों में धारण करने वाला है ।६०। अपने २ भावों से तथा अपने उनके नाम से प्रणव से लेकर नमः-इस के अन्त तक धर्म-काम और अर्थ की सिद्धि के लिए प्रयत्न पूर्वक ये सभी पूजा करने के योग्य हैं ।६१। देव के बहिर्भाग में सात-सात गणों की पूजा करे । ऋषि-देव गन्धर्व यन्मग अप्सराओं के गण हैं । ग्रामणी-यातुधान तथा मुख्यतया यक्ष इनके गण हैं । पहिले विभु के छन्दोमय सात अश्वों का पूजन करे ।६२।६३। विभु के निर्माल्य ग्रहण करने वाले वाल्यखिल्य गण का यजन करे । मूर्त्ति के आसन को तथा देवता का भी पूजन करना चाहिए ।६४।

अर्घ्यं च दापयेत्तेषां पृथगेव विधानतः ।
आवाहने च पूजांते तेषामुद्वासने तथा ।६५।

सहस्रं वा तदर्धं वा शतमष्टोत्तरं तु वा ।
बाष्कलं च जपेदग्रे दशांशेन च योजयेत् ।६६।
कुंडं च पश्चिमे कुर्याद्वर्तुलं चैव मेखलम् ।
चतुरंगुलमानेन चोत्सेधाद्विस्तरादपि ।६७।
एक हस्तप्रमाणेन नित्ये नैमित्तिके तथा ।
कृत्वाश्वत्थदलाकारं नाभिं कुंडे दशांगुलम् ।६८।
तदर्धेन पुरस्तात्तु गजोष्ठसदृशं स्मृतम् ।
गलमेकांगुलं चैव शेषं द्विगुणविस्तरम् ।६९।
तत्प्रमाणेन कुंडस्य त्यक्त्वा कुर्वीत मेखलाम् ।
यत्नेन साधयित्वैव पश्चाद्धोमं च कारयेत् ।७०।

पृथक् विधान से उनको अर्घ्य देना चाहिए। उन सूर्यादि के आवाहन में और पूजा के अन्त में उद्वासन में एक सहस्र-पाँच सौ अथवा अष्टोत्तर शत वाष्कल मन्त्र का आगे जाप करे और उसका दशांश हवन करना चाहिए ।६५।६६। अब हवन की विधि बताई जाती है—मण्डल के पश्चात् भाग में कुण्ड की रचना करे जो कि वर्त्तुल होना चाहिए। ऊँचाई और विस्तार में चार अंगुल प्रमाण से युक्त होवे ।६७। नित्य नैमित्तिक कर्म में एक हाथ प्रमाण वाला बनावे जो कि पीपल के पत्ते का आकार वाला होना चाहिये। उस कुण्ड में दश अंगुल कि नाभि करनी चाहिये ।६८। इसके आधे प्रमाण वाला अर्थात् पाँच अंगुल से युक्त गज के ओठ के समान गल की रचना करे। एक अंगुल और शेष द्विगुण विस्तार वाला बनावे ।६९। कुण्ड के दो अंगुल प्रमाण भाग को त्याग करके मेखला की रचना करे। इस प्रकार से यत्न से साधन करके पीछे होम करना चाहिये ।७०।

षष्ठ नोल्लेखनं कुर्यात्प्रोक्षयेद्वारिणा पुनः ।
आसनं कल्पयेन्मध्ये प्रथमेन समाहितः ।७१।
प्रभावतीं ततः शक्तिमाद्येनैव तु विन्यसेत् ।
बाष्कलेनैव संपूज्य गंधपुष्पादिभिः क्रमात् ।७२।
बाष्कलेनैव मंत्रेण क्रियां प्रति यजेत्पृथक् ।

मूलमंत्रेण विधिना पश्चात्पूर्णाहूतिर्भवेत् ।७३।
क्रमादेवं विधानेन सूर्याग्निर्जनितो भवेत् ।
पूर्वोक्तेन विधानेन प्रागुक्तं कमल न्यसेत् ।७४।
मुखोपरि समभ्यर्च्य पूर्ववद्भास्करं प्रभुम् ।
दशैवाहुतयो देया बाष्कलेन महामुने ।७५।
अङ्गानां च तथैकैकं संहिताभिः पृथक् पुनः ।
जयादिस्विष्टपर्यंत मिध्मप्रक्षेपमेव च ।७६।
सामान्यं सर्वमार्गेषु पारंपर्यक्रमेण च ।
निवेद्य देवदेवाय भास्करायामितात्मने ।७७।
पूजाहोमादिकं सर्वं दत्त्वार्घ्यं च प्रदक्षिणम् ।
अंगैः संपूज्य संक्षिप्य हृद्युद्वास्य नमस्य च ।७८।

षष्ठ से उल्लेखन करे और जल से प्रोक्षण करे और पूर्णतया समाहित होकर प्रथम से मध्य में आसन की कल्पना करनी चाहिए और आद्य के द्वारा ही प्रभावती शक्ति का वहाँ पर विन्यास करना चाहिए। फिर वाष्कल मन्त्र के द्वारा ही गन्धाक्षत पुष्पादि से क्रम पूर्वक यजन करना चाहिए। इसके पश्चात् मूल मन्त्र से पूर्णाहुति होनी चाहिये ।७१।७२।७३। क्रम से इस प्रकार के विधान से सूर्याग्नि जनित होती है। पहिले कहे हुए विधान से प्रथमोक्त कमल का न्यास करना चाहिए ।७ । हे महामुने ! मुख के ऊपर पूर्व की भाँति भास्कर प्रभु की अभ्यर्चना करे और फिर वाष्कल मन्त्र से दश आहूतियाँ देनी चाहिये ।७५। संहिता की ऋचाओं से फिर अङ्गों की पृथक् एक-एक आहुति देवें। जयादि से स्विष्ट पर्यन्त पारम्पर्य क्रम से सर्व मार्गों में सामान्य इध्म का प्रक्षेप करे ।७६। देवों के देव अमित आत्मा वाले भास्कर के लिये पूजा तथा होम आदि सब को निवेदित करे और अर्घ्य देकर प्रदक्षिणा करे। अङ्गों के द्वारा भली-भाँति पूजा करके फिर उपसंहार करे। हृदय कमल में विसर्जन करके नमस्कार करे ।७७।७८।

शिवपूजां ततः कुर्याद्धिर्मकामार्थसिद्धये ।
एवं संक्षेपतः प्रोक्तं यजनं भास्करस्य च ।७९।

य: सकृद्वा यजेद्देवं देवदेवं जगद्गुरुम् ।
भास्करं परमात्मानं स याति परमां गतिम् ।८०।
सर्वपापविनिर्मुक्त: सर्वपाप विवर्जित: ।
स्वैंश्वर्यसमोतेतस्पेजसाप्रतिमश्च स: ।८१।
पुत्रपौत्रादिमित्रैश्च बांधवैश्च समंतत: ।
भुक्त्वैव विपुलान् भोगानिहैव धनधान्यवान् ।८२।
यानवाहनसंपन्नो भूषणैर्विविधैरपि ।
कालं गतोपि सूर्येण मोदते कालमक्षयम् ।८३।
पुनस्तस्मादिहागत्य राजा भवति धार्मिक: ।
वेदवेदांगसंपन्नो ब्राह्मणो वात्र जायते ।८४।
पुन: प्राण्वासनायोगाद्धार्मिको वेदपारग: ।
सूर्यमेव समभ्यर्च्य सूर्य सायुज्यमाप्नुयात् ।८५।

इसके अनन्तर भगवान् शिव की पूजा धर्म और कामार्थ की सिद्धि के लिए करनी चाहिए । इस प्रकार से भगवान् भास्कर देव यजन की अति संक्षेप से कह दिया है ।७९। जो कोई पुरुष देवों के देव जगत् के गुरु परमात्मा भास्कर देव का यजन एकबार किया करता है वह परम गति को प्राप्त किया करता है ।८०। भास्कर का याजक भक्त समस्त प्रकार के पापों से छुटकारा पाने वाला हो जाया करता है और वह सभी पापों से सर्वदा रहित होता है । भास्कर के पूजन करने वाला सब ऐश्वर्यों से संयुक्त और तेज से अनुपम हुआ करता है ।८१। भास्कर भक्त पुत्र-पौत्र आदि मित्रों तथा बान्धवों के सहित चारों ओर यहाँ पर बहुत से भोगों का उपभोग करके धन-धान्य से संयुक्त होकर, यानों और वाहनों सम्पन्न होता हुआ एवं अनेक प्रकार के भूषणों से विभूषित होकर मृत्यु को प्राप्त होकर भी सूर्यदेव के द्वारा अक्षय काल पर्यन्त मोद को प्राप्त होता है ।८२।८३। पुन: यहाँ संसार में उत्पन्न होकर परम धर्म निष्ठ राजा हुआ करता है अथवा वेद तथा वेद के सम्पूर्ण अङ्गों के ज्ञान वाला ब्राह्मण होता है ।८४। चाहे क्षत्रिय रज वंश में समुत्पन्न होकर या वेद वेदाङ्ग का ज्ञाता ब्राह्मण कुल में जन्म ग्रहण करके पूर्व जन्म

की वासना के योग से वेदों का पारगामी धार्मिक पुनः इस जन्म में भी वह सूर्य की अर्चना करके अन्त में सूर्य के सायुज्य को प्राप्त होता है ।८५।

॥ ९२-अंग मंत्र-विद्या सहित शंकरार्चन ॥

अथ ते संप्रवक्ष्यामि शिवार्चनमनुत्तमम् ।
त्रिसंध्यमर्चयेदीशमग्निकार्यं च शक्तितः ।१।
शिवस्नानं पुरा कृत्वा तत्त्वशुद्धिं च पूर्ववत् ।
पुष्पहस्तः प्रविश्याथ पूजास्य नं समाहितः ।२।
प्राणायामत्रयं कृत्वा दाहनाप्लावनानि च ।
गंधादिवासितकरो महामुद्रां प्रविन्यसेत् ।३।
विज्ञानेन तनुं कृत्वा ब्रह्माग्नेरपि यत्नतः ।
अव्यक्तबुद्ध्यहंकारतन्मात्रासंभवां तनुम् ।४।
शिवामृतेन संपूतं शिवस्य च यथातथम् ।
अधोनिष्ठ्या वितस्त्यां तु नाभ्यामुपरि तिष्ठति ।५।
हृदयं तद्विजानीयाद्विश्वस्यायतनं महत् ।
हृत्पद्मकर्णिकायां तु देवं साक्षात्सदाशिवम् ।६।
पंचवक्त्र दशभुजं सर्वाभरणभूषितम् ।
प्रतिवक्त्रं त्रिनेत्रं च शशांककृतशेखरम् ।७।
बद्धपद्मासनासीनं शुद्धस्फटिकसन्निभम् ।
ऊर्ध्वं वक्त्रं सितं ध्यायेत्पूर्वं कुंकुमसन्निभम् ।८।
नीलाभं दक्षिणं वक्त्रमतिरक्तं तथोत्तरम् ।
गोक्षीरधवलं दिव्यं पश्चिमं परमेष्ठिनः ।९।

(अङ्ग मन्त्र विद्या सहित शिवार्चन)—इस अध्याय में मूर्त्ति विद्या के सहित अङ्ग मन्त्रों के द्वारा मानस शिवार्चन का निरूपण किया जाता है। शैलादि ने कहा—इसके अनन्तर मैं सर्वोत्तम शिव के अर्चन को बताऊँगा। तीनों सन्ध्याओं के समय में ईश का अर्चन करे और शक्ति से अग्नि कार्य करना चाहिए।१। पहिले शिव स्नान करके फिर पूर्व की भाँति तत्त्वों की शुद्धि करनी चाहिए। हाथों में पुष्प लेकर पूजा के

स्थान में प्रवेश करे और समाहित होकर तीन प्राणायाम करे तथा भूत शुद्धि में कहे हुए दाहन प्लावन करे और गन्धादि से सुवासित करों वाला होकर महामुद्रा का विन्यास करना चाहिए। ।२।३। अव्यक्त बुद्धि अहङ्कार और तन्मात्राओं से समुत्पन्न तनु को शुद्ध ज्ञान से यत्न पूर्वक दग्ध करे और ब्रह्मज्ञान की अग्नि से भी उसे दग्ध करे।४। अत्यन्त कल्याण अमृत से संपूत और शिव के योग्य ग्रीवा वन्ध से नीचे नाभि में ऊपर वितस्ति में विश्व का महत् आयतन स्थित रहता है ऐसा जानना चाहिए ।५। हृदय कमल की कर्णिका में मध्य में क्रीड़ा करते हुए साक्षात् देव सदाशिव का ध्यान करना चाहिए ।६। सदाशिव के ध्यान में उनका स्वरूप पाँच मुखों वाला-दश भुजाओं से युक्त तथा सम्पूर्ण आभरणों से संभूषित है। सदाशिव के प्रत्येक मुख में तीन नेत्र हैं तथा चन्द्रशेखर वाले हैं ।७। पद्मासन बाँध कर विराजमान और शुद्ध स्फटिक मणि के तुल्य वर्ण वाले हैं। ऊर्ध्व मुख का श्वेत वर्ण है ऐस ध्यान करना चाहिए। पूर्व की ओर रहने वाला मुख कुंकुम के समान आभा से युक्त है। दक्षिण मुख नीली आभा से सम्पन्न है और उत्तर की ओर मुख अत्यधिक रक्त वर्ण वाला है। परमेष्ठी का पश्चिम की ओर वाला मुख गौ के दुग्ध के तुल्य दिव्य एवं धवल है ।८।९।

शूल परशुखङ्ग च वज्रं शक्ति च दक्षिणे।
वामे पाशांकुशं घंटां नागं नाराचनुत्तमम् ।१०।
वरदाभयहस्तं वा शेष पूर्ववदेव तु।
सर्वाभरणसंयुक्तं चित्रांबरधरं शिवम् ।११।
ब्रह्मांगविग्रहं देवं सर्वदेवोत्तमोत्तमम्।
पूजयेत्सर्वभावेन ब्रह्मांगैर्ब्रह्मणः पतिम् ।१२।
उक्तानि पंच ब्रह्माणि शिवांगानि शृणुष्व मे।
शक्ति भूतानि च तथा हृदयादीनि सुव्रत ।१३।
ॐ ईशानः सर्वविद्यानां हृदयाय शक्तिबीजाय नमः।
ॐ ईश्वरः सर्वभूतानाममृताय शिरसे नमः ।१४।

सदाशिव के दक्षिण हस्त में शूल-परशु-खड्ग-वज्र-शक्ति आयुध

शोभित हैं। बाँये हाथ में पाश-अंकुश-धारा-नाग और उत्तम नाराच विराजमान है।१०। शेष हाथ पूर्ववत् वरदान तथा अभयदान देने वाले हैं। शिव समस्त प्रकार के आभरणों से समलंकृत हैं और चित्र अम्बर के धारण करने वाले हैं।११। सद्योजाताद्यङ्ग से विशिष्ट विग्रह वाले तथा सम्पूर्ण देवों में सर्वोत्तम देव ब्रह्मा के पति का सर्व भाव से ब्रह्माङ्गों से पूजन करना चाहिए।१२। हे सुव्रत ! शिव के अङ्ग पाँच ब्रह्म कहे गये हैं। उनको तुम मुझसे श्रवण करो। और शक्तिभूत हृदयादि को सुन लो।१३। अब छै अङ्ग बताये जाते हैं—ओम् सर्व विधाओं के ईशान शक्ति बीज हृदय के लिये नमस्कार है। ॐ सर्व भूतों के ईश्वर अमृत शिर के लिये नमस्कार है।१४।

ॐ ब्रह्माधिपतये कालाग्निरूपाय शिखायै नमः।
ॐ ब्रह्माणोधिपतये कालचंडमारुताय कवचाय नमः।१५।
ॐ ब्रह्मणे बृंहणाय ज्ञानमूर्तये नेत्राय नमः।
ॐ शिवाय सदाशिवाय पाशुपतास्त्राय अप्रतिहताय फट्फट् १६
ॐ सद्योजाताय भवेभवेनाति भवे-
भवस्य मां भवोद्भवाय शिवमूर्तये नमः।
ॐ हंसशिखाय विद्यादेहाय आत्मस्वरूपाय-
परापराय शिवाय शिवतमाय नमः।१७।
कथितानि शिवांगानि मूर्तिविद्या च तस्य वै।
ब्रह्मांगमूर्ति विद्यांगसहितां शिवशासने।१८।
सौराणि च प्रवक्ष्यामि बाष्कलाद्यानि सुव्रत।
अंगानि सर्ववेदेषु सारभूतानि सुव्रत।१९।
ॐ भूः ॐ भुवः ॐ स्वः ॐ महः ॐ जनः-
ॐ तपः ॐ सत्यम् ॐ ऋतम् ॐ ब्रह्म।
नवाक्षरमयं मंत्रं बाष्कलं परिकीर्तितम्।
न क्षरतीति लोकेऽस्मिस्ततो ह्यक्षरमुच्यते।
सत्यमक्षरमित्युक्तं प्रणवादिनमोंतकम्।२०।
ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि।

धियो यो नः प्रचोदयात् ।
नमः सूर्याय खखोल्काय नमः ।२१।

ॐ ब्रह्म के अधिपति कालाग्नि के स्वरूप वाले शिखा के लिये नमस्कार है। ॐ ब्रह्म के अधिपति काल चण्ड मारुत कवच के लिये नमस्कार है ।१५। ॐ ब्रह्मा बृंहण ज्ञान मूर्त्ति नेत्र के लिये नमस्कार है। ओं शिव सदाशिव पाशुपत अस्त्र वाले अप्रति हत के लिए फट्-फट् है ।१६। ये छै अङ्कों का न्यास प्रकार है। अब मूर्त्ति का कथन किया जाता है। ॐ सद्योजात-प्रत्येक जन्म में जन्म के अतिभव वाले इस संसार के भी कारण स्वरूप शिव मूर्त्ति के लिये नमस्कार है। विद्या का निरूपण करते हैं—ओम् हंस शिख के लिये विद्या (ज्ञान) के देह वाले—आत्म स्वरूप—पर से भी पर—परम कल्याण शिव के लिये नमस्कार है ।१७। शिव के अङ्ग शिव की मूर्त्ति और उस शिव की विद्या कथित कर दी गई है। शिव शासन में विद्यांग सहित ब्रह्माङ्ग मूर्त्ति को जानना चाहिए ।१८। हे सुव्रत ! बाष्कलादि सौर अङ्ग जो कि वेदों में सार भूत हैं उनको बताऊंगा ।१९। अब नवाक्षर मन्त्र का स्वरूप वर्णित किया जाता है—"ॐ भूः-ॐ भुवः-ॐ स्वः ॐ महः-ॐ जनः ॐ तपः-ॐ सत्यम्-ॐ ऋतम्ॐ ब्रह्म—यह नव अक्षरमय बाष्कल मन्त्र परिकीर्त्तित किया गया है। जिसका क्षरण नहीं होता है उसे इस लोक में अक्षर कहा जाता है। जिसके आदि में प्रणव और अन्त में 'नमः'—यह होता है उसे 'सत्यं-अक्षरम्' कहा गया है ।१९।२०। ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि। धियो यो नः प्रचोदयात्। नमः सूर्याय खखोल्काय नमः'—यह महात्मा भास्कर देव का मल मन्त्र कहा गया है। नवाक्षर मूल मन्त्र के सहित दीप्तादि शक्तियों के मन्त्र हैं जो कि अङ्ग मन्त्र कहे जाते हैं उनसे भगवान् भास्कर का पूजन करना चाहिए ।२१।

मूलमत्रमिति प्रोक्तं भास्करस्य महात्मनः ।
नवाक्षरेण दीप्ताद्या मूलमंत्रेण भास्करम् ।२२।
पूजयेदंतमंत्राणि कथयामि समासतः ।
वेदादिभिः प्रभूताद्यं प्रणवेनतु मध्यमम् ।२३।

ॐ भूः ब्रह्मणे हृदयाय नमः।
ॐ भुवः विष्णवे शिरसे नमः।
ॐ स्वः रुद्राय शिखायै नमः ॐ भूर्भुवः स्वः ज्वाला-
मालिन्यै देवाय नमः ॐ महः महेश्वराय कवचाय नमः।
ॐ जनः शिवाय नेत्रेभ्यो नमः।
ॐ तपस्तापनाय अस्त्राय नमः।
एवं प्रसंगादेवेह सौराणि कथितानि ह।
शैवानि च समासेन न्यास योगेन सुव्रत।२४।
इत्थ मंत्रमयं देवं पूजयेद्धृदयांबुजे।
नाभौ होमं तु कर्तव्यं जनयित्वा यथाक्रमम्।२५।
मनसा सर्वकार्याणि शिवाग्नो देवमोश्वरम्।
पचब्रह्मांगसंभूत शिवमूर्ति सदाशिवम्।२६।
रक्तपद्मासनासीनं सकलीकृत्य यत्नतः।
मूलेन मूर्तिमंत्रेण ब्रह्मांगाद्यैस्तु सुव्रत।२७।
समिदाज्याहुतीर्हुत्वा मनसा चंद्रमंडलात्।
चंद्रस्थानात्समुत्पन्नां पूर्णधारामनुस्मरेत्।२८।
पूर्णाहुतिविधानेन ज्ञानिनां शिवशासने।
शिवं वक्त्रगतं ध्यायेत्तेजोमात्रं च शांकरम्।२९।
ललाटे देवदेवेश भ्रूमध्ये वा स्मरेत्पुनः।
यच्च हृत्कमले सर्वं समाप्य विधिविस्तरम्।३०।
शुद्धदीपशिखाकारं भावयेद्भुवनाशनम्।
लिंगे च पूजयेद्देव स्थंडिले वा सदाशिवम्।३१।

वेदादि से प्रभूताद्य और प्रणव से मध्यम को मैं संक्षेप से कहता हूँ।२२।२३। ओम् भू ब्रह्मा हृदय के लिये नमस्कार है। ओम् भुवः विष्णु शिर के लिए नमस्कार है। ॐ स्वः रुद्र शिखा के लिये नमस्कार है। ॐ भूर्भुवः स्वः ज्वाल मालिनी देव के लिए नमस्कार है। ॐ महेश्वर कवच के लिये नमस्कार है। ॐ जनः शिव के लिये, नेत्रों के लिये नमस्कार है। ॐ तपः तापन अस्त्र के लिये नमस्कार है। इस प्रकार से

यहाँ पर प्रसङ्ग से ही सौर मन्त्र कहे हैं और हे सुव्रत ! न्याय योग से संक्षेप में शैव मन्त्र कहे गये हैं ।२४। इस प्रकार से मन्त्रमय देव का हृदय कमल में पूजन करना चाहिए। अब मानस होम की विधि का वर्णन किया जाता है—नाभि के स्थान में विधि पूर्वक अग्नि को उत्पन्न करके होम करना चाहिए ।२५। मन के द्वारा ही समस्त कार्य करने चाहिए और शिवाग्नि में पञ्च ब्रह्माङ्गसंभूत शिव मूर्त्ति सदाशिव ईश्वर देव का जो कि रक्त पद्म पर संस्थित हैं, यत्न पूर्वक सकली करण करके मूल मूर्त्ति मन्त्र से और ब्रह्माङ्गादि मन्त्रों से समिधा एवं घृत की आहुतियाँ देकर हवन करे फिर मन से ही चन्द्र मण्डल से चन्द्र के स्थान से समुत्पन्न पूर्ण धारा का अनुस्मरण करना चाहिए ।२६।२७।२८। ज्ञानिओं के शिव शासन में पूर्ण आहुति के विधान से मुख गत शिव का तथा तेजोमय शङ्कर का ध्यान करे ।२९। ललाट में भ्रूओं के मध्य स्थल में शिव के तेज का स्मरण करे। पहिले बताया हुआ जो हृदय कमल में समग्र विधि का विस्तार है उसे सब को समाप्त करके फिर सांसारिक बाधाओं के नाश करने वाले शुद्ध दीप की शिखा के आकार के समान है उनका चिन्तन करना चाहिए। लिङ्ग में अथवा स्थण्डिल में सदाशिव देव की अर्चना करनी चाहिए। आरम्भ में ज्ञानिओं की मुख्य अर्चना का बताकर अन्त में प्रतिमा का यजनार्चन बताया गया है ।३०।३१।

॥ ९३-तंत्रोक्त विधान से शिवार्चन ॥

व्याख्यां पूजाविधानस्य प्रवदामि समासतः ।
शिवशास्त्रोक्तमार्गेण शिवेन कथितं पुरा ।१।

अथोभौ चंदनर्चितौ हस्तौ वौषडतेनाद्यंजलिं कृत्वा मूर्तिविद्याशिवादानि जप्त्वा अंगुष्ठादिकनिष्ठिकांत ईशानाद्यं कनिष्ठिकादिमध्यमांत हृदयादितृतीयांतं तुरीय मंगुष्ठेनानामिकया पचमं तलद्वयेन षष्ठं तर्जन्यंगुष्ठाभ्यां नाराचास्त्रप्रयोगेण पुनरपि मूलं जप्त्वा तुरायेनावगुंठ्य शिवहस्त-

मित्युच्यते ।२।
शिवार्चना तेन हस्तेन कार्या ।३।
तत्त्वगतमात्मानं व्यवस्थाप्य तत्त्वशुद्धिं पूर्ववत् ।४।
क्षमाम्भोग्निवायुव्योमांतं पंचचतुःशुद्धकोटयते ।
धारासहितेन व्यवस्थाप्य तत्त्वशुद्धि पूर्वं कुर्यात् ।५।
तत्त्वशुद्धिः षष्ठेन सद्येन तृतीयेन फडंताद्धर शुद्धि ।६।
षष्ठसहितेन सद्येन तृतीयेन फडन्तेन वारितत्त्वशुद्धिः ।७।

(तन्त्रोक्त विधान से शिवार्चन) इस अध्याय में विशेष रूप से तान्त्रिकोक्त विधि-विधान से श्री भगवान् शङ्कर की अर्चा का पद्य एवं गद्य के द्वारा निरूपण किया जाता है। शैलादि ने कहा—मैं अब पूजा के विधान की व्याख्या संक्षेप से बताता हूँ। यह पहिले भगवान शिव ने कहा था। मैं उसी शिव शास्त्रोक्त मार्ग के द्वारा इस समय बता रहा हूँ ।१। शिव स्नान और भस्म स्नान के अनन्तर दोनों हाथों को चन्दन से चर्चित कर लेवे और फिर वौषट् अन्त से आद्याञ्जलि करके पूर्वोक्त मूर्ति विद्या और शिवादि अर्थात् शैवाङ्गों का जाप करे। इसके अनन्तर अंगुष्ठ से लेकर कनिष्ठिका के अन्त तक ईशानादि पाँच मन्त्रों का न्यास करना चाहिए। न्यास करने का क्रम यह कि कनिष्ठिका जिसमें आदि है और तर्जनी मध्यमा जिसमें अन्त है तथा हृदय जिसमें आदि है और तीसरा अघोर मन्त्र जिसमें अन्त है इस प्रकार से करे। अंगुष्ठ के साथ तुरीय तत्पुरुष मन्त्र को अनामिका से पञ्चम को और तल द्वय से षष्ठ मन्त्र को जपकर फिर तर्जनी और अङ्गुष्ठ से नाराचास्त्र प्रयोग के द्वारा मूल पंचाक्षर मन्त्र का जप करे फिर चतुर्थ मन्त्र से अवगुण्ठन करे—यह शिव हस्त-इस नाम से कहा जाता है। उस हस्त शिव की अर्चना करनी चाहिए ।२।३। आत्मा को तत्व गत अर्थात् तत्त्वों में व्यवस्थापित करे और पूर्व की भाँति ही तत्त्व शुद्धि करनी चाहिए। यह तत्त्व शुद्धि पहिले करे। पृथ्वी-जल-अग्नि वायु और व्योम इन पाँचों में तथा अहङ्कार-महत्तत्त्व प्रकृति और ब्रह्म रूप चारों में शुद्ध कोटि के अन्त में अमृतधारा से युक्त सुषुम्ना मार्ग से व्यवस्थापित करके तत्वों की शुद्धि करनी चाहिए

।४।५। अब पृथिवी आदि तत्वों की शुद्धि को बिस्तृत रूप से बतलाते हैं—"नमोहिरण्य वाहव" इस षष्ठ मन्त्र से-सद्य तृतीय अघोर मन्त्र से और फडन्त से धरा की शुद्धि करे।६। षष्ठ से युक्त सद्य तृतीय फडन्त मन्त्र से वारि तत्त्व की शुद्धि की जाती है।७।

वाह्न यतृतीयेन फंडतेनाग्निशुद्धिः।८।

वायव्यचतुर्थेन षष्ठसहितेन फंडतेन वायुशुद्धिः।९।

षष्ठेन ससद्येन तृतीयेन फंडतेनाकाशशुद्धिः।१०।

उपसंहृत्यैव सद्यषष्ठेन तृतीयेन मूलेन फडंतेन ताडनं तृतीयेन संपुटीकृत्य ग्रहणं मूलमेव योनिबीजेन संपुटीकृत्वा ब नं बधः।११। एवं क्षांतातीतादिनिवृत्तोपर्यंतं पूर्ववत्कृत्वा प्रणवेन तत्त्वत्रयकमनुध्याय आत्मानं दीपशिखाकार पुर्यष्टकसहितं त्रयायीतं शक्तिक्षोभेणामृतधानां सुषुम्णायां ध्यात्वा।१२।

शांत्यतीतादिनिवृत्तिपर्यंतानां चांतर्नादबिंद्वकारोकारमकारांतं शिवं सदाशिवं रुद्रविष्णुब्रह्मातं सृष्टिक्रमेणमृतीकरणं ब्रह्मन्यासं कृत्वा पंचवक्त्रेषु पचदशनयनं विन्यस्य मूलेन पादादिकेशांतं महामुद्रामपि बद्धा शिवोहमिति ध्यात्वा शक्त्यादीनि विन्यस्य हृदि शक्त्यावीजांकुरानंतरात्मसुषिरसूत्रकंटकपत्रकेसरधर्मज्ञानवैराग्येश्वर्यसूर्यसोमाग्निवामाज्येष्ठारौद्रीकालीकलविकरणीबलविकरणीबलप्रथमनोसर्वभूतदमनीः केसरेषु कर्णिकायां मनोन्मनीमपि ध्यात्वा।१३।

फडन्त वाह्नेय तृतीय मन्त्र से अग्नि की शुद्धि होती है।८। षष्ठ के सहित वायत्य चौथे फट् जिसके मन्त्र में है ऐसे मन्त्र से वायु की तत्त्व शुद्धि होती है।९। सद्य के सहित तृतीय और षष्ट फडन्त से आकाश की शुद्धि होती है।१०। अब ताड़न-ग्रहण बन्धनों को बताते हैं। इस तरह पूर्वोक्त प्रकार से उपसंहार करके सद्य से युक्त षष्ठ के सहित तृतीय फडन्त मूल मन्त्र से ताड़न करे--मूल को तृतीय से सम्पुटीकरण करके ग्रहण और मूल को ही योनि बीज 'ह्रीं' इस बीज से सम्पुटीकरण करके दिग्बन्ध करना चाहिए।११। इस तरह से पहिले इक्कीसवें अध्याय में

कहे हुए की भाँति क्षान्तातीत आदि की निवृत्ति पर्यन्त करके प्रणव के द्वारा ब्रह्म-विष्णु-रुद्र रूप तत्त्व त्रय का ध्यान करके दीप शिखा के आकार वाले-योग शास्त्रोक्त मूलाधारादि स्वरूप अष्टक से सहित-विश्वादि त्रय से परे कुण्डली के प्रबोध द्वारा आत्मा का और सुषुम्णा में अमृत धारा का ध्यान करे ।१२। शान्त्यतीतादि निवृत्ति पर्यन्त कलाओं के मध्य में नाद विन्दु अकार-उकार और मकार के अवसान वाले उस रुद्र-विष्णु-ब्रह्मान्त सदाशिव का ध्यान करे और सृष्टि के क्रम से अमृती करण ब्रह्मन्यास करके मूल मन्त्र से पाँच मुखों में पन्द्रह नेत्रों का विन्यास करे। फिर पद से लेकर केशों के अन्त पर्यन्त महामुद्रा को बाँध कर 'मैं शिव हूँ'—ऐसा ध्यान करके हृदयाकाश में शक्ति के सहित बिना किसी व्यवधान के बीजाङ्कुरों का ध्यान करे जिनमें सुषिर सूत्र कण्टक पत्रं केसर धर्म ज्ञान वैराग्य ऐश्वर्य सूर्य सोम अग्नि-इन सब का ध्यान करे और केसरों में वामा-ज्येष्ठा रौद्री-काली-कल विकरणी-बल विकरणी-बल प्रथमनी और सर्व भूत दमनी-इन अठारह शक्तियों का तथा कर्णिका में मनोन्मनी का ध्यान करे ।१३।

आसनं परिकल्पयंव सर्वोपचारसहितं बहिर्योगोपचारेणांतः-करणं कृत्वा नाभौ वह्निकुंडे पूर्ववदासनं मरिकल्प्य सदाशिवं ध्यात्वा बिंदुतोऽमृतधानां शिवमडले निपतितां ध्यात्वा ललाटे महेश्वरं दीपशिखाकारं ध्यात्वा आत्मशुद्धिरित्थं प्राणापानौ संयम्य सुषुम्णया वायुं व्यवस्थाप्य षष्ठेन तालुमुद्रां कृत्वा दिग्बंधं कृत्वा षष्ठेन स्थानशुद्धिर्वस्त्रादि पूतांतरर्घ्यपात्रादिषु प्रणवेन तत्त्वत्रयं विन्यस्य तदुपरि बिंदुं ध्यात्वा त्वंभसा विपूर्य द्रव्याणि च विधाय अमृतप्लावनं कृत्वा प.द्यपात्रादिषु तेषामर्घ्यत्रदासनं परिकल्प्य संहितयाभिमंत्राद्येनाभ्यर्च्य द्वितीयेनानृतीकृत्वा तृतीयेन विशोध्यचतुर्थेनावगुंठ्य पचमेनावलोक्यषष्ठेन रक्षां विधाय चतुर्थेन कुशपुंजेनार्घ्यांभसाभ्युक्ष्य आत्मानमपि द्रव्याणि पुनरर्घ्यांभसाभ्युक्ष्य सपुष्पेण सर्वद्रव्याणि पृथक्पृथक् शोधयेत् ।१४

सद्येन गंधं वामेन वस्त्रम् ।

अघोरेण आभरणं पुरुषेण नैवेद्यम् ।
ईशानेन पुष्पाणि अथाभिमंत्रयेत् ।१५।
शिवगायत्र्या शेषं प्रोक्षयेत् ।१६।
पंच मृतपंचगव्यादीनि ब्रह्मांगमूलाद्यै रभिमंत्रयेत् ।१७।

पृथक्पृथङ् मूलेनार्घ्यं धूप दत्त्वाचमनीयं च तेषामपि धेनुमुद्रा च दर्शयित्वा कवचेनावगुंठ्यास्त्रेण रक्षां च विधाय द्रव्यशुद्धि कुर्यात् ।१८।

अर्घ्योदकमग्रे हृदा गंधमादायास्त्रेण विशोध्य पूजाप्रभृति करणं रक्षांतं कृत्वैव द्रव्यशुद्धि पूजासमर्पणांतं मौनमास्थाय पुष्पांजलि दत्त्वा सर्वमन्त्राणि प्रणवादिनमोंताज्जपित्वा पुष्पांजलिं त्यजेन्मंत्र शुद्धिरित्थम् ।१९।

अग्रे सामान्यार्घ्यपात्रं पयत्तापूर्य गंधपुष्पादिना संहितयाभिमंत्र्य धेनुमुद्रां दत्त्वा कवचेनावगुंठ्यास्त्रेण रक्षयेत् ।

पूजां पर्युषितां गायत्र्या समभ्यर्च्य सामान्यार्घ्यं दत्त्वा गंधपुष्पधूपाचमनीयं स्वधांत नमोंतं वा दत्त्वा ब्रह्मभिः पृथक्पृथक्पुष्पांजलिं दत्त्वा फडंतास्त्रेण निर्माल्यं व्यपोह्य ईशान्यां चडमभ्यर्च्यासनमूर्ति चंडं सामान्यास्त्रेण लिंगपीठं शिवं पाशुपतास्त्रेण विशोध्य मूर्ध्नि पुष्पं निधाय पूजयेल्लिंगशुद्धिः ।२०।

अब आत्म-शुद्धि का प्रकार बतलाया जाता है-इसमें स्थान और द्रव्य शुद्धि का भी विधान है-वहिर्योगोपचार से अन्तः सामग्री को करके पहिले बताये हुए प्रकार से सर्वोपचार सहित आसन की परिकल्पना करके नाभि में वह्नि कुण्ड में पूर्ववत् आसन को कल्पित करे और उस पर भगवान् सदाशिव का ध्यान करे। ललाट में दीप की शिखा के आकार वाले-महेश्वर का ध्यान करे और विन्दु से शिव मण्डल में अमृत की धारा को निपतिन होती हुई का ध्यान करे—इस विधि से आत्म शुद्धि करनी चाहिए। प्राण और अपान वायुओं का संयम करके सुषुम्ना से वायु को व्यवस्थापित करे फिर षष्ठ मन्त्र से तल मुद्रा तथा खेचरी मुद्रा करके शरीर-शुद्धि और स्थान-शुद्धि करे। वस्त्र के द्वार मध्य भाग को

पवित्र करके अर्घ्य पात्रादि में तत्त्वत्रय का विन्यास करके उन तत्त्वादि के पाद्य पात्रादि में अमृत प्लावन करे। पुष्पों के सहित जल से पूजा के समस्त द्रव्यों को पृथक् २ शोधन करना चाहिए। अर्घ्य की भाँति आसन की कल्पना करके संहिता के द्वारा अभिमन्त्रित करे। आद्य से अभ्यर्चना करे–द्वितीय से अमृती करण करे-तृतीय से विशोधन करे–चतुर्थ से अवगुण्ठन करे–पंचम से अवलोकन और षष्ठ से रक्षण करे। चतुर्थ से कुश पुञ्ज से अर्घ्य जल के द्वारा अभ्युक्षरण करे ।१४। अब गन्धादि अभिमन्त्रण की विधि बताई जाती है। इसके अनन्तर सद्यादि के द्वारा गन्धादि को अभिमन्त्रित करे—सद्य से गन्ध को—वाम से वस्त्र को–अघोर से आभरण को--पुरुष से नैवेद्य को और ईशान से पुष्पों की अभिमन्त्रित करना चाहिए ।१५। शिव गायत्री से शेष को प्रोक्षित करे ।१६। ब्रह्माङ्ग मूलादि अर्थात् पंचाक्षर बीजों से पंचामृत और पंच गव्य आदि को अभिमन्त्रित करना चाहिए ।१७। पृथक्-पृथक् मूल मन्त्र से अर्घ्य-धूप और आचमनीय देकर तथा उनको धेनु मुद्रा दिखाकर कवच से अवगुण्ठन करके और अस्त्र से रक्षा करके द्रव्य-शुद्धि करनी चाहिए ।१८। अब मन्त्र शुद्धि का निरूपण किया जाता है-सर्व प्रथव अर्घ्य गन्ध को हृदय मन्त्र से लेकर अस्त्र से उसका विशोधन करे और पूजा से लेकर समर्पण के अन्त तक मौन रहकर पुष्पाञ्जली देवे तथा सम्पूर्ण मंत्रों को प्रणव से लेकर नमः पर्यन्त जप करे फिर पुष्पाञ्जलि छोड़े–इस प्रकार से मन्त्र शुद्धि की जाती है। ।१९। लिङ्ग शुद्धि की विधि बताई जाती है–आगे साधारण अर्घ्य-पात्र को पय से भरकर गन्ध पुष्पादि से संहिता के द्वारा अभिमन्त्रित करके धेनुमुद्रा दिखाकर कवच से अवगुण्ठन करे और अस्त्र से रक्षा करनी चाहिए। पर्युषित पूजा को गायत्री मन्त्र से समभ्यर्चना करके अर्घ्य देवे। फिर स्नधान्त या नमोन्त गन्ध पुष्प-धूप और आचमनीय देकर ब्रह्मों के द्वारा पृथक् २ पुष्पाञ्जलि देकर फडन्तास्त्र से निर्माल्य का वायोहन करे और ईशानी दिशा में चण्ड का अभ्यर्चन करके आसन मूर्त्ति चण्ड को सामान्यास्त्र से लिङ्ग पीठ शिव का पाशुपतास्त्र से विशोधन करके मस्तक पर पुष्प रखकर पूजा करनी चाहिए–

यह लिङ्ग शुद्धि होती है ।२०।

आसनं कूर्मशिलायां बीजांकुरं तदुपरि ब्रह्मशिलायामनंतनाल-सुषिरे सूत्रपत्रकंटकर्णिकाकेसरधर्मज्ञानवैराग्यैश्वर्यसूर्यसोमाग्नि-केशरशक्ति मनोन्मनीं कर्णिकायां मनोन्मनेनानंतासनायेति समा-सेनासनं परिकल्प्य तदुपरि निवृत्त्यादिकलामय षड् विधिसहितं कर्मकलांगदेह सदाशिव भावयेत् ।२१।

उभाभ्यां सपुष्पाभ्यां हस्ताभ्यामगुष्ठेन पुष्पमापीड्य आवाहनमुद्र-या शनैः शनै हृदय दिमस्तकांतमारोप्य हृदा सह मूलं प्लुतमुच्चार्य सद्येन बिंदुस्थानादभ्यधिक दीपशिखाकारं सर्वतोमुखहस्तं व्याप्य-व्यापकमावाह्य स्थापयेत् ।२२।

पूर्वहृदा शिवशक्तिसमवायेन परमीकरणममृतीकरणं हृदयादि-मूलेन सद्येनावाहनं हृदा मूलोपरि वामेन स्थापनं हृदा मूलोपरि अघोरेण सन्निरोधं हृदा मूलोपरि पुरुषेण सान्निध्यं हृदा मूलेन ईशानेन पूजयेदिति उपदेशः ।२३।

पचमंत्रसहितेन यथापूर्वमात्मनो देहनिर्माणां तथा देवस्यापि वक्ष्ये-श्चैव मुपदेशः ।२४।

अब पूजा की विधि बताते हैं—कर्म पृष्ठ पर आसन उसके ऊपर बीजाङ्कुर और उसके ऊपर ब्रह्मशिला में अनन्त नाल-सुषिर में सूत्र-पत्र-कण्टक-कर्णिका-केसर-धर्म, ज्ञान, ऐश्वर्य, वैराग्य, सूर्य-सोम और अग्नि और वामादि पूर्वोक्त आठ शक्तियाँ तथा कर्णिका में मनोन्मनी का मनो-न्मनेन से ध्यान करें। संक्षेप से 'अनन्तासनाय नमः'—इत्यादि मन्त्रों के द्वारा आसन परिकल्पित करे। उसके ऊपर निवृत्यादि कला प्रचुर षट् कोश युक्त कर्म कला अङ्गों वाले वेदों के शरीर से सम्पन्न सदाशिव भग-वान् का चिन्तन करना चाहिए।२१। अब आवाहन और स्थापन विधि का निरूपण है—पुष्पों से समन्वित दोनों हाथों से अङ्गुष्ठ के द्वारा पुष्प का आपीड़न करे और आवाहन की मुद्रा से धीरे-धीरे हृदय से लेकर मस्तक के अन्त तक आरोपण कर हृदय मन्त्र के साथ पंचाक्षर मूल मन्त्र का उच्च स्वर में उच्चारण करके सद्य मन्त्र से विन्दु स्थान से भी

अधिक दीपक की शिखा के आकार वाले सब ओर मुख और हस्त से युक्त व्याप्य व्यापक का आवाहन करके स्थापन धरे ।२२। पहिले हृदय मन्त्र से शिव शक्ति समवाय से अर्थात् तादात्म्य से एकी करण-अमृती करण, फिर हृदय मन्त्र पूर्वक मूल मंत्र के सहित सद्य से आवाहन-हृदय मंत्र से मूल मंत्र के ऊपर वाम मंत्र से स्थापन और इसी प्रकार से सन्नि-धी करण करके हृदय और मूल मंत्र के सहित ईशान मंत्र से पूजन करना चाहिए—यह उपदेश है।२३। पहिले जिस प्रकार से पंच मंत्र के सहित से आत्मा के देह का निर्माण किया जाता है उसी प्रकार से देव का और वह्नि का भी करे यह उपदेश है ।२४।

रूपकध्यानं कृत्वा मूलेन नमस्कारांतमापाद्य स्वधांतमाचमनीयं सर्वं नमस्कापांतं वा स्वाहाकारांतमर्घ्यं मूलेन पुष्पांजलिं वौषडं-तेन सर्वं नमस्कारांतं हृदा वा ईशानेन वा रुद्रगायत्र्या ॐ नमः शिवायेति मूलमंत्रेणवा पूजयेत् ।२५।

पुष्पांजलिं दत्त्वा पुनर्धूपाचमनीयं षष्ठेन पुष्पावसरणं विसर्जनं मन्त्रोदकेन मूलेन संस्नाप्य सर्वद्रव्याभिषेकमीशानेन प्रतिद्रव्यमष्ट-पुष्पं दत्त्वैवमर्घ्यं च गंधपुष्पधूपाचमनीय धडंतास्त्रेण पूजापसरणं शुद्धोदकेन मूलेन संस्नाप्य पिष्टामलकादिभिः ।२६।

उष्णोदकेन हरिद्राद्येन लिंगमूर्ति पीठ सहितां विशोध्य गंधोदक-हिरण्योदकमत्रोदकेन रुद्राध्यायं पठमानः नीलरुद्रत्वरितरुद्रपंच-ब्रह्मादिभिः नमः शिवायेति स्नापयेत् ।२७।

मूर्ध्नि पुष्पं निधायैवं न शून्यं लिगमस्तकं कुर्यादत्र श्लोकः ।२८।

प्रतिविम्ब का ध्यान करके-फिर मूल से नमस्कार के अन्त तक कर-के स्वधान्त आचमनीय अथवा नमस्कार के अन्त तक सब-स्वाहा कारान्त अर्घ्य-मूल मंत्र से पुष्पाञ्जलि-वौषडन्त से सब नमस्कार के अन्त तक हृदय मंत्र से अथवा ईशान या रुद्र गायत्री से किम्वा "ॐ नमः शिवाय" इस मूल मन्त्र से पूजन करना चाहिए ।२५। पुष्पाञ्जलि समर्पित करके फिर धूप-आचमनीय षष्ठ मंत्र से पुष्पा वसरण विसर्जन करके-मूल मन्त्रोदक से सस्नपन करके समस्त द्रव्य पंचामृतादि का अभिषेक करके-

ईशान मन्त्र से प्रति द्रव्य आठ पुष्प वाला अर्घ्य गन्ध पुष्प धूप आचमनीय देकर पूजा का अपसरण करके पिसे हुए आँवले आदि के साथ शुद्ध जल से स्नयन करावे ।२६। पंचामृत आदि के स्नान के अनन्तर अभिषेक की विधि बताते हैं हरिद्रा आदि के चूर्ण के सहित उष्ण जल से मूल मन्त्र के द्वारा पीठ के सहित लिङ्ग मूर्त्ति का विशोधन करे फिर गन्धोदक-हिरण्योदक और मन्त्रोदक से रुद्राध्याय का पाठ करते हुए नील रुद्रत्वरित रुद्र पंच ब्रह्मादि से 'नमः शिवाय'-इससे स्नयन कराना चाहिए ।२७। इस प्रकार से पूर्वोक्त अभिषेक करके मस्तक पर पुष्प रक्खे और लिङ्ग के मस्तक को शून्य न करे—इस विषय में श्लोक है—।२८।

यस्य राष्ट्रे तु लिंगस्य मस्तकं शून्यलक्षणम् ।
तस्यालक्ष्मीर्महारोगो दुर्भिक्षं वाहनक्षयः ।२९।
तस्मात्परिहरेद्राजा धर्मकामार्थमुक्तये ।
शून्ये लिंगे स्वयं राजा राष्ट्रं चैव प्रणश्यति ।३०।
एवं सुस्नाप्यार्घ्यं च दत्त्वा संमृज्य वस्त्रेण गंधपुष्पवस्त्रालंकारादींश्च मूलेन दद्यात् ।३१।
धूपाचमनीयदीपनैवेद्यादींश्च मूलेन प्रधानेनोपरि पूजनं पवित्रीकरणमित्युक्तम् ।३ ।
आरार्तिदीपादींश्चैव धेनुमुद्रामुद्रितानि कवचेनावगुंठितानि षष्ठेन रक्षितानि लिंगोपरि लिंगे च लिंगस्याधः साधारणं च दर्शयेत् ।३३।

जिसके राष्ट्र में शून्य लक्षण वाला लिङ्ग का मस्तक होता है उसको अलक्ष्मी, महान् रोग, दुर्भिक्ष और वाहनों का क्षय होता है ।२९। इसीलिये राजा को धर्म-अर्थ-काम और मुक्ति के लिये इस का परिहार करना चाहिए। लिङ्ग के शून्य रहने पर स्वयं राजा और उसका राष्ट्र प्रनष्ट हो जाया करता है ।३०। इस प्रकार से जो कि पहिले भली-भाँति विधि सहित बताया गया है संस्नयन कराकर-अर्घ्य देकर-वस्त्र से संमार्जन करके मूल मन्त्र से गन्धाक्षत पुष्प वस्त्र आदि का समर्पण करे ।३१। धूप-आचमनीय-दीप और नैवेद्य आदि का मूल मन्त्र से, प्रणव से - लिङ्ग

के मस्तक के ऊपर पवित्रीकरण और पूजन कह दिया गया है ।३२। आरार्त्ति दीप आदि-धेनु मुद्रा मुद्रित को कवच से अवगुण्ठित एवं षष्ठ मंत्र से रक्षित करके लिङ्ग के ऊपर-लिङ्ग के मध्य में—लिङ्ग के नीचे साधारण रूप से जिस तरह से वैसे दिखाना चाहिए ।३३।

मूलेन नमस्कारं विज्ञाप्यावाहनस्थापनसन्निरोधसान्निध्यपाद्याचमनीयार्घ्यगंधपुष्पधूपनैवेद्याचमनीयहस्तोद्वतनमुखवासाद्युपचारयुक्तं ब्रह्मांगभोगमार्गेण पूजयेत् ।३४।
सकलध्यानं निष्कलस्मरण परावरध्यानं मूलमंत्रजपः ।
दशांशं ब्रह्मांगजपसमर्पणमात्मनिवेदनस्तुतिनमस्कारादयश्च
गुरुपूजा च पूर्वतो दक्षिणे विनायकस्य ।३५।
आदौ चांते च संपूज्यो विघ्नेशो जगदीश्वरः ।
दैवतैश्च द्विजैश्चैव सर्वकर्मार्थसिद्धये ।३६।
यः शिवं पूजयेदेवं लिंगे वा स्थडिलेपि वा ।
स याति शिवसायुज्यं वर्षमात्रेण कर्मणा ।३७।
लिंगार्चकश्च षण्मासान्नात्र कार्या विचारणा ।
सप्त प्रदक्षिणाः कृत्वा दंडवत्प्रणमेद्बुधः ।३८।
प्रदक्षिणक्रमपादेन अश्वमेध फलं शतम् ।
तस्मात्संपुजयेन्नित्यं सर्वकर्मार्थसिद्धये ।३९।
भोगार्थी भोगमाप्नोति राज्यार्थी राज्यमाप्नुयात् ।
पुत्रार्थी तनयं श्रेष्ठं रोगी रोगात्प्रमुच्यते ।४०।
यान्यांश्चिंतयते कामांस्तांस्तान्प्राप्नोति मानवः ।४१।

मूल मन्त्र से नमस्कार को विज्ञापित करके फिर आवाहन-स्थापन-सन्निरोध-सन्निधी करण-पाद्य-आचमनीय-अर्घ्य गन्ध-पुष्प-धूप-दीप-नैवेद्य-हस्तोद्वर्त्तन-मुख वास ताम्बूलादि को समर्पित करके ब्रह्म मन्त्र रूप पादादि अङ्गों के उपचार क्रम से पूजन करे ।३४। पूर्ण ध्यान-निष्कल का स्मरण-परावर का ध्यान-मूल मन्त्र का जाप-दशांश तर्पण-मार्जनादि-ब्रह्माङ्ग जप समर्पण—आत्म निवेदन—स्तवन और नमस्कार आदि तथा पहिले गुरु का अर्चन और दक्षिण में गणेश का यजन करना चाहिए

।३५। आदि और अन्त में जगत् के ईश्वर विघ्नों के स्वामी गणेश का पूजन करना चाहिए। दैवत और द्विजों को समस्त कर्मों के अर्थ की सिद्धि के लिये करना चाहिए।३६। जो पुरुष इस विधि से लिङ्ग में अथवा स्थण्डिल में शिव का पूजन किया करता है वह एक ही वर्ष के कर्म से भगवान् शिव के सायुज्य की प्राप्ति किया करता है।३७। जो शिव लिङ्ग की अर्चना करने वाला है वह छः मास में ही शिव सायुज्य का लाभ कर लेता है—इसमें कुछ भी विचारणा नहीं करनी चाहिए। बुध पुरुष को सात प्रदक्षिणा करके दण्ड की भाँति भूमि पर गिर कर प्रणाम करना चाहिए। ३८। प्रदक्षिणा के करने में एक २ पद पर सौ अश्वमेध यज्ञ का फल प्राप्त होता है। अतएव समग्र कर्मों के अर्थ की सिद्धि के लिए नित्य ही सम्यक् रूप से पूजा करनी चाहिए। ।३९। जो भोगों के प्राप्त करने की इच्छा वाला पुरुष है वह भोगों की प्राप्ति करता है—राजा लाभ का इच्छुक राज्य प्राप्त करता है—पुत्र प्राप्त करने की अभिलाषा वाला श्रेष्ठ पुत्र प्राप्त करता है और रोग ग्रसित मानव रोग से छुटकारा पा जाया करता है।४०। इनके अतिरिक्त मनुष्य जिन-जिन कामनाओं की चिन्ता करता है उन-उन सब की प्राप्ति किया करता है।४१।

।। ९४–त्रिविध अग्नि कार्य प्रतिपादन ।।

शिवाग्निकार्यं वक्ष्यामि शिवेन परिभाषितम् ।
जनयित्वाग्रतः प्राचीं शुभे देशे सुसंस्कृते ।१।
पूर्वाग्रमुत्तराग्रं च कुर्यात्सूत्रत्रयं शुभम् ।
चतुरस्त्रीकृते क्षेत्रे कुर्यात्कुंडानि यत्नतः ।२।
नित्यहोमाग्निकुडं च त्रिमेखलसमायुतम् ।
चतुस्त्रिव्द्यंगुलायामा मेखला हस्त मात्रतः ।३।
हस्तमात्रं भवेत्कुंडं योनिः प्रादेशमात्रतः ।
अश्वत्थपत्रवद्योनिं मेखलोपरि कल्पयेत् ।४।
कुंडमध्ये तु नाभिः स्यादष्टपत्रं सकर्णिकम् ।

प्रादेशमात्रं विधिना कारयेद्ब्रह्मणः सुत ।५।
षष्ठेनोल्लेखन प्रोक्तं प्रोक्षणं वर्मणा स्मृतम् ।
नेत्रेणालोक्य वै कुंडं षड्रेखाः कारयेद्बुधः ।६।
प्रागायतेन विप्रेंद्र ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः ।
उत्तराग्राः शिवा रेखाः प्रोक्षयेद्वर्मणा पुनः ।७।

इस अध्याय में भगवान् शिव के द्वारा कथित तीन प्रकार का पद्य गद्यों से परम शोभन अग्नि कार्य वर्णित किया जाता है। शैलादि ने कहा—अब मैं भगवान् शिव के द्वारा वर्णित शिवाग्नि कार्य को बताऊंगा। सर्व प्रथम प्राची दिशा का साधन करे। किसी परम शुभ एवं भली-भाँति संस्कार किये हुए भाग में शुभ पूर्वाग्र और उत्तराग्र सूत्र जय को करे। चौकोर किये हुए क्षेत्र में यत्न पूर्वक कुण्ड निर्मित करे ।१। ।२। नित्य होमाग्नि कुण्ड को तीन मेंखलाओं से युक्त बनाना चाहिए। एक हाथ के प्रमाण वाली दो तीन और चार अंगुल याम वाली मेखला बनावे ।३। कुण्ड के एक हाथ प्रमाण वाला होना चाहिए और उसके प्रादेश मात्र में योनि की रचना करे। मेखला के ऊपर पीपल वृक्ष के पत्ते के आकार के तुल्य योनि की रचना की जावे । । कुण्ड के मध्य में अष्ट पत्र और कर्णिका के सहित प्रादेश प्रमाण वाली नाभि को विधि से करना चाहिए ।५। षष्ठ अस्त्र मन्त्र से उल्लेखन बताया गया है और कवच मन्त्र के द्वारा प्रोक्षण कहा गया है। बुध को नेत्र से कुण्ड का आलोकन करके छै रेखा करनी चाहिए ।६। प्रागायत रेखा त्रय के सहित उत्तराग्र शिव रेखाएें जो कि ब्रह्मा-विष्णु और महेश्वर के रूप वाली हैं उनका कवच मन्त्र से प्रोक्षण करना चाहिए ।७।

शमीपिप्पलसंभूतामरणीं षोडशांगुलाम् ।
मथित्वा वह्निबीजेन शक्तिन्यासं हृदैव तु ।८।
प्रक्षिपेद्विधिना वह्निमन्वाधाय यथाविधि ।
तूष्णीं प्रादेशमात्रैस्तु याज्ञिकैः शकलैः शुभैः ।९।
परिसंमोहनं कुर्याज्जलेनाष्टसु दिक्षु वै ।
परिस्तीर्य विधानेन प्रागाद्येवमनुक्रमात् ।१०।

उत्तराग्रं पुरस्ताद्धि प्रागग्रं दक्षिणे पुनः ।
पश्चिमे चोत्तराग्रं तु सौम्ये पूर्वाग्रमेव तु ।११।
ऐन्द्रे चन्द्राग्निमावाह्य याम्य एवं विधीयते ।
सौम्यस्योपरि चांद्राग्नं वारुणाग्नमधस्ततः ।१२।
द्वंद्वरूपेण पात्राणि बर्हिःष्वासाद्य सुव्रत ।
अधोमुखानि सर्वाणि द्रव्याणि च तथोत्तरे ।१३।
तस्योपरि न्यसेद्दर्भाञ्छिवं दक्षिणतो न्यसेत् ।
पूजयेन्मूलमंत्रेण पश्चाद्धोमं समाचरेत् ।१४।

शमी और पीपल में समुत्पन्न अरणी को सोलह अङ्गुल लेकर उसका वह्नि "रम्" — इस बीज से मंथन करे और हृद् मन्त्र से शक्ति न्यास करे तथा विधि के अनुसार अन्वाधान करके वह्नि का प्रक्षेपण करे । तूष्णी भाव से प्रादेश मात्र शुभ याज्ञिक शकलों से योजित करना चाहिए ।८।९। इस प्रकार से प्रागादि के अनुक्रम से विधान से परिस्तरण करके आठों दिशाओं में जल से परि सम्मोहन करना चाहिए ।१०। अत्र परि स्तरण करने की विधि को बतलाते हैं—पहिले उत्तराग्र फिर प्राग् और पुनः दक्षिण तथा तदनन्तर पश्चिम में करे । सौम्य में उत्तराग्र और पूर्वाग्र का करे ।११। दिशाओं के देवताओं का आवाहन बताते हैं—पूर्वदिग्भाग में इन्द्राग्नि दैवत का दक्षिण दिग्भाग में यामाग्नि दैवत का-उत्तर दिग्भाग में चान्द्राग्नि दैवत का और इसके अनन्तर पूर्वदिग्भाग से नीचे पश्चिम दिग्भाग में वारुणाग्न दैवत का आवाहन करना चाहिए ।१२। पात्रासादन विधि को बताया जाता है कि हे सुव्रत ! बर्हियों में द्वन्द्व रूप से पात्रों का आसादन करके समस्त द्रव्यों को उत्तर में अधोमुख करे ।१३। उसके उपर दक्षिण में शिव दर्भों का न्यास करे और मूल मन्त्र से पूजन करके पीछे होम करना चाहिए ।१४।

प्रोक्षणीपात्रमादाय पूरयेदंबुना पुनः ।
प्रादेशमात्रौ तु कुशौ स्थापयेदुदकोपरि ।१५।
प्लावयेच्च कुशाग्रं तु वसोः सूर्यस्य रश्मिभिः ।
विकीर्य सर्वपात्राणि सुसंप्रोक्ष्य विधानतः ।१७।

प्रणीतापात्रमादाय पूरयेदबुना पुनः ।
अन्योदककुशाग्रैस्तु सम्यगाच्छाद्य सुव्रत ।१७।
हस्ताभ्यां नासिकं पात्रमैशान्यां दिशि विन्यसेत् ।
आज्याधिश्रयणं कुर्यात्पश्चिमोत्तरतः शुभम् ।१८।
भस्ममिश्रांस्तथांगारान् ग्राहयेत्सकलेन वै ।
पश्चिमोत्तरतो नीत्वा तत्र चाज्य प्रतापयेत् ।१९।
कुशानग्नौ तु प्रज्वाल्य पर्यग्नि त्रिभिराचरेत् ।
तान्सर्वांस्तत्र निःक्षिप्य चाग्रे चाज्यं निधापयेत् ।२०।
अंगुष्ठमात्रौ तु कुशौ प्रक्षाल्य विधिनैव तु ।
पर्यग्नि च ततः कुर्यात्तैरेव नवभिः पुनः ।२१।

फिर प्रोक्षणी पात्र को ग्रहण कर जल से पूर्ण करे और प्रदेश मात्र कुशाओं को उदक के ऊपर स्थापित करे । ।१५। कुशाग्र को वसु सूर्य की रश्मियों से प्लावित करे और सम्पूर्ण पात्रों को विकीर्ण करके विधान से सम्प्रोक्षण करे ।१६। फिर प्रणीता पात्र को लेकर जल से प्रपूरित करे और अन्योदक युक्त कुशा के अग्र भागों से भली-भाँति समाच्छादन करना चाहिए ।१७। हाथों से प्रणीता पात्र को नासिका के समीप तक लाकर फिर ऐशानी दिशा में उसका विन्यास कर देवे तथा पश्चिमोत्तर में आज्य (घृत) का शुभ स्थापन करना चाहिए ।१८। उमवेष से भस्म से मिश्रित अङ्गारों का ग्रहण करे और पश्चिमोत्तर से लेकर आज्य को तपावे ।१९। अग्नि में कुशाओं को प्रज्वलित करके अग्नि के चारों ओर तीन वार परि चरण करे । उन सब को वहाँ डाल कर आग में आज्य को निधायित करना चाहिए ।२०। विधि से अङ्गुष्ठ मात्र दो कुशाओं का प्रक्षालन कर अग्नि के चारों ओर करे । उनसे ही फिर नौ से करना चाहिए ।२१।

पर्यग्नि च पुनः कुर्यात्तदाज्यमवरोपयेत् ।
अथापकर्षयेत् पात्रं क्रमेणोत्तरपश्चिमे ।२२।
संयुज्य चाग्नि काष्ठेन प्रक्षाल्यारोप्य पश्चिमे ।
आज्यस्योत्पवनं कुर्यात्पवित्राभ्यां तुसहैव ।२३।

पृथगादाय हस्ताभ्यां प्रवाहेण यथाक्रमम् ।
अंगुष्ठानामिकाभ्यां तु उभाभ्यां मूलविद्यया ।२४।
अभ्युक्ष्य दापदेग्नौ पवित्रे घृतपंकिते ।
सौवर्णं स्रुवस्रुवं कुर्याद्रत्निमात्रेण सुव्रत ।२५।
राजत वा यथान्यायं सर्वलक्षणसंयुतम् ।
अथवा याज्ञिकैर्वृक्षैः कर्तव्यौ स्रुकस्रुवा वुभौ ।२६।
अरत्निमात्रमायामं तत्पोत्रे तु बिलं भवेत् ।
षडंगुलपरीणाहं दंडमूल महामुने ।२७।
तदर्वं कंठनालं स्यात्पुष्करं मूलवद्भवेत् ।
गोवालसदृश दंडं स्रुवाग्रं नासिकासमम् ।२८।

फिर पर्यग्नि करे-इस क्रिया से दो वार पर्यग्नि करण समझना चाहिए । तब आज्य का अवरोपण करे । इसके अनन्तर क्रम से उत्तर पश्चिम में पात्र का अपकर्षण करे ।२२। उपवेष से अग्नि का सयोजन करके पश्चिम में आरोपण करे और उपवेष का निरसन कर धोकर जल का उपस्पर्शन करे पवित्र संज्ञा वाले दर्भों के सहित अङ्गुलियों से आज्य का उत्पवन करना चाहिए ।२३। यथाक्रम याज्ञिकोक्त मार्ग से हाथों से पृथक् लेकर मूल विद्या से अङ्गुष्ठ-अनामिका दोनों से अभ्युक्षण करके घृत पंकित पवित्र अग्नि में दिलाना चाहिए । हे सुव्रत ! अरत्नि मात्र से स्रूक् और स्रूवा को सौवर्ण करे ।२४।२५। अथवा समग्र लक्षणों से संयुत यथाविधि स्रुक-स्रुवा को चाँदी का बनवावे । किम्वा ये दोनों याज्ञिक वृक्षों से बनवाने चाहिए ।२६। इनका आयाम अरत्नि मात्र होना चाहिए और मुख में एक बिल होना चाहिए । हे महामुने ! दण्ड का मूल छै अंगुल परीणाह वाला होना चाहिए ।२७। उसके आधे अर्थात् तीन अंगुल परीणाह वाला कण्ठनाल तथा पुष्कर अर्थात् मुख गोपुच्छ के सदृश होवे । स्रुवा का अग्र भाग नासिका के समान करावे २।८।

पुटद्वयंसमायुक्तं मुक्ताद्येन प्रपूरितम् ।
षट्त्रिंशदंगुलायाममष्टांगूलसविस्तरम् ।२९।

उत्सेधस्तु तदर्धं स्यात्सूत्रेण समितं ततः ।
सप्तांगुल भवेद्वास्यं विस्तरायामतः पुनः ।३०।
त्रिभागैकं भवेदग्रं कृत्वा शेषं परित्यजेत् ।
कंठं च द्वयंगुलायामं विस्तारं चतुरंगुलम् ।३१।
वेदिरष्टांगुलायामा विस्तारस्तत्प्रमाणतः ।
तस्य मध्ये बिलं कुर्याच्चतुरंगुलमानतः ।३२।
बिलं सुवर्तितं कुर्यादष्टपत्रं सुकर्णिकम् ।
परितो बिलबाह्ये तु पट्टिकार्धांगुलेन तु ।३३।
तद्बाह्ये च विनिद्रं तु पत्रपत्रविचित्रितम् ।
यवद्वयप्रमाणेन तद्बाह्ये पट्टिका भवेत् ।३४।
वेदिकामध्यतो रंध्रं कनिष्ठांगुलमानतः ।
खातं यावन्मुखांतः स्याद्बिलमानं तु निम्नगम् ।३ ।

अब पूर्णाहुति आदि वृहत स्रुव के विधान को बताते हैं—पुट द्वय से स मायुक्त और मुक्ता आदि से प्रयूरित जिस का आयाम छत्तीस अंगुल होता है और विस्तार आठ अंगुल का होता है। उसकी ऊंचाई उससे आधी अर्थात् चार अंगुल होती है। सूत्र से संमित सात अंगुल का मुख विस्तार और आयाम से होता है ।२६।३०। तीन भागों में से एक भाग अर्थात् बारह अंगुल उसका अग्र भाग होता है । शेष दो भाग को अग्र बाह्य करने के लिये त्याग देना चाहिए। दो अंगुल के आयाम वाला कण्ठ और चार अंगुल का विस्तार होता है ।३१। आठ अंगुल के आयाम से युक्त वेदि होती है और उसके प्रमाण से ही विस्तार भी होता है। उसके मध्य में चार अंगुल का बिल होता है ।३२। बिल आठ पत्रों वाला सुन्दर कर्णिका से युक्त सुवर्तित बनवाना चाहिए। बिल के बाह्य भाग में चारों ओर अर्धाङ्गुल की पट्टिका बनावे ।३३। उस बिल के बाह्य भाग में पत्रों से विचित्र विकसित पद्म बनाना चाहिए। उस पद्म के बहिर्भाग में दो यवों के परिमाण वाली पट्टिका होनी चाहिए ।३४। वेदिका के मध्य में कनिष्ठांगुल मान वाला रन्ध्र जब तक मुखान्त हो तब तक बिल का मान गम्भीर प्रवाह निम्नग खात होवे ।३५।

दड षड गुलं नालं दंडाग्रे दंडिकात्रयम् ।
अर्धांगुलविवृद्धचा तु कर्तव्यं चतुरंगुलम् ।३६।
त्रयोदशांगुलायाम् दंडमूले घट भवेत् ।
व्द्यंगुलस्तु भवेत्कुंभो नाभिं विद्याद्दशांगुलम् ।३७।
वेदिमध्ये तथा कृत्वा पाद कुर्याच्च द्वचंगुलम् ।
पद्मपृष्टसमाकारं पाद वै कर्णिकाकृतिम् ।३८।
गजोष्ठसदृशाकार तस्य पृष्ठाकृतिर्भवेत् ।
अभिचारादिकार्येषु कुर्यात्कृष्णायसेन तु ।३६।
पचविंशत्कुशेनैव स्रुक्स्रवौ मार्जयेत्पुनः ।
अग्रमग्रेण संशोध्य मर्ध्य मध्येन सुव्रत ।४०।
मूलं मूलेन विधिना अग्नौ ताप्य हृदा पुनः ।
आज्यस्थाली प्रणीता च प्रोक्षणी तिस्र एव च ।४१।
सोवर्णी राजती वापि ताम्रो वा मृन्मयी तु:वा ।
अन्यथा नैव कर्त्तव्य शांतिके पौष्टिके शुभे ।४२।

नाल दण्ड मूल दण्ड छै अंगुल का बनावे। दण्ड के अग्र में चार अंगुल और अर्धाङ्गुल की विवृद्धि से वली त्रय करना चाहिए ।३६। त्रयोदश अंगुल के आयाम वाला दण्ड के अग्र भाग में घट अर्थात् शिर करना चाहिए। दो अंगुल के आयाम वाला कुम्भ अर्थात् कम्बु ग्रीव और दश अंगुल वाला नाभि जानना चाहिए ।३७। वेदि के मव्य में पद्म के पृष्ठ के समान आकार से युक्त दशांगुल नाभि करके फिर कर्णिका के आकृति वाला दो अंगुल पाद करना चाहिए ।३८। उस स्रुव की पृष्ठ की आकृति गज के ओठ के आकार के समान होनी चाहिए। अभिचार के कर्मों में अर्थात् जारण-मारणादि के प्रयोगा में इसकी रचना कृष्ण लोहे से करानी चाहिए ।३९। हे सुव्रत ! फिर स्रुक और स्रुव का मार्जन संस्कार पच्चीस कुशाओं से करे। अग्र भाग से अग्र को और मध्य भाग से मध्य भाग का संशोधन करे ।४०। अब आगे पात्र का विधान निरूपित किया जाता है—मूल विधि से मूल को और फिर हृत् मन्त्र से अग्नि में तपावे। आज्य स्थाली प्रणीता और प्रोक्षणी यह तीनों

ही केवल अभिचार कर्मों में लोहे की बनावे अन्यथा शुभ कर्मों मे सुवर्ण-चाँदी-ताम्र अथवा मृन्मयी निर्मित करानी चाहिए। इनके अतिरिक्त पौष्ठिक शुभ कर्मों में अन्य किसी की नहीं करानी चाहिए ।४१।४२।

आयसी त्वभिचारे तु शांतिके मृन्मयी तु वा ।
षडंगुलं सुविस्तीर्णं पात्राणां मुखमुच्यते ।४३।
प्रोक्षणी द्व्यंगुलोत्सेधा प्रणीता द्व्यंगुलाधिका ।
आज्यस्थाली ततस्तस्या उत्सेधा द्व्यंगुलाधिकः ।४४।
यैः समिद्भिर्हुतं प्रोक्तं तैरेव परिधिर्भवेत् ।
मध्यांगुलपरीणाहा अवक्रा निर्व्रणाः समाः ।४५।
द्वात्रिंशदंगुलायामास्तिस्रः परिधयः स्मृताः ।
द्वात्रिंशदंगुलायामैस्त्रिंशद्दर्भैः परिस्तरेत् ।४६।
चतुरंगुलमध्ये तु ग्रथितं तु प्रदक्षिणम् ।
अभिचारादिकार्येषु शिवाग्न्याधान वर्जितम् ।४७।
अकोमलाः स्थिरा विप्र संग्राह्यास्त्वाभिचारिके ।
समग्राः सुसमाः स्थूलाः कनिष्टांगुलसंमिताः ।४८।
अवक्रा निर्व्रणाः स्निग्धा द्वादशांगुसंमिताः ।
समिधस्थं प्रमाणं हि सर्वकार्येषु सुव्रत ।४९।

अभिचार में आयसी अर्थात् लोहे की निर्मित होवे और शान्तिक कर्म में मृत्तिका से निर्मित होनी चाहिए। पात्रों का मुख छै अंगुल वाल सुविस्तीर्ण कहा जाता है। ।४३। प्रोक्षणी पात्र दो अंगुल उत्सेध (ऊंचाई) वाला होवे और प्रणीता पात्र दो अंगुल अधिक होना चाहिए। आज्य स्थाली पात्र का उत्सेध उससे भी दो अंगुल अधिक होना चाहिए ।४४। जिन समिधाओं के द्वारा हवन बताया गया है उन्हीं से परिधि होती है। समिधाएं मध्यमा अँगुलि का बराबर प्रमाण वाली-सीधी-बिना व्रण वाली और समान होनी चाहिए ।४५। बत्तीस अंगुल के आयाम वाली तीन परिधियाँ बताई गई हैं। बत्तीस अंगुल के आयाम से युक्त तीस दर्भों से परिस्तरण करना चाहिए ।४६। चार

अंगुल मध्य में प्रदक्षिण ग्रथित करे किन्तु जब अभिचार आदि के कर्म करते हों तो उनमें शिवाग्नि का आधान वर्जित होता है ।४७। आभिचारिक अर्थात् मारण प्रभृति कर्मों में हे विप्र ! समिधाएं कोमलता से रहित अर्थात् कठोर और स्थिर संगृहीत करनी चाहिए । सुमग्र सुसमान अर्थात् एक-सी, स्थूल और कनिष्ठ अँगुलि के समित समिधाएं होनी चाहिएं ।४८। हे सुव्रत ! समस्त अन्य कार्यों में समिधाओं का प्रमाण द्वादश अंगुल होता है । अभिचार के अतिरिक्त अन्य कर्मों में समिधाएं सीधी वक्रता से रहित-निर्व्रण और स्निग्ध रखनी चाहिए ।४६।

गव्य घृतं ततः श्रेष्ठं कापिलं तु ततोऽधिकम् ।
आहुतीनां प्रमाणं तु स्रुवं पूर्णं यथा भवेत ।५०।
अन्नमक्षप्रमाणं स्याच्छु क्तमात्रेण वै तिलः ।
यवानां च तदर्धं स्यात्फलानां स्वप्रमाणतः ।५१।
क्षीरस्य मधुनो दध्नः प्रमाणं घृतवद्भवेत् ।
चतुःस्रुवप्रमाणेन स्रुचा पूर्णाहुतिर्भवेत् ।५२।
तदर्धं स्विष्टकृत्प्रोक्तं शेषं सर्वं मथापि वा ।
शांतिकं पौष्टिकं चैव शिवाग्नौ जुहुयात्सदा ।५३।
लौकिकाग्नौ महाभाग मोहनोच्चाटनादयः ।
शिवाग्नि जनयित्वा तु सर्वकर्माणि सुव्रत ।५४।
सप्त जिह्वाः प्रकल्प्यैत्र सर्वकार्याणि कारयेत् ।
अथवा सर्वकार्याणि जिह्वामात्रेण सिध्यति ।५५।
शिवाग्निरिति विप्रेंदा जिह्वामात्रेण साधकः ।५६।

गव्य अर्थात् गाय का घी श्रेष्ठ होता हैं और उससे भी अधिक श्रेष्ठ कपिला गौ का घृत होता है। आहुतियों में घृत का प्रमाण यही है कि स्रुव पूरा भरा हुआ होना चाहिए ।५०। अन्न चरु आदि का प्रमाण एक अक्ष होना चाहिए और तिलों का प्रमाण एक शुक्ति होना चाहिए उससे आधे यव (जौ) होने चाहिएं। फल अपने प्रमाण के अनुसार होने चाहिएं। शान्तिक और पौष्टिक कर्मों में सर्वदा शि‍ [illegible] हवन करना चाहिए ।५१।५२।५३। हे महाभाग ! मोहन और उच्चाटन

आदि कर्मों में लौकिक अग्नि में हवन करे। हे सुव्रत ! अन्य समस्त कर्मों में शिवाग्नि को उत्पन्न करके हवन करना चाहिए।५४। शिवाग्नि में सात जिह्वाओं की प्रकल्पना करके सम्पूर्ण कार्या करे। अथवा समस्त कार्य साधक के जिह्वाओं की सम्पूर्णता से सिद्ध होते हैं। हे विप्रेन्द्रो ! साधक की जिह्वा मात्र से शिवाग्नि की सिद्धि होती है। ।५५।५६।

ॐ बहुरूपायै मध्यजिह्वायै अनेकवर्णायै दक्षिणोत्तरमध्यगायै शांतिकपौष्टिकमोक्षादिफलप्रदायै स्वाहा ।५७।

ॐ हिरण्यायै चामीकराभायै ईशानजिह्वायै ज्ञानप्रदायै स्वाहा ।५८।

ॐ कनकायै कनकनिभायै रम्यायै ऐंद्रजिह्वायै स्वाहा ।५९।

ॐ रक्तायै रक्तवर्णायै आग्नेयजिह्वायै अनेकवर्णायै विद्वेषण-मोहनायै स्वाहा ।६०।

ॐ कृष्णायै नैर्ऋतजिह्वायै मारणायै स्वाहा ।६१।

ॐ सुप्रभायै पश्चिमजिह्वायै मुक्ताफलायै शांतिकायै पौष्टिकायै स्वाहा ।६२।

ॐ अभिव्यक्तायै वायव्यजिह्वायै शत्रूच्चाटनायै स्वाहा ।६३

ॐ वह्नये तेजस्विने स्वाहा ।६४।

अब सप्त जिह्वाओं की कल्पना बताते हैं–सात जिह्वाओं के भिन्न २ मन्त्र निम्न प्रकार से दिये जाते हैं—ओम् बहुत रूपों वाली मध्य जिह्वा में सम्पन्न विभिन्न वर्णों से युक्त दक्षिणोत्तर के मध्य में गमन करने वाली-शान्ति, पौष्टिक और मोक्ष आदि के फल को प्रदान करने वाली के लिए स्वाहा अर्थात् नमस्कार है ।५७। ॐ हिरण्य स्वरूपा सुवर्ण के समान आभा वाली ईशान जिह्वा तथा ज्ञान प्रदान करने वाली के लिये स्वाहा है ।५८। ॐ कनक स्वरूपा-कनक (सुवर्ण) के सदृशी-रम्य रूपा और ऐन्द्र जिह्वा वाली के लिये स्वाहा है ।५९।

रक्त वर्णा-रक्ता-आग्नेय दिशा में जिह्वा वाली-अनेक वर्णों से संयुक्त तथा विद्वेषण और मोहन कर देने वाली के लिये स्वाहा है।६०। ॐ कृष्णा-नैऋंत जिह्वा और मारण कर देने वाली के लिए स्वाहा है

।६१। ॐ सुन्दर प्रभा वाली-पश्चिम दिशा की ओर जिह्वा वाली-मुक्ता फला-शान्तिका तथा पौष्टिका के लिये स्वाहा है ।६२। ॐ अभि व्यक्ता-वायव्य जिह्वा और शत्रुओं के उच्चाटन कर देने वाली के लिये स्वाहा है ।६३। सातों जिह्वा मन्त्रों को कहकर प्रधान मन्त्र बताते हैं—"ॐ वह्नये तेजस्विने स्वाहा"—अर्थात् वह्नि स्वरूप तेजो युक्त के लिये स्वाहा अर्थात् नमस्कार है ।६४।

एतावद्वह्निसंस्कारमथवा वह्निकर्मसु ।
नैमित्तिके च विधिना शिवाग्नि कारयेत्पुन: ।६५

निरीक्षण प्रोक्षणं ताडनं च षष्ठेन फडंतेन अभ्युक्षणं चतुर्थेन खननोत्किरणं षष्ठेन पूरण समीकरणमाद्येन सेचनं वौषडंतेन कुट्टनं षष्ठेन संमार्जहोपलेपने तुरीयेण कुंडपरिकल्पनं निवृत्या त्रिभिरेव कुंडपरिधानं चतुर्थेन कुंडार्चनमाद्येन रेखाचतुष्टयसपादनं षष्ठेन फडंतेन वज्रीकरणं चतुष्पदापादनमाद्येन एवं कुंड संस्कारमष्टादशविधम् ।६६।

कुंडसस्कारानंतरमक्षपाटन षष्ठेन विष्टरन्यासमाद्येन वज्रासने वागीश्वर्यावाहनम् ।६७।

ॐ ह्रीं वागीश्वरीं श्यामवर्णां विशालाक्षीं यौवनोन्मत्तविग्रहाम् । ऋतुमतीं वागीश्वरशक्तिमावाहयामि ।६८।

वागीश्वरीं पूजयामि ।६९।

पुनर्वागीश्वरावाहनम् ।७०।

इस तरह से पूर्व में कथित इतना वह्नि का संस्कार करें अथवा वह्नि कर्मों में और नैमित्तिक कर्म में विधि के सहित शिवाग्नि को करना चाहिए ।६५। अब शिवाग्नि विधि बताई जाती है इसमें अठारह प्रकार के कुण्ड के संस्कार होते हैं षष्ठ मन्त्र से निरीक्षण-प्रोक्षण और ताड़न करे, फडन्त से अभ्युक्षण करे-चतुर्थ मन्त्र से खननोत्किरण करना चाहिए । षष्ठ से पूरण एवं समी करण करे-आद्य से सेचन-वौषडन्त से ब्रहन षष्ठ से संमार्जन और उपलेपन करे तुरीय मन्त्र से कुण्ड परि कल्पन-प्राति लोम्प से तीनों अघोर, वाम और सद्य से कुण्ड परिधान अर्थात्

मेखला करण-चतुर्थ से कुण्डार्चन-आद्य मन्त्र से रेखा चतुष्टय का सम्पादन-फडन्त षष्ठ से वज्रीकरण तथा चतुष्पदा पादन और इसी प्रकार से आद्य मन्त्र से कुण्ड संस्कार करना चाहिए ।३६। कुण्ड संस्कार के पश्चात् अक्षयाटन-षष्ठ से विष्टा न्यास-आद्य से वज्र और आसन-वागीश्वरी मन्त्र से आवाहन करना चाहिए ।६७। वागीश्वरी मन्त्र ॐ वाणी की ईश्वरी श्याम वर्ण वाला-विशाल नेत्रों से युक्ता-यौवन से उन्पत्त शरीर के धारण करने वाली और ऋतु से युक्ता वाक् की ईश्वर शक्ति का मैं आवाहन करता हूँ ।६८। वागीश्वरी का पूजन करता हूँ ।६१। फिर वागीश्वर का आवाहन है । ७०।

एकवक्त्रं चतुर्भु जं शुद्धस्फटिकाभं वरदाभयहस्तं परशुमृगधरं जटासुकुटमंडितं सर्वाभरणभुषितमावाहयामि ।७१।

ॐ ईं वागीश्वराय नमः ।

आवाहनस्थापनसन्निधानसन्निरोधपूजातं वागीश्वरीं संभाव्य गर्भाधानवह्निसंस्कारम् ।७२।

अरणीजनितं कांतोद्भवंवा अग्निहोत्रजंवा ताम्रपात्रेशरावेवा आनीय निरीक्षणताडनाभ्युक्षणप्रक्षालनमाद्येनक्रव्यादाशिवपरित्यागोपि प्रथमेन वह्नेश्चैकारण जठरभ्रूमध्यादावाह्याग्नि वैकारणमूर्तावाग्नेयेन उद्दापनामाद्येन पुरुषेण संहितया धारणा धेनुमुद्रां तुरीयेणावगुंठ्य जानभ्यामवनिं गत्वा शरावोत्थापन कुंडोपरि निधाय प्रदक्षिणामावर्त्य तुरीयेणात्मसम्मुखां बागीश्वरी गर्भताड्यां गर्भाधानांतरीयेण कमलप्रदानमाद्येन वौषडतेन कुशार्घ्यं दत्त्वा इंधनप्रदानमाद्यन प्रज्वालनं गर्भाधान चसद्येनाद्येन पूजनं पुंसवनं वामेन पूजन द्वितीयेन सीमतोन्नयनमघोरेण तृतीयेन पूजनम् ।७३।

अब वागीश्वर के आवाहन करने का मन्त्र बतलाया जाता है-एक मुख वाले-चार भुजाओं से सम्पन्न-विशुद्ध स्फटिक मणि के समान आभा से युक्त-वरदान और अभय प्रदान करने वाले हाथों वाले-परशु तथा मृग को धारण करने वाले-जटा और मुकुट को मस्तक पर धारण करने

वाले और सम्पूर्ण आभूषणों से समलङ्कृत का मैं आवाहन करता हूँ ।७१। फिर उक्त मन्त्र से आवाहन करके 'ॐ ईं वागीश्वरीय नम-"— इस मन्त्र से समुचित मुद्राओं को प्रदर्शित करते हुए आवाहन-स्थापन-सन्निधान सन्निरोध करके पूजा की समाप्ति पर्यन्त वागीश्वरी का सत्कार करके गर्भाधान वह्नि-संस्कार करना चाहिए ।७२। अब वह्नि की संस्कार-विधि का निरूपण किया जाता है—अरणी लता की लकड़ी के पारस्परिक संघर्ष करके समुत्पन्न की हुई-सूर्य कान्त मणि के संयोग से समुत्पादित अथवा किसी श्रोत्रिय के अग्निहोत्र से उत्पन्न उसके घर से लाई हुई अग्नि को ताम्र पात्र या शराव (सकोरा-एक मिट्टी का पत्र) में लाकर आद्य मन्त्र में निरीक्षण-ताड़न-अभ्युक्षण-प्रक्षालन-अग्नि का क्रव्यादा शिव परित्याग करके फिर त्रिवर्ग साधन जठर भ्रू मध्य से आवाहन आवाहित मूर्त्ति में आग्नेय मन्त्र से उद्दीपन करे। आद्य के सहित पुरुष संहिता से धेनुमुद्रा करनी चाहिए। तुरीय मन्त्र से अवगुण्ठन करे। दूसरे पात्र से आच्छादन करे। फिर शराव को उठाकर कुण्ड के ऊपर रक्खे, तुरीय मन्त्र से प्रदक्षिणा करके अपने सामने वागीश्वरी का ध्यान करे। गर्भ नाल में गर्भाधान मध्यकाल वौषडन्त आद्य मन्त्र के द्वारा कमल प्रदान करे। फिर कुशा का अर्घ्य देकर आद्य के द्वारा इन्धन प्रदान करना चाहिए। सद्याद्य से अग्नि का प्रदीप्त करण-गर्भाधान पूजन-वामन में पुंसवन और द्वितीय से सीमन्तोन्नयन और अघोर मन्त्र से समर्चन करना चाहिए ।७३।

अवयवव्याप्तिवक्त्रोद्घाटनं वक्त्रनिष्कृतिरिति तृतीयेन गर्भजात-कर्मपुरुषेण पूजनं तुरीयेण षष्ठेन प्रोक्षण सूतकशुद्धये चाग्निसूनु-रक्षाकुशास्त्रेण वक्त्रेणाऽग्नो मूलमीशाग्रं नैर्ऋतिमूलं वायव्याग्रं वायव्यमूलमीशाग्रमिति कुशास्तरणमितिपूर्वोक्त मिध्ममग्रमूलघृताक्तं लालापनोदाय षष्ठेन जुहुयात् ।७४।

पंचपूर्वातिक्रमेण परिधिविष्टरन्यासोऽपि आद्येन विष्टरोपरि हिरण्यगर्भ हरनारायणानपि पूजयेत् ।७५।

इन्द्रादिलोकपालांश्च पूजयेत् ।७६।

वज्रावर्तपर्यंतानपि पूजयेत् ।७७।
वागीश्वरवागीश्वरीपूजाद्येन मुद्वास्य हुतं विसर्जयेत् ।७८।

इसके अनन्तर अवयव व्याप्ति वक्त्रोद्घाटन वक्त्र निष्कृति-इस पूर्व में कहे हुए प्रकार से तृतीय मन्त्र से करे। गर्भजात कर्म तुरीय से पूजन-षष्ठ से सूतक शुद्धि के लिये प्रोक्षण वक्त्र से अग्निरूप पुत्र की कुश युक्त अस्त्र मन्त्र से रक्षा करनी चाहिए। आग्नेयी दिशा में मूल-ऐशानी में ईशाग्र-नैर्ऋति मूल-वायव्य में अग्र इस पूर्वोक्त प्रकार से कुशाओं का आस्तरण करे। इसी तरह पूर्व कथित रीति से घृत में अग्र मूल को अक्त करके लालापनोदन के लिए षष्ठ मन्त्र से हवन करे ।७४। सद्योजातादि पाँचों में पूर्व के अतिक्रम से अर्थात वामादि चार मन्त्रों से परिधि युक्त विष्टर का न्यास करना चाहिए। आद्य के द्वारा भद्रासन के ऊपर हिरण्य-गर्भ हरनारायणों का भी पूजन करना चाहिए ।७५। इन्द्र आदि लोक पालों का भी पूजन करे। ।७६। वज्र से लेकर त्रिशूल पर्यन्त आठों लोकपालों के आयुध विशेषों का भी यजनार्चन करना चाहिए ।७७। वागीश्वर-वागीश्वरी की पूजा आदि करके और इसको उद्वासित करके होम द्रव्य को विसर्जित करे अर्थात् हवन करे ।७८।

स्रुक्स्रुवसंस्कारमथो निरीक्षणप्रोक्षणताडनाभ्युक्षणादीनि पूर्ववत् स्रुक् स्रुवं च हस्तद्वये गृहीत्वा संस्थापनमाद्येन ताडनमपि स्रुक्स्रुवोपरि दर्भानुलेखनमूलमध्यमाऽग्रेण त्रित्वेन स्रुक् शक्ति स्रुवमपि शंभुं दक्षिणपार्श्वे कुशोपरि शक्तये तमः शंभवे नमः ।७९
ततो ह्यन्तिसूत्रेण स्रुक्स्रुवौ तुरीयेण वेष्टयेदर्चयेच्च ।८०।
धेनुमुद्रां दर्शयित्वा तुरीयेणावगुंठ्य षष्ठेन रक्षां विधाय स्रुक्स्रुवसंस्कारः पूर्वमेवोक्तः ।८१।
पुनराज्यसंस्कारः पूर्वमेवोक्त निरीक्षणप्रोक्षणताडनाभ्युक्षणादीनि पूर्ववत् ।८२।
आज्यप्रतापनमैशान्यां वा षष्ठेन वेद्युपरि विन्यस्य घृतपात्रं वितस्तिमात्रं कुशपवित्रं वामहस्तांगुष्ठानामिकाग्रं गृहीत्वा दक्षिणांगुष्ठानामिका मूलं गृहीत्वाग्निज्वालोत्पवनं स्वाहांतेन तुरीयेण पुनः

षड् दर्भान् गृहीत्वा पूर्ववत्स्वात्मसं-लवनं स्वहांतेनाद्येन कुशद्वय-पवित्रबंधन चाद्येन घृते न्यसेदिति पवित्रीकरणम् ।८३।

दर्भद्वयं प्रगृह्याग्निप्रज्वालनं घृतं त्रिधा वर्तयेत् ।
संप्रोक्ष्याग्नौ निधापयेदिति नीराजनम् ।८४।

इसके अनन्तर स्रुक और स्रुव का संस्कार करे। इन दोनों को हाथ में ग्रहण करके पूर्व की भाँति निरीक्षण-प्रोक्षण-ताड़न और अभ्युक्षण आदि करे फिर आद्य मन्त्र से क्रम से संस्थापन और ताड़न भी करे। स्रुक-स्रुव के ऊपर मूल मध्यमाग्र से तीन प्रकार के दर्भों से अनुलेखन करके स्रुक शक्ति-स्रुव को भी और शम्भु को दक्षिण पार्श्व में कुशा के ऊपर "शक्तये नमः-शम्भवे नमः-इन दो मन्त्रों से न्यास करना चाहिए ।७९। इसके पश्चात् समीप वर्त्ती सूत्र से स्रुक-स्रुव को तुरीय मन्त्र के द्वारा वेष्टित करे और अर्चन करे।८०। धेनुमुद्रा को दिखाकर तुरीय मन्त्र से अवगुण्ठन करे और षष्ठ से रक्षा करके स्रुक और स्रुव का संस्कार पहिले बताया हुआ ही करना चाहिए।८१। फिर पूर्व में कथित पूर्व की ही भाँति निरीक्षण-प्रोक्षण-ताड़न अभ्युक्षणादि के द्वारा राज्य संस्कार करना चाहिए।८२। ऐशानी दिशा में आज्य का प्रतापन उस दिशा में षष्ठ मन्त्र से वेदि के ऊपर न्यास करके पवित्री करण करे। एक विलस्त प्रमाण वाला कुशा का पवित्र को बाँये हाथ के अङ्गुष्ठ और अनामिका के अग्र भाग को तथा दक्षिण हस्त के अँगुठे और अनामिका के मूल को ग्रहण करके अग्नि ज्वाला में उत्पवन और स्वाहा अन्त में लगा कर तुरीय मन्त्र से फिर छै दर्भों को ग्रहण कर स्वदेह में सप्लवन तथा स्वाहान्त आद्य मन्त्रों से दो कुशाओं के द्वारा पवित्र बन्धन और आद्य से घृत में न्यास करे-वह पवित्री करण है।८३। दो दर्भ ग्रहण करके अग्नि प्रज्वालन घृत को तीन वार परिभ्रमण करे। सम्प्रोक्षण कर अग्नि में निधापित करे-यह नीराजन है।८४।

पुनर्दर्भान् गृहीत्वा कीटकादि निरीक्ष्यार्घ्येण संप्रोक्ष्य दर्भानग्नौ निधाय इत्यवद्योतनम् ।८५।

दर्भद्वयं गृहीत्वाग्निज्वालया घृतं निरीक्षयेत् ।८६।

दर्भेण गृहीत्वा तेनाग्रद्वयेन शुक्लपक्षद्वयेनाद्येनेति कृष्णपक्षसंज्ञा न घृतं त्रिभागेन विभज्य स्रुवेणैकभागेनाज्येनाग्नये स्वाहा द्वितीयेनाज्येन सोमाय स्वाहा आज्येन ॐ अग्नीषोमाभ्यां स्वाहा आज्येनाग्नये स्विष्टकृते स्वाहा ।८७।

पुनः कुशेन गृहीत्वा संहिताभिमंत्रेण नमोन्तेनाभिमंत्रयेत् ।८८।

अभिमंत्र्य धेनुमुद्राप्रदर्शनं कवचावगुंठनास्त्रेण रक्षाम् ।

अथ संस्कृते निधापयेत् आज्यसंस्कारः ।८९।

आज्येन स्रुग्वदनेन चक्राभिघारण शक्तिबीजादीशानमूर्तये स्वाहा । पूर्ववत्पुरुषवक्त्राय स्वाहा अघोरहृदयाय स्वाहा वामदेवाय गुह्याय स्वाहा सद्योजातमूर्तये स्वाहा ।

इति वक्त्रोद्घाटनम् ।९०।

अब अवद्यतन बतलाते हैं—फिर दर्भादि का ग्रहण कर अर्थात् अन्य दर्भ के सहित पवित्र को लेकर कीटक आदि का निरीक्षण कर अर्घ्य से सम्प्रोक्षण करके फिर उन दर्भों को अग्नि में निधापित कर देवे । । यही अवद्योतन होता है ।८५। दर्भ द्वय को ग्रहण कर अग्नि ज्वाला से घृत का निरीक्षण करे ।८६। दर्भ के साथ पवित्र का ग्रहण कर उस पवित्र के अग्र द्वय से सद्योजात मन्त्र के द्वारा शुक्ल पक्ष रूप जो भागद्वय उसके साथ कृण पक्ष के तृतीय भाग रूप का सम्पादन अर्थात् पृथक्करण करे । फलितार्थ यह होता है कि घृत का तीन भागों में विभाजन करे । उनमें कृष्ण पक्ष संज्ञक एक भाग घृत से स्रुव से "अग्नये स्वाहा"—द्वितीय भाग आज्य से "सोमाय स्वाहा"—"ॐ अग्नि सोमाभ्यां स्वाहा"—"स्विष्टकृते स्वाहा"-इन मन्त्रों का उच्चारण करते हुए घृत से आहुतियाँ देवे ।८७। पुनः कुश के सहित पवित्र को ग्रहण कर 'नमः'—यह जिसके अन्त में ही ऐसे संहिताभि मन्त्र से अभिमन्त्रित करना चाहिए ।८८। अभिमन्त्रण करके धेनुमुद्रा प्रदर्शन-कवच के द्वारा अवगुन्ठन और अस्त्र के द्वारा रक्षा करनी चाहिए । इसके अनन्तर संस्कार से विशिष्ट पवित्रों को अग्नि में स्थापित करना चाहिए । इस प्रकार से आज्य संस्कार करना चाहिए । अब वक्त्रोद्घाटन कहा जाता है—शक्तिबीज से स्रुक वदन वाले अर्थात्

स्रुक् के मुख में स्थापित घृत से चक्रावधारण हवि को अर्थात् द्रव्य में चक्र के सदृश अभिधारण किया हुआ 'ईशान मूर्तये स्वाहा'—पूर्ववत् 'पुरुष वक्त्राय स्वाहा'—'अघोर हृदयाय स्वाहा'–'वाम देवाय गुह्याय स्वाहा'—'सद्योजात मूर्त्तये स्वाहा'–इत्यादि मन्त्रों के द्वारा हवन करना चाहिए। यह वक्त्रोद्घाटन है।९०।

ईशानमूर्तये तत्पुरुषवक्त्राय स्वाहा तत्पुरुषवक्त्र य अघोरहृदयाय स्वाहा अघोरहृदयाय वामगुह्याय सद्योजातमूर्त्ये स्वाहा इति वक्त्रसंधानम्।९१।

ईशानमूर्तये तत्पुरुषाय वक्त्राय अघोरहृदयाय वामदेवाय गुह्याय सद्योजाताय स्वाहा इति वक्त्रैक्यकरणम्।९२।

शिवाग्नि जनयित्वैवं सर्वकर्माणि कारयेत्।
केवलं जिह्वया वापि शांतिकाद्यानि सर्वदा।९३।
गर्भाधानादिकार्येषु वह्नेः प्रत्येकमव्यय।
दश आहुतयो देया योनिबीजनेन पंचधा।९४।
शिवाग्नौ कल्पयेद्दिव्यं पूर्ववत्परमासनम्।
आवाहन तथा न्यासं यथा देवे तथार्चनम्।९५।
मूलमंत्र सकृज्जप्त्वा देवदेवं प्रणम्य च।
प्राणायाम त्रयं कृत्वा सगर्भं सर्वसंमतम्।९६।
परिषेचनपूर्वं च तदिध्ममभिघार्य च।
जुहुयादग्निमध्ये तु ज्वलितेऽथ महामुने।९७।
आघारावपि चाधाय चाज्येनैव तु षण्मुखे।
आज्यभागौ तु जुहुयाद्विधिनैव घृतेन च।९८।

अब वक्त्र सन्धान बतलाया जाता है—'ईशान मूर्त्ति-तत्पुरुष-वक्त्र-अघोर हृदय वाले-अघोर हृदय वाम गुह्य और सद्योजात मूर्त्ति के लिए स्वाहा हैं—यह इस प्रकार से वक्त्र का सन्धान किया जाता हैं। पुनः इसी उक्त प्रकार के मन्त्र से ईशानमूर्त्तये इत्यादि से सद्योजात मूर्त्तये इत्यन्त पर्यन्त बोलकर आहुति देते हुए वक्त्रैक्य करण करना चाहिए।९१।९२। इस प्रकार से शिव की अग्नि का जनन करके सम्पूर्ण कर्म

कराने चाहिए। केवल जिह्वा से सर्वदा शान्तिकादि कर्म करे।९३। गर्भाधान आदि कार्यों में अग्नि में दश या योनि बीज से पाँच प्रकार की आहुतियाँ देनी चाहिए।९४। शिवाग्नि में पूर्व की भाँति परम आसन की कल्पना करे। जिस तरह से देव का अर्चन होना है उसी प्रकार से आवाहन और न्यास करना चाहिए। मूल मन्त्र का एक बार जाप करके और देवों के देव को प्रणाम करे। तीन बार प्राणायाम सगर्भ सर्व समस्त करके हे महामुने ! परिषेचन पूर्वक उस इध्म का अभिधारण कर प्रज्वलित अग्नि के मध्य में हवन करना चाहिए।९४।९५।९६।९७। आधारों का भी आधान करके छै सद्योजातादि जिसके मुख के समान हैं उसमें विधिपूर्वक घृत से आज्य भागों का हवन करे।९८।

चक्षुषी चाज्यभागो तु चाग्नये च तथोत्तरे।
आत्मनो दक्षिणे चैव सोमायेति द्विजोत्तम।९९।
प्रत्यङ्मुखस्य देवस्य शिवाग्नेर्ब्राह्मणःसुत।
शक्षि वै दक्षिणं चैव चोत्तरं चोत्तरं तथा।१००।
दक्षिणं तु महाभाग भवत्येव न संशयः।
आज्येनाहुतयस्तत्र मूलनैव दशैव तु।१०१।
चरुणा च यथावद्धि समिद्भिश्च तथा स्मृतम्।
पूर्णाहुतिं ततो दद्यान्मूलमंत्रेण सुव्रत।१०२।
सर्वावरणदेवानां पंचपंचैव पूर्ववत्।
ईशानादिक्रमेणैव शक्तिबीजक्रमेण च।१०३।
प्रायश्चित्तमघोरेण स्वेष्टांतं पूर्ववत्स्मृतम्।
त्रिप्रकारं मया प्रोक्तमग्निकार्यं सुशोभनम्।१०४।
यथावसरमेवं हि कुर्यान्नित्यं महामुने।
जीवितांते लभेत्स्वर्गं लभते अग्निदीपनम्।१०५।
नरकं चैव नाप्नोति यस्य कस्यापि कर्मणः।
अहिंसकं चरेद्धोमं साधको मुक्तिकांक्षकः।१०६।
हृदिस्थं चिंतयेग्नि ध्यानयज्ञेन होमयेत्।
देहस्थं सर्वभूतानां शिवं सर्वजगत्पतिम्।१०७।

त ज्ञात्वा होमयेद्भक्त्या प्राणायामेन नित्यशः ।
बाह्यहोमप्रदाता तु पाषाणे दर्दुरो भवेत् ।१०८।

हे द्विजोत्तम ! अपने उत्तर भाग में दोनों आज्य भागों का अग्नि के लिये और दक्षिण भाग में सोम के लिये हवन करना चाहिये ।९९। अब उक्त अय सव्य होम का कारण बताते हैं—हे ब्रह्मा के पुत्र ! प्रत्यङ्मुख देव शिवाग्नि की दक्षिण अक्षि (नेत्र) और उत्तर-उत्तर उसी प्रकार से दक्षिण होता ही है । हे महाभाग ! इसमें संशय नहीं है । वहाँ पर मूल मन्त्र के द्वारा आज्य की दश आहुतियाँ देनी चाहिए ।।१००।१०१। ये यथावत् चरु से तथा समिधाओं से कही गईं हैं । हे सुव्रत ! इसके अनन्तर मूल मन्त्र से पूर्णाहुति देनी चाहिये ।१०२। समस्त आवरण देवों की पूर्व की भाँति पाँच-पाँच ही ईशानादि क्रम से और शक्ति बीज के क्रम से देवे ।१०३। प्रायश्चित्त स्वेष्टान्त तक अघोर मन्त्र से पूर्व के ही समान बताया गया है । इस तरह मैंने तीन प्रकार का सुशोभन अग्निकार्य कहा गया है ।१०४। हे महामुने ! अवसर के अनुसार इस प्रकार से नित्य ही करना चाहिए । जीवन के अन्त में ऐसा करने वाला मानव स्वर्ग की प्राप्ति करता है और अग्नि दीपन का लाभ किया करता है ।१०५। जिस कर्म्म के करने पर भी कभी नरक की प्राप्ति नहीं किया करता है । जो मुक्ति की इच्छा रखने वाले साधक को अहिंसक होम का समाचरण करना चाहिये ।१०६। हृदय में अग्नि का चिन्तन करे और ध्यान के यज्ञ से होम करना चाहिये । देह में स्थित समस्त भूतों के शिव और सम्पूर्ण जगतों के पति का ध्यान करे । ऐसे प्रभु का पहिचान करके भक्ति-भाव के साथ होम करे और नित्य ही प्राणायाम के द्वारा करे । जो ब्राह्य होम के प्रदान करने वाला होता है वह पाषाण में दर्दुर होता है ।१०७।१०८।

।। ९५—शिव लिंग अघोर अर्चन विधि ।।

अथवा देवमीशानं लिंगे संपूजयेच्छिवम् ।
ब्राह्मणः शिवभक्तश्च शिवध्यानपरायणः ।१।

अग्निरित्यादिना भस्म गृहीत्वा ह्यग्निहोत्रजम् ।
उद्धूलयेद्धि सर्वाङ्गमापादतलमस्तकम् ।२।
आचामेद्ब्रह्मतीर्थेन ब्रह्मसूत्री ह्युदङ् मुखः ।
अथोंनमः शिवायेति तनुं कृत्वात्मनः पुनः ।३।
देवं च तेन मंत्रेण पूजयेत्प्रणवेन च ।
सर्वस्मादधिका पूजा अघोरेशस्य शूलिनः ।४।
सामान्यं यजनं सर्वमग्नि कार्यं च सुव्रत ।
मंत्रभेदः प्रभोस्तस्य अघोरध्यानमेव च ।५।
अघोरेभ्योंऽथ घोरेभ्यो घोरघोरतरेभ्यः सर्वेभ्यः ।
सर्वशर्वेभ्यो नमस्ते अस्तु रुद्ररूपेभ्यः ।६।
अघोरेभ्यः प्रशांतहृदयाय नमः ।
अथ घोरेभ्यः सर्वात्मब्रह्मशिरसे स्वाहा ।
घोरघोरतरेभ्यः ज्वालामालिनी शिखायै वषट् ।
सर्वेभ्यः सर्वशर्वेभ्यः पिंगलकवचाय हुम् ।
नमस्ते अस्तु रुद्ररूपेभ्यः नेत्रयाय वषट् ।
सहस्राक्षाय दुर्भेदाय पाशुपतास्त्राय हुं फट् ।
स्नात्वाचम्य तनुं कृत्वा समभ्युक्ष्याघर्षणम् ।
तर्पणं विधिना चार्घ्यं भानवे भानुपूजनम् ।७।
समं चाघोरपूजायां मंत्रमात्रेण भेदितमू ।
मागशुद्धिस्तथा द्वारि पूजां वास्तवधिपस्य च ।८।

(शिव लिङ्ग अघोर-अर्चन विधि वर्णन) इस अध्याय में उत्तम अघोरार्चन का वर्णन किया जाता हैं-अथवा ईशान शिव देव का लिङ्ग मे समर्चन करे । ब्रह्म और शिव का भक्त शिव के ध्यान में परायण होकर पूजन करे ।१। 'अग्नि'—इत्यादि मन्त्र के द्वारा अग्नि होत्र से समुत्पन्न भस्म का ग्रहण कर पाद तल से लेकर मस्तक पर्यन्त सम्पूर्ण अङ्ग को उद्धूलित करे अर्थात् सब शरीर में भस्म लगावे २। ब्रह्म सूत्री उत्तर की ओर मुख करके ब्रह्म तीर्थ से आचमन करे । इसके अनन्तर पुनः 'ओम नमः शिवाय'—इस मन्त्र से अपने शरीर को पवित्र

करे ।३। इसी मन्त्र से अथवा केवल प्रणव से देव का अर्चन करना चाहिए । अघोरेश शूली की पूजा सबसे अधिक महत्त्व वाली होती है ।४। हे सुव्रत ! अन्य सम्पूर्ण यजन और अग्नि कार्य सामान्य होता है । उस प्रभु का मन्त्र भेद होता है और अघोर का ध्यान उसमें किया जाता है ।५। उसका मन्त्र यह है—'अघोरों के लिए-घोरों के लिए घोर तरों के लिये सब शर्वों के लिये रुद्र रूपों के लिए नमस्कार होवे' ।६। अब इसके न्यास बताते हैं—जिस अङ्ग का न्यास हो उसी अङ्ग पर हस्त रखना चाहिए 'अघोरेभ्यः प्रशान्त हृदयाय नम'—इससे हृदय पर न्यास करे । 'घोरेभ्यः सर्वात्मा ब्रह्म शिरसे स्वाहा'—इससे शिर पर न्यास करे । 'घोर घोर तरेभ्यः ज्वाला मालिनी शिखायै वषट्' इससे शिखा पर न्यास करे । 'सर्वेभ्यः सर्व शर्वेभ्यः पिंगल कवचाय हुन्'—इससे बाहुओं पर न्यास करे । 'नमस्ते अस्तु रुद्र रूपेभ्यः नेत्र त्रयाय वषट्'—इससे नेत्रों पर न्यास करे । सहस्त्रा क्षाय दुर्भेदाय पाशुपतास्त्राय हुं फठ्'—इससे कर तल से न्यास करे । अब पूजा की विधि को बतलाया जाता है-स्नान करके-आचमन करके तथा शरीर का अभ्युक्षण करके अधमर्षण-तर्पण और भानु के लिए अर्घ्य और पूजन समान रूप से पूर्व तुल्य करके अघोर की पूजा में मन्त्र मात्र से भिन्न करना चाहिए । मार्ग की शुद्धि तथा द्वार पर वास्तु के अधिय की पूजा करे ।७।८।

कृत्वा करं विशोध्याग्रे स शुभासनमास्थितः ।
नासाग्रकमले स्थाप्य दग्धाक्षः क्षुभिकाग्निना ।९।
वायुना प्रेर्य तद्भस्म त्रिशोध्य च शुभांभसा ।
शक्त्यामृतमये ब्रह्मकलां तत्र प्रकल्पयेत् ।१०।
अघोरं पंचधा कृत्वा पंचांगसहितं पुनः ।
इत्थ ज्ञानक्रियामेवं विन्यस्य च विधानतः ।११।
न्यासस्त्रिनेत्रतहितो हृदि ध्यात्वा वरासने ।
नाभौ वह्निगत स्मृत्वा भ्रूमध्ये दीपवत्प्रभुम् ।१२।
शांत्या बीजांकुरानतधर्माद्य रपि संयुते ।
सोमसूर्याग्निसंपन्ने मूर्तित्रयसमन्विते ।१३।

वामादिभिश्च सहिते मनोन्मन्याप्यधिष्टते ।
शिवासनेतममूर्तिस्थमक्षयाकार रूपिणम् ।१४।
अष्टात्रिशत्कलादेहं त्रितत्वसहित शिवम् ।
अष्टादशभुज देव गजचर्मोत्तारीयकम् ।१५।

शुभ आसन पर समासीन होकर सबसे पूर्व हाथ को विशुद्ध करे फिर नासाग्र के समीप हस्त कमल में भस्म को स्थापित करके क्षुभकाग्नि से दग्ध व्यवहार वाले वायु से प्रेर्य उस भस्म को शुभ जल से विशोधित करे। ब्रह्ममय उस भस्म में शक्ति के साथ ब्रह्म कला की कल्पना करे ।९।१०। अघोर संज्ञा वाले मन्त्र को पाँच प्रकार का करके पचाङ्ग भस्म से विलेपन युक्त करे । इस प्रकार से विधि-विधान से ज्ञान युक्ता क्रिया का विन्यास करके हे वरानने ! अघोर मूर्त्ति के सहित न्यास करना चाहिये । हृदय के श्रेष्ठ आसन पर ध्यान करके नाभि में वह्निगत का स्मरण करके भौंहों के मध्य में दीप की शिखा की भाँति प्रभु का चिन्तन करे ।११।१२। अब ध्यान का प्रकार बताते हैं शान्ति और बीजाङ्कुर अनन्त धर्माद्यों से संयुत सोम सूर्याग्नि से समन्वित मूर्त्ति त्रय से युक्त वामादि से संयुत और मनोन्मनी से अधिष्ठत शिवासन पर आत्म मूर्त्ति में संस्थित-अक्षय आकार और रूप वाले-अड़तीस कला से युक्त देह वाले-तीन तत्वों के सहित शिव का ध्यान करे जिनकी अठारह भुजायें हैं और जो गज के चर्म के उत्तरीय वाले देव हैं ।१३।१४।१५।

सिंहाजिनांबरधरमघोरं परमेश्वरम् ।
द्वात्रिंशाक्षररूपेण द्वात्रिंशच्छक्तिभिर्वृतम् ।१६।
सर्वाभरणसंयुक्तं सर्वदेवनमस्कृतम् ।
कपालमालाभरणं सर्ववृश्चिकभूषणम् ।१७।
पूर्णेंदुवदनं सौम्य चंद्रकोटिसमप्रभम् ।
चंद्ररेखाधरं शक्त्या सहितं नीलरूपिणम् ।८।
हस्ते खड्गं खेटकं पाशमेके रत्नैश्चित्रं चांकुशं नागकक्षाम् ।
शरासनं पाशुपतं तथास्त्रं दडं च खट्वांगमथापरे च ।१९।
तंत्री च घंटां विपुलं च शूलं तथापरे डामरूकं च दिव्यम् ।

वज्रं गदां टंकमेकं च दीप्तं ममुद्गरंहस्तमथास्य शंभोः ।२०
वरदाभयहस्तं च वरेण्तं परमेश्वरम् ।
भावयेत्पूचयेच्चापि वह्नौ होम. च कारयेत् ।२१।

यह देव सिंह के चर्म का वस्त्र धारण करने वाले हैं। अघोर स्वरूप परमेश्वर-बत्तीस अक्षरों के रूप से बत्तीस शक्तियों से समावृत हैं ।१६। सम्पूर्ण आभरणों से समलंकृत समस्त देवों के द्वारा वन्द्यमान-कपाल अर्थात् नर मुण्डों की माला के भूषण स विभूषित-समग्र बिच्छुओं की भूषा से सुशोभित हैं ।१७। पूर्ण चन्द्र के तुल्य मुख वाले परम सौम्य स्वरूप-करोड़ों चन्द्रमाओं की प्रभा के तुल्य प्रभा से सम्पन्न चन्द्र की रेखा के धारण करने वाले-शक्ति के सहित और नील रूप वाले हैं ।१८। एक हाथ में खंग है और एक हस्त में खेटक तथा पाश लिए हुए हैं। किसी हाथ में रत्नों से जटित परम चित्रित अंकुश हैं तो किसी हाथ में नाग कक्षा है। शूरासन-पाशुपत अस्त्र, दण्ड और खट्वांग धारण किये हुए हैं। तन्त्री घण्टा-विपुल शूल और दूसरे हाथ में दिव्य डामरुक लिये हुए हैं। वज्र-गदा-टङ्क-दीप्त मुद्गर शम्भो के हाथ में विराजमान हैं ।१९।२०। वरदान अभय दोनों हाथों में रखने वाले परम वरेण्य-परमेश्वर की भावना करे और फिर पूजन करनी चाहिए और होम करे ।२१।

होमश्चपूर्ववत्सर्वो मंत्रभेदश्च कीर्तितः ।
अष्टपुष्पादि गंधादि पूजास्तुतिनिवेदनम् ।२२।
अंतर्बलि च कुंडस्य वाह्येन विधानतः ।
मंडल विधिना कृत्वा मंत्रैरेतैर्यथाक्रमम् ।२३।
रुद्रेभ्यो मातृगणेभ्यो यक्षेभ्योऽसुरेभ्यो ग्रहेभ्यो राक्षसेभ्यो नागेभ्यो नक्षत्रेभ्यो विश्वगणेभ्यः क्षेत्रपालेभ्यः अथ वायुवरुणदिग्भागे क्षेत्रपाल बलिं क्षिपेत् ।
अर्घ्यं गंधं पुष्पं च धूपं दीपं च सुव्रताः ।
नैवेद्यं मुखवासादि निवेद्यं वै यथाविधि ।२४।
विज्ञाप्यैवं विसृज्याथ अष्टपुष्पैश्च पूजनम् ।
सर्वसामान्यमेतद्धि पूजायां मुनिपुंगवाः ।२५।

एवं संक्षेपतः प्रोक्तमघोरार्चादि सुव्रत ।
अघोरार्चाविधानं च लिंगे वा स्थंडिलेऽपि वा ।२६।
स्थंडिलात्कोटिगुणितं लिंगार्चनमनुत्तमम् ।
लिंगार्चनरतो विप्रो महापातकसंभवैः ।२७।
पापैरपि न लिप्येत पद्मपत्रमिवांभसा ।
लिंगस्य दर्शनं पुण्यं दर्शनात्स्पर्शनं वरम् ।२८।
अर्चनादधिकं नास्ति ब्रह्मपुत्र न संशयः ।
एवं सक्षेपतः प्रोक्तमधारार्चनमुत्तमम् ।२९।
वर्षकोटिशतेनाथि विस्तरेण न शक्यते ।३०।

होम करने का वही प्रकार होता है जो पहिले बता दिया गया हैं केवल मन्त्रों का ही सिर्फ भेद होता है। अब पुष्पादि और गन्धादि से पूजा तथा फिर स्तवन का निवेदन करना चाहिए ।२२। वह्नि पुराण में वर्णित विधान से कुण्ड की अन्तर्वलि होम करना चाहिये । इन मन्त्रों से क्रमानुसार विधि पूर्वक मण्डल करे ।२३। रुद्रों के लिये-मातृगण-यक्ष असुर ग्रह राक्षस-नाग-नक्षत्र-विश्वगण-क्षेत्रपाल वलि देवे और वायु-वरुण दिग्भाग में क्षेत्रपाल की बलि देनी चाहिए । हे सुव्रतो ! अर्घ्य-गंध-पुष्प-धूप दीप-नैवेद्य और मुख वास आदि यथाविधि समर्पित करे ।२४। इस प्रकार से विशेष ज्ञापन कक्के और विसर्जन करके हे मुनिश्रेष्ठो ! पूजा में आठ पुष्पों से यह पूजन सर्व सामान्य होता है ।२५। हे सुव्रत ! इस तरह से अघोरार्चादि संक्षेप से कह दिया गया है । अघोरार्चा का विधान लिग में तथा स्थलाण्डित में दोनों प्रकार का होता है ।२६। स्थण्डिल से करोड़ों गुरग उत्तम लिङ्गार्चन माना जाता है । लिंगार्चन में निरत रहने वाला पुरुष महा पातकों से होने वाले पापों से भी जल से पद्मपत्र की भाँति लिप्त नहीं हुआ करता है । लिङ्ग के दर्शन से महा पुण्य होता है और दशंन से भी स्पर्श करना परम श्रेष्ठ होता है ।२७।२८। लिंग के अर्चन से अधिक तो हे ब्रह्मपुत्र ! कुछ भी अन्य श्रेष्ठतम नहीं होता हैं इसमें संशय नहीं है । इस प्रकार से संक्षेप से उत्तम अघोरार्चन का विधान निरूपित कर दिया है । इसका विस्तार पूर्वक वर्णन यदि कोई

करना चाहे तो करोड़ों वर्षों में भी नहीं किया जा सकता है ।२९।३०।

।। ९६—श्री जयाभिषेक वर्णन ।।

प्रभावो नंदिनश्चैव लिंगपूजाफलं श्रुतम् ।
श्रुतिभिःसंमितं सर्वं रोमहर्षण सुव्रतः ।१।
जयाभिषेक ईशेन कथिता मनवे पुरा ।
हिताय मेरुशिखरे क्षत्रियाणां त्रिशूलिना ।२।
तत्कथं षोडशविधं महादानं च शोभनम् ।
वक्तुमर्हसि चास्माकं सूत बुद्धिमतांवर ।३।
जीवच्छ्राद्धं पुरा कृत्वा मनुः स्वायंभुवः प्रभुः ।
मेरुमासाद्य देवेशमस्तवीन्नलालोहितम् ।४।
तपसा च विनीताय प्रहृष्टः प्रददौ भवः ।
दिव्यं दर्शनमीशान स्तेनापश्यत्तमव्ययम् ।५।
नत्वा संपूज्य विधिना कृतांजलि पुटः स्थितः ।६।
हर्षगद्गदया वाचा प्रोवाच च नमाम च ।६।
देवदेव जगन्नाथ नमस्ते भुवनेश्वर ।
जीवच्छ्राद्धं महादेवं प्रसादेन विनिर्मितम् ।७।
पूजितश्च ततो देवो दृष्टश्चैव मयाधुना ।
शक्राय कथितं पूर्वं धर्मकामार्थमोक्षदम् ।८।
जयाभिषेकं देवेश वक्तुमर्हसि मे प्रभो ।
तस्मै देवो महादेवो भगवान्नीललोहितः ।९।

जयाभिषेक वर्णन । इस अध्याय में मनु के लिए परम सन्तुष्ट महेश के द्वारा वर्णित जयाभिषेक का निरूपण किया जाता है। ऋषियों ने कहा—हे सुव्रत रोमहर्षण ! नन्दी का प्रभाव और श्रुति से संमित संपूर्ण लिंग पूजा का फल हमने श्रवण कर लिया है ।१। मेरु शिखर में क्षत्रियों के कल्याण के लिये पहिले समय में भगवान् महेश त्रिशूली के द्वारा जयाभिषेक का वर्णन किया गया है ।२। हे बुद्धिमानों में परम श्रेष्ठ सूतजी ! वह परम शोभन सोलह प्रकार का महादन किस प्रकार का

होता हैं यह आप हमारे सामने वर्णन करने को योग्य होते हैं । ।३। सूतजी ने कहा—प्राचीन काल में प्रभु स्वायम्भुव मनु ने जीवच्छ्राद्ध करके मेरु शिखर में प्राप्त हुए और वहाँ देवेश भगवान् नील लोहित का स्तवन किया था ।४। तपश्चर्या से परम विनय से युक्त मनु को भगवान् भव ने परम प्रहृष्ट होकर अपना दिव्य दर्शन दिया था । इससे उन अव्यय ईशान को मनु ने देखा था ।५। मनु ने उन को प्रणाम किया था और भली-भाँति से पूजत करके हाथ जोड़कर भगवान् के समक्ष में मनु स्थित हो गये । उन्होंने प्रणाम किया और हर्ष से गद्गद वाणी से बोले ।६। हे देवों के भी देव ! आप समस्त भुवनों के ईश्वर और इस जगत् स्वामो हैं । महादेव के प्रसाद से मैंने जीवित रहते हुए श्राद्ध किया है ।७। और इसके अनन्तर देव का पूजन किया है और इस समय मैंने आपका दर्शन भी प्राप्त कर लिया हैं । पहिले समय में इन्द्रदेव के लिये जो धर्मार्थ काम तथा मोक्ष का प्रदान करने वाला जयाभिषेक कहा था । हे देवेश ! वही अब मुझे बताने की कृपा कीजिये । सूतजी ने कहा—उस समय में नील लोहित भगवान् महादेव ने उसको यह सम्पूर्ण जलाभिषेक स्वयं ही कहा था ।८।९।

जयाभिषेकमखिलमवदत्परमेश्वरः ।
जयाभिषेकं वक्ष्यामि नृपाणां हितकाम्यया ।१०।
अपमृत्युजयार्थं च सर्व शत्रुजयाय च ।
युद्धकाले तु संप्राप्ते कृत्वैवमभिषेचनम् ।११।
स्वपतिं चाभिषिच्यैव गच्छेद्योद्धुं रणाजिरे ।
विधिना मंडप कृत्वा प्रपां वा कूटमेव वा ।१२।
नवधा स्थापयेद्वह्निं ब्राह्मणो वेदपारगः ।
ततः सर्वाभिषेकार्थं सूत्रपात च कारयेत् ।१३
प्रागाद्यं वर्णसूत्रं च दक्षिणाद्यं तथा पुनः ।
सहस्राणां द्वय तत्र शतानां चतुष्टयम् ।१४।
शेषमेव शुभं कोष्ठं तेषु तु संहरेत् ।
वाह्ये वीथ्यां पदं चैकं समंतादुपसंहरेत् ।१५।

अंगसूत्राणि संगृह्य विधिना पृथगेव तु।
प्रागाद्यं वर्णसूत्रं च दक्षिणाद्यं तथा पुनः ।१६।
प्रागाद्यं दक्षिणाद्यं च षट्त्रिंशतसंहरेत्क्रमात्।।
प्रागाद्याः पंक्तयः सप्त दक्षिणाद्यास्तथा पुनः ।१७।

भगवान् श्री महादेव ने कहा—अब मैं इस जयाभिषेक का वर्णन राजाओं के हित की कामना से तुम्हारे समक्ष में करूँगा ।१०। जिस समय युद्ध का काल उपस्थित हो जाता हैं तो उस समय में अपमृत्यु के जप करने के लिए और शत्रुओं पर पूर्णतया जप प्राप्त करने के लिए इस अभिषेक को करे ।११। पहिले अपने स्वामी शिव का अभिषेचन करके फिर रणक्षेत्र में युद्ध करने के लिए जाना चाहिए। विधि पूर्वक मण्डप की रचना करे उसमें पानीय शाला या निश्चल स्थान का निर्माण करना चाहिये ।१२। वेदों के पारगामी ब्राह्मण को वह्नि की नौ प्रकार से स्थापना करनी चाहिये। इसके अनन्तर सब के अभिषेक के लिये सूत्रपात करे अर्थात् रेखाकरण करे ।१३। प्रागाद्य और दक्षिणाद्य वर्ण सूत्र जिस तरह होवे वैसे दो सहस्र और चार सौ शेष शुभ उक्त शेष भागों में मध्य स्थान करना चाहिये। कोष्ठ के बाहिर भाग में वीथी में चारों ओर एक पद की उपकल्पना करनी चाहिये ।१४।१५। अवान्तर सूत्रों का संग्रह करके विधि से पृथक् ही प्रागाद्य और दक्षिणाद्य वर्ण सूत्र के साथ छत्तीस रेखायें करे। प्रागाद्य सात तथा दक्षिणाद्या सात पंक्तियाँ करनी चाहिये ।१६।१७।

तस्मादेकोनपंचाशत्पंक्तयः परिकीर्तिताः।
नव पंक्तीर्हरेन्मध्ये गन्धगोमयवारिणा ।१८।
कमलं चालिखेत्तत्र हस्तमात्रेण शोभनम्।
अष्टपत्रं [illegible] तं वृत्तं कर्णिकाकेसरान्वितम् ।१९।
अष्टांगुलप्रमाणेन कर्णिका हेमसन्निभा।
चतुरंगुलमानेन केसरस्थानमुच्यते ।२०।
धर्मो ज्ञानं च वैराग्यमैश्वर्यं च यथाक्रमम्।
आग्नेयादिषु कोणेषु स्थापयेत्प्रणवेन तु ।२१।

अव्यक्तादीनि वै दिक्षु गात्राकारेण वै न्यसेत् ।
अव्यक्तं नियतः कालः कालो चेति चतुष्टयम् ।२२।
सितरक्तहिरण्याभकृष्णा धर्मादयः क्रमात् ।
हंमाकारेण वै गात्रं हेमाभासेनः सुव्रताः
आधारशक्तिमध्ये तु कमलं सृष्टिकारणम् ।
बिंदुमात्रं कलामध्ये नादाकारमतः परम् ।१४।
नादोपरि शिवं ध्यायेदोंकाराख्यं जगद्गुरुम् ।
मनोन्मनीं च पद्माभं महादेवं च भःवयेत् ।२५।

इस प्रकार से उनचास पंक्तियाँ परिकीर्तित की गई है । मध्य भाग में गंध गोमय और जल से लिप्त करके नौ पंक्तियाँ ग्रहण करनी चाहिये ।१८। उसमें एक हाथ के प्रमाण वाला परम शोभन कमल का आलेखन करे जिस कमल में सित एवं वृत्त आठ पत्र होवें और कर्णिका भी केसर से युक्त होनी चाहिये ।१९। वह कर्णिका हेम के सदृश आठ अंगुल के प्रमाण वाली विरचित करे । चार अंगुल के प्रमाण से युक्त केसर का स्थान कहा जाता है ।२०। प्रणव के द्वारा यथाक्रम धर्म ज्ञान-वैराग्य और ऐश्वर्य आग्नेयादि कोणों में स्थापित करे ।२१। वाह्य पत्रा कार से दिशाओं में अव्यक्त आदि का न्यास करना चाहिये । अव्यक्त नियत काल है और चतुष्टय काली होता है ।२२। धर्म अर्थ आदि का क्रम से वर्ण सित-रक्त-हिरण्याम और कृष्ण होता है । गात्र की कल्पना हेमाभ हंसा कार से करे ।२३। आधार शक्ति के मध्य में कमल सृष्टि का कारण माना गया है । कला मध्म में विन्दु मात्र नाद का आकार है । इससे पर नाद के ऊपर ओङ्कार नाम वाले जगत् के गुरु भगवान् शिव का ध्यान करना चाहिये । मनोन्मनी पद्माभ महादेव की भावना करनी चाहिये ।२४।२५।

वामादयः क्रमेणैव प्रागाद्याः केसरेषु वे ।
वामो ज्येष्ठा तथा रौद्री काली विकरणी तथा ।६।
वला प्रमथिनी देवी दमनी च यथाक्रमम् ।
वामदेवादिभिः सार्धं प्रणवेनैंव विन्यसेत् ।२७।

नमोऽस्तु वामदेवाय नमो ज्येष्ठाय शूलिने ।२८।
रुद्राय कालरूपाय कलाविकरणाय च ।
बलाय च तथा सर्वभूतस्य दमनाय च ।२९।
मनोन्मनाय देवाय मनोन्मन्यैं नमोनमः ।
मन्त्रैरेतैर्यथान्यायं पूजयेत्परिमंडलम् ।३०।
प्रथमावरणं प्रोक्तं द्वितीयावरण शृणु ।
द्वितीयावरणे चैव शक्तयः षोडशैव तु ।३१।
तृतीया वरणे चैव चतुर्विशदनुक्रमात् ।
पिशाच वीथिर्वै मध्ये नाभिवीथिः समंततः ।३२।

केसरों में प्रागाद्या वामा आदि क्रम से ही विन्यस्त करे । वामा-ज्येष्ठा-रौद्री-काली-विकरणी-वला-प्रमथिनी-देवी और दमनी इनका क्रम के अनुसार वामादि के साथ ही प्रणव के द्वारा विन्यास करना चाहिए ।२६।२७। वामदेव के लिए नमस्कार है–ज्येष्ठ शूली के लिए नमस्कार है ।२८। कालरूप रुद्र के लिए कला विकरण के लिए बल तथा सर्व भूतों के दमन करने वाले के लिये-मनोन्मन देव तवा मनोन्मनी के लिये बारम्बार नमस्कार है। इन मन्त्रों के द्वारा परिमण्डल का पूजन करना चाहिये ।२९।३०। अब तक प्रथम आवरण का निरूपण किया गया है । अब द्वितीय आवरण का श्रवण करो । द्वितीय आवरण में सोलह ही शक्तियाँ हैं ।३१। तीसरे आवरण में क्रमानुसार चौबीस हैं । मध्य में पिशाच वीथी है और चारों ओर नाभि वीथी है ।३२।

मंत्रैरेतैर्यथान्यायं पिशाचानां प्रकीर्तिता ।
अष्टोत्तर सहस्रं तु पदमष्टारसंयुतम् ।३३।
तेषुतेषु पृथक्त्वेन पदेषु कमल क्रमात् ।
कल्पयेच्छालिमीवारगोधूमैश्च यवादिभिः ।३४।
तंडुलैश्च तिलैर्वाथ गौरसर्षपसंयुतैः ।
अथवा कल्पयेदेतैर्यथाकालं विधानतः ।३५।
अष्टपत्रं लिखेत्तेषु कर्णिकाकेसरान्वितम् ।
शालीनामाढकं प्रोक्तं कमलानां पृथक् पृथक् ।३६।

तंडुलानां तदर्धं स्वात्तदर्धं च यवादयः ।
द्रोणं प्रधानकुम्भस्य तदर्धं तंडुलाः स्मृताः ।३७।
तिलनामाढकं मध्ये यवानां च तदर्धकम् ।
अथांभसा समभ्युक्ष्य कमलं प्रणवेन तु ।३८।

इन वक्ष्य माण मन्त्रों के द्वारा पिशाचों की पूजा की गई है। आठ कोणों वाले एक सहस्र आठ स्थान करना चाहिये ।३३। उन-उन प्रत्येक स्थानों में शालिनीवार-गोधूय-यव आदि से कमल का पृथक् रूप से कल्पना करे ।३४। तण्डुल-तिल गौर सर्षय आदि से संयुत इनके द्वारा इनसे यथा काल विधान से कल्पना करे ।३५। उन कमलों में कर्णिका और केसर से अन्वित अष्ट पत्र की रचना करे। प्रत्येक कमल की रचना करने के लिये एक आढक शाली का परिमाण होना चाहिये यदि ताण्डलों से रचना की जावे तो इनका मान शाली से आधा होना चाहिये। और यव से काम लिये जावे तो इनका प्रमाण तण्डुल से आधा होना चाहिये। प्रधान कुम्भ का चतुर्गुण द्रोण है उसका आधा भाग तण्डुल कहे गये हैं ।३६।३७। तिलों का परिमाण एक आढ़क है और मध्य में यव उसके अर्ध भाग होने चाहिये। इसके अनन्तर जल से प्रणव के द्वारा कमल का अभ्युक्षण करे ।३८।

तेषु सर्वेषु विधिना प्रणवं विन्यसेत्क्रमात् ।
एवं समाप्य चाभ्युक्ष्य पदसाहस्रमुत्तमम् ।३९।
कलशाना सहस्राणि हैमानि च शुभानि च ।
उक्तलक्षणयुक्तानि कारयेद्राज़तानि वा ।४०।
ताम्रजानि यथान्यायं प्रणवेनार्घ्य वारिणा ।
द्वादशांगुलविस्तारमुदरे समुदाहृतम् ।४१।
वर्तितं तु तदर्धेन नाभिस्तस्य विधीयते ।
कंठ तु व्द्यंगुलोत्सेध विस्तरं चतुरगुलम् ।४२।
ओष्ठं च व्द्यंगुलोत्सेधंनिर्गम द्वयंगुलस्मृतम् ।
तत्तद्वै द्विगुणं दिव्यं शिवकुंभे प्रकीर्तितम् ।४३।
यवमात्रांतरं सम्यक्तंतुना वेष्टयेद्धि वै ।

अवगुंठ्य तथाभ्युक्ष्य कुशोपरि यथाविधि ।४४।
पूर्ववत्प्रणवेनैव पूरयेद्गधवारिणा ।
स्थापयेच्छिवकुंभाढ्यं वधनीं च विधानतः ।४५।
मध्यपद्मस्य मध्ये तु सकूर्चं साक्षतं क्रमात् ।
आवेष्ट्य वस्त्रयुग्मेन प्रच्छाद्य कमलेन तु ।४६।
हैमेन चित्ररत्नेन सहस्रकलशं पृथक् ।
शिवकुंभे शिव स्थाप्य गायत्र्या प्रणवेन च ।४७।

उन-उन समस्त कमलों में विधि पूर्वक प्रणव का विन्यास करना चाहिये । इस प्रकार से उत्ताम एक सहस्र पद का अभ्युक्षण पूरा समाप्त करे ।३९। इसके उपरान्त एक सहस्र परम शुभ सुवर्ण कलश अथवा उक्त लक्षण से युक्त चाँदी के कलशों का निर्माण करावे ।४०। अथवा ताम्र के न्याय के अनुसार वनवावे और प्रणव के द्वारा अर्घ्य के जल से प्रोक्षण करे । उदर में कलश का विस्तार बारह अंगुल होना चाहिए ।४१। उसका आधा परिमाण वाली वृत्ताकार नाभि की जाती है । दो अंगुल ऊँचाई वाला और चार अंगुल विस्तार से युक्त कण्ड होना चाहिये ।४२। दो अंगुल उत्सेध वाला ओष्ठ कल्पित करे और दो अंगुल वाला निर्गम कहा गया है । वह शिव कुम्भ में दिव्य और द्विगुण वताया गया है ।४३। यव के प्रमाण के अन्तर पर भली-भाँति तन्तु से वेष्टित करे । अङ्गुण्ठन करके तथा अभ्युक्षण करके यथाविधि कुश के ऊपर पूर्व की भाँति गन्ध युक्त जल से पूरित करना चाहिये । शिव कुम्भ से समृद्ध वर्धनी अर्थात् खंग रूपिणी को विधान से स्थापित करे ।४४।४५। मध्य में जिसके पद्म है ऐसे मध्य पद्म कुम्भ मध्य में कूर्च और अक्षतों के सहित जैसे हो वैसे दो वस्त्रों से क्रम से आवेष्टित करके हैम चित्र रत्न कमल से सहस्त्र कलश को पृथक् परिच्छादन करे । गायत्री और प्रणव से शिव कुम्भ में शिव की स्थापना करे ।४६।४७।

विद्महे पुरुषायैव महादेवाय धीमहि ।
तन्नो रुद्रः प्रचोदयात् ।४८।
मंत्रेणानेन रुद्रस्य सान्निध्यं सर्वदा स्मृतम् ।

वर्धन्यां देविगायत्र्या देवी संस्थाप्य पूजयेत् ।४६।
गणांबिकायै विद्महे महातप.य धीमहि ।
तन्नो गौरी प्रचोदयात् ।५०।
प्रथमावरणे चैव वामाद्याः परकीर्तिताः ।
प्रथमावरण प्रोक्तं द्वितीय वरणं शृणु ।५१।
शक्तयः षोडशैवात्र पूर्वाद्यतेषु सुव्रत ।
ऐंद्र व्यूहस्य मध्ये तु सुभद्रां स्थाप्य पूजयेत् ।५२।
भद्रामाग्नेयचक्रे तु याम्ये तु कनकांडजाम् ।
अंबिकां नैर्ऋते व्यूहे मध्यकुंभे तु पूजयेत् ।५३।
श्रीदेवीं वारुणे भागे वागीशां वायुगोचरे ।
गोमुखीं सौम्यभागे तु मध्यकुंभे तु पूजयेत् ।५४।

'पुरुषाय विघ्न हे महादेवाय धीमहि, तन्नो रुद्रः प्रचोदयात्' यह रुद्र गायत्री मन्त्र है अर्थात् हम पुरुष का ज्ञान प्राप्त करते हैं और महादेव का ध्यान करते हैं । वह रुद्रदेव हमको प्रेरणा प्रदान करें । इस मन्त्र से रुद्र का सान्निध्य सर्वदा बताया गया है । वर्धनी में देवि गायत्री से देवी को संथापित कर उसका पूजन करना चाहिये ।४८।४६। देवी गायत्री मन्त्र यह होता है —'गणाम्बिकायै विघ्न हे महा तपायै धीमहि । तन्नो गौरी प्रवोदयात्' । अर्थात् गणों की अम्विका को ज्ञान द्वारा प्रस्तुत करते हैं और महा तपा का हम ध्यान किया करते हैं । वह देवी गौरी हमको प्रेरणा प्रदान करे ।५०। प्रथम आवरण में वोमाद्या परिकीर्तित की गईं हैं । इस तरह प्रथम आवरण तो नता दिया गया है अब द्वितीय आवरण के विषय में श्रवण करो ।५१। हे सुव्रत ! इस द्वितीय आवरण में पूर्वाद्यन्तों में शक्तियाँ तो सोलह ही होती हैं । ऐन्द्र व्यूह के मध्य में सुभद्रा की स्थापना करके पूजन करना चाहिए ।५२। आग्नय चक्र में भद्रा और याम्य में कनकाण्डजा को नैर्ऋत मैं अम्बिका को कुम्भ के मध्य में व्यूह में पूजन करे ।५३। वारुण भाग में श्री देवी को वायुगोचर में वागीशा को सौम्य भाग में गो मुखी को मध्य कुम्भ में पूजित करना चाहिए ।५४।

रुद्रव्यूहस्य मध्ये तु भद्रकर्णा समर्चयेत् ।
ऐंद्राग्नि विदिशार्मध्ये पूजयेदणिमां शुभाम् ।।५५
याम्यापावकयोर्मध्ये लघिमां कमले न्यसेत् ।
राक्षसांतकयोर्मध्ये महिमां मध्यतो यजेत् ।।५६
वरुणासुरयोर्मध्ये प्राप्ति वै मध्यतो यजेत् ।
वरुणानिलयोर्मध्ये प्राकाम्यं कमले न्यसेत् ।।५७
वित्तेशा निलयोर्मध्ये ईशित्वं स्थाप्य पूजयेत् ।
वित्तेशेशानयोर्मध्ये वशित्वं स्थाप्य पूजयेत् ।।५८
ऐंद्रेशेशानयोर्मध्ये यजेत्कामावसायकम् ।
द्वितीयावरणं प्रोक्तं तृतीयावरणं शृणु ।।५९
शक्तयस्तु चतुर्विशत्प्रधानकलशेषु च ।
पूजयेव्द्यूहमध्ये तु पूर्ववद्विधिपूर्वकम् ।।६०
दीक्षां दीक्षायिकां चेव चडां चंडांशुनायिकाम् ।
सुमंति सुमत्यायीं च गोपां गोपायिकां तथा ।।६१
अथ नंद च नंदायीं पितामहमतः परम् ।
पितामहायीं पूर्वाद्यं विधिना स्थाप्य पूजयेत् ।।६२

रुद्र व्यूह के मध्य में भद्र कर्णा का अर्चन करे। ऐन्द्राग्नि विदिशाओं के मध्य में शुभा अणिमा का यजन करे ।। ५५ ।। याम्य और पावक विदिशाओं के मध्य में कमल में लघिमा का न्यास करे । राक्षस और अन्तक विदिशाओं के मध्य में मध्य में महिमा का पूजन करना चाहिए। वरुणा सुरों के मध्य में प्राप्ति का पूजन करे और वरुणानिलों के मध्य में कमल में प्राकाम्य सिद्धि का न्यास करे ।।५६।।५७।। वित्तेश और अनिल के मध्य में ईशित्व को स्थापित कर उसका पूजन करे। वित्तेश और ईशान के मध्य में वशत्व सिद्धि की स्थापना करके उसका समर्चन करना चाहिए ।।५८।। ऐन्द्र और ईशान दिशाओं के मध्य भाग में कामा-वसायक का अर्चन करे। यह द्वितीय आवरण भी बतला दिया गया है। इसके अनन्तर अब तीसरे आवरण को सुनो ।।५९।। इसमें चौबीस शक्तियां हैं और प्रधान कलशों में व्यूह के मध्य में पूर्व की भाँति विधि-विधान

के साथ पूजन करना चाहिए ।।६०।। दीक्षा-दीक्षायिका-चण्डा चण्डांशु नायिका-सुमति-सुमत्यायी-गोपा-गोपायिका-नन्द-नन्दायी-पितामह-पितामहायी इनको पूर्वाद्य विधि से स्थापित करके अर्चन करे ।।६१।।६२।।

एवं संपूज्य विधिना तृतीयावरणं शुभम् ।
सौभद्रं व्यूहमासाद्य प्रथमावरणे क्रमात् ।।६३
प्रागाद्यं विधिना स्थाप्य शक्त्यष्टकमनुक्रमात् ।
द्वितीयावरणे चैव प्रागाद्यं शृणु शक्तयः ।।६४
षोडशैव तु अभ्यर्च्य पद्ममुद्रां तु दर्शयेत् ।
बिंदुका बिंदुगर्भा च नादिनी नादगर्भजा ।।६५
शक्तिका शक्तिगर्भा च परा चैव परापरा ।
प्रथमावरणेऽष्टौ च शक्तयः परिकीर्तिताः ।।६६
चंडा चंडमुखी चैव चंडवेगा मनोजवा ।
चंडाक्षी चडनिर्घोषा भृकुटी चंडनायिका ।।६७
मनोत्सेधा मनोध्यक्षा मानसी माननायिका ।
मनोहरी मनोह्लादो मनःप्रीतिमहेश्वरी ।।६८
द्वितीयावरणे चैव षोडशैव प्रकीर्तिताः ।
सौभद्रः कथितो व्यूहो भद्रं व्यूह शृणुष्व मे ।।६९
ऐंद्री हौताशनी याम्या नैर्ऋती वारुणी तथा ।
वायव्या चैव कौबेरी ऐशानी चाष्टशक्तयः ।।७०

इस तरह से विधि के साथ शुभ तृतीयावरण का पूजन करके प्रथमावरण में क्रम से सौभद्र व्यूह को प्राप्त करके विधि पूर्वक प्रागाद्य को स्थापित करके शक्तियों के अष्टाक को अनुक्रम से पूजन करे। अब द्वितीयावरण में प्रागाद्य शक्तियों का श्रवण करो ।।६३।।६४।। सोलह प्रागाद्य का अभ्यर्चन करके पद्म मुद्रा को दिखलाना चाहिए। बिन्दुका-विन्दुगर्भा-नादिनी-नाद गर्भजा-शक्ति का-शक्ति गर्भा-वरा और परापरा ये प्रथम आवरण में आठ ही शक्तियाँ कीर्त्तित की गई हैं ।।६५।।६६।। चण्डा-चण्ड मुखी-चण्ड वेगा-मनोजवा-चण्डाक्षी-चण्ड निर्घोषा-भृकुटी-चण्ड नायिका-मनोत्सेधा-मनोध्यक्षा-मानसी-मान नायिका-मनोहारी-मनोह्लादी-यज-

प्रीति और महेश्वरी—ये द्वितीय आवरण में सोलह परि कीर्त्तित की गई है। सौभद्र व्यूह कहा गया है। अब भद्र व्यूह को मुझ से सुनो ।।६७।। ।।६८।।६९।। ऐन्द्री-हौताशिनी-याम्या-नैर्ऋती-वारुणी-वायव्या-कौवेरी-और ऐशानी ये आठ शक्तियाँ होती हैं ।।७०।।

प्रथमावरणं प्रोक्तं द्वितीयावरणं श्रृणु।
हरिणी च सुवर्णा च कांचनी हाटकी तथा ।।७१
रुक्मिणी सत्यभामा च सुभगा जंवुनायिका।
वाग्भवा वाक्पथा वाणी भीमा चित्ररथा सुधीः ।।७२
वेदमाता हिरण्याक्षी द्वितीयावरणे स्मृता।
भद्राख्यः कथितो व्यूहः कनकाख्यं श्रृणुष्व मे ।।७३
वज्रं शक्ति च दंडं च खङ्ग पाशं ध्वजं तथा।
गदां त्रिशूलं क्रमशः प्रथमावरणे स्मृताः ।।७४
युद्धा प्रबुद्धा चंडा च मुंडा चैव कपालिनी।
मृत्युहंत्री विरूपाक्षी कपर्दा कमलासना ।।७५
दंष्ट्रिणी रंगिणी चैव लंबाक्षी कंकभूषणी।
संभावा भाविनी चैव षोडशैव प्रकीर्तिताः ।।७६
कथितः कनकव्यूहो ह्यम्बिकाख्य श्रृणुष्व मे।
खेचरी चात्मना सा च भवानी वह्निरूपिणी ।।७७
वह्निनी वह्निनाभा च महिमामृत लालसा।
प्रथमावरणे चाष्टौ शक्तयः सर्वसंमताः ।।७८

प्रथम आवरण कह दिया गया है अब द्वितीय आवरण का श्रवण करो। हरिणी-सुवर्णा-कांचनी-हाटकी-रुक्मिणी-सत्यभामा सुभगा-जम्बु-नायिका-वाग्भवा-वाक्यथा वाणी-भीमा-चित्ररथा-सुधी-वेदमाता-हिरण्या-क्षी-ये द्वितीय आवरण में बताई गईं हैं। भद्र नाम वाला व्यूह कहा गया है। अब कनक नामक को मुझसे सुन लो ।।७१।।७२।।७३।। वज्र-शक्ति-दण्ड-खङ्ग-पाश-ध्वज-गदा-त्रिशूल—ये क्रम से प्रथम आवरण में कहे गये हैं ।।७४।। युद्धा-प्रबुद्धा-चण्डा-मुण्डा-कपालिनी-मृत्यु हन्त्री-विरूपाक्षी-कपर्दा-कमलासना-दंष्ट्रिणी-रङ्गिणी लम्बाक्षी-कंकभूषणी-सम्भावा-भाविनी

ये सोलह कीर्त्तित की गई हैं ।।७५।।७६।। कनक व्यूह वर्णित किया गया है। अब आगे अम्बिकाख्य व्यूह को आप लोग मुझसे श्रवण कर लो। खेचरी-आत्मना-भवानी–वह्नि रूपिणी-वह्निनी–वह्निनाभा–मह्निमा–अमृत लालसा—ये प्रथम आवरण में आठ शक्तियाँ सब के सम्मत होती हैं। ।।७७।।७८।।

क्षमा च शिखरा देवी ऋतुरत्ना शिला तथा।
छाया भूतपनी धन्या इंद्र माता च वैष्णवी ।।७९
तृष्णा रागवती मोहा कामकोपा महोत्कटा।
इन्द्रा च बधिरा देवी षोडशैता: प्रकीर्तिता: ।।८०
कथितश्चांबिका व्यूहः श्रीव्यूहं श्रृणु सुव्रत।
स्पर्शा स्पर्शवती गधा प्राणापाना सम निका ।।८१
उदाना व्याननामा च प्रथमावरणे स्मृताः।
तमोहता प्रभामोघा तेजिनो दहिनी तथा ।।८२
भीमास्या जालिनी चोषा शोषिणी रुद्रनायिका।
वीरभद्रा गणाध्यक्षा चंद्रहासा च गह्वरा ।।८३
गणमातांबिका चैव शक्तयः सर्वसंमताः।
द्वितीयावरणे प्रोक्ता: षोडशैव यथाक्रमात् ।।८४
श्रीव्यूहः कथितो भद्र' वागीशं श्रृणु सुव्रत।
धारा वारिधरा चैव वह्निकी नाशकी तथा ।।८५
मर्त्यातीता महामाया वज्रिणी कामधेनुका।
प्रथमावरणेऽप्येवं शक्तयोऽष्टौ प्रकीर्तिताः ।।८६
पयोष्णी वारुणी शांता जयंती च वरप्रदा।
प्लाविनी जलमाता च पयोमाता महांबिका ।।८७
रक्ता कराली चंडाक्षी महोच्छुष्मा पयस्विनी।
माया विद्येश्वरी काली कालिका च यथाक्रमम् ।।८८
षोडशैव समाख्याता: शक्तयः सर्वसंमताः।
व्यूहो वागीश्वरः प्रोक्तो गोमुखो व्यूह उच्यते ।।८९।।
शंकिनी हालिनी चैव लंकावर्णा च कल्किनी।

यक्षिणी मालिनी चैव वमनी च रसात्मनी ॥९०
प्रथमावरणे चव शक्तयोऽष्टौ प्रकीर्त्तिताः ।
चडा घंटा महानादा सुमुखी दुर्मुखी बला ॥९१
रेवती प्रथमा घोरा सैन्या लीना महाबला ।
जया च विजया चैव अपरा चापराजिता ॥९२
द्वितीयावरणे चैव शक्तयः षोडशैव तु ।
कथितो गोमुखीव्यूहो भद्रकर्णी शृणुष्व मे ॥९३

क्षमा-शिखरा-देवी ऋतुरत्ना-शिला छाया भूतयिनी—धन्या-इन्द्रमाता-वैष्णवी-तृष्णा-रागवती-मोहा-काम कोपा-महोत्कटा-इन्द्रा-वधिरा-और देवी—ये षोडश बताई गई हैं ॥७९॥८०॥ यह अम्बिका व्यूह निरूपित कर दिया गया है। आगे अब हे सुव्रत ! श्री व्यूह को सुनो। स्पर्शा-स्पर्शवती-गन्धा-प्राणापाना-समानिष्का-उदावा-व्यान नामा ये प्रथम आवरण में वर्णित की गई हैं। तमोहता-प्रभामोधा-तेजिनी दहिनी भीमास्या-जालिनी-चाषा-शोषिणी-रुद्र नायिका-वीरभद्रा-गणाध्यक्षा-चन्द्रहासा-गह्वरा-गण माता और अम्बिका ये शक्तियाँ सर्व सम्मत हैं। द्वितीय आवरण में यथा क्रम सोलह ही बताई गई हैं ॥८१॥८२॥८३॥८४॥ हे सुव्रत ! यह श्री व्यूह बता दिया है। अब भद्र वागीश व्यूह का श्रवण करो। धारा-वारिधरा-वह्निकी-नाशकी-मर्त्यातीता-महा माया-वज्रिणी-कामधेनुका—ये प्रथम आवरण में आठ शक्तियाँ कीर्त्तित की गई हैं ॥८५॥८६॥ पयोष्णी—बारुणी—शान्ता-जयन्ती-वरप्रदा-प्लाविनी-जलमाता पयोमाता महाम्बिका। रक्ता—कराली—चण्डाक्षी—महोच्छुष्मा—पयस्विनी—माया-विद्येश्वरी-काली और यथाक्रम कालिका ये षोड़श ही शक्तियाँ सब के द्वारा सम्मत समाख्यात की गई हैं। यह वागीश्वर व्यूह निरूपित कर दिया गया है। अब गोमुख व्यूह कहा जाता है ॥८७॥८८॥८९॥ शङ्खिनी ह्लालिनी—लङ्कावर्णा-कल्किनी—यक्षिणी—मालिनी—वमनी-रसात्मती—ये प्रथम आवरण में आठ ही शक्तियाँ कही गई हैं। चन्द्रा-घण्टा-महानादा-सुमुखी—दुर्मुखी—बला—रेवती—प्रथमा—घोरा—सैन्या-लीना-महाबला--जया-विजया-अपरा-अपराजिता—ये द्वितीय आवरण में सोलह ही शक्तियाँ

होती हैं । यह गोमुखी व्यूह तो कह दिया गया है । आगे भद्रकर्णी व्यूह को मुझ से तुम श्रवण कर लो । ६०॥६१॥६२॥६३॥

महाजया विरूपाक्षी शुक्लाभाकाशमातृका ।
संहारी जातहारी च दंष्ट्राली शुष्करेवती ॥६४
प्रथमावरणे चाष्टौ शक्तयः परिकीर्तिताः ।
पिपीलिका पुण्यहारी अशनी सर्वहारिणी ॥६५
भद्रहा विश्वहारी च हिमा योगेश्वरी तथा ।
छिद्रा भानुमती छिद्रा सहिकी सुरभी समा ॥६६
सर्वभव्या च वेगाख्या शक्तयः षोडशैव तु ।
महाव्यूहाष्टकं प्रोक्तमुपव्यूहाष्टकं शृणु ॥६७
अणिमाव्यूहमावेष्टच प्रथमावरणे क्रमात् ।
ऐंद्रा तु चित्रभानुश्च वारुणी दंडिरेव च ॥६८
प्राणरूपी तथा हसः स्वात्मशक्तिः पितामहः ।
प्रथमावरणं प्रोक्त द्वितीया वरणं शृणु ॥६९
केशवो भगवान् रुद्रश्चंद्रमा भास्करस्तथा ।
महात्मा च तथा ह्यात्मा ह्यंतरात्मा महेश्वरः ॥१००
परमात्मा ह्यणुर्जीवः पिंगलः पुरुषः पशुः ।
भोक्ता भूतपतिर्भीमो द्वितीयावरण स्मृताः ॥१०१

महाजया, विरूपाक्षी, शुक्लाभा, आकाश मातृका, संहारी, जातहारी दंष्ट्राली, शुष्क रेवती—ये प्रथम आवरण में आठ शक्तियाँ परि कीर्त्तित की गईं हैं । पिपीलिका, पुण्य हारी, अशनी, सर्वहारिणी, भद्रका, विश्वहार, हिमा, योगश्वरी, छिद्रा, भानुमती, छिद्रा सेंहिकी, सुरभी, समा, सर्वभव्या और वेगाख्या—ये सोलह ही शक्तियाँ होती हैं । महा व्यूहाष्टक कह दिया गया है । आगे अब उप व्यूहाष्टक का श्रवण करो ॥६४॥६५॥६६॥ ॥६७॥ प्रथम आवरण में क्रम से अणिमा व्यूह को आवेष्टित करके ऐन्द्रा, चित्रभानु, वारुणी, दण्डि, प्राण रूपी, हंस, स्वात्म शक्ति, पितामह, यह प्रथमा वरण कहा गया है । आगे द्वितीय आवरण को सुनो ॥६८॥६९॥ केशव, भगवान्, रुद्र, चन्द्रमा, भास्कर, महात्मा, आत्मा, अन्तरात्मा, महे-

श्वर, परमात्मा, अण्ड, जीव, पिङ्गल, पुरुष, पशु, भोक्ता, भूतपति और भीम ये द्वितीय आवरण में कहे गये हैं ॥१००॥१०१॥

कथितश्चाणिमाव्यूहो लघिमाख्यं वदामि ते ।
श्रीकंठोंतश्च सूक्ष्मश्च त्रिमूर्तिः शशकस्तथा ॥१०२
अमरेशः स्थितीशश्च दारतश्च तथाष्टमः ।
प्रथमावरणं प्रोक्तं द्वितीयावरणं शृणु ॥१०३
स्थाणुहरश्च दंडेशो भौक्तीशः सुरपुंगवः ।
सद्योजातोऽनुग्रहेशः क्रूरसेनः सुरेश्वरः ॥१०४
क्राधीशश्च तथा चंडः प्रचंडः शिव एव च ।
एकरुद्रस्तथा कूर्मश्चैकनेत्रश्चतुर्मुखः ॥१०५
द्वितीयावरणे रुद्राः षोडशव प्रकीर्तिताः ।
कथितो लघिमाव्यूहो महिमां शृणु सुव्रत ॥१०६
अजेशः क्षेमरुद्रश्च सोमोंऽशो लांगली तथा ।
दडारुश्चार्धनारी च एकांतश्चांत एव च ॥१०७
पाली भुजंगनामा च पिनाकी खड्गिरेव च ।
काम ईशस्तथा श्वेतो भृगुः षोडश वै स्मृताः ॥१०८
कथितो महिमाव्यूहः प्राप्तिव्यूहं शृणुष्व मे ।
संवर्तो लकुलीशश्च बाडवो हास्तरेव च ॥१०९
चंडयक्षो गणपतिर्महात्मा भृगुजोऽष्टमः ।
प्रथमावरण प्राक्तं द्वितीयावरण शृणु ॥११०

अणिमा व्यूह तो निरूपित कर दिया गया है आगे अब मैं लघिमा नामक व्यूह को बतलाता हूँ । श्री कण्ठ, अन्तः, सूक्ष्म, त्रिमूर्त्ति, शशक, अमरेश, स्थितीश, और दारत अष्टम होता है । यह प्रथम आवरण बता दिया गया है । आगे द्वितीय आवरण का श्रवण करो ॥१०२॥१०३॥ स्थाणु, हर, दण्डेश, भौक्तीश, सुरपुङ्गव, सद्योजात, अनुग्रहेश, क्रूरसेन, सुरेश्वर, क्रोधीश, चण्ड, प्रचण्ड, शिव एक रुद्र, कूर्म, एक नेत्र और चतुर्मुख ये द्वितीय आवरण में षोड़श ही रुद्र कीर्त्तित किये गये हैं । यह लघिमा नामक व्यूह तो बता दिया गया है । इसके आगे अब हे सुव्रत !

तुम महिमा नामक व्यूह का श्रवण करो। अजेश, क्षेम, रुद्र, सोम, अंश, लाङ्गली, दण्डारु, अर्ध नारी, एकान्त, अन्त, पाली, भुजङ्ग नामा, पिनाकी, खङ्गि, काम, ईश, श्वेत, भृगु ये सोलह कहे गये हैं। यह महिमा व्यूह कह दिया गया है। इस के आगे मुझसे आप लोग प्राप्ति व्यूह का श्रवण करो। संवर्तः-लकुलीश-वाडव-हस्ति-चण्डयक्ष-गणपति-महात्मा और आठवाँ भृगुज होता है। यह प्रथम आवरण कह दिया है। इसके आगे द्वितीय आवरण सुनो ॥१०४ से ११० तक ॥

त्रिविक्रमो महाजिह्वो ऋक्षः श्रीभद्र एव च।
महादेवो दधीचश्च कुमारश्च परावरः ॥१११
महादंष्ट्रः करालश्च सूचकश्च सुवर्धनः।
महाध्वांक्षा महानंदी दंडी गोपालकस्तथा ॥११२
प्राप्तिव्यूहः समाख्यातः प्रकाम्यं शृणु सुव्रत।
पुष्पदंतो महानागो विपुलानंदकारकः ॥११३
शुक्लो विशालः कमलो बिल्वश्चारुण एव च।
प्रथमावरणं प्रोक्तं द्वितीयावरणं शृणु ॥११४
रतिप्रियः सुरेशानश्चित्रांगश्च सुदुर्जयः।
विनायकः क्षेत्रपालो महामोहश्च जंगलः ॥११५
वत्सपुत्रो महापुत्रो ग्रामदेशाधिपस्तथा।
सर्वावस्थाधिपो देवो मेघनादः प्रचंडकः ॥११६
कालदूतश्च कथितो द्वितीयावरणं स्मृतम्।
प्राकाम्यः कथितो व्यूह ऐश्वर्यं कथयामि ते ॥११७

त्रिविक्रम, महाजिह्व, ऋक्ष, श्रीभद्र, महादेव, दधीच, कुमार, परावर महादंष्ट्र, कराल, सूचक, सुवर्धन, महाध्वांक्ष, महानन्द, दण्डी, गोपालक, यह प्राप्ति व्यूह कह दिया है। इसके अनन्तर हे सुव्रत ! प्राकाम्य व्यूह को सुनो। पुष्पदन्त, महा नाग, विपुलानन्द कारक, शुक्ल, विशाल, कमल, विल्व, अरुण—यह प्रथम आवरण कहा गया है। इसके आगे इसका द्वितीय आवरण सुनो ॥१११॥११२॥११३॥११४॥ रति प्रिय, सुरेशान, चित्राङ्ग, सुदुर्जय, विनायक, क्षेत्रपाल, महामोह, जंगल, वत्स-

पुत्र, महापुत्र, ग्रामदेशाधिय, सर्वावस्थाधिय, देव, मेघनाद, प्रचण्डक और काल दूत, यह द्वितीय आवरण बताया गया है। प्राकाम्य व्यूह भी कह दिया गया है। इसके अनन्तर ऐश्वर्य को तुम्हारे आगे मैं बतलाता हूँ। ॥११५॥११६॥११७॥

मंगला चर्चिका चैव योगेशा हरदायिका।
भासुरा सुरमाता च सुंदरी मातृकाष्टमी ॥११८॥
प्रथमावरणे प्रोक्ता द्वितोयावरणे शृणु।
गणाधिपश्च मंत्रज्ञो वरदेवः षडाननः ॥११९
विदग्धश्च विचित्रश्च अमोघो मोघ एव च।
अश्वी रुद्रश्च सोमेशश्चोत्तमोदुंबरस्तथा ॥१२०
नारसिंहश्च विजयस्तथा इन्द्रगुहः प्रभुः।
अपांपतिश्च विधिना द्वितीयावरणं स्मृतम् ॥१२१
ऐश्वर्यः कथितो व्यूहो वशित्वं पुनरुच्यते।
गगनो भवनश्चैव विजयो ह्यज यस्तथा ॥१२२
महाजयस्तथां गारो व्यंगारश्च महायशाः।
प्रथमावरणे प्रोक्ता द्वितीयावरणे शृणु ॥१२३
सुंदरश्च प्रचडेशो महावर्णो महासुरः।
महारोमा महागर्भः प्रथमः कनकस्तथा ॥१२४
खरजो गरुडश्चैव मेघनादोऽथ गर्जकः।
गजश्च च्छेदको बाहुस्त्रिशिखो मारिरेव च ॥१२५
वशित्वं कथितो व्यूहः शृणु कामावसायिकम्।
विनादो विकटश्चैव वसतोऽभय एव च ॥१२६
विद्युन्महाबलश्चैव कमलो दमनस्तथा।
प्रथमावरणं प्रोक्तं द्वितीयावरणं शृणु ॥१२७

मङ्गला, चर्चिका, योगेशा, हरदामिका, भासुरा, सुरमाता, सुन्दरी और आठवीं मातृका ये आठ शक्तियाँ हैं ॥१८॥ प्रथम आवरण कह दिया है। अब द्वितीय आवरण में सुनो। गणाधिय, मन्त्रज्ञ, वरदेव, षडानन, विदग्ध, विचित्र, अमोघ, मोघ, अश्वी, रुद्र, सोमेश, उत्तम,

उदुम्बर, नारसिंह, विजय, इन्द्रगुह, प्रभु और अपांपति—ये विधि से दूसरा आवरण कहा गया है ॥१९॥२०॥२१॥ यह ऐश्वर्य व्यूह कहा गया है। अब आगे वशित्व कहा जाता है। गगन, भवन, विजय अजय, महाजय, अङ्गार, व्यङ्गार, महायशा, महाजय—ये प्रथम आवरण में कहे गये हैं । द्वितीय आवरण में श्रवण करो ॥२२॥२३॥ सुन्दर, प्रचण्डेश, महावर्ण, महासुर, महारोमा, महागर्भ, प्रथम, कनक, खरज, गरुड़, मेघनाद, गर्जक, गज, छेदक, वाहु, त्रिशिख और मारि—वशित्व व्यूह निरूपित कर दिया है। आग कामावसायिक को सुनो। विनाद, विकट, वसन्त, अभय, विद्युत्, महावल, कमल, दमन—यह प्रथम आवरण कहा गया है। इसके उपरान्त दूसरा आवरण सुनो ॥१२४ से १२७॥

धर्मश्चातिबलः सर्पो महाकायो महाकायो महाहनुः ।
सबलश्चैव भस्मांगी दुर्जयो दुरतिक्रमः ॥१२८
वेतालो रौरवचैव दुर्धरो भोग एव च ।
वज्रः कालाग्निरुद्रश्च सद्योन दो महागुहः ॥१२९
द्वितीयावरणं प्रोक्तं व्यूहश्चैवावसायिकः ।
कथितः षोडशो व्यूहो द्वितीयावरण शृणु ॥१३०
द्वितीयावरणे चैव दक्षव्यूहे च शक्तयः ।
प्रथमावरणे चाष्टौ बाह्ये षोडश एव च ॥३१
मनोहरा महानादा चित्रा चित्ररथा तथा ।
रोहिणी चैव चित्रांगी चित्ररेखा विचित्रिका ॥३२
प्रथमावरणे प्रोक्ता द्वितीयावरणं शृणु ।
चित्रा विचित्ररूपा च शुभदा कामदा शुभा ॥३३
क्रूरा च पिंगला देवी खड्गिका लंबिकासती ।
दंष्ट्राली राक्षसी ध्वंसी लोलुपा लोहितामुखी ॥३४
द्वितीयावरणे प्रोक्ताः षोडशैव समासतः ।
दक्षव्यूहः समाख्यातो दाक्षव्यूहं शृणुष्व मे ॥३५
सर्वासती विश्वरूपा लंपटा चामिषप्रिया ।
दीघदंष्ट्रा च वज्रा च लबोष्ठी प्राणहारिणी ॥ ३६

प्रथमावरणं प्रोक्तं द्वितीयावरणं शृगु ।
गजकर्णाश्वकर्णा च महाकाली सुभीषणा ।३७।
वातवेगरवा घोरा घनाघनरवा तथा ।
वरघोषा महावर्णा सुघंटा घटिका तथा ।३८।
घंटेश्वरी महाघोरा घोरा चैवातिघोरिका ।
द्वितीयावरणे चैव षोडशैव प्रकीर्तिता: ।१३९।

धर्म-अतिबल-सर्प-महाकाय-महाहनु-सबल-भस्माङ्गी-दुर्जय-दुरित क्रम बेताल रौरव-दुर्धर-भोग-बज्र-कालाग्नि रुद्र-सद्योनाद-महा गुह-द्वितीय आवरण बता दिया है और आवसायिक व्यूह कह दिया है। षोड़श व्यूह कहा गया है। द्वितीय आवरण सुनो ।२८।२९।३० द्वतीय आवरण में और दक्ष व्यूह में शक्तियाँ हैं—प्रथम आवरण में आठ और बाह्य में सोलह हैं।३१। उन आठ शक्तियों के ये नाम होते हैं—मनोहरा-महा नादा-चित्रा-चित्र-रथा-रोहिणी-चित्राङ्गी-चित्र रेखा विचित्रिका ये प्रथम आवरण में निरूपित की गई हैं। दूसरे आवरण में सुनो—चित्रा-विचित्र रूपा-शुभदा-कामदा-शुभा-क्रूरा-पिङ्गला-देवी-खड्गिका–लम्बिका-सती-दंत -राक्षसी-ध्वंसी-लोलुपा-लोहिता मुखी–ये दूसरे आवरण सोलह संक्षेप में बतलाई गई हैं। दक्ष व्यूह समाख्यात है। आगे दाक्ष व्यूह मुझ से श्रवण करो ।३२।३३।३४।३५। सर्वा सती-विश्वरूपा लम्परा-आमिष प्रिया-दीघदंष्ट्रा-वज्रा-लम्बोष्ठी-प्राण हारिणी—यह प्रथमावरण कहा है। द्वितीय आवरण सुनो—गजकर्णा-अश्वकर्णा-महाकाली-सुभीषणा वात वेगरवा-घोरा-घनाघन रवा-वटघोषा-महावर्णा सुघण्टा-घण्टिका घण्टेश्वरी-महाघोरा-घोरा-अतिघोरिका—ये द्वितीय आवरण से सोलह ही कही गई हैं।१३६ से १३९।

दाक्षव्यूहः समाख्यातश्चंडव्यूहं शृणुष्व मे ।
अतिघंटा चातिघोरा करासा करभा तथा ।१४०।
विभूतिर्भोगदा कांतिः शखिनी चाष्टमी स्मृता ।
प्रथमावरणे प्रोक्ता द्वितीयावरणे शृणु ।४१।
पत्रिणी चैव गांधारी योगमाता सुपीवरा ।

रक्ता मालांशुका वीरा संहारी मांसिहारिणी ।४२।
फलहारी जीवहारी स्वेच्छाहारी च तुंडिका ।
रेवती रंगिणी संगा द्वितीये षोडशैव तु ।४३।
चंडव्यूहः समाख्यातश्चंडाव्यूहस्तथोच्यते ।
चंडी चंडमुखी चंडा चंडवेगा महारवा ।४४।
भ्रुकुटी चंडभूश्चैव चंडरूपाष्टमी स्मृता ।
प्रथमावरणं प्रोक्तं द्वितीयावरणं सृणु ।४५।
चंद्रघ्राणा बला चैव बलजिह्वा बलेश्वरी ।
बलवेगा महाकाया महाकोपा च विद्युता ।४६।
कंकाली कलशी चैव विद्युता चंडघोषिका ।
महाघोषा महारावा चंडभाऽनगचंडिका ।४७।
चडार्याः कथितो व्यूहो हरव्यूह श्रृणुष्व मे ।
चडाक्षी कामदा देवी सूकरी कुक्कुटानना । ८।
गांधारी दंदुभी दुर्गा सौमित्रा चाष्टमी स्मृता ।
प्रथमावरणं प्रोक्तं द्वितीयावरणं श्रृणु ।१४६।

दाक्ष व्यूह तो निरूपित कर दिया है अब मुझसे आप लोग चण्ड व्यूह श्रवण करो ।४०। अतिघण्टा-अतिघोरा-कराला-करभा-विभूति-भोगदा-कान्ति और आठवीं शङ्खिनी कही गई हैं। प्रथमावरण में कही गईं हैं। आगे दूसरे आवरण से सुनो ।४१। पत्रिणी-गान्धारी-योगमाता-सुपीवरा-रक्ता-मालां शुका-वीरा-संहारी-मांस हारिणी-फलहारी जीवहारी-स्वेच्छाहारी तुण्डिका-रेवती-रंगिणी-संगा-ये दूसरे आवरण में सोलह हैं ।४२।४३। चंड व्यूह तो कह दिया है। अब चंडा व्यूह कहा जाता है। चंडी, चण्डमुखी, चण्डा, चण्ड वेगा, महारवा, भ्रुकुटी, चण्डभू, चण्डरूपा आठवीं है। इसका प्रथम आवरण कह दिया है। दूसरा आवरण सुनो - ।४४।४५। चन्द्रघ्राणा, बला, बल जिह्वा, बलेश्वरी, बल वेगा, महा काया, महा कोपा, विद्युता, कंकाली, कलशी, विद्युता, चण्ड घोषिका, महा घोषा, महारावा, चण्डभा, अनङ्ग चण्डिका इस प्रकार से यह चण्डा व्यूह का निरूपण कर दिया है। इसके आगे

अब हरव्यूह को सुनो । चण्डाक्षी, कामदा, देवी, सूकरी, कुक्कुटासना, गान्धारी, दुन्दभी, दुर्गा और आठवीं सौमित्रा कही जाती है। इस व्यूह का यह प्रथम आवरण कह दिया है। अब दूसरे आवरण की नामावलि का श्रवण करो ॥१४६॥१४७॥१४८॥१४९॥

मृतोद्भवा महालक्ष्मार्वर्णदा जीवरक्षिणी ।
हरिणी क्षीणजीवा च दंडवक्त्रा चतुर्भुजा ॥१५०
व्योमचारी व्योमरूपा व्योमव्यापी शुभोदया ।
गृहचारी सुवारी च विषाहारी विषार्तिहा ॥५१
हरव्यूहः समाख्यातो हराया व्यूह उच्यते ।
जभाच्युता च कंकारी देविका दुर्धरावहा ॥५२
चंडिका चपला चेति प्रथमावरणे स्मृताः ।
चंडिका चामरी चैव भडिका च शुभानना ॥५३
पिंडिका मुंडिनी मुंडा शाकिनी शाङ्करी तथा ।
कर्तरी भर्तरी चैव भागिनी यज्ञदायिनी ॥५४
यमदंष्ट्रा महादंष्ट्रा कराला चेति शक्तयः ।
हरायाः कथितो व्यूहः शौंडव्यूहं शृणुष्व मे ॥५५
विकराली कराली च कालजंघा यशस्विनी ।
वेगा वेगवती यज्ञा वेदांगा चाष्टमी स्मृता ॥५६
प्रथमावरणं प्रोक्तं द्वितीयावरणं शृणु ।
वज्रा शंखातिशंखा वा बला चैवाबला तथा ।.५७
अंजनी मोहनी माया विकटांगी नली तथा ।
गंडकी दडकी घोणा शोणा सत्यवती तथा ।.५८
कल्लोला चेति क्रमशः षोडशैव यथाविधि ।
शौंडव्यूहः समाख्यातः शौंडाया व्यूह उच्यते ॥१५९

मृतोद्भवा, महालक्ष्मी, वर्णदा, जीवाक्षिणी, हरिणी, क्षीण जीवा, दण्डवक्त्रा, चतुर्भुजा, व्योमचारी, व्योमरूपा, व्योम व्यापी, शुभोदया, गृहचारी, सुचारी, विषाहारी, विषर्त्तिहा–यह हर व्यूह वर्णित किया गया है। अब हराका व्यूह कहा जाता है । जम्भाच्युता, कंकारी, देविका,

दुर्धरावहा, चण्डिका, चपला ये प्रथम आवरण में बताई गई हैं। चंण्डिका चामरी, भण्डिका, शुभानना, पिण्डिका, मुण्डिनी, मुण्डा, शाकिनी, शाङ्करी, कर्त्तरी, भर्त्तरा, भगिनी, यज्ञ दायिनी, यमदंष्ट्रा, महादंष्ट्रा और कराला ये द्वितीय आवरण की शक्तियाँ हैं। यह हरा का व्यूह भी कह दिया है। अब आप लोग मुझ से शौण्ड व्यूह को सुनो ।५०।५१।५२। ।५३।५४।५५। विकराली, कराली, काल जङ्घा, यशस्विनी, वेगा, वेग वती, यज्ञा और इस आवरण में आठवीं वेदाङ्गा शक्ति होती है ।५६। प्रथमावरण इसका वर्णित कर दिया है। इसका दूसरा आवरण सुनो। वज्रा, शंखा अति शखा, बला, अबला, अंजिनी, मोहिनी, माया, विकटांगी, नली, गण्डकी; दण्डकी; घोरा; शोणा; सत्यवती और कल्लोला ये यथ विधी षोड़श ही हैं। यह शौण्ड व्यूह भी वर्णित हो गया है। इस के आगे शौण्डा का व्यूह सुनो जो कि कहा जा रहा है ।१५७ से १५६।

दंतुरा रौद्रभागा च अमृता सकुला शुभा।
चलजिह्वायनेत्रा च रूपिणी द्वारिका तथा ।१६०।
प्रथमावरणं प्रोक्तं द्वितीयावरणं शृणु।
खादिका रूपनामा च संहारी च क्षमांतका ।६१।
कंडिनी पेषिणी चैव महात्रासा कृतांतिका।
दंडिनी किंकरी बिंबा वर्णिनी चामलांगिनी ।६२।
द्रविणी द्राविणी चैव शक्तय: षोडशैव तु।
कथितो हि मनोरम्य: शौंडाया व्यूह उत्तम: ।६३।
प्रथमाख्यं प्रवक्ष्यानि व्यूहं परमशोभनम्।
प्लविनी प्लावनी शोभा मंदा चैव मदोत्कटा ।६४।
मंदाऽक्षेपा महादेवी प्रथमावरणे स्मृता:।
कामसंदीपिनी देवी अतिरूपा मनोहरा ।६५।
महावशा मदग्राहा विह्वला मदविह्वला।
अरुणा शोषणा दिव्या रेवती भांडनायिका ।६६।
स्तंभिनी घोररक्ताक्षी स्मररूपा सुघोषणा।
व्यहः प्रथम आख्यात: स्वायंभुव यथा तथा ।६७।

कथितं प्रथम व्यूह प्रवक्ष्यामि शृणुष्व ने ।
घोरा घोरतराघोरा अतिघोराघिनायिका ।१६८।

दन्तुरा; रौद्रभागा; अमृता; सकुला; शुभा; चल जिह्वा; आर्यनेत्रा; रूपिणी; दारिका ये प्रथमावरण की शक्तियाँ कह दी गईं हैं। अब दूसरे आवरण की शक्तियों के नाम सुनो खादिका; रूप नामा; संहारी; क्षमान्तका; कण्डिनी; पेषिणी; महात्रासा; कृतान्तिका; दण्डिनी, किङ्करी-बिम्बा, वर्णिनी, चामलांगिनी, द्रविणी और द्राविणी ये सोलह ही शक्तियाँ होती हैं। यह परम मनोरम्य एवं उत्तम शौण्डा का व्यूह कहा गया है। अब प्रथमाख्य परम शोभनव्यूह बताऊंगा। प्लविनी प्लाविनी–शोभा–मन्दा मदोत्कटा-मन्दा–आक्षेपी–महादेवी–ये प्रथम आवरण में शक्तियाँ होती हैं। काम सन्दीयिनी देवी अतिरूपा–मनोहरा–महावशा मदग्राहा–विह्वला–महविह्वला–अरुणा शोषणा दिव्या रेवती-भाण्ड नयिका-स्तम्भिनी-घोर रक्ताक्षी-स्मर रूपा-सुघोषणा यह प्रथम व्यूह कह गया है जैसा स्वायम्भुव है उसी तरह है। कथित प्रथम व्यूह को बताऊंगा। उसे मुझसे श्रवण करो ।१६० से १६८।

धावनी क्रोष्टुका मुंडा चाष्टमी परिकीर्तिता ।
प्रथमावरणं प्रोक्तं द्वितीयावरणं शृणु ।१६९।
भीमा भीमतरा भीमा शस्ता चैव सुवर्तुला ।
स्तंभिनी रोदनी रौद्रा रुद्रवत्यचला चला ।७०।
महाबला महाशांतिः शाला शांता शिवाशिवा ।
बृहत्कक्षा महानास षोडेशैव प्रकीर्तिताः ।७१।
प्रथमायाः समाख्यातो मन्मथव्यूह उच्यते ।
तालकर्णी च बाला च कल्याणी कपिला शिवा ।७२।
इष्टिस्तुष्ठिः प्रतिज्ञा च प्रथमावरणे स्मृताः ।
ख्यातिः पुष्टिकरी तुष्टिर्जला चैव श्रुतिर्धृतिः ।७३।
कामदा शुभदा सौम्या तेजिनी कामतन्त्रिका ।
धर्मा धर्मवशा शीला पापहा धर्मवर्धिनी ।७४।
मन्मथः कथितो व्यूहो मन्मथायाः सृणुष्व मे ।

धर्मरक्षा विधाना च धर्मा धर्मवती तथा ।७५।
सुमतिर्दुर्मति र्मेधा विमला चाष्टमी स्मृता ।
प्रथमावरणं प्रोक्तं द्वितीयावरणं शृणु ।१७६।

घोरा-घोरतरा-अघोरा-अतिघोरा-अघनायिका-धावनी-क्रोष्टुका-मुण्डा आठ ये शक्तियाँ हैं जो कि-कीर्त्तित की गई हैं। यह इस व्यूह का प्रथम आवरण कहा गया है। अब इसका दूसरा आवरण सुनो ।६९। भीमा-भीम तरा-भीमा-शस्ता-सुवर्त्तुला-स्तम्भिनी-रोदनी-रौद्रा रुद्रवती-अचला-चला-महाबला महा शान्ति-शाला-शान्ता-शिवाशिवा-बृहत्कक्षा-महानासा-ये सोलह शक्तियाँ कीर्त्तित की गई हैं ।७०।७१। यह प्रथमा का व्यह तो बता दिया गया है अब मन्मथ व्यूह कहा जा रहा है। तालकर्णी-वसा-कल्याणी-कपिला-शिवा-इष्टि-तुष्टि-प्रतिज्ञा ये प्रथम आवरण में कही गई हैं। ख्याति पुष्टिकरी-तुष्टि-जला श्रुति-धृति-कामदा-शुभदा-सौम्या-तेजिनी-काम तन्त्रिका-धर्मा-धर्म वशा शीला-पापहा-धर्म वर्धिनी-यह इस प्रकार से मन्मथ व्यूह की शक्तियाँ बताई गई हैं। अब मन्मथा के व्यूह को मुझसे सुनो। धर्मरक्षा-विधावा धर्मा धर्मवती-सुमति-दुर्मति-मेधा और अष्टम शक्ति इस व्यूह में विमला होती है। इस व्यूह का यह प्रथम आवरण कहा गया है। आगे दूसरा आवरण सुनो ।१७२ से १७६।

शुद्धिर्बुद्धिर्द्युति कांतिर्वर्तुला मोहवर्धिनी ।
बला चातिबला भीमा प्राणवृद्धिकरी तथा ।७७।
निर्लज्जा निर्घृणा मंदा सर्वपापक्षयंकरी ।
कपिला चातिविधुरा षोडशैताः प्रकीर्तिताः ।७८।
मन्मथायिक उक्तस्ते भीमव्यूहं वदामि च ।
रक्ता चैव विरक्ता च उद्वेगा शोकवर्धिनी ।७९।
काम तृष्णा क्षुधा मोहा चाष्टमी परिकीर्तिता ।
प्रथमावरणं प्रोक्तं द्वितीयावरणं शृणु ।८०।
जया निद्रा भयालस्या जलतृष्णोदरी दरा ।
कृष्णा कृष्णांगिनी वृद्धा शुद्धोच्छिष्टाशनी वृषा ।८१।
कामना शोभिनी दग्धा दुःखदा सुखदावली ।

भीमव्यूहः समाख्यातो भीमायीव्यूह उच्यते ।१८२।
आनंदा च सुनदा च महानंदा शुभंकरी ।
वीतरागा महोत्साहा जितरागा मनोरथा ।८३।
प्रथमावरणं प्रोक्तं द्वितीयावरणं श्रृणु ।
मनोन्मनीं मनःक्षोभा मदोन्मत्ता मदाकुला ।८४।
मंदगर्भा महाभासा कामानंदा सुविह्वला ।
महावेगा सुवेगा च महाभोगा क्षया वेहा ।८५।
क्रमिणी क्रामिणी वक्रा द्वितीयावरणे स्मृताः ।
कथितं तव भीमायो व्यूहं परमशोभनम् ।२८६।

शुद्धि-वुद्धि-द्युति-कान्ति-वर्त्तुला-मोह वर्धिनी-बला-अति बला-भीमा-प्राण वृद्धिकरी-निर्जरा-निर्गुणा-मन्दा-सर्व पाप क्षयङ्करी-कपिला-अति विधुरा ये सोलह शक्तियाँ द्वितीय आवरण में कही गईं हैं ।७७।७८। यहाँ तक मन्मथायिक व्यूह बताया गया है अब भीम व्यूह मैं बताता हूँ। रक्ता-विरक्ता-उद्वेगा शोक वर्धिनी-कामा-तृष्णा-क्षुधा-मोहा ये आठ कही गई हैं। यह प्रथमावरण कहा गया है। द्वितीयावरण इस व्यूह का सुनो ।७९।८०। जया-निद्रा-भया-आलस्या-जल तृष्णोदरी-दरा-कृष्णा-कृष्णाङ्गिनी-वृद्धा-शुद्धा-उच्छिष्टशिनी-वृषा-कामना-शोभिनी--दग्धा-दुःखदाःसुखदावली-यह इस प्रकार से भीम व्यूह की शक्तियाँ बतादी गईं हैं। अब भीमायी व्यूह कहा जाता है—।८१।८२। आनन्दा-सुनन्दा-महानन्दा-शुभंकरी वीतरागा-महोत्साहा जितरागा-मनोरथा-यह प्रथम आवरण कहे दिया गया है। द्वितीयावरण इस व्यूह का सुनो-मनोन्मनी-मनःक्षोभा-मदोन्मत्ता मदाकुला-मन्दगर्भा-महाभासा-कामानन्दा—सुविह्वला—महावेगा-सुवेगा-महाभोगा क्षयावहा-क्रमिणी-क्रामणी-वक्त्रा-ये द्वितीय आवरण की शक्तियाँ होती हैं। भीमायी नाम वाला परम शोभन व्यूह कह दिया है। ।१८३ से १८६।

शाकुनं कथयाम्यद्य स्वायंभुव मनोत्सुकम् ।
योगा वेगा सुवेगा च अतिवेगा सुवासिनो ।१८७।
देवो मनोरथा वेगा जलावर्ता च धीमतो ।

प्रथमावरणं प्रोक्तं द्वितीयावरणं श्रृणु ।१८८।
रोधिनी क्षोभिणी बाला विप्राशेषासुपोषिणी ।
विद्युता भासिनी देवी मनोवेगा च चापला ।८६।
विद्युज्जिह्वा महाजिह्वा भृकुटीकुटिलानना ।
फुल्लज्वाला महाज्वाला सुज्वाला च क्षयांतिका ।६०।
शाकुनः कथितो व्यूहः शाकुनायाः श्रृणुष्व मे ।
ज्वालिनी चैव भस्मांगी तथा भस्मांतगा तता ।६१।
भाविनी च प्रजा विद्या ख्यातिश्चैवाष्टमी स्मृता ।
प्रथमावरणं प्रोक्तं द्वितीयावरणं श्रृणु ।६२।
उल्लेखा च पताका च भोगाभोगवती खगा ।
भोगभोगव्रता योगा भोगाख्या योगपारगा ।६३।
ऋद्धिर्बुद्धिर्धृतिः कांतिः स्मृतिः साक्षाच्छ्रुतिर्धरा ।
शाकुनाया महाव्यूहः कथितः कामदायकः ।६४।
स्वायंभुव श्रृणु व्यूहं सुमत्याख्यं सुशोभनम् ।
परेष्टा च परा दृष्टा ह्यमृता फलनाशिनी ।६५।
हिरण्याक्षी सुवर्णाक्षी देवी साक्षात्कपिंजला ।
कामरेखा च कथितं प्रथमावरण श्रृणु ।६६।
रत्नद्वीपा च सुद्वीपा रत्नदा रत्नमालिनी ।
रत्नशोभा सुशोभा च महाशोभा महाद्युतिः ।६७।
शांबरी बंधुरा ग्रंथिः पादकर्णा करानना ।
हयग्रीवा च जिह्वा च सर्वभासेति शक्तयः ।६८।
कथितः सुमतिव्यूहः सुमत्या व्यूह उच्यते ।
सर्वाशी च महाभक्षा महादंष्ट्रातिरौरवा ।६६।
विस्फुलिंगा विलिंगा च कृतांता भास्करानना ।
प्रथमावरणं प्रोक्तं द्वितीयावरणं श्रृणु ।२००।

अब स्वायम्भुव मनोत्सुक शाकुन व्यूह कहता हूँ—योग-वेगा-सुवेगा अति वेगा-सुवासिनी देवी-मनोरथा-वेगा-जला वर्त्ता-धीमती—यह प्रथमावरण हुआ। इसका दूसरा आवरण सुनो—रोधिनी-क्षोभिणी-बाला-विप्रा—

शेषा-सुशोषिणा-विद्युता-भासिनी- देवी-मनोवेगा-चापला- विद्युज्जिह्वा-महाजिह्वा-भृकुटी-कुटिलानना-फुल्लज्वाला-महाज्वाला- सुज्वाला-क्षयान्तिका, यह शाकुन व्यूह कहा गया है। अब शाकुना का व्यूह सुनो–ज्वालिनी-भस्माङ्गी-भस्मान्तगा-तता-भाविनी-प्रजा विद्या-ख्याति–ये आठ शक्तियाँ हैं। प्रथमावरण कहा गया है। इसका दूसरा आवरण श्रवण करो-उल्लेखा-पताका-भोगा-भोगवती-खगा–भोग भोग व्रता- योगा-भोगाख्या- योग पारगा-ऋद्धि वृद्धि-धृति--कान्ति-स्मृती-साक्षाच्छ्रुति-धरा--यह शाकुन का कामदायक महान् व्यूह कहा गया है। अब समुत्याख्य एवं परम सुशोभन स्वायम्भुव व्यूह का श्रवण करो—परमेष्टा, परा,दृष्टा,अमृता, फलनाशिनी हिरण्याक्षी, सुवर्णाक्षी, देवी, साक्षात्त पिङ्गला और कामरेखा ये आठ शक्तियाँ प्रथमावरण की कही गई हैं। रत्नद्वीपा, सुद्वीपा, रत्नदा, रत्न मालिनी, रत्न शोभा, सुशोभा, महा शोभा, महा द्युति, शाम्बरी, वन्धरा, ग्रन्थि, पादकर्णा, करानना, हयग्रीवा, जिह्वा, सर्वभासा---ये शक्तियाँ होती हैं। सुमति व्यूह वता दिया है अब सुमत्या व्यूह सुनो-- सर्वाशी, महाभक्षा, महादंष्ट्रा, अतिरौरवा, विस्फुलिङ्गा, बिलिङ्गा कृतान्ता, भास्करानना, यह प्रथमावरण कहा गया है। इस व्यह का दूसरा आवरण, सुनो। ।१८७ से २०० तक तक।

रागा रंगवतो श्रेष्ठा महाक्रोधा च रौरवा।
क्रोधनी वसनो चैव कलहा च महाबला।२०१।
कलंतिका चतुर्भेदा दुर्गा वै दुर्गमानिनी।
नाला सुनाली सौम्या च इत्येवं कथितं मया।२०२।
गोप व्यूहं वदाम्यत्र शृणु स्वायंभुवाखिलम्।
पाटली पाटवी चैत्र पाटी विटिपिटा तथा।२०३।
कंकटा सुपटा चैव प्रघटा ख गटोद्भवा।
प्रथमावरणं चात्र भाषया कथितं मया।२०४।
नादाक्षी नादरूपा च सर्वकारी गमाऽगमा।
अनुचारी सुचारी च चंडनाडी सुवाहिनो।२०५।
सुयोगा च वियोगा च हंसाख्या च विलासिनी।

सर्वगा सुविचारा च वंचनी चेति शक्तय: ।२०६।
गोपव्यूह: समाख्यातो गोपायीव्यूह उच्यते ।
भेदिनी च्छेदिनी चैव सर्वकारी क्षुधाशनी ।२०७
उच्छुष्मा चैव गांधारी भस्माशी वडवानला ।
प्रथमावरणं चैव द्वितीयावरण शृणु ।२०८।
अंधा बाह्वासिनी बाला दीक्षपामा तथैव च ।
अक्षा त्र्यक्षा च हृल्लेखा हृद्गता मायिकापरा ।२०९।
आमयासादिनी ।भल्ली सह्यासह्या सरस्वती ।
रुद्रशक्तिर्महाशक्तिर्महामोहा च गोनदो ।२१०।
गोपायी कथितो व्यूहो नंदव्यूहं वदामी ते ।
नदिनी च निवृत्तिश्च प्रतिष्ठा च यथाक्रमम् ।२११।
विद्यानासा खग्रसिनी चामुंडा प्रियदर्शिनो ।
प्रथमावरणं प्रोक्तं द्वितीयावरणं शृणु ।२१२।

रागा, रंगवती, श्रेष्ठा, महाक्रोधा, रौरवा, वसनी, क्रोधनी, कलहा, महाबला, कलन्तिका, चतुर्भेदा, दुर्गा, दुर्ग माननी, नाली, सुनाली, सौम्या, ये इतनी मैने कहदी हैं। यहाँ गोप व्यूह बतलाता हूँ उस स्वायम्भुवाखिल को सुनो। पाटली, पाटवी, पाटी, दिटपिटा, कंवटा, सुपटा, प्रघटा, घटोद्भवा-यह यहाँ पर मैने प्रथमावरण भाषा के द्वारा कह दिया है। नादाक्षी, नादरूपा, सर्दकारी, गमा, अगमा, अनुसारी, सुचारी, चण्ड नाड़ी, सुवाहिनी, सुयोगा, नियोगा, हंसाख्य, विलासिनी, सर्वगा, सुविचारा और वञ्चिनी ये सोलह शक्तियाँ हैं।२०१ से २०६। गोप व्यूह समाख्यात हो गया है। अब गोपायी व्यूह कहा जाता है—भेदिनी, छेदिनी, सर्वकारी, क्षुधाशनी, उच्छुष्मा, गान्धारी, भस्माशी, वडवानला—यह प्रथमावरण कहा गया है। इसका द्वितीयावरण सुनो— अंधा, बाह्वासिनी, वाला, दीक्षपामा, अक्षा, त्र्यक्षा, हृल्लेखा, हृद्गता, मायिका परा, आभयासादिनी, भिल्ली, सह्या, असह्या, सरस्वती, रुद्र शक्ति, महाशक्ति, महामोहा, गो नदी-यह गोपायी व्यूह कहा गया है। अब तुम को मैं नन्द व्यूह बतलाता हूँ— नन्दिनी, निवृत्ति, प्रतिष्ठा, विद्या नासा,

खग्रसिनी, चामुण्डा, प्रियदर्शिनी यह प्रथमावरण की शक्तियाँ बताई गईं हैं। दूसरा आवरण सुनो—।२०७ से २१२।

गृह्या नारायणी मोहा प्रजा देवी च चक्रिणी।
वकटा च तथा काली शिवाद्योषा ततः परम् ।२१३।
विरामा या च वागीशी वाहिनी भीषणी तथा।
सुगमा चव निर्दिष्टा द्वितीयावरणे स्मृता ।१४।
नंदव्यूहो मया ख्यातो नंदाया व्यूह उच्यते।
विनायकी पूर्णिमा च रकारी कुंडली तथा ।१५।
इच्छा कपालिनी चैव द्वीपिनी च जयंतिका।
प्रथमावरणे चाष्टौ शक्तयः परिकार्तिताः ।१६।
प्रथमावरणं प्रोक्तं द्वितीयावरणं श्रृणु।
पावनी चांबिका चैव सर्वात्मा पूतना तथा ।१७।
छगली मोदिनी साक्षाद्देवी लंबोदरी तथा।
सहारी कालिनी चैव कुसुमा च यथाक्रमम् ।१८।
शुक्रा तारा तथा ज्ञाना क्रिया गायत्रिका तथा।
सावित्री चेति विधिना द्वितीयावरणं स्मृतम् ।१९।
नंदायाः कथितो व्यूहः पैतामहमतः परम्।
नंदिनी चैव फेत्कारी क्रोधा हंसा षडंगुला ।२०।
आनंदा वसुदुर्गा च संहारा ह्यमृताष्टमी।
प्रथमावरणं प्रोक्तं द्वितीयावरणं श्रृणु ।२२१।

गृह्या, नारायणी, मोहा, प्रजा, देवी, चक्रिणी, कंकटा, काली, शिवाद्योषा, विरामा, वागीशी, बाहिनी, भीषणी और सुगमा, एवं निर्दिष्टा ये दूसरे आवरण में कही गई हैं।१३।१४। मैंने नन्द व्यूह तो बतला दिया है। अब नन्दा का व्यूह कहा जाता है-विनायकी, पूर्णिमा, रंकारी, कुण्डली, इच्छा, कपालिनी, द्वीपिनी, जयन्तिका—ये प्रथम आवरण में आठ ही शक्तियाँ कीर्त्तित की गई हैं। यह प्रथमावरण कहा गया है। इसका अब दूसरा आवरण सुनो-पावनी, अम्बिका, सर्वात्मा, पूतना, छगली, मोदिनी, साक्षाद्देवी, लम्बोदरी, संहारी, कालिनी,

कुसुमा, शुक्रा, तारा, ज्ञाना, क्रिया, गायत्रिका, तथा सावित्री—यह विधि से द्वितीयावरण कहा गया है ।१५।१६।१७।१८।१९। नन्दा का व्यूह कहा गया है । इससे आगे पैतामह व्यूह बताते हैं —नन्दिनी, फेत्कारी, क्रोधा, हंसा, षडंगुला आनन्दा; दुर्गा; संहारा और आठवीं शक्ति अमृता होती है । यह प्रथमावरण बताया गया है । आगे दूसरा आवरण सुनो ।२२०।२२१।

कुलांतिकानला चैव प्रचंडा मर्दिनी तथा ।
सर्व भूताभया चैव दया च वडवामुखो ।२२।
लंपटा पन्नगा देवी कुसुमा विपुलांतका ।
केदारा च तथा कूर्मा दुरिता मंदरोदरी ।२३।
खड्ग चक्रेतिविधिना द्वितीयावरणं स्मृतम् ।
व्यूहः पैतामहः प्रोक्तो धर्मकामार्थमुक्तिदः ।२४।
पितामहाया व्यूहं च कथयामि शृणुष्व मे ।
वज्रा च नंदना शावाराविका रिपुभेदिनी ।२५।
रूपा चतुर्था योगा च प्रथमावरण स्मृताः ।
भूता नादा महाबाला खर्परा च तथा परा ।२६।
भस्मा कांता तथा वृष्टिर्दिभुजा ब्रह्मरूपिणी ।
सौह्या वैकारिका जाता कर्मामोटी तथापरा ।२७।
महामोहा महामाया गांधारी पुष्पमालिनी ।
शब्दापी च महाघोषा षोडणैव तथांतिमे ।२२८।

कुलान्तिका; अनला; प्रचण्डा; मर्दिनी; सर्वभुताभया; दया वडवा मुखी; लम्पटा; पन्नगा; देवी; कुसुमा; विपुलान्तका; केदारा; कूर्मा; दुरिता; मन्दोदरी और खड्ग चक्रा—इस विधि से दूसरा आवरण कहा गया है। धर्म काम अर्थ और मोक्ष का प्रदान करने वाला यह पैतामह व्यूह कह दिया गया है। अब पितामह का व्यूह कहता हूँ। उसे मुझसे श्रवण करो—वज्रा--नन्दना-शावा राविका-रिपुभेदिनी-रूपा चतुर्था-और योगा ये प्रथमावरण में कही गई हैं। भूता-नादा-महा बाला-खर्परा-परा-भस्मा-कान्ता-वृष्टि द्विभुजा-ब्रह्मरूपिणी-सौह्या-वैकारिका

जाता–कर्मोटी–अपरा–महामोहा महामाया–गान्धारी–पुष्प मालिनी–शब्दापी–महाघोषा ये सोलह ही शक्तियाँ हैं ।२२२ से २२८।

सर्वाश्च द्विभुजा देव्यो बालभास्करसन्निभाः ।
पद्मशंखधराः शांता रक्तस्रगगवस्त्रभूषणाः ।२२९।
सर्वाभरणसंपूर्णा मुकुटाद्यैरलंकृताः ।
मुक्ताफलमयैर्दिव्यै रत्नचित्रैर्मनोरमैः ।३०।
विभूषिता गौरवर्णा ध्येया देव्यः पृथक्पृथक्।
एवं सहस्रकलशं ताम्रजं मृन्मयं तु वा ।३१।
पूर्वोक्तलक्षणैर्युक्तं रुद्रक्षेत्रे प्रतिष्ठितम् ।
भवाद्यैर्विष्णुना प्रोक्तै र्नाम्नां चव सहस्रकैः ।३२।
संपूज्य विन्यसेदग्रे सेचयेद्बाणविग्रहम् ।
अभिषिच्य च विज्ञाप्य सेचयेत्पृथिवीपतिम् ।२३३।

ये सभी देवियाँ दो भुजाओं वाली हैं और बाल भास्कर के समान प्रकाश पूर्ण हैं । पद्म-शंख धारण करने वाली– परम शान्त तथा रक्त वर्ण की माला धारण करने वाली और रक्त भूषण तथा वस्त्रों से विभूषित हैं ।२९। समस्त आभूषणों से समलङ्कृत तथा मुकुट आदि से सुभूषित हैं । मुक्ता फल से परिपूर्ण परम दिव्य एवं मनोरम विचित्र रत्नों से विभूषित हैं ।२३०। ये सब गौर वर्ण वाली हैं । इनका अलग-अलग ध्यान करना चाहिए । इस प्रकार से एक सहस्र ताम्र के अथवा मृत्तिका के कलश पूर्व में कहे हुए लक्षणों से सम्पन्न रुद्र क्षेत्र में प्रतिष्ठित करे । विष्णु के द्वारा प्रोक्त भवादि के सहस्र नामों से उनका भली-भाँति पूजन करे । आगे में विन्यास करे और बाणलिङ्ग का सेवन करे । अभिषेचन करके विज्ञापन करे और पृथिवी के स्वामी का सेचन करना चाहिए ।२३१ से २१३।

एवं सहस्र कलशं सर्वसिद्धिफलप्रदम् ।२३४।
चत्वारिंशन्महाव्यूहं सर्वलक्षणलक्षितम् ।३५।
तथा कनकसंयुक्ता देवस्य घृतपूरिताः ।
क्षीरेण वाथ दध्ना वा पंचगव्येन वा पुनः ।३६।

ब्रह्मकूर्चेन वा मध्यमभिषेको विधीयते ।
रुद्राध्यायेन रुद्रस्य नृपतेः शृणु सत्तम ।३७।
अघोरेभ्योऽथ घोरेभ्यो घोरघोरमरेभ्यः ।
सर्वेभ्यः सर्वशर्वेभ्यो नमस्ते अस्ते रुद्ररूपेभ्य ।३८।
मंत्रेणानेन राजानं सेचयेदभिषेचितम् ।
होमं च मंत्रेणानेन अघोरेणाघहारिणा ।२३९।

सम्पूर्ण लक्षणों से लक्षित यह चालीस महाव्यूह से युक्त इस प्रकार से सहस्र कलश वाला अभिषेचन सम्पूर्ण सिद्धियों के प्रदान करने वाला है ।३४।३५। तथा सम्पूर्ण कलश कलश से युक्त और देव के घृत से पूरित होने चाहिए । क्षीर-दधि पञ्चगव्य अथवा ब्रह्मकूर्च से मध्याभिषेक किया जाता है । रुद्र का अभिषेक रुद्राध्याय से किया जाता है । राजा के अभिषेक के विषय में सुनो ।३६।३७। "अघोरेभ्यो ऽथ घोरेभ्यो घोर घोर तरेभ्यः । सर्वेभ्यः सर्वशर्वेभ्यो नमस्ते अस्तु रुद्र रूपेभ्यः"— (इसका शब्दार्थ पहिले वर्णन किया जा चुका है) इस मन्त्र से अभिषेचित राजा का अभिषेक करना चाहिए । अघों के हरण करने वाले इस अघोर मन्त्र से होम करे ।२३८।२३९।

प्रागाद्यं देवकुंडे वा स्थंडिले वा घृतादिभिः ।
समिदाज्यचरुं लाजशालिनीवारतंडुलैः ।२४०।
अष्टोत्तरशतं हुत्वा राजानमधिवासयेत् ।
पुण्याहं स्वस्ति रुद्राय कौतुकं हेमनिर्मितम् ।४१।
भसितं च मृणालेन बंधयेद्दक्षिणे करे ।
त्र्यंबकं यजामहे सुगंधिं पुष्टिवर्धनम् ।४२।
उर्वारुकमिव बंधनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात् ।
मंत्रेणानेन राजानं सेचयेद्वाथ होमयेत् ।४३।
सर्वद्रव्याभिषेकं च होमद्रव्यैर्यथाक्रमम् ।
प्रागाद्यं ब्रह्माभिः प्रोक्तं सर्वद्रव्यैर्यथाक्रमम् ।४४।
तत्पुरुषाय विद्महे महादेवाय धीमहि ।
तन्नो रुद्रः प्रचोदयात् ।४५।

स्वाहांतं पुरुषेणैवं प्राक्कुण्डं होमयेद्द्विजः ।
अघोरेण च याम्ये च होमयेत्कृष्णवाससा ।४६।
वामदेवाय नमो ज्येष्ठाय नमः श्रेष्ठाय नमो रुद्राय नमः ।
इत्याद्युक्तक्रमेणैव जुहुयात्पश्चिमे नरः ।४७।
सद्येन पश्चिमे होमः सर्वद्रव्यैर्यथाक्रमम् ।
सद्योजातं प्रपद्यामि सद्योजाताय वै नमः ।४८।

देव कुण्ड में अथवा स्थण्डिल में धृतादि से अक्त लाल-शालिनीवार तण्डुलों के सहित समिधा एवं आज्य चरु की अष्टोत्तर शत आहुतियाँ देकर प्रागाद्य अर्थात् प्राङ्मुख राजा का अधिवास करना चाहिए । पुण्याह वाचन-स्वस्ति वाचन और रुद्राय वाचन कराके हेम से विनिर्मित कौतुक (कंकण) मृणाल के सहित भसित दक्षिण कर में बाँधना चाहिए । फिर "त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धि पुष्टि वर्दनम्"—इस त्र्यम्बक मन्त्र से राजा का सेचन करे अथवा होम करे।४०।४१।४२। उर्वा रुक भिव बन्धना न्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात्"—इस मन्त्र से राजा का सेचन करे तथा होम करे ।२४३। क्रम के अनुसार लाजा आदि होम द्रव्यों से सर्व द्रव्या-भिषेक करे । "ब्रह्मभिः"—इत्यादि पाँच ब्रह्म मन्त्रों से समस्त द्रव्य यथाक्रम प्रागाद्य हवन करना चाहिए ।२४४। अब हवन की विधि बतलाते हैं-द्विज को "तत्पुरुषाय विद्महे, महादेवाय धीमहि, तन्नो रुद्र प्रचोदयात्"—इस मन्त्र से अन्त में स्वाहा' इसे लगाकर इस तरह से प्राक्कुण्ड में होम करना चाहिए । अघोर मन्त्र से कृष्ण वस्त्र वाले आचार्य के द्वारा याम्य दिशा में हवन करना चाहिए ।४५।४६। 'वामदेवाय नमः-ज्येष्ठाय नमः-श्रेष्ठायः-रुद्राय मनः" —इत्यादि उक्त क्रम से मनुष्य को पश्चिम में हवन करना चाहिए ।४७। सद्य मन्त्र से यथाक्रम सम्पूर्ण द्रव्यों से पश्चिम से हवन करे। 'सद्योजातं प्रपद्यामि सद्यो जाताय वैं नमः"—यह मन्त्र है । इसका अर्थ है—सद्योजात् के मैं शरण में जाता हूँ सद्योजात के लिये नमस्कार है ।२४८।

भवे भवेनाति भवे भवस्व मां भवोद्भवाय नमः ।
स्वाहांतं जुहुयादग्नौ मंत्रेणानेन बुद्धिमान् ।२४९।

आग्नेय्यां च विधानेन ऋचा रौद्रेण होमयेत् ।
जातवेदसे सुनवाम सोममित्यादिना ततः ।
नैर्ऋते पूर्ववद्द्रव्यै. सर्वैर्होमो विधीयते।५०।
मंत्रेणानेन दिव्येन सर्वसिद्धिकरेण च ।
निमि निशि दिश स्वाहा खङ्ग राक्षस भेदन ।५१।
रुधिराज्यार्द्र नैर्ऋत्यै स्वाहा नमः स्वधानमः ।
यथेष्टं विधिना द्रव्यैर्मंत्रेणानेन होमयेत् ।५२।
यम्यां हि विविधैर्द्रव्यैरीशानेन द्विजोत्तमाः ।
ईशान्यामथ पूर्वोक्तैर्द्रव्यैर्होममथाचरेत् ।५३।
इशानाय कद्रुद्राय प्रचेतसे त्र्यंबकाय शर्वाय
तन्नो रुद्रः प्रचोदयात् ।५४।
प्रधान पूर्ववद्द्रव्यैरोशानेन द्विजोत्तमाः ।
प्रतिद्रव्यं सहस्रेण जुहुयान्नृपसन्निधौ ।२५५।

"भवे भवे नाति भवे भवस्व मां भवोद्भवाय नमः"—अर्थात् संसार में जन्म लेकर मैं अति भव को प्राप्त हो रहा हूँ मेरा उद्धार करो। इस संसार के उत्पत्ति स्वरूप आपके लिये मेरा नमस्कार है। इस मन्त्र के अन्त में 'स्वाहा' इसे लगाकर इससे बुद्धिमान् को अग्नि में हवन करना चाहिए ।४६। आग्नेयी दिशा में रौद्र ऋचा से विधान के साथ होम करे "जातवेद से सुनवाम सोमम्"—इत्यादि मन्त्र से नैर्ऋत दिशा में पूर्व की ही भाँति समस्त द्रव्यों से होम करना चाहिए ।५०। यह समस्त सिद्धियों के करने वाला परम दिव्य मन्त्र है-इससे होम करे। 'निमि निशि दिश स्वाहा खङ्ग राक्षस भेदन । रुधिराज्यार्द्र नैर्ऋत्ये स्वाहा नमः स्वधा नमः"—इस मन्त्र से यथेष्ट विधि से द्रव्यों से होम करना चाहिए। ।५१।५२। हे द्विजोत्तमो ! वायव्य दिशा में ईशान मन्त्र से अनेक द्रव्यों के द्वारा होम करे। ईशानी दिशा में पूर्वोक्त द्रव्यों से होम का आचरण करे ।५३। "ईशानाय कद्रुद्राय प्रचेतसे त्र्यम्बकाय शर्वाय तन्नो रुद्रः प्रचोदय त्' —यह ईशान मन्त्र है। इससे मुख्य को पूर्ववत् द्रव्यों से प्रति द्रव्य एक सहस्र ग्राहुतियाँ नृप की सन्निधि में देवे।

।२५४।२५५।

स्वयं वा जुहुयादग्नौ भूपतिः शिववत्सलः ।
ईशानः सर्वविद्यानामीश्वरः सर्वभूतानां ब्रह्माधिपतिर्ब्रह्मणो-ऽधिपतिर्ब्रह्मा शिवो मे अस्तु सदाशिवाम् ।२५६।
प्रायश्चित्तमघोरेण शेष सामान्यमाचरेत् ।
कृताधिवासं राजानं शखभेर्यादिनिस्वनैः ।५७।
जयशब्दरवैर्दिव्यैर्वेदघोषैः सुशोभनैः ।
सेचयेत्कूर्चतोयेन प्रोक्षयेद्वा नृपोत्तमम् ।५८।
रुद्राध्यायेन विधिना रुद्रभस्मांगधारिणम् ।
शंखचामरभेर्याद्यं छत्रं चंद्र समप्रभम ।५९।
शिबिकां वैजयंतीं च साधयेन्नृपतेः शुभाम् ।
राज्याभिषेकयुक्ताय क्षत्रियायेश्वराय वा ।६०।
नृपचिह्नानि नान्येषां क्षत्रियाणां विधीयते ।
प्रमाण चैव सर्वेषां द्वादशांगुलमुच्यते ।६१।
पलाशोदुंबराश्वत्थवटाः पूर्वादितः क्रमात् ।
तोरणाद्यानि वै तत्र पट्टमात्रेण पट्टिकाः ।६२।
अष्टमांगुलसंयुक्त दर्भमालासमावृतम् ।
दिग्ध्वजाष्टकसंयुक्त द्वारकुंभैः सुशोभनम् ।२६३।

अथवा शिव का प्रेमी राजा स्वयं भी अग्नि में हवन करे। समस्त-विद्याओं के स्वामी-सम्पूर्ण भूतों के ईश्वर ब्रह्मा के स्वामी-ब्रह्म के अधिपति ब्रह्मा और शिव मेरे लिये शिवोऽम् होवें अर्थात् कल्याण करने वाले हों ।५६। अघोर मन्त्र से प्रायश्चित् करे और शेष सामान्य का आचरण करना चाहिए । अधिवास करने वाले राजा का सेचन शंख भेरी आदि वाद्यों की ध्वनि-जय शब्द और वेद मन्त्रोच्चारण के घोष के सहित जो कि परम शोभन हैं, कूर्च जल से करे अथवा नृपोत्तम का प्रोक्षण करना चाहिए ।५७।५८। रुद्राध्याय के द्वारा विधिपूर्वक सम्पूर्ण अङ्गों में रुद्र भस्म के धारण करने वाले शंख-चमर-भेरी आदि छत्र चन्द्र की प्रभा के समान प्रभा वाला-शिविका और शुभ वैजयन्ती आदि स राजा की सुस-

ज्जा करे। यह सब उसी के लिये करे जो राज्याभिषेक के लिये योग्य क्षत्रिय स्वामी हो और देव तुल्य हो ।५९।६०। राजा के ये चिह्न क्षत्रिय कुल में समुत्पन्नों के ही होते हैं अन्यों के नहीं होते हैं। इन सब का प्रमाण द्वादश अङ्गुल कहा जाता है जो कि पलाश-उदूम्बर अश्वत्थ और वट की शाखाएं पूर्वादि क्रम से होती हैं-उनको बाँधे। वहाँ अभिषेक मण्डप में तोरण आदि पट्टिका दुकूल से ही करनो चाहिए ।६१। ।६२। द्वार स्थित कुम्भों को आठ अगुल दर्भ माला से समावृत और दिग्धवजाष्टक से संयुक्त परम सुशोभन करे ।२६३।

हेसतोरणकुंभैश्च भूषित स्नापयेन्नृपम् ।
सर्वोपरि समासीनं शिवकुंभेन सेचयेत् ।२६४।
तन्महेशाय विद्महे वाग्विशुद्धाय धीमहि ।
तन्नः शिवः प्रचोदयात् ।६५।
मंत्रेणानेन विधिना वधन्या गौरिगीतया ।
रुद्राध्यायेन वा सर्वमघोरायाथ वा पुनः ।६६।
दिव्यैराभरणैः शुक्लैर्मुकुटाद्यैः सुकल्पितैः ।
क्षौमवस्त्रैश्च राजानं तोषयेन्नियत शनैः ।६७।
अष्टषष्टिपलेनैव हेम्ना कृत्वा सुदर्शनम् ।
नवरत्नैरलंकृत्य दद्याद्वै दक्षिणां गुरोः ।६८।
दशधेनु सर्वस्त्रं च दद्यात्क्षेत्रं सुशोभनम् ।
शतद्राणतिलं चैव शतद्रोणांश्च तंडुलान् ।६९।
शयनं वाहनं शय्यां सोपधानां प्रदापयेत् ।
योगिनां चैव सर्वेषां त्रिंशत्पलमुदाहृतम् ।७०।
अशेषांश्च तदर्धेन शिवभक्तांस्तदर्धतः ।
महापूजां ततः कुर्यान्महादेवस्य वै नृपः ।२७१।

इस प्रकार से हेम कुम्भ तोरण आदि से भूषित नृप का स्नयन कराना चाहिए। सब के ऊपर समास्थित राजा का शिव कुम्भ से सेचन करे ।६४। "तन्महेशाय विद्महे वाग्वि शुद्धाय धीमहि। तन्नः शिवः प्रचोदयात्"—इस मन्त्र से विधि के साथ - वर्धनी गौरी गायत्री से—

रुद्राध्याय से अथवा सब अघोर मन्त्र से करे ।६५।६६। दिव्य आभरण और शुक्ल मुकुट आदि से जो कि भली-भाँति निर्मित किये गये हों तथा क्षौम वस्त्रों से नियत रूप से धीरे से राजा को तोष देना चाहिए ।६७। अड़सठ पल सुवर्ण से बहुत सुदर्शनीय बनवा कर तथा नौ रत्नों से विभूषित करके गुरु की दक्षिणा देनी चाहिए ।६८। दश धेनु जो कि वस्त्रों के सहित हों—परम शोभन क्षेत्र एक सौ द्रोण तिल-सौ द्रोण तण्डुल-शयन-वाहन-उपधान के सहित शय्या दिलानी चाहिए। समस्त योगियों को तीस पल कहा गया है ।२६९।२७०। शेष अन्यों को उससे आधा देवे और जो शिव के भक्त हों उनको इनसे भी आधा भाग दक्षिणा के रूप में देना चाहिए । इसके अनन्तर राजा को महादेव की महापूजा करनी चाहिए ।२७१।

एवं समासतः प्रोक्तं जयसेचनमुत्तमम् ।
एवं पुराभिषिक्तस्तु शक्रः शक्रत्वमागतः ।२७२।
ब्रह्मा ब्रह्मत्वमापन्नो विष्णुर्विष्णुत्वमागतः ।
अंबिका चांबिकात्वं च सौभाग्यमतुलं तथा ।७३।
सावित्री च तथा लक्ष्मीर्देवी कात्यायनी तथा ।
नंदिनाथ पुरा मृत्यू रुद्राध्यायेन वै जितः ।७४।
अभिषिक्तोऽसुरः पूर्वं तारकाख्यो महाबलः ।
विद्युन्माली हिरण्याक्षो विष्णुना वै विनिर्जितः ।७५।
नृसिंहेन पुरा दैत्यो हिरण्यकशिपुर्हतः ।
स्कंदेन तारकाद्याश्च कौशिक्या च पुरांबया ।७६।
सुंदोपसुंदतनयौ जितौ दैत्येंद्रपूजितौ ।
वसुदेवसुदेवौ तु निहतौ कृतकृत्यया ।२७७।

इस प्रकार से संक्षेप में उत्तम जय सेचन कहा गया है । इसी प्रकार से पहिले इन्द्र अभिषिक्त होकर इन्द्रत्व के पद को प्राप्त हुआ था । ब्रह्मा भी इसी भाँति ब्रह्मत्व को प्राप्त हुआ और विष्णु भगवान् विष्णुत्व के पद को प्राप्त हुए थे । अम्बिका देवी अम्बिकात्व पद को तथा अतुल सौभाग्य को प्राप्त हुई थी सावित्री-लक्ष्मी-देवी-कात्यायनी ने भी इसी

प्रकार से अपने २ पदों की प्राप्ति की थी। पहिले नन्दिनाथ ने रुद्राध्याय के द्वारा ही मृत्यु को जीत लिया था।७२।७३।७४। महाबलवान् तारक नाम वाले असुर को पहिले अभिषिक्त किया था और विद्युन्माली वह देवों के द्वारा भी अजेय हो गया था। भगवान् विष्णु ने स्नान योग से ही हिरण्याक्ष को विनिर्जित किया था।७५। इसी योग के प्रभाव से नृसिंह ने हिरण्यकशिपु दैत्य का हनन किया था। स्कन्द ने तारक आदि दैत्यों को तथा पहिले कौशिकी अम्बा देवी ने दैत्येन्द्रों के द्वारा पूजित सुन्द-उपसुन्द के पुत्रों को जीता था। कृतकृत्या ने वसुदेव और सुदेव को हत किया था।२७६।२७७।

स्नानयोगेन विधिना ब्रह्मणा निर्मितेन तु।
देवासुरे दितिसुता जिता देवैर्रनिंदिताः।७८।
स्नाप्यैव सर्वभूपैश्च तथान्यैरपि भूसुरैः।
प्राप्ताश्च सिद्धयो दिव्या नात्र कार्या विचारणा।७९।
अहोऽभिषेकमाहात्म्यमहो शुद्धसुभाषितम्।
येनैवमभिषिक्तेन सिद्धं मृत्युर्जितस्त्विति।८०।
कल्पकोटिशतेनापि यत्पापं समुपार्जितम्।
स्नात्वैवं मुच्यते राजा सर्वपापैर्न संशयः।८१।
व्याधितो मुच्यते राजा क्षयकुष्ठादिभिः पुनः।
स नित्यं विजयी भूत्वा पुत्रपौत्रादिभिर्युतः।८२।
जनानुरागसंपन्नो देवराज इवापरः।
मोदते पापहीनश्च प्रियया धर्मनिष्ठया।८३।
उद्देशमात्रं कथितं फलं परमशोभनम्।
नृपाणामुपकाराय स्वायंभुव मनो मया।८४।

विधिपूर्वक ब्रह्मा के द्वारा निर्मित इसी स्नान योग से देवों ने देवासुर संग्राम में दिति के पुत्रों को जीता था।।७८। समस्त भूपों ने तथा अन्य ब्राह्मणों ने भी स्नयन कराकर परम दिव्य सिद्धियाँ प्राप्त की थीं—इसमें कुछ भी विचारणा करने की आवश्यकता नहीं है।७८।७९। यह इस अभिषेक बड़ा भारी माहात्म्य है और यह कैसा अद्भुत शुद्ध सुभाषित

है जिस के द्वारा इस प्रकार से अभिषेक करने से सिद्धि को प्राप्त करने वालों ने मृत्यु को भी जीत लिया था ।८०। सैकड़ों करोड़ कल्पों में भी जो-जो पाप किया गया है उससे इस विधान से अभिषेचन करके राजा सभी पापों से मुक्त हो जाता है—इसमें कुछ भी संशय नहीं है ।८१। व्याधि से युक्त राजा क्षय-कुष्ठ आदि रोगों से छुटकारा पा जाता है और वह नित्य विजयी होकर पुत्र-पौत्रादि से समन्वित होता है ।८२। समस्त जनों के अनुराग का पात्र होकर दूसरे देवराज के तुल्य पाप हीन होकर धर्म में निष्ठा वाली भार्या के साथ प्रसन्न होता है । हे स्वायम्भुव मनो ! मैंने नृपों के उपकार के लिए थोड़ा सा कुछ कहा है । इसका फल तो परम शोभन होता है ।२८३ से २८४।

।। ६७—रुद्रादि देवता स्थापन विधि ।।

रुद्रादित्यवसूनां च शक्रादीनां च सुव्रत ।१।
प्रतिष्ठा कीदृशी शंभोर्लिगमूर्तेश्च शोभना ।२।
विष्णोः शक्रस्य देवस्य ब्रह्मणश्च महात्मनः ।
अग्नेर्यमस्य निऋ्र्तेर्वरुणस्य महाद्युतेः ।३।
वायोः सोमस्य यक्षस्य कुबेरस्यामितात्मनः ।
ईशानस्य धरायाश्च श्रीप्रतिष्ठाथ वा कथम् ।४।
दुर्गाशिवाप्रतिष्ठा च हैमवत्याश्च शोभना ।
स्कन्दस्य गणराजस्य नंदिनश्च विशेषतः ।५।
तथान्येषां च देवानां गणानामपि वा पुनः ।
प्रतिष्ठालक्षणं सर्वं विस्तराद्वक्तुमर्हसि ।६।
भवान्सर्वार्थतत्त्वज्ञो रुद्रभक्तश्च सुव्रत ।
कृष्णद्वैपायनस्यासि साक्षात्त्वमपरा तनु ।७।

रुद्रादि देवता स्थापन विधि । हे सुव्रत ! रुद्र-आदित्य और वसुगण तथा शक्र आदि की प्रतिष्ठा किस प्रकार की होती है एवं लिङ्ग मूर्त्ति शम्भु की शोभन प्रतिष्ठा कैसी की जाती है ? आप यह भी बताइये कि विष्णु इन्द्र-देव-महात्मा-ब्रह्मा-अग्नि-यम-निऋ्र्ति-महान् द्युति वाले वरुण-

वायु-सोम-यक्ष अमित आत्मा वाले कुवेर-ईशान-और धरा की प्रतिष्ठा कैसे की जाती है ? ।१।२।३।४। दुर्गा शिष्य और हैमवती की शोभन प्रतिष्ठा-स्कन्द तथा गणराज और विशेष रूप से नन्दी की प्रतिष्ठा एवं अन्य देव तथा गणों की प्रतिष्ठा का लक्षण सब कृपा करके विस्तार के साथ आप बताने को योग्य होते हैं ।५।६। हे सुव्रत ! आप सम्पूर्ण तत्त्वों के ज्ञाता और रुद्र के परम भक्त हैं। आप भगवान् कृष्णद्वैपायन के तो एक दूसरे शरीर ही हैं ।७।

सुमंतुर्जैमनिश्चैव पैलश्च परमर्षयः ।
गुरुभक्ति तथा कर्तुं समर्थो रोमहर्षणः ।८।
इति व्यासस्य विपुला गाथा भागीरथीतटे ।
एकः समा वा भिन्नो वा शिष्यस्तस्य महाद्युतेः ।९।
वैशपायनतुल्योऽपि व्यासशिष्येषु भूतले ।
तस्मादस्माक मखिलं वक्तुमर्हसि सांप्रतम् ।१०।
एवमुक्त्वा स्थितेष्वेव तेषु सर्वेषु तत्र च ।
बभूव विस्मयोऽतीव मुनीनां तस्य चाग्रतः ।११।
अथांतरिक्षे विपुला साक्षाद्देवी सरस्वती ।
अलं मुनीनां प्रश्नोऽयमिति वाचा वभूव ह ।१२।
सर्वं लिङ्गमयं लोकं सर्वं लिंगे प्रतिष्ठितम् ।
तस्मात्सर्वं परित्यज्य स्थापयेत्पूजयेन्न तत् ।१३।
लिंगस्थापनसन्मार्गनिहितस्वायतासिना ।
आशु ब्रह्मांडमुद्भिद्य निर्गच्छेदविशकया ।१४।

परम ऋषिगण सुमन्तु-जैमिनी और पैल जैसे हैं वैसे ही गुरु की भक्ति करने में समर्थ रोमहर्षण हैं ।८। भागीरथी के तट पर भगवान् व्यासदेव की बहुत सी गाथा हुई हैं। आप एक ही उनके समान तथा अभिन्न तद्रुप वाले उन महान् द्युति वाले के शिष्य हैं ।९। इस भूतल में व्यासदेव के शिष्यों में वैशम्पायन के तुल्य आ। हैं। इसलिये अब हमारे सामने सम्पूर्ण वर्णन करने के योग्य होते हैं ।१०। इस प्रकार से कहकर वहाँ पर उन सब के स्थित होने पर उनके आगे समस्त मुनियों

को वड़ा भारी विस्मय हुआ था ।११। इसके अनन्तर आकाश में साक्षाद् देवी सरस्वती प्रादुर्भूत हुई और वाणी से बोली–यह मुनियों का प्रश्न बहुत ही अच्छा है ।१२। यह समस्त लोक लिङ्गमय है और सभी कुछ लिङ्ग में ही प्रतिष्ठित है । इसलिये सब का परित्याग करके लिङ्ग की स्थापना करे और उसकी अर्चा करनी चाहिए ।१३। लिङ्ग के स्थापन-मार्ग में स्थापित जो सुविस्तीर्ण खङ्ग है उससे ब्रह्माण्ड का उद्भेदन करके बिना किसी शङ्का के स्थापक मुक्त हो जाता है ।१४।

उपेद्रांभोजगर्भेंद्रयमांबुधनदेश्वराः ।
तथान्ये च शिवं स्थाप्य लिगमूर्ति महेश्वरम् ।१५।
स्वेषुस्वेषु च पक्षेषु प्रधानास्ते यथा द्विजाः ।
ब्रह्मा हरश्च भगवान्विष्णुर्देवी रमा धरा ।१६।
लक्ष्मीर्धृतिः स्मृतिः प्रज्ञा धरा दुर्गा शची तथा ।
रुद्राश्च वसवः स्कंदो विशाखःशाख एव च ।१७।
नैगमेशश्च भगवाँल्लोकपाला ग्रहास्तथा ।
सर्वे नंदिपुरोगाश्च गणा गणपतिः प्रभुः ।१८।
पितरो मुनयः सर्वे कुबेराद्याश्च सुप्रभाः ।
आदित्या वसवः सांख्या अश्विनौ च भिषग्वरौ ।१९।
विश्वेदेवाश्च साध्याश्च पशवः पक्षिणो मृगाः ।
ब्रह्मादिस्थावरांतं च सर्वं लिंगे प्रतिष्ठितम् ।२०।
तस्मात्सर्वं परित्यज्य स्थापयेल्लिंगमव्ययम् ।
यत्नेन स्थापितं सर्वं पूजितं पूजयेद्यदि ।२१।

हे शौनकादिको ! लिङ्ग मूर्त्ति महेश्वर शिव की स्थापना करके फिर विष्णु-ब्रह्मा-इन्द्र-यम-वरुण-धनद-और ईश्वर तथा अन्य देव जो कि पहिले बताये जा चुके हैं अपने अपने पक्ष में वे सब प्रधान हैं । ब्रह्मा-विष्णु-हर-रमा-धरा-लक्ष्मी-धृति-प्रज्ञा-धरा-दुर्गा-शची रुद्रगण-वसुगण स्कन्द-विशाख-शाख-भगवान् नैगमेश समस्त लोकपाल-ग्रहगण-नन्दी से आदि लेकर समस्त गण-गणपति-पितृगण-मुनिमण्डल-कुबेरादि सुन्दर प्रभा वाले-आदित्य-वसुगण-सांख्य-भिषग्वर अश्विनी कुमार-विश्वेदेवा-साध्य-

पशुगण-पक्षि वृन्द और मृग ब्रह्मा से लेकर स्थावर पर्यन्त सभी लिङ्ग में प्रतिष्ठित होते हैं। इस लिए सब का त्याग करके अव्यव एक लिङ्ग की स्थापना करनी चाहिए। यत्न पूर्वक लिङ्ग की स्थापना करके उसका पूजन करे।१५ से २१।

॥ ९८–लिग स्थापन और फल श्रुति॥

इति निशम्य कृतांजलय स्तदा दिवि महामुनयः कृतनिश्चयाः।
शिवतरं शिवमीश्वरमव्ययं मनसि लिंगमयं प्रणिपत्य ते ।१।
सकलदेवपतिर्भगवानजो हरिरशेषपति र्गुरुणा स्वयम्।
मुनिवराश्च गणाश्च सुरासुरा नरवराः शिवलिंगमयाः पुनः।२।
श्रुत्वैवं मुनयः सर्वे षट्कुलियाः समाहिताः।
संत्यज्य सर्वं देवस्य प्रतिष्ठां कर्तुमुद्यताः।३।
अपृच्छन्सूतमनघ हर्षगद्गदया गिरा।
लिंगप्रतिष्ठां विपुलां सर्वे ते शंसितव्रताः।४।
प्रतिष्ठां लिंगमूर्तेर्वो यथावदनुपूर्वशः।
प्रवक्ष्यामि समासेन धर्मकामार्थमुक्तये।५।
कृत्वैव लिंग विधिना भुवि लिंगेषु यत्नतः।
लिंगमेकतमं शैलं ब्रह्मविष्णुशिवात्मकम्।।
हेमरत्नमयं वापि राजतं ताम्रजं तु वा।
सवेदिकं ससूत्रं च सम्यग्विस्तृतमस्तकम्।७।
विशोध्य स्थापयेद्भक्त्या सवेदिकमनुत्तमम्।
लिंगवेदी उमा देवी लिंगं साक्षान्महेश्वरः।८।
तयोः सपूजनादेव देवी देवश्च पूजितौ।
प्रतिष्ठया च देवेशो देव्या सार्धं प्रतिष्ठितः।९।

लिङ्ग स्थापन फलश्रुति-इतना श्रवण करके उस समय में आकाश में निश्चय करने वाले महा मुनिगण ने शिव तट अव्यय ईश्वर लिङ्गमय शिव का मन में प्रणिपात किया था।१। समस्त देवों के स्वामी भगवान् अज-अशेषों के पति हरि स्वयं गुरु और मुनिवर-गण सुरासुर और नरवर

सब लिङ्गमय-इस प्रकार से श्रवण कर षट् कुलों में समुत्पन्न मुनिगण समाहित हुए और जो प्रतिष्ठा सम्पूर्ण देव की करने को उद्यत थे उस परित्याग करके निष्पाप सूतजी से उन्होंने हर्ष से गद्गद वाणी के पूछा था। कि लिङ्ग की प्रतिष्ठा किस प्रकार से की जाती है क्योंकि वे सभी संशित व्रत वाले थे ।२।३।४। सूतजी ने कहा—मैं आनुपूर्वी के सहित यथावत् आप लोगों को लिङ्ग मूर्त्ति की प्रतिष्ठा को धर्मार्थ काम और मोक्ष की प्राप्ति के लिये संक्षेप से बतलाता हूँ ।५। भूलोक में आगे बतलाये जाने वाला शैलादि लिङ्गों में से विधि-विधान के साथ कोई सा एक लिङ्ग-ब्रह्मा-विष्णु और शिवात्मक लिङ्ग की रचना करावे ।६। वह लिङ्ग हेम और रत्नों के द्वारा निर्मित हो चाहे चाँदी या ताम्र धातु से विरचित कराया गया हो किन्तु परिनालिको पेत और पंच सूत्रादि से युक्त विस्तृत मस्तक वाला होना चाहिए। ऐसी लिङ्ग मूर्त्ति बनवा कर उसका भली-भाँति विशोधन करे वैदिक के सहित उन उत्तम लिङ्ग मूर्त्ति की स्थापना करनी चाहिए। अब उस लिङ्ग का माहात्म्य बतलाते हैं—लिङ्ग वेदी देवी उमा है और लिङ्ग साक्षात् महेश्वर हैं ७।८। उन दोनों के भली भाँति पूजन करने से देवी और देव का पूजन हो जाता है। प्रतिष्ठा के द्वारा देवी के साथ ही देव प्रतिष्ठित होते हैं ।९।

तस्मात्सवेदिकं लिंगं स्थापयेत्स्थापकोत्तमः ।१०।
मूले ब्रह्मा वसति भगवान्मध्यभागे च विष्णुः
सर्वेशानः पशुपतिरजो रुद्रमूर्ति वरेण्यः ।
तस्माल्लिंग गुरुतरतरं पूजयेत्स्थापयेद्वा यस्मात्पूज्यो
गणपतिरसौ देवमुख्यैः समस्तैः ।११।
गंधैः स्रग्धूपदीपैः स्नपनहुतबलि स्तोत्रमंत्रोपहारैर्नित्यं
येऽभ्यर्चयंति त्रिदशवरतनुं लिंगमूर्ति महेशम् ।
गर्भाधानादिनाशक्षयभयरहिता देवगंधर्वमुख्यैः सिद्धैर्वंद्याश्च
पूज्या गणवरनमितास्ते भवंत्यप्रमेयाः ।१२।
तस्माद्भक्त्योपचारेण स्थापयेत्परमेश्वरम् ।
पूजयेच्च विशेषेण लिंगं सर्वार्थ सिद्धये ।१३।

समर्च्य स्थापयेल्लिंगं तीर्थमध्ये शिवासने ।
कूर्चवस्त्रादिभिर्लिंगमाच्छाद्य कलशैः पुनः ।१४।
लोकपालादिदैवत्यैः सकूर्चैः साक्षतैः शुभैः ।
उत्कूर्चैः स्वस्तिकाद्यैश्च चित्रतंतुकवेष्टितैः ।१५।
वज्रादिकायुधोपेतैः सवस्त्रैः सपिधानकैः ।
लक्षयेत्परितो लिंग मीशानेन प्रतिष्ठितम् ।१६।

इसलिये उत्तम स्थापना करने वाले पुरुष को सवेदिक लिङ्ग की स्थापना करनी चाहिए ।१०। इसके मूल में ब्रह्मा निवास किया करते हैं–मध्य भाग में भगवान विष्णु का निवास होता है और सब के ईशान पशुपति अज परम वरेण्य रुद्र मूर्त्ति का निवास होता है । इस लिये लिङ्ग सबसे गुरुत्तर होता है । इसकी स्थापना करे और इसका पूजन करना चाहिए । इससे सम्पूर्ण देव मुख्यों के द्वारा गणपति पूज्य होते हैं ।११। जो लोग नित्य ही गन्ध-माला-धूप-दीप-स्नपन हुत-वलि स्तोत्र-मन्त्र और उपहारों के द्वारा त्रिदशों अर्थात् देवों में श्रेष्ठतम् लिङ्ग मूर्त्ति महेश का अभ्यर्चन किया करते हैं वे गर्भाधानादि नाश से रहित एवं सब प्रकार के क्षय के भय से विमुक्त होते हैं तथा देव-गन्धर्व और सिद्धों के द्वारा भी वन्दनीय होते हैं-पूजा के योग्य बन जाते हैं तथा गणवरों से नमित और अप्रमेय हो जाया करते हैं ।१२। इस लिये परम भक्ति से सम्पूर्ण उपचारों के द्वारा परमेश्वर की स्थापना करनी चाहिए तथा उसकी अर्चना करे । धर्मादि सब प्रकार की सिद्धि के लिये लिङ्ग की विशेष रूप से पूजा करनी चाहिए ।१३। क्षेत्र के मध्य में शिवासन अर्थात् वेदिका में लिङ्ग मूर्त्ति की स्थापना करे तथा पूजन करना चाहिए । कूर्च वस्त्रादि से लिङ्ग का समाच्छादन करे और लोकपाल आदि दैवत्य वाले कलशों की स्थापना करे जो कि कूर्च के तथा शुभ अक्षतों के सहित होने चाहिए । लिङ्ग मूर्त्ति के चारों ओर ईशान के द्वारा प्रतिष्ठित वहिर्निगत कूर्च वाले स्वस्तिकादि मूल भूत से युक्त-चित्र तन्तुक से वेष्टित-वज्र आदि आयुधों से समन्वित-वस्त्र और विधान के सहित ये समस्त कलश होने चाहिए ।१४।१५।१६।

धूपदीपसमोपेतं वितानविततांबरम् ।
लोकपालध्वजैश्चैव गजादिमहिषादिभिः ।१७।
चित्रितैः पूजितै श्चैव दर्भमाला च शोभना ।
सर्वलक्षणसंपूर्णा तया बाह्ये च वेष्टयेत् ।१८।
ततोधिवासयेत्तोये धूपदोपसमन्विते ।
पंचाहं वा त्र्यहं वाथ एकरात्रमथापि वा ।१९।
वेदाध्ययनसंपन्नो नृत्यगीतादिमंगलैः ।
किंकिणीरवकोपेतं तालवीणारवैरपि ।२०।
ईक्षयेत्काल मव्यग्रो यजमानः समाहितः ।
उत्थाप्य स्वस्तिकं ध्यायेन्मंडपे लक्षगान्विते ।२१।
संस्कृते वेदिसंयुक्ते नवकुंडेन संवृते ।
पूर्वोक्त विधिना युक्ते सर्वलक्षणसंयुते ।२२।
अष्टमंडलसंयुक्ते दिग्ध्वजाष्टकसंयुते ।
पूर्वोक्तलक्षणोपेतैः कुंडैः प्रागादितः क्रमात् ।२३।

ऊपर आकाश में एक वितान वितप किया जावे और धूप-दीप आदि से युक्त हो । वहाँ लोकपालों की ध्वजाएँ लगाई जावें । गज और महिष आदि के द्वारा चित्रित एवं पूजित किया जावे । परम शोभन दर्भों की माला जो कि सभी लक्षणों से युक्त हो । इससे बाहिर के भाग में वेष्टन किया जावे ।१७।१८। इस समस्त प्रकार की सज्जा से समन्वित धूप-दीप से युक्त मण्डप में जल में देवदेव का अधिवास पाँच दिन-तीन दिन अथवा केवल एक रात्रि में करे ।१९। यजमान को उस अधिवास के समय में परम सावधान रहते हुए वेदाध्ययन से सुसम्पन्न होना चाहिए तथा नृत्य-गीत आदि की मङ्गल ध्वनि-किङ्कणी ध्वनि से युक्त ताल-वीणा की ध्वनि आदि वहाँ पर होवे । इस प्रकार से वह समय अव्यग्रता से यापन करना चाहिए । फिर उठाकर उस सर्व लक्षण समन्वित मण्डप में पुण्याह वाचन करे ।२०।२१। वहाँ पूर्व में बताई विधि के द्वारा संस्कृत वेदि से युक्त और नव कुण्डों से संवृत तथा आठ मण्डलों से समन्वित जिसमें आठों दिशाओं की ध्वजाएँ लगी हों ऐसे पूर्व में कथित

लक्षणों से संयुत कुण्डों की रचना होनी चाहिए जिन की स्थिति प्रागादि के क्रम से की जावे ।२२।२३।

प्रधानं कुंडमीशान्यां चतुरस्रं विधीयते ।
अथवा पंचकुंडकं स्थडिलं चैकमेव च । ४।
यज्ञोपकरणैः सर्वैः शिवार्चायां हि भूषणैः ।
वेदिमध्ये महाशय्यां पंचतूलीप्रकल्पिताम् ।२५।
कल्पयेत्कांचनोपेतां सितवस्त्रावगुंठिताम् ।
प्रकल्प्यैवं शिवं चैव स्थापयेत्परमेश्वरम् ।२६।
प्राक्शिरस्कं न्यसेल्लिंगमीशानेन यथाविधि ।
रत्नन्यासे कृते पूर्वं केवलं कलश न्यसेत् ।२७।
लिंगमाच्छाद्य वस्त्राभ्यां कूर्चेन च समंततः ।
रत्नन्यासे प्रसक्तेऽथ वामाद्या नव शक्तयः । ८।
नवरत्नं हिरण्याद्यैः पंचगव्येन संयुतैः ।
सर्वधान्यसमोपेत शिलायामपि विन्यसेत् ।२९।
स्थापयेद्ब्रह्मलिंगं हि शिवगायत्रिसंयुतम् ।
केवलं प्रणवेनापि स्थापयेच्छिवमव्ययम् ।३०।
ब्रह्मजज्ञानमंत्रेण ब्रह्मभागं प्रभोस्तथा ।
विष्णुगायत्रिया भागं वैष्णवं त्वथ विन्यसेत् ।३१।

इनमें प्रधान कुण्ड ईशानी दिशा में चौकोर बनाया जाता है अथवा पाँच कुण्डों का एक ही कुण्ड और एक ही स्थण्डिल बनाया जावे ।२४। इस शिव की अर्चना में समस्त भूषण एवं सभी यज्ञ के उपकरणों से युक्त वेदि के मध्य में पाँच तूलियों से प्रकल्पित अर्थात् अत्युच्च महाशय्या की कल्पना करे जो कि सुवर्ण की पट्टिका से युक्त होनी चाहिए तथा श्वेत वस्त्र से अवगुण्ठित होवे । इस प्रकार से परि कल्पित करके उस पर परमेश्वर शिव की स्थापना करे ।२५।२६। विधिपूर्वक ईशान के द्वारा पूर्व में शिर वाले लिङ्ग का न्यास करे । पहिले रत्न न्यास करने पर केवल मुख्य कलश का न्यास करना चाहिए ।२७। वस्त्रों से तथा कूर्च से चारों ओर से लिङ्ग को समाच्छादित करे और रत्न न्यास के

प्रसक्त होने पर वामादि नौ शक्तियों की स्थापना करनी चाहिए। पञ्च गव्य से युक्त हिरण्य आदि के साथ समस्त धान्य से समोपेत नवरत्नों की जो आधार शिला है उस पर विन्यास करना चाहिए ।२८।२९। ब्रह्म लिङ्ग को शिव गायत्री से संयुत स्थापित करे । अथवा केवल प्रणव से ही अव्यय भगवान् शिव की स्थापना करनी चाहिए ।३०। ब्रह्मजज्ञान मन्त्र से प्रभु के ब्रह्म भाग को वेदिका के अधो भाग में तथा विष्णु गायत्री से वैष्णव भाग का विन्यास करे ।३१।

सूत्रे तत्त्वत्रयोपेते प्रणवेन प्रविन्यसेत् ।
सर्वं नमः शिवायेति नमो हंसः शिवाय च ।३२।
रुद्राध्यायेन वा सर्वं परिमृज्य च विन्यसेत् ।
स्थापयेद्ब्रह्मभिश्चैव कलशान्वै समंततः ।३३।
वेदिमध्ये न्यसेत्सर्वान्पूर्वोक्तविधिसंयुतान् ।
मध्यकुंभे शिवं देवीं दक्षिणे परमेश्वरीम् ।३४।
स्कंदं तयोश्च मध्ये तु स्कंदकुंभे सुचित्रिते ।
ब्रह्माणं स्कंदकुंभे वा ईशकुम्भे हरि तथा ।३५।
अथवा शिवकुंभे च ब्रह्मांगानि च विन्यसेत् ।
शिवो महेश्वरश्चैव रुद्रो विष्णुः पितामहः ।३६।
ब्रह्माण्येवं समासेन हृदयादीनि चांबिका ।
वेदिमध्ये न्यसेत्सर्वान्पूर्वोक्तविधिसंयुतान् ।३७।
वर्धन्यां स्थापयेद्देवीं गधतोयेन पूर्य च ।३८।
वर्धन्यामपि यत्नेन गायत्र्यगैश्च सुव्रताः ।
विद्येश्वरान्दिशां कुंभे ब्रह्मकूर्चेन पूरिते ।३९।

तीन तत्त्वों से समुपेत सूत्र में जो कि वेदिका के ऊर्ध्व पूर्व पश्चिम भाग रूप है, केवल प्रणव के द्वारा विन्यास करे । 'नमः शिवायः—'नमो हंस शिवाय' इन मन्त्रों से विन्यास करने का भी एक अन्य पक्ष है ।३२। अथवा रुद्राध्याय से सब का परिसृजन करके विन्यास करना चाहिए । और चारों ओर पाँच ब्रह्म मन्त्रों के द्वारा कलशों की स्थापना करे ।३३। पूर्व में वर्णित विधान से सब को वेदि के मध्य में विन्यस्त करे । मध्य में

स्थित कुम्भ में भगवान् शिव तथा जगदम्बा का और दक्षिण में परमेश्वरी का विन्यास करे । ।३४। सुचित्रित स्कन्द के कुम्भ में उन दोनों के मध्य में स्कन्द का विन्यास करना चाहिए । स्काद के कुम्भ में ब्रह्मा का अथवा ईश के कुम्भ में हरि का किम्वा शिव कुम्भ में ब्रह्माङ्गों का विन्यास करना चाहिए । शिव-महेश्वर-रुद्र-विष्णु-पितामह ये सब ब्रह्मांग ही हैं । ।३५।३६। इस प्रकार से सक्षेप से ब्रह्मों को तथा हृदयादि अङ्ग उमा इन सब को पूर्व वर्णित विधि से युक्त वेदि के मध्य में विन्यस्त करे ।३७। खड्गाकारा वर्धनी में देवी को स्थापित करे । सुगन्धित जल से पूरित करके हिरण्य-रजत और रत्न शिव के कुम्भ में विन्यस्त करे ।३८। वर्धनी कुम्भ में भी यत्न पूर्वक गायत्री के अङ्ग मन्त्रों के द्वारा हिरण्यादि विद्येश्वर आठों को ब्रह्मकूर्च से पूरित दिशा कुम्भ में विन्यस्त करना चाहिए ।३९।

अनंतेशादिदेवांश्च प्रणवादिनमोंतकम् ।
नववस्त्रं प्रतिघटमष्टकुंभेषु दापुयेत् ।४०।
विद्येश्वराणां कुंभेषु हेमरत्नादि विन्यसेत् ।
वक्त्र क्रमेण होतव्यं गायत्र्यंगक्रमेण च ।४१।
जयादिस्विष्टपर्यन्तं सर्वं पूर्ववदाचरेत् ।
सेचयेच्छिवकुंभेन वर्धन्या वैष्णवेन च ।४२।
पैतामहेन कुंभेन बृह्म भागं विशेषतः ।
विद्येश्वराणां कुंभैश्च सेचयेत्परमेश्वरम् ।४३।
विन्यसेत्सर्वमंत्राणि पूर्ववत्सुसमाहितः ।
पूजयेत्स्नपनं कृत्वा सहस्रादिषु संभवैः ।४४।
दक्षिणा च प्रदातव्या सहस्रपणमुत्तमम् ।
इतरेषां तदर्धं स्यात्तदर्धं वा विधीयते ।४५।

प्रणव आदि में लगाकर तथा 'नमः'—इसे अन्त में जोड़ कर अनन्तेशादि देवों को विन्यस्त करे और इन आठों कुम्भों में प्रत्येक घर को नवीन वस्त्र दिलाना चाहिए ।४०। विद्येश्वरों के कुम्भों में हेम और रत्न आदि का विन्यास करना चाहिए । विश्वेश्वर आठ दिक्पालों के

लिये ईशानादि मुख के क्रम से तथा गायत्री के अङ्ग क्रम से हवन करना चाहिए ।४१। जय से आदि लेकर स्विष्ट पर्यन्त सम्पूर्ण पूर्व की भाँति करना चाहिए । शिव कुम्भ से-देवी कुम्भ से और विष्णु कुम्भ से सेचन करना चाहिए ।४२। पैतामह कुम्भ से विशेष रूप से ब्रह्म भाग को और विद्येश्वरों के कुम्भों से परमेश्वर का सेचन करे ।४३। ईशानादि सम्पूर्ण मन्त्रों को पूर्व की भाँति सुसमाहित होकर विन्यास करे । सहस्र मुख्यों में यथोपन्न कुम्भों के द्वारा स्नपन करके पूजन करे ।४४। उत्तम स्वर्णादि सहस्र कर्ष दक्षिणा देनी चाहिए । इतरों को उसका आधा अर्थात् सह स्थापित अन्य देवों को उसके अर्ध भाग का विधान होता है ।४५।

वस्त्राणि च प्रधानस्य क्षेत्रभूषणगोधनम् ।
उत्सवश्च प्रकर्तव्यो होमयागबलिः क्रमात् ।४६।
नवाहं वापि सप्ताहमेकाहं च त्र्यहं तथा ।
होमश्च पूर्ववत्प्रोक्तो नित्यमभ्यर्च्य शंकरम् ।४७।
देवानां भास्करादानां होमं पूर्ववदेवां तु ।
अभ्यंतरे तथा बाह्ये वह्नौ नित्यं समर्चयेत् ।४८।
य एवं स्थापयेल्लिंगं स एव परमेश्वरः ।
तेन देवगणा रुद्रा ऋषयोऽप्सरसस्तथा ।४९।
स्थापिताः पूजिताश्चैव त्रैलोक्यं सचराचरम् ।५०।

प्रधान शिव को क्षेत्र-गोधन भूषण और वस्त्रों का समर्पण करके क्रम से होम-याग और बलि से युक्त उत्सव करना चाहिए । ।४६। नित्य प्रति भगवान् शङ्कर की अभ्यर्चना करके यह उत्सव नौ दिन का-सात दिन वाला-तीन दिवस का और एक दिन करे । तथा होम पूर्व में कथित विधि से ही करे ।४७। भास्कर आदि देवों का होम पूर्व के समान ही करे तथा अभ्यन्तर एवं वाह्य वह्नि में नित्य समर्चन करना चाहिए ।४८। जो इस प्रकार से लिङ्ग की स्थापना करता है वह ही परमेश्वर है । उससे सब देवगण-सम्पूर्ण रुद्र-समस्त ऋषि और अप्सराएँ एवं चराचर त्रैलोक्य स्थापित यथा पूजित हो जाते हैं ।४९।५०।

॥ ९९–सर्व देवता स्थापन विधि निरूपण ॥

सर्वेषामपि देवानां प्रतिष्ठामपि विस्तरात् ।
स्वैर्मंत्रैर्यागकुंडा न विन्यैया किमेव च ।१।
स्थापयेदुत्सव कृत्वा पूजयेच्च विधानतः ।
भानोः पंचाग्निना कार्यं द्वादशाग्निक्रमेणवा ।२।
सर्वकुडानि वृत्तानि पद्म काराणि सुव्रताः ।
अंबाया योनिकुंडं स्याद्वर्धन्येका विधीयते ।३।
शक्तीनां सर्वकार्येषु योनिकुंडं विधीयते ।
गायत्रीं कल्पयेच्छभीः सर्वेषामपि यत्नतः ।
सर्वे रुद्रांशजा यस्मात्संक्षेपेण वदामि वः ।४।
तत्पुरुषाय विद्महे वाग्विशुद्धाय धीमहि ।
तन्नः शिवः प्रचोदयात् ।५।
गणांबिकायै विद्महे कर्मसिद्धयै च धीमहि ।
तन्नो गौरी प्रचोदयात् ।६।
तत्पुरुषाय विद्महे महादेवाय धीमहि ।
तन्नो रुद्रः प्रचोदयात् ।७।

सर्व देवता स्थापन-विधि निरूपण । सूतजी ने कहा—समस्त देवों की प्रतिष्ठा को भी विस्तार से बतलाता हूँ । अपने उनके मन्त्रों के द्वारा याग कुण्डों का विन्यास करके एक-एक देवता की स्थापना करे ।१। स्थापना करने के उपरान्त उत्सव करके विधि-विधान से उनका पूजन करना चाहिए । हे सुव्रतो ! भानु का स्थापना करे । पञ्चाग्नि अथवा द्वादशाग्नि के क्रम से करना चाहिए । समस्त कुण्ड वृत्त और पद्म के समान आकार वाले कल्पित करे । अम्बा का योनि कुण्ड करे और एक वर्धनी की जाती है ।२।३। शक्तियों का सम्पूर्ण कार्यों में योनि कुण्ड का विधान किया जाता है । शम्भु की और सभी की गायत्री की यत्न पूर्वक कल्पना करे । सब रुद्र के अंश से समुत्पन्न हैं इसलिये संक्षेप में आपको बतलाता हूं ।४। अब गायत्री के भेद बतलाये जाते हैं शिव की गायत्री यह है—"तत्पुरुषाय विद्महे वाग्वि शुद्धाय धीमहि । तन्नः

शिवः प्रचोदयात्'' ।५। गौरी गायत्री यह है–''गणाम्बिकायै विद्महे। कर्म सिद्ध्यै च धीमहि। तन्नो गौरी प्रचोदयात्''–हम गणों की अम्बिका का ज्ञान प्राप्त करते हैं और कर्मों की सिद्धि के लिये उनका हम ध्यान करते हैं। वह भगवती गौरी हमको प्रेरणा प्रदान करे ।६। रुद्र गायत्री यह है—''तत्पुरुषाय विद्महे महादेवाय धीमहि। तन्नो रुद्रः प्रचोदयात्''। ।७।

तत्पुरुषाय विद्महे वक्रतुंडाय धीमहि।
तन्नो दंतिः प्रचोदयात् ।८।
महासेनाय विद्महे वाग्विशुद्धाय धीमहि।
तन्नः स्कंदः प्रचोदयात् ।९।
तीक्ष्णश्रृंगाय विद्महे वेदपादाय धीमहि।
तन्नो वृषः प्रचोदयात् ।१०।
हरिवक्त्राय विद्महे रुद्रवक्त्राय धीमहि।
तन्नो नंदी प्रचोदयात् ।११।
नारायणाय विद्महे वासुदेवाय धीमहि।
तन्नो विष्णुः प्रचोदयात् ।१२।
महांबिकायै विद्महे कर्म सिद्ध्यै च धीमहि।
तन्नो लक्ष्मीः प्रचोदयात् ।१३।
समुद्धृतायै विद्महे विष्णुनेकेन धीमहि।
तन्नो धरा प्रचोदयात् ।१४।

अब दन्ती गायत्री बतलाते हैं–''तत्पुरुषाय विद्महे, वक्र तुण्डाय धीमहि। तन्नो दन्तिः प्रचोदयात्'' ।८। स्कन्द गायत्री यह है–''महा सेनाय विद्महे। वाग्विशुद्धाय धीमहि। तन्नः स्कन्दः प्रचोदयात्'' अर्थ तो सभी गायत्रियों को समान ही होता है। केवल देवता के नाम का ही भेद होता है ।९। वृष गायत्री यह है-'तीक्ष्ण श्रृङ्गाय विद्महे, वेद पादाय धीमहि। तन्नो वृषः प्रचोदयात्''। इसके अनन्तर नन्दी गायत्री है—''हरिवक्त्राय विद्महे। रुद्र वक्त्राय धीमहि। तन्नो नन्दी प्रचोदयात्' इसके उपरान्त विष्णु गायत्री है–''नारायणाय विद्महे। वासुदेवाय धी-

महि । तन्नो विष्णुः प्रचोदयात्" । प्रत्येक गायत्री के तीन भाग होते हैं । इनमें जिस देवता का नाम है उसके आगे चतुर्थी विभक्ति होती है और जानते हैं–ध्यान करते हैं और प्रेरणा करो–ये सब में होता है ।१०। ।११।१२। लक्ष्मी गायत्री यह हैं–"महाम्बिकायै विद्महे । कर्म सिद्धयै च धीमहि । तन्नो लक्ष्मीः प्रचोदयात्" । अब यह धरा गायत्री है–"समुद्धृतायै विद्महे । विष्णुनैकेन धीमहि । तन्नो धरा प्रचोदयात्" ।१३-१४

वंनतेयाय विद्महे सुवर्णपक्षाय धीमहि ।
तन्नो गरुडः प्रचोदयात् ।१५।
पद्मोद्भवाय विद्महे वेदवक्त्राय धीमहि ।
तन्नः स्रष्टा प्रचोदयात् ।१ ।
शिवास्यजायै विद्महे देवरूपायै धीमहि ।
तन्नो वाचा प्रचोदयात् ।१७।
देवराजाय विद्महे वज्रहस्ताय धीमहि ।
तन्नः शक्रः प्रचोदयात् ।१८।
रुद्रनेत्राय विद्महे शक्तिहस्ताय धीमहि ।
तन्नो वह्निः प्रचोदयात् ।१९।
वैवस्वताय विद्महे दंडहस्ताय धोमहि ।
तन्नो यमः प्रचोदयात् ।२०।
निशाचराय विद्महे खड्गहस्ताय धीमहि ।
त नो निर्ऋतिः प्रचोदयात् ।२१।

इसके अनन्तर गरुड़ गायत्री बताते हैं—"वैनतेयाय विद्महे । सुवर्ण पक्षाय धीमहि । तन्नो गरुड़ः प्रचोदयात्" ।१५। स्रष्टा गायत्री यह है—'पद्मोद्भवाय विद्महे । वेद वक्त्राय धीमहि । तन्नः स्रष्टा प्रचोदयात्" । ।१६। अब वाचा गायत्री है–"शिवस्यजायै विद्महे । देव रूपायै धीमहिः । तन्नो वाचा प्रचोदयात्" ।१७। शक्र अर्थात् इन्द्र गायत्री है–"देवराजाय विद्महे । वज्र हस्ताय धीमहि । तन्नः शक्रः प्रचोदयात्" ।१८। अब वह्नि गायत्री यह है–"रुद्रनेत्राय विद्महे । शक्ति हस्ताय धीमहि । तन्नो वह्निः प्रचोदयात्" । ।१९। इसके पश्चात् यम गायत्री यह है–'वैवस्वताय वि-

म्हे । दण्ड हस्ताय धीमहि । तन्नो यम: प्रचोदयात्" ।२०। अब निर्ऋति गायत्री बताई जाती है–"निशाचराय विद्महे । खड्ग हस्ताय धीमहि । तन्नो निर्ऋति- प्रचोदयात्" ।२१।

शुद्धहस्ताय विद्महे पाशहस्ताय धीमहि ।
तन्नो वरुण: प्रचोदयात् ।२२।
सर्वप्राणाय विद्महे यष्टिहस्ताय धीमहि ।
तन्नो वायु: प्रचोदयात् ।
यक्षेश्वराय विद्महे गदाहस्ताय धीमहि ।
तन्नो यक्ष: प्रचोदयात् ।२४।
सर्वेश्वराय विद्महे शूलहस्ताय धीमहि ।
तन्नो रुद्र: प्रचोदयात् ।२५।
कात्यायन्यै विद्महे कन्याकुमार्यै धीमहि ।
तन्नो दुर्गा प्रचोदयात् ।२६।
एवं प्रभिद्य गायत्रीं तत्तदेवानुरूपत: ।
पूजयेत् स्थापयेत्तेषामासनं प्रणवं स्मृतम् ।२७।
अथवा विष्णुमतुलं सूक्तेन पुरुषेण वा ।
विष्णुं चैव महाविष्णुं सदाविष्णुमनुक्रमात् ।२८।

यह वरुण गायत्री है–"शुद्धहस्ताय विद्महे । पाश हस्ताय धीमहि । तन्नो वरुण: प्रचोदयात्" अब वायु गायत्री बतलाई जाती है–"सर्व प्राणाय विद्महे । यष्टि हस्ताय धीमहि । तन्नो वायु: प्रचोदयात्" ।२२। ।२३। इसके अनन्तर यक्ष गायत्री है—"यक्षेश्वराय विद्महे । गदा हस्ताय धीमहि । तन्नो यक्ष: प्रचोदयात्" । ।२४। रुद्र गायत्री यह है—"सर्वेश्वराय विद्महे । शूल हस्ताय धीमहि । तन्नो रुद्र: प्रचोदयात्" ।२५। इसके पश्चात् दुर्गा गायत्री बताई जाती है–'कात्यायन्यै विद्महे । कन्या कुमार्यै धीमहि । तन्नो दुर्गा प्रचोदयात्" । ।२६। इस प्रकार से तत्तत् देव के अनुरूप गायत्री की भिन्नता करके उन देवों के लिये प्रणव का आसन कहा गया है । उनकी स्थापना करे और फिर पूजन करना चाहि ।२७। अथवा अतुल विष्णु का पुरुष सूक्त से और अनुक्रम से विष्णु-ए

महाविष्णु और सदाविष्णु को स्थापित करे।२८।

स्थापयेद्देवगायत्र्या परिकल्प्य विधानतः।
वासुदेवः प्रधानस्तु ततः संकर्षणः स्वयम्।२९।
प्रद्युम्नो ह्यनिरुद्धश्च मूर्तिभेदास्तु वै प्रभोः।
बहुनि विविधानीह तस्य शापोद्भवानि च।३०।
सर्वावर्तेषु रूपाणि जगतां च हिताय वै।
मत्स्यः कूर्मोऽथ वाराहो नारसिंहोऽथ वामनः।३१।
रामो रामश्च कृष्णश्च बौद्ध कल्की तथैव च।
तथान्यानि न देवस्य हरेः शापोद्भवानि च।३२।
तेषामपि च गायत्रीं कृत्वा स्थाप्य च पूजयेत्।
गुह्यानि देवदेवस्य हरेर्नारायणस्य च।३३।
विज्ञानानि च यंत्राणि मंत्रोपनिषदानि च।
पंच ब्रह्मांगजानीह पंचभूतमयानि च।३४।
नमो नारायणायेति मंत्रः परमशोभनः।
हरेरष्टाक्षराणीह प्रणवेन समासतः।३५।
ओं नमो वासुदेवाय नमः संकर्षणाय च।
प्रद्युम्नाय प्रधानाय अनिरुद्धाय वैं नमः।३६।

देव गायत्री से परिकल्पन करके विधान से स्थापना करे। विष्णवादि व्यूह में वासुदेव प्रधान है। इसके पश्चात् स्वयं सङ्कर्षण हैं तथा प्रद्युम्न और अनिरुद्ध ये सब प्रभु के ही मूर्त्ति भेद हैं। इस संसार में शाप से उत्पन्न होने वाले अनेक रूप हैं।२९।३०। समस्त कृत युग आदि आवर्त्तों में इनके ये स्वरूप जगतों के हित के ही लिये हैं। भगवान् विविध स्वरूपों से ही मत्स्य-कूर्म-वराह-नारसिंह वामन-राम-परशुराम-बलराम-कृष्ण-बौद्ध और कल्की ये रूप हैं। तथा देव हरि के इनके अतिरिक्त भी शापोद्भव रूप हैं।३१।३२। उनकी भी गायत्री की कल्पना करके स्थापन तथा उनकी पूजा करनी चाहिए। देवों के देव हरि नारायण के विज्ञान-यन्त्र और मन्त्रोपनिषद् अत्यन्त गुह्य हैं। जो प्रसिद्ध हैं वे पाँच ब्रह्माङ्गज अर्थात् सद्योजातादि स्वरूप है और पाँच पार्थिवादि

रूप हैं। इनके द्वारा स्थापन करके पूजन करे।३३।३४। अब नारायण आदि मुख्य मन्त्रों को बताते हैं–"नमो नारायणाय"—यह नारायण का परम शोभन मन्त्र हैं। प्रणव के सहित हरि का अष्टाक्षरीय मन्त्र होता है–"ओम् नमो वासुदेवाय"–इसी प्रकार से "ओम् नमः"–यह जोड़कर सङ्कर्षणाय-प्रद्युम्नाय-प्रधानाय-अनिरुद्धाय-इन शब्दों से भी मन्त्रों की रचना होती है।३५।३६।

एवमेकेन मंत्रेण स्थापयेत्परमेश्वरम्।
बिंबानि यानि देवस्य शिवस्य परमेष्ठिनः।३७।
प्रतिष्ठा चैव पूजा च लिङ्गवन्मुनिसत्तमाः।
रत्नविन्याससहितं कौतुकानि हरेरपि।३८।
अचले कारयेत्सर्वं चलेष्येवं विधानतः।
तन्नेत्रोन्मीलनं कुर्यान्नेत्रमंत्रेण सुव्रताः।३९।
क्षेत्रप्रदक्षिणं चैव आरामस्य पुरस्य च।
जलाधिवासनं चैत्र पूर्ववत्परिकीर्तितम्।४०।
कुडंमंडपनिर्माणं शयनं च विधीयते।
हुत्वा नवाग्निभागेन नवकुंडे यथाविधि।४१।
अथवा पंचकुंडेषु प्रधाने केवलेऽथ वा।
प्रतिष्ठा कथिता दिव्या पारंपर्यक्रमागता।४२।
शिलोद्भवानां बिंबानां चित्राभासस्य वा पुनः।
जलाधिवासनं प्रोक्तं वृषेंद्रस्य प्रकीर्तितम्।४३।

इस प्रकार से एक मन्त्र से एक मन्त्र से परमेश्वर की स्थापना करनी चाहिए। परमेष्ठी देव शिव के जो बिम्ब हों उनकी हे मुनिश्रेष्ठो ! प्रतिष्ठा और पूजा लिङ्ग की भाँति ही करे। रत्न विन्यास करने के साथ हरि के भी मङ्गल करने चाहिए।३७।३८। जो बिम्ब अचल हों उन में भी सब कृत्य करे और इसी तरह विधि-विधान से चल बिम्ब में भी करना चाहिए। हे सुव्रतो ! उन मूर्त्तिओं के नेत्र मन्त्र के द्वारा नेत्रों का उन्मीलन करे।३९। क्षेत्र-आराम तथा नगर की प्रदक्षिणा करावे और जल में अधिवास जैसा कि पहिले सब वर्णित किया जा चुका है कराना

चाहिए ।४०। कुण्ड और मण्डप की रचना तथा शयन का विधान करे। नौ कुण्डों नौ अग्नि के भाग से हवन यथा विधि करे ।४१। अथवा पाँच कुण्डों में ही केवल प्रधान में परम्परा से समागत दिव्य प्रतिष्ठा कही गई है ।४२। शिलोद्भव जो पाषाण मूर्त्तियाँ होती हैं उनका शक्ताशक्त विवेक के द्वारा जल में अधिवास आदि किया जाता है । जो चित्रमयी मूर्त्तियाँ हैं उनका जलाधिवास नहीं बताया गया है । वृषेन्द्र का तो जलाधिवासन निश्चय ही कहा गया है ।४३।

प्रासादस्य प्रतिष्ठायां प्रतिष्ठा परिकीर्तिता ।
प्रासादांगस्य सर्वस्य यथांगानां तनोरिव ।४४।
मृषाग्निमातृविघ्नेशकुमारानपि यत्नतः ।
श्रेष्ठां दुर्गा तथा चंडी गायत्र्या वै यथाविधि ।४५।
प्रागाद्यं स्थापयेच्छंभोरष्टावरणमुत्तमम् ।
लोकपालगणेशाद्यानपि शभोः प्रविन्यसेत् ।४६।
उमा चंडी च नंदी च महाकालो महामुनिः ।
विघ्नेश्वरी मह भृङ्गी स्कंदः सौम्यादितः क्रमात् ।४७।
इंद्रादीन्स्वेषु स्थानेषु ब्रह्माण च जनार्दनम् ।
स्थापयेच्चैव यत्नेन क्षेत्रेशं वैशगोचरे ।४८।
सिंहासने ह्यनंतादीन् विद्येशामपि च क्रमात् ।
स्थापयेत्प्रणवेनैव गुह्यांगादीनि पंकजे ।४९।
एवं संक्षेपतः प्रोक्तं चलस्थापनमुत्तमम् ।
सर्वेषामपि देवानां देवीनां च विशेषतः ।५०।

अब देव-प्रसाद की प्रतिष्ठा की विधि के विषय में बताया जाता है कि प्रासाद की प्रतिष्ठा तो कीर्त्तित कर दी गई है । जिस तरह इस शरीर के अङ्ग होते हैं उसी भाँति प्रासाद के भी अङ्गों की भी सब की प्रतिष्ठा आदि की जाति है ।४४। अब आठ आवरण देवों के विषय में कहते हैं कि वृषाग्नि-मातृ विघ्नेश और कुमार आदि का तथा श्रेष्ठ दुर्गा और चण्डी का गायत्री मन्त्र के द्वारा विधि पूर्वक विन्यास एवं स्थापना आदि करने चाहिए ।४५। शम्भु के लोकपाल-रुद्रगण गणेशादि प्रथमगण

स्वामियों का जो कि परमोत्तम आठ आवरण है प्रागाद्य विन्यास तथा स्थापन करना चाहिए ।४६। उमा चण्डी-नन्दी-महाकाल-महामुनि-विघ्नेश्वर-महाभृङ्गी स्कन्द इनका उत्तर दिशा आदि के क्रम से विन्यास करना चाहिए ।४७। अपने-अपने स्थानों में इन्द्र आदि का तथा ब्रह्मा और जनार्दन एवं क्षेत्रपाल का ईशान दिग्भाग में यत्न पूर्वक स्थापन करे ।४८। सिंहानन पर अनन्त आदि की और क्रम से वागीश्वरी की और पङ्कज में गुह्याङ्ग धर्मादि की प्रणव के ही द्वारा स्थापना करे। इस प्रकार से अति संक्षेप से चल बिम्बों की स्थापना-विधि बतादी गई है। इसी तरह से समाज देवों तथा विशेष करके देवियों की स्थापना की जाया करती है ।५०।

।। १००–अघोर रूपी शिव की प्रतिष्ठा ।।

अघोरेशस्य माहात्म्यं भवता कथितं पुरा ।
पूजां प्रतिष्ठां देवस्य भवन्वक्तुमर्हसि ।१।
अघोरेणांग युक्तेन विधिवच्च विशेषतः ।
प्रतिष्ठ लिंगविधिना नान्यथा मुनिपुंगवाः ।२।
तथाग्निपूजां वै कुर्याद्यथा पूजा तथैव च ।
सहस्रं वा तदर्धं वा शतमष्टोत्तरंतु वा ।३।
तिलैर्होमः प्रकर्तव्यो दधिमध्वाज्यसंयुतैः ।
घृतसक्तुमधूनां च सर्वदुःखप्रमार्जनम् ।४।
व्याधीनां नाशनं चैव तिलहोमस्तु भूतिदः ।
सहस्रेण महाभूतिः शतेन व्याधिनाशनम् ।५।
सर्वदुःखविनिर्मुक्तो जपेन च न संशयः ।
अष्टोत्तरशतेनव त्रिकाले च यथाविधि ।६।
अष्टोत्तरसहस्रेण षण्मासाज्जायते ध्रुवम् ।
सिद्धया नैत्र संदेहो राज्यमंडलिनामपि ।७।

(अघोर रूपी शिव की प्रतिष्ठा) इस नवचात्वरिंशक अध्याय में अघोर स्वरूप वाले भगवान् शिव की प्रतिष्ठा-जाप तथा होम के विधान

को बताया जाता है। ऋषियों से कहा—हे सूतजी, पहिले अघोर शिव की महिमा बतलाई थी हे भगवन्! अब उन अघोर रूपी देव शिव की पूजा की पद्धति तथा प्रतिष्ठा के बता देने की कृपा कीजिए।१। सूतजी ने कहा हे मुनिश्रेष्ठो। हृदयादि अङ्गों से युक्त अघोर के द्वारा विधिवत् जिस प्रकार लिङ्ग की प्रतिष्ठा और पूजा होती है उसी विशेष प्रकार से यह भी की जाती है और अन्य उसका कोई विशेष प्रकार नहीं है।२। जैसे लिङ्गादि पूजा है वैसे ही अग्नि में पूजा होती है। उसे निश्चय रूप से करना चाहिए। एक सहस्र या इसका अर्ध भाग अथवा अष्टोत्तर शत मधु-दधि और घृत से युक्त तिलों के द्वारा होम करना चाहिए। घृत-सक्तु (सतुआ) और मधु के द्वारा हवन सम्पूर्ण दुःखों का मिटा देने वाला होता है।२।३।४। यह होम समस्य व्याधियों के नाश करने वाला होता है। तिलों के द्वारा किया हुआ होम भूति (वैभव) के प्रदान करने वाला होता है। एक सहस्र अघोर मन्त्र के जाप से महा विभूति की प्राप्ति होती है और एक शत के जप से व्याधि का नाश होता है।।५। अघोर मन्त्र के जप से सम्पूर्ण प्रकार दु.खों से छुटकारा हो जाया करता है—इसमें कुछ भी संशय नहीं है। तीनों कालों में अष्टोत्तर शत ही विधि के सहित जप करना चाहिए।६। अष्टोत्तर सहस्र जप से छै मास में राज्य मण्डलियों की भी सिद्धियाँ होती है इसमें-तनिक भी सन्देह नहीं है।७।

सहस्रेण ज्वरो याति क्षीरेण च जुहोति यम्।
त्रिकालं मासमेकं तु सहस्रं जुहुयात्पयः।८।
मासेन सिद्धचते तस्य महासौभाग्यमुत्तमम्।
सिद्धचते चाब्दहोमेन क्षौद्राज्यदधिसंयुतम्।९।
यवक्षीराज्यहोमेन जातितंडुलकेन वा।
प्रीयेत भगवानीशो ह्यघोरः परमेश्वरः।१०।
दध्ना पुष्टिर्नृपाणां च क्षीरहोमेन शांतिकम्।
षण्मासं तु घृतं हुत्वा सर्वव्याधिविनाशनम्।११।
राजयक्ष्मा तिलैर्होमान्नश्यते वत्सरेण तु।

यवहोमेन चायुष्यं घृतेन च जयस्तदा ।१२।

जिस उद्देश्य को लेकर क्षीर से हवन करे तो एक सहस्र आहुतियाँ से ज्वर चला जाता है । तीनों कालों में एक मास पर्यन्त एक सहस्र दूध की आहुतियाँ देनी चाहिए ।८। एक मास में उसको महान् उत्तम सौभाग्य की सिद्धि हो जाती है । मधु घृत और दधि से युक्त एक वर्ष पर्यन्त होम करे अथवा जौ दुग्ध और घृत से किम्बा जातिपुष्प और तण्डुलों से हवन करे तो भगवान् ईश परमेश्वर अघोर परम प्रसन्न हो जाते हैं ।९। ।१०। दही से नृपों की पुष्टि होती है और क्षीर के होम से परम शान्ति का लाभ होता है और छै मास तक घृत का हवन करने से समस्त प्रकार की व्याधिओं का विनाश हो जाता है ।११। राजयक्ष्मा की भयानक बीमारी भी एक वर्ष तक तिलों के द्वारा हवन करने से नष्ट हो जाया करती है । यवों के होम से आयु की वृद्धि होती है तथा घृत के होम से सर्वदा एवं सर्वत्र जय की प्राप्ति हुआ करती है ।१२।

सर्वकुष्ठक्षयार्थं च मधुनाक्तैश्च तंडुलैः ।
जुहुयादयुतं नित्य षण्मासान्नियतः सदा ।१३।
आज्य क्षीरं मधुश्चैव मधुरत्रयमुच्यते ।
समस्तं तुष्यते तस्य नाशयेद्वै भगंदरम् ।१४।
केवलं घृतहोमेन सर्वरोगक्षयः स्मृतः ।
सर्वव्याधिहरं ध्यानं स्थापनं विधिनार्चनम् ।१५।
एवं संक्षेपतः प्रोक्तमघोरस्य महात्मनः ।
प्रतिष्ठा यजनं सर्वं नंदिना कथितं पुरा ।१६।
ब्रह्मपुत्राय शिष्याय तेन व्यासाय सुव्रताः ।१७।

समस्त प्रकार के कुष्ठों के विनाश करने के लिये मधु से अक्त तण्डुलों से नित्यप्रति नियत होकर छै मास तक दश सहस्र आहुतियाँ देवे ।१३। घृत क्षीर और मधु इन तीनों का नाम मधुर त्रय कहा जाता है । इसके द्वारा यजन करने वाले व्यक्ति से समस्त विश्व परम तुष्टि को प्राप्त होता है । यह मधुर त्रय भगन्दर रोग को नाश कर देता है ।१४। केवल घृत के होम करने से ही समस्त रोगों का क्षय हो जाता है । सब प्रकार की

व्याधिक्षों का हरण ध्यान-स्थापन और विधि पूर्वक अर्चन करने से होता है ।१५। इस प्रकार से महात्मा अघोर की प्रतिष्ठा तथा यजनार्चना जैसी कि पहिले नन्दी ने कही थी मैंने आपको बताई गई है। हे सुव्रतो ! नन्दी ने ब्रह्मा के पुत्र शिष्य व्यास को बताई थी । ।१७।

॥ १०१–अघोरेश-आराधन निग्रह ॥

निग्रहः कथितस्तेन शिववक्त्रेण शलिना ।
कृतापराधिनां तं तु वक्तुमर्हसि सुव्रत ।१।
त्वया न विदितं नास्ति लौकिकं वैदिकं तथा ।
श्रौतं स्मार्तं महाभाग रोमहर्षण सुव्रत ।२।
पुरा भृगुसुतेनोक्तो हिरण्याक्षाय सुव्रताः ।
निग्रहोऽघोरशिष्येण शुक्रेणाक्षयतेजसा ।३।
तस्य प्रसादाद्दैत्येंद्रो हिरण्याक्षः प्रतापवान् ।
त्रैलोक्यमखिलं जित्वा सदेवासुरमानुषम् ।४।
उत्पाद्य पुत्र गणपं चांधकं चारुविक्रमम् ।
रराज लोके देवेन वराहेण निषूदितः ।५।
स्त्रीबाधां बालबाधां च गवामपि विशेषतः ।
कुर्वतो नास्ति विजयो मार्गेणानेन भूतले ।६।
तेन दैत्येन सा देवी धरा नीता रसातलम् ।
तेनाघोरेण देवेन निष्फलो निग्रहः कृतः ।७।

इस अध्याय में भगवान अघोरेश के आराधन से शुक्र प्रोक्त निग्रह विधि का निरूपण किया जाता है। ऋषियों ने कहा–शिववक्त्र शूली के द्वारा आपने निग्रह तो वर्णित कर दिया है। अब आप कृपा करके कृतापराधियों के निग्रह की विधि को बताने के योग्य होते हैं। हे सुव्रत रोमहर्षण ! हे महान् भाग वाले ! लौकिक-वैदिक और स्मार्त्त आपको ज्ञात न हो-ऐसा तो है ही नहीं अर्थात् सभी कुछ भली-भाँति जानते हैं । सूतजी ने कहा—हे सुव्रतो ! पहिले भृगु सुत ने इसे हिरण्याक्ष को बताया था क्योंकि अघोरेश भगवान् के शुक्राचार्य परम शिष्य थे और अक्षय तेज

वाले थे ।१।२।३। उसी के प्रसाद का यह प्रभाव था कि दैत्येन्द्र परम प्रतापी हिरण्याक्ष संम्पूर्ण त्रैलोक्य को जिससे देव-असुर और मनुष्य सभी थे जीत लिया था। वह चारु विक्रम वाले गणप अन्धक पुत्र को उत्पन्न करके लोक में सुशोभित हुआ था। अन्त में भगवान् वराह देव के द्वारा मारा गया था ।४।५। इस निग्रह विधि में जो बाधक होते हैं उन्हें बतलाते हैं-इसमें तीन बाधाएें - स्त्री बाधा, बाल बाधा और विशेष करके गो बाधा हुआ करती हैं। इस भूतल इनको करने वाले का विजय नहीं होता है और इसी कारण से वह हिरण्याक्ष मारा गया था ।६। उस दैत्य ने देवी धरा को पाताल में पहुंचा दिया था। अतएव उस अघोर देव ने वह निग्रह निष्फल कर दिया था ।७।

संवत्सर सहस्रांते वराहेण च सूदितः ।
तस्मादघोरसिद्धयर्थं ब्राह्मणान्नैव बाधयेत् ।८।
स्त्रीणामपि विशेषेण गवामपि न कारयेत् ।
गुह्यादगुह्यातमं गोप्यमतिगुह्यं वदामि वः ।९।
अतितायिनमुद्दिश्य कर्तव्यं नृपसत्तमैः ।
ब्राह्मणेभ्यो न कर्तव्यं स्वराष्ट्रेशस्य वा पुनः ।१०।
अतीव दुर्जये प्राप्ते बले सर्वे निषूदिते ।
अधर्मयुद्धे संप्राप्ते कुर्याद्विधिमनुत्तमम् ।११।
अघृणेनैव कर्तव्यो ह्यघृणेनैव कारयेत् ।
कृतमात्रे न संदेहो निग्रहः संप्रजायते ।१२।
लक्षमात्रं पुमञ्जप्त्वा अघोरं घोररूपिण ।
दशांशं विधिना हुत्वा तिलेन द्विजसत्तमाः ।१३।
संपूज्य लक्षपुष्पेण सितेन विधिपूर्वकम् ।
बाणलगेऽथवा वह्नौ दक्षिणामूर्तिमाश्रितः ।१४।

एक सहस्र वर्ष के पश्चात् भगवान् वराह ने उसका वध किया था। इसलिये अघोर की सिद्धि करने में ब्राह्मणों को कभी बाधा नहीं पहुंचानी चाहिए। विशेष करके स्त्रियों को और गौओं को भी बाधित नहीं करना चाहिए। मैं आपको परम गोपनीय से भी अधिक गुप्त बात बता

रहा हूँ।८।९। इसे राजाओं के द्वारा जो आततायी अर्थात मारने को उद्यत हो उसी का उद्देश्य लेकर करना चाहिए। ब्राह्मणों के लिये और अपने राष्ट्र के स्वामी के लिये इसे कभी नहीं करना चाहिए।१०। इस परम उत्तम विधि को उसी समय करे जब कि यह देखले कि अत्यन्त ही दुर्जय प्राप्त हो गया है और सम्पूर्ण बल का क्षय हो गया है तथा अधर्म युद्ध सम्प्राप्त हो गया है।११। इस विधि को क्रूर के द्वारा ही करना चाहिए और किसी क्रूर ब्राह्मण के द्वारा ही कराना भी चाहिए क्योंकि यह एक अशान्त कृत्य ही होता है। इसमें कोई भी सन्देह नहीं है कि इसके करने मात्र से ही निग्रह समुत्पन्न हो जाया करता है।१२। हे द्विजसत्तमो! इस घोर रूप वाले अघोर मन्त्र का एक लक्ष जाप करके फिर उस जापक पुरुष को जप के पश्चात विधिपूर्वक तिलों के द्वारा जप संख्या का दशांश भाग का हवन करना चाहिए।१३। इसके अनन्तर बाण लिङ्ग में अथवा वह्नि में दक्षिणा मूर्त्ति का आश्रित होकर श्वेत एक लक्ष पुष्प से विधि के सहित पूजन करने से मन्त्र सिद्ध होता है।१४

सिद्धमंत्रोऽन्यथा नास्ति द्रष्टा सिद्धयादयः पुनः।
सिद्धमंत्रः स्वयं कुर्यात्प्रेतस्थाने विशेषतः।१५।
मातृस्थानेऽपि वा विद्वान्वेदवेदांग पारगः।
केवलं मंत्रसिद्धो वा ब्राह्मणः शिवभावितः।१६।
कुर्याद्विधिमिमं धीमानात्मनोऽर्थं नृपस्य वा।
शूलाष्टकं न्यसेद्विद्वान् पूर्वादीशानकांतकम्।१७।
त्रिशिख च त्रिशूल च चतुर्विशच्छिखाग्रतः।
अघोरविग्रहं कृत्वा संकलाकृतविग्रहः।१८।
सर्वनाशकरं ध्यात्वा सर्वकर्माणि कारयेत्।
कालाग्निकोटिसंकाश स्वदेहमपि भावयेत्।१९।

इसके किये बिना अन्य किसी भी प्रकार से मन्त्र सिद्ध नहीं होता है। बिना मन्त्र की सिद्धि के सिद्धियाँ आदि भी नहीं दिखाई दिया करती हैं। विशेषतः प्रेत स्थान अर्थात् श्मशान में यह मन्त्र स्वयं सिद्ध करे। अथवा मातृ स्थान में इसे करे। वेदों और वेदाङ्गों का पारगामी विद्वान

ब्राह्मण इसे करे । शिव का भक्त ब्राह्मण केवल गुरु के प्रसाद आदि से मन्त्र सिद्ध धीमान् को चाहिए इस विधि का उपयोग अपने लिये या राजा के उपकारार्थ ही करे । अब निग्रह का विधान बतलाते हैं पूर्वादि दिशा के स्वामियों के अन्त तक शूलाष्टक का न्यास करे । किस प्रकार का शूलाष्टक होना चाहिए—इसके विषय में कहते हैं वह तीन शिखा वाला शूल होना चाहिए और चौवीस जिसके अग्र भागों में शिखाएँ होनी चाहिए । फिर वीरासन आदि के द्वारा अपने शरीर को संकुचित करके भयङ्कर विग्रह सर्वनाश कर शरीर बनाकर ही प्रलयकारक अघोरेश का ध्यान करे और समस्त कर्म करे करावे । कालाग्नि कोटि के समान ही अपने भी शरीर की भावना करनी चाहिए ।१५।१६।१७।१८।१९।

शूलं कपालं पाशं च दंडं चैव शरासनम् ।
बाणं डमरुकं खड्गमष्टायुधमनुक्रमात् ।२०।
अष्टहस्तश्च वरदो नीलकंठो दिगंबरः ।
पंचतत्त्वसमारूढो ह्यर्धचंद्रधरः प्रभुः ।२१।
दंष्ट्राकरालवदनो रौद्रदृष्टिर्भयंकरः ।
हुंफट्कारमहाशब्दशब्दिताखिलदिङ्मुखः ।२२।
त्रिनेत्रं नागपाशेन सुबद्धमुकुटं स्वयम् ।
सर्वाभरणसंपन्न प्रेतभस्मावगुंठितम् ।२३।
भूतैः प्रेतैः पिशाचैश्च डाकिनाभिश्च राक्षसैः ।
संवृतं गजकृत्या च सर्वभूषण भूषितम् ।२४।
वृश्चिकाभरणं देवं नीलनारदनिस्वनम् ।
नीलांजन द्रिमेकाशयसहचर्मोत्तरीयकम् ।२५।
ध्यायेदेवमघोरेमेंघ रघोरतरं शिवम् ।
षट्त्रिंशदुक्तमात्राभिः प्राणायामेन सुव्रताः ।२६।
महामुद्रासम युक्त सर्वकर्माणि कारयेत् ।
सिद्धमंत्रश्चिताग्नौ वा प्रेतस्थाने यथाविधि ।२७।

अब अघोरेश प्रभु का ध्यान क्रम बताया जाता है—अघोरेश प्रभु के आठ हाथ हैं उनमें क्रम से शूल-कपाल-पाश-दण्ड:शरासन-बाण-डमरु

और खड्ग धारण किये हुए हैं। अष्ट हस्त वरदान प्रदान करने की मुद्रा में विराजमान हैं। प्रभु का कण्ठ नील वर्ण का है और आप स्वयं दिगम्बर है। पाँच तत्वों पर समारूढ हैं। नन्दिकेश्वर में पृथिव्यादि पाँचों तत्त्व विद्यमान हैं। मस्तक पर अर्ध चन्द्र धारण किये हुए हैं ।२०। ।२१। दंष्ट्राओं से विकराल मुख वाले हैं। रौद्र दृष्टि से युक्त अत्यन्त भयङ्कर स्वरूप वाले हैं। हुङ्कार और फट् इन महान् शब्दों के द्वारा समस्त दिशाओं के मुखों को शब्दायमान करने वाले हैं ।२२। तीन नेत्रों से युक्त हैं और नाग रूपी पाश से स्वयं अपना मुकुट बाँधे हुए हैं। सम्पूर्ण आभरणों से समन्वित और श्मशान की भस्म से अवगुण्ठित शरीर वाला आपका समस्त शरीर है ।२३। उनके चारों ओर प्रेत-भूत-पिशाच-डाकिनी और राक्षस घिरे हुए हैं। गज चर्म धारण किये हुए तथा सर्पों के भूषणों से भूषित वपु वाले हैं ।२४। बिच्छुओं के आभरण धारण करने वाले नील नीरद के समान ध्वनि वाले तथा नीलाञ्जन गिरि के सदृश और सिंह चर्म का उत्तरीयक धारण करने वाले हैं। ऐसे घोर से भी महाघोर स्वरूप वाले प्रभु अघोरेश शिव का ध्यान करना चाहिए, हे सुव्रतो ! पूरक-कुम्भक और रेचक के भेद से छत्तीस मात्रा से समन्वित प्राणायाम के द्वारा भगवान् का ध्यान करना चाहिए ।२५।२६। महामुद्रा से समायुक्त होकर सब कर्म करने-कराने चाहिए। चिन्ता की अग्नि में अथवा प्रेतों के स्थान श्मशान में विधि पूर्वक करने से यह मन्त्र सिद्ध होता है ।२७।

स्थापयेन्मध्यदेशे तु ऐंद्रे याम्ये च वारुणे।
काबेर्यां विधिवत्कृत्वा होमकुंडानि शास्त्रतः ।२८।
आचार्यो मध्यकुंडे साधकाश्च दिशासु व।
परिस्तीर्य विलोमेन पूर्ववच्छूलसंभृतः ।२९।
कालाग्निपीठमध्यस्थः स्वयं शिष्यैश्च तादृशैः।
ध्यात्वा घोरमघोरेशं द्वात्रिंशाक्षरसंयुतम् ।३०।
विभीतकेन वै कृत्वा द्वादशांगुलमानतः।
पीठे न्यस्य नृपेंद्रस्य शत्रुमंगारकेण तु ।३१।

कुंडस्याधः खनेच्छत्रु ब्राह्मणः क्रोधमूर्च्छितः ।
अधोमुखोर्ध्वपादं तु सर्वकुंडेषु यत्नतः ॥३२
श्मशानांगारमानीय तुषेण सह दाहयेत् ।
तत्राग्नि स्थापयेत्तूष्णीं ब्रह्मचर्य परायणः ॥३३
मायूरास्त्रेण नाभ्यां तु ज्वलन दीपयेत्ततः ।
कंचुक तुषसंयुक्तैः कार्पासास्थिसमन्वितैः ॥३४
रक्तवस्त्रसमं मिश्रैर्होमद्रव्यैर्विशेषतः ।
हस्तयंत्रोद्भवैस्तैलैः सह होमं तु कारयेत् ॥३५

अब पंच कुण्डों के विधान को बतलाते हैं—आचार्य को मध्य कुण्ड में और साधक अन्य ऋत्विजों को चारों दिशाओं के कुण्डों में हवन करना चाहिए। पाँचों कुण्डों में मध्य देश में और ऐन्द्र-वारुण याम्य तथा कौवेरी दिशाओं में चार कुण्ड विधि पूर्वक शास्त्र की पद्धति के अनुसार निर्मित करावे ।।२८।। प्रातिलोम्य क्रम से पूर्व की भाँति शूलों से संवेष्टित होकर स्थिति होवे ।।२९।। कालाग्नि पीठ के मध्य में स्थित होकर स्वयं और उसी प्रकार के शिष्यों से संयुत द्वात्रिंशदक्षरों से युक्त तेतीस वर्णों वाले घोर अघोरेश का ध्यान करे ।।३०।। अब शत्रु के निग्रह को कैसे करे इसका प्रकार बताया जाता है— विभीतक (भिलावा) की लकड़ी से नृपेन्द्र के शत्रु की प्रतिमा बारह अङ्गुल प्रमाण वाली बनवावे और उसे अङ्गारक के द्वारा पीठ में विन्यस्त करे ।।३१।। इसके पश्चात् क्रोध से मूर्च्छित होकर ब्राह्मण कुण्ड के नीचे शत्रु का खनन करे। इस तरह समस्त कुण्डों में यत्न पूर्वक नीचे की ओर मुख तथा ऊपर की ओर पैर वाला करे ।।३२।। फिर श्मशान की चिता का अङ्गार लाकर तुषों के साथ उसका दाह कर देवे। वहाँ पर मौन रहते हुए ब्रह्मचर्य में परायण होकर अग्नि का स्थापित करना चाहिए ।।३३।। मयूरास्त्र से नाभि में अग्नि का दीपन करे। रक्त वस्त्र के समान कंचुक को धारण करके तुषों से युक्त तथा कपास के अस्थि बीजों से समन्वित हस्त यन्त्र से उत्पन्न तैल के साथ निश्रित होम द्रव्यों से हवन करना चाहिए ।।३४।।३५।।

अष्टोत्तरसहस्रं तु होमयेदनुपूर्वशः ।

कृष्णपक्षे चतुर्दश्यां समारभ्य यथाक्रमम् ।।३६
अष्टम्यंतं तथांगारमंडलस्थानवर्जितः ।
एवं कृते नृपेंद्रस्य शत्रवः कुलजैः सह ।।३७
सर्वदुःखसमोपेताः प्रयांति यमसादनम् ।
मंत्रेणानेन चादाय नृकपाले नखं तथा ।।३८
केशं नृणां तथांगारं तुषं कंचुकमेव च ।
चीरच्छटां राजधूलीं गृहसंमार्जनस्य वा । ३९
विषसर्पस्य दंतानि वृषदंतानि यानि तु ।
गवां चैव क्रमेणैव व्याघ्रदंतनखानि च ।।४०
तथा कृष्णमृगाणां च बिडालस्य च पूर्ववत् ।
नकुलस्य च दंतानि वराहस्य विशेषतः ।।४१
दंष्ट्राणि साधयित्वा तु मंत्रेणानेन सुव्रताः ।
जपेदष्टोत्तरशतं मंत्र चाघोरमुत्तमम् ।।४२

कृष्ण पक्ष की चतुर्दशी से आरम्भ करके यथाक्रम अष्टमी पर्यन्त अङ्गार मण्डल के स्थान को वर्जित करने वाले आचार्य को अष्टोत्तर सहस्र आहुतियों द्वारा होम करना चाहिए। ऐसे विधान से करने पर नृपेन्द्र के शत्रु कुलजों के सहित सब तरह के दुःखों से पूर्ण होकर यमसादन का प्रयाण कर जाते हैं। अब दूसरा शत्रु के विनाशन का विधान बतलाया जाता है—इस अघोर मन्त्र से मृत मनुष्य के मस्तक के कपाल में नख-मनुष्यों के केश-अङ्गार-तुष-कैंचुली-वस्त्राञ्चल-राजमार्ग की धूलि-घर के संमार्ज की धूलि-विष सर्प के दाँत-बैल के दाँत-वराह की दाढ़ इन सब को इस मन्त्र से साधित करके उक्त अघोर मन्त्र का अष्टोत्तर शत जाप करे। इन उक्त वस्तुओं के साथ गोदन्त-व्याघ्र के दाँत और नाखून-काले हिरनों के दाँत तथा विड़ाल के दाँत-नकुल (न्यौला) दाँत भी रक्खे। ।।४०।।४१।।४२।।

तत्कपालं नखं क्षेत्रे गृहे वा नगरेऽपि वा ।
प्रेतस्थानेऽपि वा राष्ट्र मृतवस्त्रेण वेष्टयेत् ।।४३
शत्रोरष्टमराशौ वा परिविष्टे दिवाकरे ।

सोमे वा परिविष्टे तु मंत्रेणानेन सुव्रताः ॥४४
स्थाननाशो भवेत्तस्य शत्रोर्नाशश्च जायते ।
शत्रुं राज्ञः समालिख्य गमने समवस्थिते ॥४५
भूतले दर्पणप्रख्ये वितानोपरि शोभिते ।
चतुस्तोरणसंयुक्ते दर्भमालासमावृते ॥४६
वेदाध्ययनसंपन्ने राष्ट्रे वृद्धिप्रकाशके ।
दक्षिणेन तु प देन मूर्ध्नि सताडयेत्स्वयम् ॥४७
एवं कृते नृपेंद्रस्य शत्रुनाशो भविष्यति ।
स्वराष्ट्रप तमुद्दिश्य यः कुर्यादाभिचारिकम् ॥ ४८
स आत्मान निहत्यैव स्वकुल नाशयेत्कुधीः ।
तस्मात्स्वराष्ट्रगाप्तारं नृपतिं पालयेत्सदा ॥४९
मंत्रौषधिक्रियाद्यैश्च सर्वयत्नेन सर्वदा ।
एतद्रहस्यं कथितं न देयं यस्य कस्यचित् ॥५०

इस पूर्वोक्त कपाल को परिपूर्ण करके शत्रु के क्षेत्रादि में अष्टम राशि में सूर्य अथवा चन्द्र के परिविष्ट होने पर अथवा राहु ग्रस्त होने पर गृह-क्षेत्र-नगर-प्रेत स्थान अथवा राष्ट्र में हे सुव्रतो ! इस मन्त्र से मृत वस्त्र के द्वारा वेष्टित करे ॥४३॥४४॥ उसके स्थान का नाश होता है और शत्रु का नाश भी हो जाता है । अब निग्रह का तीसरा विधान बताते हैं—विजय करने के लिये गमन के सम्प्राप्त होने पर भूतल में दर्पण प्रख्य-वितान के ऊपर शोभित-चार तोरणों से संयुक्त-दर्भों की माला से समावृत-वेदाध्ययन से सम्पन्न और वृद्धि के प्रकाशक राष्ट्र में दक्षिण पाद से स्वयं नृपति उस शत्रु की लिखित प्रतिमा के मस्तक में सन्ताड़ना करे ॥४५॥४६॥४७॥ इस प्रकार से करने पर नृपेन्द्र के शत्रु का नाश हो जायगा । जो अपने राष्ट्र के पति का उद्देश्य करके इस तरह इस अभिचारिक कर्म करेगा तो वह बुरी बुद्धि वाला अपनी ही आतमा का निहनन करके अपने कुल का नाश करेगा । इसलिये अपने राष्ट्र के रक्षक नृपति का सदा पालन करना चाहिए ॥४८॥ ४९॥ मन्त्र-औषधि और क्रिया आदि से युक्त यह विधान है । इसको परम गोपनीय सर्वदा सभी प्रकार

से रखना चाहिए। मैंने तुमको यह बता दिया है किन्तु इसे जिस किसी चाहे जिसको कभी नहीं बताना चाहिए ॥५०॥

॥ १०२–पाराशर वरदान वर्णन ॥

राक्षसो रुधिरो नाम वसिष्ठस्य सुतं पुरा ॥१
शक्तिं स भक्षयामास शक्तेः शापात्सहानुजैः ॥२
वसिष्ठयाज्यं विप्रेन्द्रास्तदादिश्यैव भूपतिम् ।
कल्माषपादं रुधिरो विश्वामित्रेण चोदितः ॥३
भक्षितः स इति श्रुत्वा वसिष्ठस्तेन रक्षसा ।
शक्तिः शक्तिमतां श्रेष्ठो भ्रातृभिः सह धर्मवित् ॥४
हा पुत्र पुत्र पुत्रेति क्रंदमानो मुहुर्मुहुः ।
अरुंधत्या सह मुनिः पपात भुवि दुःखितः ॥५
नष्टं कुलमिति श्रुत्वा मर्तुं चक्रे मतिं तदा ।
स्मरन्पुत्रशतं चैव शक्तिज्येष्ठं च शक्तिमान् ॥६
न तं विनाहं जीविष्ये इति निश्चित्य दुःखितः ॥७
आरुह्य मूर्धानमजात्मजोसौ तयात्मवान् सर्वविदात्मविच्च ।
धराधरस्यैव तदा धरायां पपात पत्न्या सहसाश्रुदृष्टिः ॥८

सूतजी ने कहा—प्राचीन काल में रुधिर नाम वाला एक राक्षस हुआ था। उसने वसिष्ठ मुनि के पुत्र शक्ति का भक्षण कर लिया था। त्रिशङ्कु के यज्ञ निमन्त्रण के अवसर पर विश्वामित्र दत्त शक्ति शाप के कारण सानुज भक्षण किया था। इस कथा का विशेष विवरण बाल्मीकीय रामायण में दिया गया है ॥१॥२॥ हे विप्रगण ! उस समय में कल्माष पाद भूपति को वसिष्ठ याज्य के विषय में आदेश देकर ही विश्वामित्र ने रुधिर नामक राक्षस को प्रेरणा प्रदान की थी अर्थात् प्रेषित किया था ॥३॥ शक्ति धारियों में परम श्रेष्ठ-धर्म का ज्ञाता शक्ति अपने भाइयों के सहित उस रुधिर नाम वाले राक्षस के द्वारा भक्षण कर लिया गया है–यह जब वसिष्ठ मुनि ने श्रवण किया था तो वह "हा पुत्र ! हा पुत्र !"–इस प्रकार से बारम्बार क्रन्दन करने लगे और पुत्र वियोग के

महान् शोक से आविष्ट होकर अरुन्धती के सहित परम दुःखित होते हुए भूमि पर गिर पड़े थे ॥३॥४॥५॥ मेरा सम्पूर्ण कुल ही नष्ट हो गया है—यह सुनकर उस समय में वसिष्ठ मुनि ने मरने का निश्चय किया था। उन्हें बार-बार अपने सौ पुत्रों का स्मरण होता था जिनमें शक्ति सबसे ज्येष्ठ था और बहुत ही शक्तिशाली था ॥६॥ वसिष्ठ मुनि ने उस समय अत्यन्त दुःखित होकर यही निश्चय किया था कि मैं उसके बिना जीवित नहीं रहूँगा ॥७॥ ब्रह्मा के मानस पुत्र वसिष्ठ यद्यपि आत्म वेत्ता और सर्व वेत्ता थे तो भी शोकाकुल होकर पर्वत की चोटी पर चढ़कर अपनी आँखों से आँसू बहाते हुए अपनी पत्नी के सहित सहसा पृथ्वी पर गिर पड़े थे ॥८॥

धराधरात्त पतितं धरा तदा दधार तत्रापि विचित्रकण्ठी ।
करांबुजाभ्यां करिखेलग मिनी रुदन्तमादाय रुरोद सा च ॥९
तदा तस्य स्नुषा प्राह पत्नी शक्तेर्महामुनिम् ।
वसिष्ठं वदतां श्रेष्ठं रुदती भयविह्वला ॥१०
भगवन्ब्राह्मणश्रेष्ठ तव देहमिदं शुभम् ।
पालयस्व विभो द्रष्टुं तव पौत्रं ममात्मजम् ॥११
न त्याज्यं तव विप्रेन्द्र देहमेतत्सुशोभनम् ।
गर्भस्थो मम सर्वार्थसाधकः शक्तिजो यतः ॥१२
एवमुक्त्व थ धर्मज्ञा कराभ्यां कमलेक्षणा ।
उत्थाप्य श्वशुरं नत्वा नेत्रे संमृज्य वारिणा ॥१३
दुःखितापि परित्रातुं श्वशुरं दुःखितं तदा ।
अरुन्धतीं च कल्याणीं प्रार्थयामास दुःखिताम् ॥१४

उस समय में वसिष्ठ की स्नुषा (पुत्र वधू) शक्ति की पत्नी महामुनि से बोली जो कि वसिष्ठ मुनि बोलने वालों में परम श्रेष्ठ थे—भय से विह्वल होकर रुदन करती हुई उसने कहा हे ब्राह्मणों में अतिश्रेष्ठ भगवन् ! मेरे इस पुत्र और अपने पौत्र की देखभाल करने के लिये अपने इस परम शुभ देह की रक्षा कीजिए। जिस समय वसिष्ठ भूमि पर गिरने लगे उस समय धरा ने गिरते हुए उनको अधर ही धारण कर लिया था

और वहाँ पर ही करके समान गमन करने वाली विचित्र कण्ठी ने (पुत्र वधू ने) अपने कर कमलों से रोते हुए उनको पकड़ लिया था और स्वयं भी वह रोने लगी थी ।।६।।१०।।११।। फिर उसने कहा -- हे विप्रेन्द्र ! आपका यह शरीर अत्यन्त शोभन है अतएव इसका त्याग आपको नहीं करना चाहिए क्योंकि मेरे गर्भ में स्थित शक्ति मेरे पतिदेव का पुत्र विद्यमान है। वह समस्त अर्थों का साधन करने वाला होगा ।।१२।। इस तरह से कह कर कमल के समान सुन्दर नेत्रों वाली उस पुत्र वधू ने जो कि धर्म के ज्ञान वाली थी, हाथों से श्वशुर (वसिष्ठ) को उठाकर प्रणाम किया था और जल से नेत्रों को धोकर स्वयं अत्यन्त दुःखित होते हुए भी उस समय में दुःखित श्वशुर की रक्षा करने के लिये अति दुःखित कल्याणी अरुन्धती से उसने प्रार्थना की थी ।।१३।।१४।।

स्नुषावाक्यं ततः श्रुत्वा वसिष्ठोत्थाय भूतलात् ।
सञ्ज्ञामवाप्य चालिंग्य सा पपात सुदुःखिता ।।१५
अरुंधती कराभ्यां तां संस्पृश्यास्त्र कुलेक्षणाम् ।
रुरोद मुनिशार्दूलो भार्यया सुतवत्सलः ।।१६
अथ नाभ्यंबुजे विष्णोर्यथा तस्याश्चतुर्मुखः ।
आसीना गर्भशय्यायां कुमार ऋचमाह सः ।।१७
ततो निशम्य भगवान्वसिष्ठ ऋत्रमादरात् ।
केनोक्तमिति संचिंत्य तदातिष्ठत्समाहितः ।।१८
व्योमांगणस्थोथ हरिः पुडंरीकनिभेक्षणः ।
वसिष्ठमाह विश्वात्मा घृणया स घृणानिधिः ।।१६
भो वत्सवत्स विप्रेन्द्र वसिष्ठ सुतवत्सल ।
तव पौत्रमुखांभोजादृगेषाद्य विनिःसृता ।।२०
मत्समस्तव पौत्रोसौ शक्तिजः शक्तिमान्मुने ।
तस्मादुत्तिष्ठ संत्यस्य शौकं ब्रह्मसुतोत्तम ।।२१

अपनी पुत्र वधू के वाक्य का श्रवण कर फिर वसिष्ठ मुनि भूतलसे उठ गये थे और होश में आकर अरुन्धती का उन्होंने आलिङ्गन किया था। आंसुओं से भरे हुए नेत्रों वाली अतएव किसी को देखने में असमर्थ

उस अरुन्धती का हाथों से स्पर्श करके फिर अपनी भार्या के सहित वसिष्ठ रुदन करने लगे तथा न देखती हुई वह अरुन्धती भूमि पर गिर पड़ी थी। ।। ५।।१६।। इसके अनन्तर नाभि कमल अर्थात् अर्णव शायी भगवान् विष्णु की नाभि से समुत्पन्न कमल में जिस प्रकार से चार मुख वाले ब्रह्मा जी थे उसी भाँति उस वसिष्ठ की पुत्र-वधू के गर्भ की शय्या में समासीन उस कुमार ने वेद की ऋचा बोली थी ।१७। इसके पश्चात् वसिष्ठ महामुनि ने उस ऋचा का श्रवण बहुत ही आदर के साथ किया था और मन में यह विचार किया था कि यह वेद की ऋचा किसने बोली है और फिर वह समाहित होकर स्थित हो गये थे ।।१८।। इसके अनन्तर अन्तरिक्ष के आँगन में स्थित पुण्डरीक के सदृश सुन्दर नेत्रों वाले भगवान् हरि ने जो कि इस सम्पूर्ण विश्व की आत्मा और अनुकम्पा के आगार है कृपा करके वसिष्ठ महा मुनीन्द्र से बोले - ।।१९।। हे वत्स ! हे वसिष्ठ ! तुम तो विप्रों में परम श्रेष्ठ एवं शिरोमणि हो और अपने पुत्र पर अत्यन्त प्यार करने वाले हो । इस समय तुम्हारे ही गर्भ में स्थित पौत्र के मुख से यह वेद की ऋचा निकली है ।।२०।। हे महामुने ! यह शक्ति का आत्मज आपका पौत्र बहुत ही शक्तिशाली है और यह मेरे ही समान है । हे ब्रह्मा के परमोत्तम पुत्र ! इसलिये इस पुत्र मरण से समुत्पन्न शोक का त्याग करके उठ जाओ ।।२१।।

रुद्रभक्तश्च गर्भस्थो रुद्रपूजापरायणः ।
रुद्रदेवप्रभावेण कुलं ते संतरिष्यति ।।२२
एवमुक्त्वा घृणी विप्रं भगवान् पुरुषोत्तमः ।
वसिष्ठं मुनिशार्दूलं तत्रैवान्तरधीयत ।। २३
ततः प्रणम्य शिरसा वसिष्ठो वारिजेक्षणम् ।
अदृश्यंत्या महातेजाः पस्पर्शो दरमादरात् ।।२४
हा पुत्र पुत्र पुत्रेति पपात च सुदुःखितः ।
ललापारुंधती प्रेक्ष्य तदासौ रुदतीं द्विजाः ।।२५
स्वपुत्रं च स्मरन् दुःखात्पुनरेह्य हि पुत्रक ।
तव पुत्रमिमं दृष्ट्वा भो शक्ते कुलधारणम् ।।२६

तवांतिकं गमिष्यामि तव मात्रा न संशयः ।
एवमुक्त्वा रुदन्विप्र आलिंग्यारुंधतीं तदा ।।२७
पपात ताडयंतीव स्वस्य कुक्षो करेण वै ।
अदृश्यंती जघानाथ शक्तिजस्यालयं शुभा ।।२८
स्वोदरं दुःखिता भूमौ ललाप च पपात च ।
अरुंधतो तदा भीता वसिष्ठश्च महामतिः ।।२९
समुत्थाप्य स्नुषां बालामूचतुर्भयविह्वलौ ।।३०

यह तुम्हारी पुत्र वधू के गर्भ में स्थित बालक भगवान् रुद्र देव का परम भक्त है और रुद्र देव की पूजा में ही सतत तत्पर रहने वाला है । रुद्रदेव के प्रभाव तुम्हारा कुल सन्तीर्ण हो जायगा ।।२२।। इस प्रकार से परम कृपालु पुरुषोत्तम भगवान् विप्र वसिष्ठ से कहकर वहाँ पर अन्तर्ध्यान हो गये थे ।।२३।। इसके अनन्तर वसिष्ठ मुनि ने कमल के सदृश नेत्रों वाले भगवान् विष्णु को प्रणाम शिर से किया था और फिर महान् तेजस्वी मुनि ने परम आदर से अदृश्यन्ती का स्पर्श किया था ।।२४।। फिर "हा पुत्र ! हा पुत्र !"—यह कहते हुए अत्यन्त शोक से दुःखित होकर गिर पड़े । हे द्विजगण ! उस समय यह रुदन करती हुई अरुन्धती को देखकर बोले-।।२५।। अपने पुत्र का स्मरण करते हुए दुःख से बार-बार हे पुत्र ! यहाँ आओ-ऐसा कहती हो सो शक्ति के कुल का धारण करने वाले तुम अपने इस पुत्र को देखो ।।२६।। मैं तुम्हारे ही समीप में तुम्हारी माता अरुन्धती के साथ आ जाऊंगा-इसमें कुछ भी संशय नहीं है । सूतजीने कहा-इस प्रकार से कहकर हे विप्र ! उस समय में रुदन करती हुई अरुन्धती का आलिङ्गन किया था ।।२७।। इसके अनन्तर हाथ से अपने कुक्षियों को ताड़ित करती हुई वह गिर पड़ी थी । उस शुभा अदृश्यन्ती ने शक्तिज के आलय का हनन किया था ।।२८।। अपने उदर को पीटती हुई वह अत्यन्त दुःखित होकर आलाप करने लगी और फिर भूमि में गिर पड़ी थी । उस समय अरुन्धती बहुत भयभीत हुई और उसने तथा महान् मति वाले वसिष्ठ मुनि ने अपनी पुत्र वधू का उठाकर भय से विह्वल होकर दोनों ने उस बाला से कहा था ।।२९।।३०।

विचारमुग्धे तत्र गर्भमंडलं करांबुजाभ्यां विनिहत्य दुर्लभम् ।
कुलं वसिष्ठस्य समस्तमप्यहो निहंतुमार्ये कथमुद्यता वद ।३१।
तवात्मजं शक्तिसुतं च दृष्ट्वा चास्वाद्य वक्त्रामृतमार्यसूनोः ।
त्रातुं यतो देहमिमं मुनींद्रः सुनिश्चितः पाहि ततः शरीरम् ३२
एवं स्नुषामुपालभ्य मुनिं चारुंधती स्थिता ।
अरुंधती वसिष्ठस्य प्राह चार्तेतिविह्वला ।३३।
त्वय्येव जीवितं चास्य मुनेर्यत्सुव्रते मम ।
जीवितं रक्ष देहस्य धात्री च कुरु यद्धितम् ।३४।
मया यदि मुनिश्रेष्ठो त्रातुं वै निश्चितं स्वकम् ।
ममाशुभं शुभं देहं कथंचित्पालयाम्यहम् । ५।
प्रियदुःखमह प्राप्ता ह्यसती नात्र संशयः ।
मुने दुःखादहं दग्धा यतः पुत्री मुने तव ।३६।
अहोद्भुतं मया दृष्टं दुःखपात्रो ह्यहं विभो ।
दुःखत्राता भव ब्रह्मन्ब्रह्मसूनो जगद्गुरु ।३७।

हे विचार करने में मुग्धता धारण करने वाली ! तू अपने कर कमलों से अपने इस दुर्लभ गर्भ मण्डल का हनन करके हे आर्य्ये ! वसिष्ठ के समस्त कुल का नाश करने के लिये क्यों उद्यत हो रही है ? यह हमें बतलादे ।३१। शक्ति का पुत्र इस तेरे आत्मज को देखकर और आर्य पुत्र के मुख रूपी अमृत का पान करके मुनीन्द्र मैं इस अपने शरीर की रक्षा करने का निश्चय कर चुका हूँ। अतएव तू भी अपने शरीर की रक्षा कर ।३२। सूतजी ने कहा—अरुन्धती ने इस तरह से अपनी स्नुषा अर्थात् पुत्र वधू को उपालम्भ देकर और मुनि वसिष्ठ से कह कर वहाँ पर स्थित हो गई थी। उसने फिर कहा—हे सुव्रते ! इस गर्भ में स्थित बालक का-मुनि वसिष्ठ का और मेरा जीवन तुझ में ही है अर्थात् तेरे ही जीवन के रहने से हम सब का जीवन रह सकता है। अतएव अपने जीवन की रक्षा करो और धात्री जो हित हो उसी को करो ।३३।३४। अदृश्यन्ती ने कहा—यदि मुनिश्रेष्ठ वसिष्ठ मेरे ही द्वारा अपनी देह और जीवन की रक्षा करने को सुनिश्चित हो चुके हैं तो मैं अपने इस शुभ

अथवा अशुभ देह की किसी भी प्रकार से रक्षा करूंगी ।३५। मैं अपने परम प्रिय पति के वियोग जन्य दुःख को प्राप्त हो गई हूँ और में असती हूं-इसमें तनिक भी संशय नहीं है । हे मुनिवर ! मैं दुःखसे दग्ध हो गई हूं किन्तु आपकी मैं पुत्री हूँ ।३६। हे विभो ! मैंने यह अत्यन्त अद्भुत देखा है और मैं दुःख की पात्री हूँ । हे ब्रह्मन् ! आप तो ब्रह्मा के पुत्र हैं और इस जगत् के गुरु है । आप मेरे दुःख के त्राता बनें ।३७।

तथापि भर्तृ रहिता दीना नारी भवेदिह ।
पाहि मां तत आर्येन्द्र परिभूता भविष्यति ।३८।
पिता माता च पुत्राश्च पौत्राः श्वशुर एव च ।
एते न बांधवाः स्त्रीणां भर्ता बंधुः परा गतिः ।३९।
आत्मनो यद्धि कथितमप्यर्धमिति पंडितः ।
तदप्यत्र मृषा ह्यासोद्गतः शक्तिरहं स्थिता ।४०।
अहो ममात्र काठिन्य मनसो मुनिपुंगव ।
पति प्राणसमं त्यक्त्वा स्थिता यत्र क्षणं यतः ।४१।
वसिष्ठाश्वत्थमाश्रित्य ह्यमृता तु यथा लता ।
निर्मूलाप्यमृता भर्त्रा त्यक्ता दीना स्थिताप्यहम् ।४२।
स्नुषा वाक्यं निशम्यैव वसिष्ठो भार्यया सह ।
तदा चक्रे मतिं धीमान् यातुं स्वाश्रममाश्रमो ।४३।
कृच्छ्रात्सभार्यो भगवान्वसिष्ठः स्वाश्रमं क्षणात् ।
अदृश्यंत्या च पुण्यात्मा संविवेश स चिंतयन् ।४४।

इस संसार में अपने स्वामी से रहित नारी बहुत ही दीन-हुआ करती है तो भी आप मेरी रक्षा करें । हे आर्येन्द्र ! परिभूत हो जायगी ।३८। संसार में स्त्रियों के माता-पिता, पुत्र पौत्र और श्वशुर ये सब बान्धव नहीं हुआ करते हैं । स्त्रियों का एक मात्र पति ही परम बन्धु और परम गति होता है ।३९। पण्डित जनों के द्वारा जो आत्मा का अधर्म कहा गया है वह भी यहाँ पर मिथ्या हो गया था क्योंकि मेरे स्वामी शक्ति तो परलोक प्रवासी हो गये हैं और मैं इस संसार में जीवित स्थित हूं ।४०। हे मुनियों में परम श्रेष्ठ ! अहो ! यह भी मेरे

मन की यहाँ पर एक प्रकार की कठिनता ही है कि अपने प्राणों के तुल्य पति का अनुगम करने का त्याग करके यहाँ संसार में इन क्षणों में जीवित रहती हुई विद्यमान हूँ ।४१। वसिष्ठ रूपी अश्वत्थ (पीपल) वृक्ष का आश्रय ग्रहण करके न मुरझाने वाली लता के समान बिना मूल वाली भी स्वामी के द्वारा त्यक्त दीन-हीन मैं जीवित यहाँ पर स्थित हूँ ।४२। वसिष्ठ मुनि ने अपनी भार्या अरुन्धती के सहित अपनी पुत्र वधू के इन वचनों का श्रवण कर परम बुद्धिमान् आश्रमी वसिष्ठ ने अपने आश्रम में जाने का विचार किया था । ।४३। बड़ी क्लेश की कठिनाई के साथ भार्या के सहित अदृश्यन्ती को साथ में लेकर पुण्यात्मा भगवान् वसिष्ठ ने मन में चिन्तन करते हुए अपने आश्रम में प्रवेश किया था ।४४।

सा गर्भं पालयामास कथंचिन्मुनिपुंगवाः ।
कुलसंधारणार्थाय शक्ति पत्नी पतिव्रता ।४५।
ततः सासूत तनयं दशमे मासि सुप्रभम् ।
शक्तिपत्ना यथा शक्ति शक्तिमंतमरुंधनो ।४६।
असूत सादितिर्विष्णुं यथा स्वाहा गुहं सुतम् ।
अग्नि यथारणिः पत्नी शक्ते साक्षात्पराशरम् ।४७।
यदा तदा शक्तिसूनुरवतीर्णो महीतले ।
शक्तिस्त्यक्त्वा तदा दुःखं पितृणां समतां ययौ ।४८।
भ्रातृभिः सह पुण्यात्मा आदित्यरिव भास्करः ।
रराज पितृलोकस्थो वासिष्ठो मुनिपुंगवाः ।४९।
जगुस्तदा च पितरो ननृतुश्च पितामहाः ।
प्रपितामहाश्च विप्रेन्दा ह्यवतीर्णे पराशरे ।५०।
ये ब्रह्मवादिनो भूमौ ननृतुर्दिवि देवताः ।
पुष्कराद्याश्च ससृजुः पुष्पवर्षं च खेचराः ।५१।
पुरेषु राक्षसानां च प्रणादं विषमं द्विजाः ।
आश्रमस्थाश्च मुनयः समूहर्हर्षसंततिम् ।५२।

हे मुनिश्रेष्ठो ! परम पतिव्रता उस शक्ति की पत्नी ने अपने कुल के संधारण करने के लिये किसी प्रकार से बड़ी कठिनाई के साथ अपने

उदरस्थ गर्भ का पालन किया था ।४५। इसके अनन्तर उस शक्ति की पत्नी ने दशवें मास में जिस तरह से अरुन्धती वसिष्ठ की पत्नी ने शक्तिमान् को समुत्पन्न किया था उसी भाँति सुन्दर प्रभा से सम्पन्न पुत्र को प्रसूत किया था ।४६। उस शक्ति की पत्नी ने दिति ने विष्णु की भाँति स्वाहा ने अपने सुत गुह के समान और अरणि ने अग्नि के तुल्य साक्षात् पराशर पुत्र को जन्म प्रदान किया था ।४७। जिस समय में इस महीतल में शक्ति का पुत्र पराशर अवतीर्ण हुआ था उस समय में शक्ति ने दुःख को त्याग करके पितृ गणों की समता को ग्रहण किया था ।४८। हे मुनियों में परम श्रेष्ठगण ! वह पुण्यात्मा वसिष्ठ का पुत्र भास्कर आदित्यों के साथ जैसे दीप्तिमान् होता है वैसे ही अपने भाइयों के साथ पितृ लोक में स्थित होकर दीप्ति से युक्त हुए थे ।४९। उस समय में समस्त पितृगण आनन्द में मग्न होकर गायन करने लगे हे विप्रेन्द्रो ! पराशर के इस संसार में अवतीर्ण होने पर पितामहों का समुदाय हर्ष से नृत्य करने लगा था और जो प्रपितामहों का गण था वह भी हर्षातिरेक में निमग्न हो गया था ।५०। इस क्षिति तल में जो ब्रह्मवादी लोग थे वे और स्वर्गलोक में देवगण भी परम प्रसन्नता से उस समय नृत्य करने लगे थे । पुष्कर आदि जो खेचर थे वे अन्तरिक्ष से पुष्पों की वृष्टि करने लगे थे ।५१। गिद्ध आदि पक्षी राक्षसों के नगरों अमङ्गल शब्द कर रहे थे । आश्रमों में स्थित रहने वाले मुनिगण अत्यन्त हर्ष प्रकट कर रहे थे ।५२।

अवतीर्णो यथा ह्यंडाद्भानुः सोपि पराशरः ।
अदृश्यंत्याश्चतुर्वक्त्रो मेघजालाद्दिवाकरः ।५३।
सुखं च दुःखमभवददृश्यंत्यास्तथा द्विजाः ।
दृष्ट्वा पुत्र पतिं स्मृत्वा अरुंधत्या मुनेस्तथा ।५४।
दृष्ट्वा च तनयं बाला पराशरमति द्युतिम् ।
ललाप विह्वला बाला सन्नकंठी पपात च ।५५।
सा पराशरमतो महामतिं देवदानवगणैश्च पूजितम् ।
जातमात्रमनघं शुचि स्मिता बुध्य साश्रुनयना ललाप च।५६।

हा वसिष्ठसुत कुत्रचिद्गतः पश्य पुत्रमनघं तवात्मजम् ।
त्यज्य दीनवदनां वनान्तरे पुत्र दर्शनपरामिमां प्रभो ।५७।
शक्ते स्वं च सुतं पश्य भ्रातृभिः सह षण्मुखम् ।
यथा महेश्वरोपश्यत्सगणो हृषिताननः ।५८।
अथ तस्यास्तदालापं वसिष्ठो मुनिसत्तमः ।
श्रुत्वा स्नुषामुवाचेद मारोदीरिति दुःखितः ।५०।
आज्ञया तस्य सा शोकं वसिष्ठस्य कुलांगना ।
त्यक्त्वा ह्यालयद्बालं बाला बालमृगेक्षणा ।६०।

जिस प्रकार से अण्ड से चार मुख वाले ब्रह्मा समुत्पन्न हुए थे उसी भाँति अदृश्यन्ती के गर्भ से वह पराशर भी अवतीर्ण हुए थे मानों मेघों की घटा से निकलकर सूर्य ने अपनी प्रभा का प्रकाश फैला दिया हो ।५३। हे द्विजगण ! उस समय में पराशर की माता अदृश्यन्ती को अपने पुत्र का मुखावलोकन कर पति का स्मरण हो जाने से सुख और दुःख दोनों ही हुए थे । इसी तरह मुनि वसिष्ठ को एवं अरुन्धती को भी पौत्र को देखकर तो सुख हुआ किन्तु पुत्र का स्मरण हो आने से हृदय में दुःख भी हुआ था ।५४। उस बाला ने अत्यन्त अधिक द्युति वाले अपने पुत्र पराशर को देखकर वहुत ही विह्वल होते हुए विलाप किया था और वह सन्त कण्ठ वाली होकर भूमि पर गिर पड़ी थी ।५५। उसने महा मति वाले देवगणों के द्वारा पूजित निष्पाप उत्पन्न हुए ही पुत्र को जान कर शुचि स्मित वाली आँखों में आँसू भरकर वह विलाप करने लगी थी ।५६। हा वसिष्ठ मुनि के पुत्र ! आप कहाँ चले गये हैं ? अपने इस अघरहित पुत्र को तो देख लो । पुत्र के दर्शन में परायण दीन मुख वाली इसको (मुझे) त्याग करके बनान्तर में आप कहाँ चले गये हैं ? ।५७। हे शक्ते ! जिस तरह गणों के सहित प्रसन्न मुख वाले महेश्वर भाइयों के साथ षण्मुख को देखते हैं उसी भाँति आप इस अपने पुत्र को देखिये । ।५८। इस प्रकार से अदृश्यन्ती के विलाप करने के अनन्तर मुनियों में श्रेष्ठ वसिष्ठ ने उसके इस विलाप का श्रवण कर अपनी पुत्र वधू से कहा था और बहुत ही अधिक दुःखित हुए थे—हे पुत्र वधू ! तू अब

रुदन मत कर ॥५९। उस वसिष्ठ मुनि की आज्ञा से कुलाङ्गना ने शोक को त्याग दिया था और बालमृग के तुल्य सुन्दर नेत्रों वाली उस बाला ने अपने बालक का पालन किया था ।६०।

दृष्ट्वा तामबलां प्राह मङ्गलाभरणैर्विना ।
आसीनामाकुलां साध्वीं बाष्पपर्याकुलेक्षणाम् ।६१।
अंब मंगलाविभूषणैर्विना देहयष्टिरनघे न शोभते ।
वक्तुमर्हसि तवाद्य कारणं चंद्रबिंबरहितेव शर्वरी ।६२।
मातर्मातः कथं त्यक्त्वा मंगलाभरणानि वै ।
आसीना भर्तृहीनेव वक्तुमर्हसि शोभने ।६३।
अदृश्यंती तदा वाक्य श्रुत्वा तस्य सुतस्य सा ।
न किंचिदब्रवीत्पुत्रं शुभं वा यदि वेतरत् ।६४।
अदृश्यंतो पुनः प्राह शाक्तेयो भगवान्मम ।
मातः कुत्र महातेजाः पिता वद वदेति ताम् ।६५।
श्रुत्वा रुरोद सा वाक्यं पुत्रस्यातीव विह्वला ।
भक्षितो रक्षसा तातस्तवेति निपपात च ।६६।
श्रुत्वा वसिष्ठोपि पपात भूमौ पौत्रस्य वाक्य सोरुदन्दयालुः ।
अरुंधती चाश्रमवासिनस्तदा मुनेर्वसिष्ठस्य मुनीश्वराश्च ।६७।

उस बालक पराशर ने अपनी माता उस अबला को मङ्गलमय आभरणों से रहित देखकर उस से कहा जो कि अपनी आँखों में आँसू भरे हुए बहुत ही बेचैन साध्वी बैठी हुई थी ।६१। शक्ति के पुत्र शाक्तेय अर्थात् पराशर ने कहा—हे अनघे ! हे माता ! आपका यह परम सुन्दर शरीर भूषणों के बिना शोभा नहीं देता है। हे माता ! आप मुझे इसका वास्तविक कारण बताइये । आप बिना अलङ्कारों के तो चन्द्र के बिम्ब के बिना अँधेरी रात के समान दिखलाई दे रही हैं ।६२। हे माता ! आपने ये परम मङ्गलमय आभरणों को क्यों त्याग दिया है ? हे शोभने। आप स्वामी से हीना के समान क्यों बैठी हुई है । इस सब का जो भी कारण हो मुझे स्पष्ट बताने के योग्य हैं ।६३। उस समय में अदृश्यन्ती ने उस अपने बालक पुत्र के वचन सुनकर फिर उस बालक से उसने शुभ

अथवा अशुभ कुछ भी नहीं बताया था। इसके पश्चात् शाक्तेय (पराशर) ने फिर अदृश्यन्ती अपनी माता से कहा–हे माता! मुझे यह बताओ कि महान् तेजस्वी मेरे भगवान् पिता जी कहाँ पर हैं।६४।६५। वह अदृश्यन्ती वसिष्ठ की पुत्र वधू पुत्र के इस वाक्य को सुनकर अत्यन्त विह्वल हो गई और रुदन करने लगी थी। उसने अपने पुत्र से कहा–बेटा! तुम्हारे पिता को राक्षस ने खा लिया था और वह मृत्यु को प्राप्त हो गये थे।६६। अपने पौत्र के इस वाक्य का श्रवण कर परम दयालु वसिष्ठ भी रुदन करते हुए भूमि पर गिर पड़े थे। अरुन्धती और वसिष्ठ मुनि के समस्त आश्रम में निवास करने वाले मुनीश्वर भी रुदन करते हुए क्षिति तल पर गिर गये थे।६७।

भक्षितो रक्षसा मातुः पिता तव मुखादिति।
श्रुत्वा पराशरो धीमान्प्राह चास्राविलेक्षणः।६८।
अभ्यर्च्य देवदेवेश त्रैलोक्यं सचराचरम्।
क्षणेन मातः पितरं दर्शयामीति मे मतिः।६९।
सा निशम्य वचनं तदा शुभं सस्मिता तनयमाह विस्मिता।
तथ्यमे तदिति तं निरीक्ष्य सा पुत्रपुत्र भवमर्चयेति च।७०।
ज्ञात्वा शक्तिसुतस्यास्य संकल्पं मुनिपुंगवः।
वसिष्ठो भगवान्प्राह पौत्रं धीमान् घृणानिधिः।७१।
स्थाने पौत्रं मुनिश्रेष्ठ संकल्पस्तव सुव्रत।
तथापि शृणु लोकस्य क्षयं कर्तुं न चार्हसि।७२।
राक्षसानामभावाय कुरु सर्वेश्वरार्चनम्।
त्रैलोक्यं शृणु शाक्तेय अपराध्यति किं तव।७३।
ततस्तस्य वसिष्ठस्य नियोगाच्छक्तिनंदनः।
राक्षसानामभावाय मतिं चक्रे महामतिः।७४।

तेरे पिता को राक्षस ने भक्षण कर लिया था—इस उत्तर वाक्य को माता के मुख से सुनकर परम बुद्धिमान पराशर के नेत्र भी अश्रुओं से मलीन हो गये थे।६८। पराशर ने कहा—हे माया! मैं चराचर त्रैलोक्य को दग्ध करके देवेश भगवान् भव का अभ्यर्चन करके एक क्षण

में ही पिता को दिखा देता हूँ-ऐसी मेरी बुद्धि होती है ।६६। उस समय में पराशर के इस शुभ वचन का श्रवण कर स्मित से युक्त परम विस्मय के साथ वह अदृश्यन्ती अपने पुत्र से बोली-क्या यह तथ्य है—ऐसा कहकर पुत्र की ओर देखकर फिर उसने कहा—बेटा, तुम भव की अभ्यर्चना करो ।७०। शक्ति के पुत्र पराशर के इस सत्य संकल्प को जान कर मुनियों में श्रेष्ठ अत्यन्त बुद्धिमान और दया के निधि वसिष्ठ ने अपने पौत्र से कहा—हे सुन्दर व्रत वाले ! हे मुनियों में श्रेष्ठतम ! तुम्हारा यह सङ्कल्प बहुत ही समुचित है तो भी मेरा यह कथन है जिसको को तुम श्रवण कर लो । तुम को इस लोक का क्षय नहीं करना चाहिये ।७१। ।७२। केवल राक्षसों के अभाव या नाश के लिये ही तुम सर्वेश्वर का अर्चन करो । हे शाक्तेय ! तुम यह तो विचार करो भला समस्त त्रैलोक्य ने तुम्हारा क्या अपराध किया है ।७३। इसके अनन्तर वसिष्ठ महामुनि के नियोग से उस शक्ति के पुत्र ने जो कि महान् मति से सम्पन्न था, केवल राक्षसों के नाश के लिये ही शिवार्चन करने का विचार स्थिर किया था ।७४।

अदृश्यंती वसिष्ठं च प्रणम्यारुन्धतीं ततः ।
कृत्वैकलिंगं क्षणिकं पांसुना मुनिसन्निधौ ।७५।
संपूज्य शिवसूक्तेन त्र्यंबकेन शुभेन च ।
जप्त्वा त्वरित रुद्रं च शिवसंकल्पमेव च ।७६।
नीलरुद्रं च शाक्तेयस्तथा रुद्रं च शोभनम् ।
वामीयं पवमानं च पंचब्रह्म तथैव च ।७७।
होतारं लिंगसूक्तं च अथर्वशिर एव च ।
अष्टांगमर्घ्यं रुद्राय दत्वाभ्यर्च्य यथाविधि ।७८।
भगवन्नक्षसा रुद्र भक्षितो रुधिरेण नौ ।
पिता मम महातेजा भ्रातृभिः सह शंकर ।७०।
द्रष्टुमिच्छामि भगवन् पितरं भ्रातृभिः सह ।
एवं विज्ञापयँल्लिङ्गं प्रणिपत्य मुहुर्मुहः ।८०।
हा रुद्र रुद्रन्द्रेति रुरोद निपपात्त च ।

तं दृष्ट्वा भगवान्रुद्रो देवीमाह च शङ्करः ।८१।
पश्य बालं महाभागे बाष्पपर्याकुलेक्षणम् ।
ममानुस्मरणे युक्तं मदाराधनतत्परम् ।८२।

इसके अनन्तर शाक्तेय ने सर्वप्रथम अपनी माता अदृश्यन्ती को प्रणाम किया था, उसके पश्चात् वसिष्ठ मुनि और अरुन्धती को प्रणाम करके फिर मुनि के समीप में ही मृत्तिका से क्षणिक एक लिङ्ग अर्थात् पार्थिव शिव लिङ्ग का निर्माण करते उसका शिव सूक्त से एवं परम शुभ त्र्यम्बक सूक्त से भली-भाँति पूजन किया था। फिर त्वरित रुद्र और शिव संकल्प का तथा नील रुद्र का जाप किया था। शोभन रुद्र-वामीय-पवमान और पञ्च ब्रह्म का जाप किया था। ।७५।७६।७७। होता लिङ्ग सूक्त तथा अथर्व शिव को जप कर रुद्र को अष्टाङ्ग अर्घ्य समर्पित कर यथा विधि उसका अभ्यर्चन किया था ।७८। फिर पराशर ने भगवान् भव से प्रार्थना की थी। पराशर ने कहा—हे भगवन् ! हे शङ्कर ! हे रुद्रदेव ! दुष्ट राक्षस ने मेरे महान् तेजस्वी पिता का भाइयों के साथ भक्षण कर रुधिर का पान किया है ।७९। हे भगवन् ! अब मैं अपने पिता को अपने भाइयों के सहित देखने की उत्कट इच्छा रखता हूँ। इस प्रकार से उस शाक्तेय ने रुद्रदेव के लिङ्ग के समक्ष में सविनय निवेदन करते हुए बार-बार प्रणाम किया था ।८०। और फिर 'हा रुद्र ! हा रुद्र !'-यह उच्चारण करते हुए रुद्र की पार्थिव लिंग मूर्त्ति के सामने रुदन किया और क्षिति तल में गिर पड़ा था। उस शाक्तेय को इस दशा में देखकर भगवान् शङ्कर रुद्रदेव देवी से बोले—हे महाभागे ! इस बालक को देखो जिसके नेत्र अश्रुओं से समाकुलित हो गये हैं और यह मेरी आराधनः करने में परायण तथा मेरा स्मरण करने में युक्त हो रहा है। ।८१।८२।

सा च दृष्ट्वा महादेवी पराशरमनिन्दिता ।
दुःखात्संक्लिन्नसर्वाङ्ग मस्र कुलविलोचनम् ।८३।
लिंगार्चनविधौ सक्तं हर रुद्रति वादिनम् ।
प्राहभर्तारमीशानं शङ्करं जगतामुमा ।८४।

ईप्सितं यच्छ सकलं प्रसीद परमेश्वर ।
निशम्य वचन तस्याः शङ्करः परमेश्वरः ।८५।
भार्यामार्यामृमां प्राह ततो हाल हलाशनः ।
रक्षाम्येनं द्विजं बालं फुल्लेन्दीवरलोचनम् ।८६।
ददामि दृष्टिं मद्रूपदर्शनक्षम एष वै ।
एवमुक्त्वा गणैर्दिव्यैर्भगवान्नीललोहितः ।८७।
ब्रह्मेन्द्रविष्णुरुद्राद्यैः संवृतः परमेश्वरः ।
ददौ च दर्शनं तस्मै मुनिपुत्राय धीमते ।८८।
सोपि दृष्ट्वा महादेवमानन्दास्राविलेक्षणः ।
निपपात च हृष्टात्मा पादयोस्तस्य सादरम् ।८९।

अति श्लाघ्य उस महादेवी ने पराशर को देखा था जो कि दुःख से क्लिन्न अंगों वाला और आसुओं से भरे तथा मलीन नेत्रों वाला था। ।८३। देवी ने देखा था कि वह पराशर पार्थिव लिंग के अर्चन करने में पूर्णतया सलग्न हो रहा था और बार-बार हा रुद्र ! हा रुद्र ! इस तरह बोलकर भगवान शिव को पुकार रहा था । यह देखकर समस्त जगतों के ईश अपने स्वामी भगवान् शङ्कर से उमादेवी ने कहा-।८४। हे परमेश्वर ! इस दीन पर कृपा करिये और इसकी अभीष्ट वस्तु इसे प्रदान कर दीजिए। भगवान् शंकर ने उस उमादेवी के इस वचन को सुनकर अपनी पत्नी प्रिय उमा से हलाहल के पान करने वाले शंकर ने कहा—विकसित कमलों के समान सुन्दर नेत्रों वाले इस द्विज बालक की मैं रक्षा करता हूं।८५।८६। सर्वप्रथम मैं इसको वह दिव्य दृष्टि प्रदान करता हूँ जिससे यह मेरे रूप के दर्शन करने में समर्थ हो जावे । यह इस तरह से उमादेवी से कहकर नील लोहित भगवान् शंकर अपने दिव्यगण और ब्रह्मा विष्णु इन्द्र तथा रुद्र आदि के साथ संवृत होकर वहाँ उस मुनि बालक के पास पहुंचे तथा धीमान् उस मुनि पुत्र को अपना दर्शन दिया था ।८७।८८। उस मुनि पुत्र ने भी महादेव का दर्शन प्राप्त किया था और वह अपार आनन्द के अश्रुओं को नेत्रों में भरकर परम प्रसन्न होकर बहुत ही आदर के साथ उनके चरणों में गिर पड़ा था ।८९।

पुनर्भवान्याः पादौ च नंदिनश्च महात्मनः ।
सफलं जीवितं मेद्य ब्रह्माद्यांस्तां स्तदाह सः ।६०।
रक्षार्थमागतस्त्वद्य मम बालेन्दुभूषणः ।
कोन्यः समो मया लोके देवो वा दानवोपि वा ।६१।
अथ तस्मिन्क्षणादेव ददर्श दिवि संस्थितम् ।
पितरं भ्रातृभिः सार्धं शाक्तेयस्तु पराशरः ।६२।
सूर्यमंडलसकाशे विमाने विश्वतो मुखे ।
भ्रातृभिः सहित दृष्ट्वा ननाम च जहर्ष च ।६३।
तदा वृषध्वजो देवः सभार्यः सगणेश्वरः ।
वसिष्ठपुत्रं प्राहेदं पुत्रदर्शनतत्परम् ।६४।
शक्ते पश्य सुतं बालमानन्दास्त्र विलेक्षणम् ।
अदृश्यन्तीं च विप्रेन्द्र वसिष्ठं पितर तव ।६५।
अरुन्धतीं महाभागां कल्याणीं देवतोपमाम् ।
मातरं पितरं चोभौ नमस्कुरु महामते ।६६।
तदा हरं प्रणम्याशु देवदेवमुमां तथा ।
वसिष्ठं च तदा श्रेष्ठं शक्तिर्वै शङ्कराज्ञया ।६७।
मातरं च महाभागां कल्याणीं पतिदेवताम् ।
अरुन्धतीं जगन्नाथनियोगात्प्राह शक्तिमान् ।६८।

इसके अनन्तर फिर वह भवानी के चरणों में तथा महान् आत्मा वासे नन्दी के चरणों में गिर गया था उस समय ब्रह्मा आदि जो देवगण शिव के साथ थे उनसे बोला—आज मेरा जीवर सफल हो गया है।६०। आज वाल चन्द्र के भूषण वाले भगवान् शिव स्वयं मेरी रक्षा करने के लिये यहाँ पर आ गये हैं। इस समय लोक मेरे समान बड़भागी अन्य कौन होगा चाहे कोई भी देव तथा दानव क्यों न हो अर्थात् ऐसा भाग्यशाली अन्य कोई भी नहीं है ।६१। इसके अनन्तर उस शक्ति के पुत्र पराशर ने एक क्षण मात्र में ही दिव लोक में संस्थित अपने पिता को भाइयों के साथ देखा था ।६२। सूर्य मण्डल के समान विश्व तो मुख विमान में भाइयों के सहित अपने पिता शक्ति को देखकर पराशर को

बहुत अधिक प्रसन्नता हुई थी और उसने अपने पिता को प्रणाम किया था ।९३। इसके अनन्तर अपनी भार्या उमा और समस्त गुणों के साथ वहाँ पर संस्थित भगवान् वृषध्वज देव ने उस समय में पुत्र के दर्शन में तत्पर वसिष्ठ के पुत्र शक्ति से यह कहा था श्री देव के कहा-हे शक्ते ! आनन्द के आँसुओं के बहाने वाले अपने बालक पुत्र को देख लो । हे विप्रेन्द्र ! अपनो पत्नी अदृश्यन्ती और अपने पिता वसिष्ठ को भी देख लो। हे महामति वाले ! देवता के समान परम पूज्या कल्याण कारिणी माता अरुन्धती का दर्शन भी कर लो तथा अपने इन दोनों माता और पिता को नमस्कार करो ।९४।९५।९६। उस समय में भगवान् देवों के देव शिव को शीघ्र ही प्रणाम करके शक्ति ने उमादेवी को प्रणाम किया था। भगवान् शङ्कर की आज्ञा से परम श्रेष्ठ अपने पिता वसिष्ठ तथा पति को ही देवता के समान मानने वाली परम कल्याण कारिणी महाभागा माता अरुन्धती को प्रणाम किया था । फिर जगत् के स्वामी की आज्ञा से वह शक्तिमान् अपनी माता अरुन्धती के सामने बोला— ।९७।९८।

भो वत्सवत्स विप्रेन्द्र पराशर महाद्युते ।
रक्षितोहं त्वया तात गर्भस्थेन महात्मना ।९९।
अणिमादिगुणैश्वर्यं मया वत्स पराशर ।
लब्धमद्याननं दृष्टं तव बाल ममाज्ञया ।१००।
अदृश्यन्तीं महाभागां रक्ष वत्स महामते ।
अरुंधतीं च पितरं वसिष्ठं मम सर्वदा ।१०१।
अन्वयः सकलो वत्स मम संतारितस्त्वया ।
पुत्रेण लोकाञ्जयतीत्युक्तं सद्भि सदैव हि ।१०२।
ईप्सितं वन्येशानं जगतां प्रभवं प्रभुम् ।
गमिष्याम्यभिवंद्येशं भ्रातृभिः सह शङ्करम् ।१०३।
एवं पुत्रमुपामंत्र्य प्रणम्य च महेश्वरम् ।
निरीक्ष्य भार्यां सदसि जगाम पितरं वशी ।१०४।
गतं दृष्ट्वाथ पितरं तदाभ्यर्च्यैव शङ्करम् ।

तुष्टाव वाग्भिरिष्टाभिः शाक्तेयः शशि भूषणाम् ।१०५।

वसिष्ठ ने कहा हे वत्स ! हे पराशर ! तुम विप्रों में शिरोमणि हो और महान् द्यु ति वाले हो । हे तात ! अपनी माता के गर्भ में ही स्थित रहते हुए महात्मा तूने मेरी रक्षा की है । ।९९। हे वत्स पराशर ! इस समय में मैंने अणिमा आदि के गुणों से युक्त ऐश्वर्य प्राप्त कर लिया है कि हे बच्चे ! आज तुम्हारा मुख मैंने देख लिया है । अब मेरी आज्ञा से हे महामते ! हे वत्स ! महाभाग इस अदृश्यन्ती की रक्षा करना । और सर्वदा मेरी माता अरुन्धती पिता वसिष्ठ की भी रक्षा तुम करना ।१००। ।१०१। हे वत्स ! तूने मेरा सम्पूर्ण वंश ही तार दिया है । सत्पुरुषों के द्वारा सर्वदा यही कहा गया है कि सत्पुत्र के द्वारा मानव लोकों में जप प्राप्त किया करता है ।१०२। अब तू समस्त जगतों के समुत्पन्न करने वाले ईशान प्रभु से अपना इच्छित वरदान प्राप्त करले । मैं तो अपने भाइयों के सहित ईश शंकर भगवान् की वन्दना करके चला जाऊंगा । ।१०३। इस तरह से अपने पुत्र को परामर्श देकर और महेश्वर को प्रणाम करके तथा अपनी भार्या को वहाँ सभा में स्थित देखकर वह वशी पितृ लोक में चला गया था ।१०४। अपने पिता को गया हुआ देखकर भगवान् शंकर की पराशर ने अभ्यर्चन की थी और शाक्तेय ने अत्यभीष्ट वाणियों के द्वारा शशिभूषण शिव का स्तवन किया था ।१०५।

ततस्तुष्टो महादेवो मन्मथांधकमर्दनः ।
अनुगृह्याथ शाक्तेयं तत्रैवांतरधीयत ।१०६।
गते महेश्वरे सांबे प्रणम्य च दहेश्वरम् ।
ददाह राक्षसानां तु कुलं मन्त्रेण मन्त्रवित् ।१०७।
तदाह पौत्रं धर्मज्ञो वसिष्ठो मुनिभिर्वृतः ।
अलमत्यन्तकोपेन तात मन्युमिमं जहि ।१०८।
राक्षसा नापराध्यन्ति पितुस्ते विहितं तथा ।
मूढानामेव भवति क्रोधो बुद्धिमतां न हि ।१०९।
हन्यते तात कः केन यतः स्वकृतभुक्पुमान् ।
संचितस्यातिमहता वत्स क्लेशेन मानवैः ।११०।

यशसस्तपसश्चैव क्रोधो नाशकरः स्मृतः ।
अलं हि राक्षसैर्दग्धैर्दीनैरनपराधिभिः ।१११।
सत्रं ते विरमत्वेतत्क्षमासारा हि साधवः ।
एवं वसिष्ठवाक्येन शाक्तेयो मुनिपुंगवः ।११२।
उपसंहृतवान् सत्रं सद्यस्तद्वाक्यगौरवात् ।
ततः प्रीतश्च भगवान्वसिष्ठो मुनिसत्तमः ।११३।

इसके अनन्तर भगवान् शिव परम सन्तुष्ट होकर जिन्होंने मन्मथ (कामदेव और अन्धक का मर्दन कर दिया था, शक्ति के पुत्र पर अपनी पूर्ण कृपा की वृष्टि करके वहीं पर अन्तर्हित हो गये थे ।१०६। भगवान् महेश्वर के चले जाने पर साम्ब महेश्वर को प्रणाम करके उस मन्त्रों के ज्ञाता पराशर ने मन्त्र के द्वारा राक्षसों के कुल का दाह कर दिया था ।१०७। उस अवसर पर धर्म के ज्ञान वाले तथा अन्य मुनियों से परिवृत (घिरे हुए) वसिष्ठ ने अपने पौत्र पराशर से कहा-हे तात ! अत्यन्त कोप मत करो । अब इस क्रोध का परित्याग करदो ।१०८। तुम्हारे पिता को जो उस प्रकार से हुआ था उसमें ये समस्त राक्षस को कोई अपराध नहीं है । क्रोध तो मूढ़पुरुषों को ही हुआ करता है । बुद्धिमान् लोगों को क्रोध कभी नहीं होता है ।१०९। हे तात ! कौन किस के द्वारा मारा जाता है ? अर्थात् कोई भी किसी को नहीं मारता है क्योंकि यहाँ सभी जीव अपने किये हुए कर्मों का भोग ही भोगा करते हैं । मानव अपने सञ्चित कर्मों को ही बड़े क्लेश से भोगते हैं ।११०। क्रोध यश और तपश्चर्या दोनों का ही नाश करने वाला बताया गया है । अब तुम इन विचारे निरपराध दीन राक्षसों को दग्ध करना छोड़ दो ।१११। अब तुम्हारा राक्षसों के दाह करने का यह सत्र समाप्त हो जाना चाहिए क्योंकि साधु पुरुष तो सर्वदा क्षमा के सार रखने वाले होते हैं । इस प्रकार से वसिष्ठ मुनि के वाक्य से मुनियों में श्रेष्ठ शाक्तेय ने अपने पितामह के वचनों के गौरव की रक्षा करते हुए अपने राक्षसों के दाह के सत्र को समाप्त कर दिया था । उस समय मुनिश्रेष्ट वसिष्ठ उस पर परम प्रसन्न हुए थे ।११३।

संप्राप्तश्च तदा सत्रं पुलस्त्यो ब्रह्मणः सुतः ।
वसिष्ठेन तु दत्तार्घ्यः कृतासनपरिग्रहः ।११४।
पराशरमुव चेदं प्रणिपत्य स्थित मुनिः ।
वैरे महति यद्वाक्याद्गुरोरद्याश्रिताक्षमा ।११५।
त्वया तस्मात्समस्तानि भवाञ्छास्त्राणि वेत्स्यति ।
संततेर्मम न च्छेदः क्रुद्धेनापि यतः कृतः ।११६।
त्वया तस्मान्महाभाग ददाम्यन्यं महावरम् ।
पुराणसंहिताकर्ता भवान्वत्स भविष्यति ।११७।
देवतापरमार्थं च यथावद्वेत्स्यते भवान् ।
प्रवृत्तौ वा निवृत्तौ वा कर्मणस्तेऽमला मतिः ।११८।
मत्प्रसादादसंदिग्धा तव वत्स भविष्यति ।
ततश्च प्राह भगवान्वसिष्ठो वदतां वरः ।११९।
पुलस्त्येन यदुक्तं ते सर्वमेतद्भविष्यति ।
अथ तस्य पुलस्त्यस्य वसिष्ठस्य च धीमतः ।१२०।
प्रसादाद्वैष्णवं चक्रे पुराणं वै पराशरः ।
षट्प्रकारं समस्तार्थसाधकं ज्ञानसंचयम् ।१२१।
षट्साहस्रप्रितं सर्वं वेदार्थेन च संयुतम् ।
चतुर्थं हि पुराणानां संहितांसु सुशोभनम् ।१२२।
एष वः कथितः सर्वो वासिष्ठानां समासतः ।
प्रभवः शक्तिसूनोश्च प्रभावो मुनिपुंगवाः ।१२३।

इस समय में ब्रह्मा के पुत्र पुलस्त्य मुनि उस सत्र में आ गये थे। वसिष्ठ मुनि ने उनको अर्घ्य समर्पित किया था और फिर आसन दिया था । उस समय में आसन पर स्थित होकर पुलस्त्य मुनि ने प्रणाम करके पराशर से यह वचन कहा—हे तात ! महान् वैर के होने पर भी तुमने गुरुदेव वशिष्ठ के वचनों से जो इस समय क्षमा को ग्रहण किया है। इस का परिणाम यह होगा कि आप समस्त शास्त्रों को भली-भाँति जान जाओगे । आपने क्रुद्ध होकर जो मेरी सन्तति का उच्छेद किया है वह न होवे ।११६। इसलिए हे महान् भाग्य वाले ! मैं तुमको एक और महान्

वरदान देता हूँ हे वत्स ! आप पुराण संहिता के करने वाले होंगे ।११७। आप वास्तव स्वरूप को यथावत् जान लेंगे । प्रवृत्ति मार्ग में और निवृत्ति मार्ग में आप जो भी कर्म करेंगे उसमें आप की मति मल रहित होगी ।११८। हे वत्स ! यह मेरी अनुकम्पा होगी कि आपकी बुद्धि सर्वदा सन्देह से रहित रहा करेगी अर्थात् आपको कभी भी किसी विषय में संदिग्धता नहीं होगी । इतना पुलस्त्य के कहने के अनन्तर बोलने वालों में परम श्रेष्ठ वसिष्ठ मुनि ने कहा--हे वत्स ! पुलस्त्य मुनि ने जो कुछ भी इस समय कहा है यह निश्चय ही सभी गा—इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है । इसके अनन्तर धीमान् पुलस्त्य और वसिष्ठ की कृपा एवं प्रसाद से पराशर ने वैष्णव पुराण की रचना की थी । वह पुराण षट् अंश रूप वाला था और सम्पूर्ण आर्य का साधन करने वाला एवं ज्ञान का एक संचित भण्डार था । ।११९।१२०।१२१।। यह सब छै सहस्त्र संख्या से युक्त और वेदार्थ से समन्वित था । यह परम शोभन संहिता पुराणों में चौथे नम्बर की थी । ।१२२। यह सम्पूर्ण वसिष्ठों का सर्ग संक्षेप में वर्णन कर दिया गया है । मुनिश्रेष्ठो ! इसमें शक्ति के पुत्र का जन्म और प्रभाव भी वर्णित कर दिया गया है । ।१२२।

।। १०३—त्रिपुर निवासी दैत्यों का देव पीड़न ।।

समासाद्विस्तराच्चैव सर्गः प्रोक्तस्त्वया शुभः ।
कथं पशुपतिश्चासीत्पुरं दग्धु महेश्वरः ।१
कथं च पशवश्चासन्देवाः सब्रह्मकाः प्रभोः ।
मयस्य तपसा पूर्वं सुदुर्गं निर्मितं पुरम् ।२।
हैमं च राजतं दिव्यमयस्मय मनुत्तमम् ।
सुदुर्गं देवदेवेन दग्धमित्येव नः श्रुतम् ।३।
कथं ददाह भगवान् भगनेत्रनिपातनः ।
एकेनेषुनिपातेन दिव्येनापि तदा कथम् ।४।
विष्णुनोत्पादितैर्भूतैर्न दग्धं तत्पुरत्रयम् ।
पुरस्य संभवः सर्वो वरलाभः पुरा श्रुतः ।५।

इदानीं दहनं सर्वं वक्तुमर्हसि सुव्रत ।
तेषां तद्वचनं श्रुत्वा सूतः पौराणिकोत्तमः ।।६
यथा श्रुतं तथा प्राह व्यासाद्विश्वार्थसूचकात् ।
त्रैलोक्यस्यास्य शापाद्धि मनोवाक्कायसंभवात् ।।७
निहते तारके दैत्ये तारपुत्रे सबांधवे ।
स्कंदेन वा प्रयत्नेन तस्य पुत्रा महाबलाः ।।८
विद्युन्माली तारकाक्षः कमलाक्षश्च वीर्यवान् ।
तपस्तेपुर्महात्मानो महाबलपराक्रमाः ।।९

इस अध्याय में त्रिपुरौकसों का चरित और उन के नाश के लिये देवताओं के समस्त यत्नों का निरूपण किया जाता है । ऋषियों ने कहा- आपने संक्षेप से तथा विस्तार से शुभ सर्ग का निरूपण कर दिया है । अब यह बताइये कि पशुपति महेश्वर ने पुर को दग्ध कैसे किया था ? और ब्रह्मा के सहित समस्त देवता पशु कैसे हो गये थे ? प्रभुमय की तपस्या से पहिले सुन्दर दुर्ग वाला पुर निर्मित किया गया था । वह सुन्दर दुर्ग सुवर्णमय-रजतमय और लौहमय अत्यन्त उत्तम था । उसको देवों के देव ने दग्ध कर दिया था—यही हम लोगों ने सुना है ।।१।।२।।३।। भग के नेत्रों को निपतित करने वाले भगवान् ने उस पुर को कैसे दग्ध किया था और केवल एक ही दिव्य वाण के निपात से उस समय में उसे कैसे जला दिया था ? ।।४।। विष्णु के द्वारा उत्पन्न किये हुए भूतों के द्वारा वह पुरत्रय नहीं दग्ध किया जा सका था क्योंकि उस पुर की उत्पत्ति पहिले एक वर के लाभ के समान ही थी—ऐसा सुना है ।।५।। हे सुव्रत ! अब आप यह सब बताने के योग्य होते हैं । उन ऋषियों के उस वचन का श्रवण कर पौराणिकों में सर्वश्रेष्ठ सूतजी ने विश्वार्थ सूचक व्यास जी से जैसा भी सुना था वैसा कहा था । सूतजी ने कहा—मनो वाक् और काय से सम्भव होने वाले इस त्रैलोक्य के शाप से तार के पुत्र बान्धवों के सहित तारकासुर के निहत होने पर स्कन्द के द्वारा अथवा प्रयत्न से उसके महान् बल वाले पुत्र हुए थे ।।६।।७।।८।। उनके नाम विद्युन्माली-ताकाक्ष और वीर्यवान् कमलाक्ष । इन महात्मा महान् बल

पराक्रम वालों ने तपस्या का तपन किया था ॥९॥

तप उग्रं समास्थाय नियमे परमे स्थिता: ।
तपसा कर्शयामासुर्देहान् स्वान्दानवोत्तमा: ॥१०
तेषां पितामह: प्रीतो वरद: प्रददौ वरम् ।
अवध्यत्वं च सर्वेषा सर्वभूतेषु सर्वदा ॥११
सहिता वरयामासु: सर्वलोकपितामहम् ।
तानब्रवीत्तदा देवो लोकानां प्रभुरव्यय: ॥१२
नास्ति सर्वामरत्वं वै निवर्त ध्वमतोसुरा: ।
अन्यं वरं वृणीध्वं वै यादृशं संप्ररोचते ॥१३॥
ततस्ते सहिता दैत्या: संप्रधार्य परस्परम् ।
ब्रह्माणमब्रुवन्दैत्या: प्रणिपत्य जगद्गुरुम् ॥१४
वयं पुराणि त्रीण्येव समास्थाय महीमिमाम् ।
विचरिष्याम लोकेश त्वत्प्रसादाज्जगद्गुरो ॥१५

ये अत्यन्त उग्र तप में समास्थित होकर परम नियम में स्थित हुए थे। इन उत्तम दानवों ने तपस्या के द्वारा अपने शरीरों का कृश कर दिया था ॥१०॥ उनकी तपस्या से पितामह बहुत प्रसन्न हुए और वर देने वाले ने वरदान प्रदान किया था । दैत्यों ने कहा सर्वदा समस्त प्राणियों में सब का अवध्यत्व सहित सर्व लोकों के पितामह से वरदान मांगा था। तब लोकों के प्रभु और अव्यय देव ने उनसे कहा था ॥११॥ ॥१२॥ सब को अमरत्व नहीं हुआ करता है अत: इससे हे असुरो ! आप लोग निवृत्त हो जाओ। इसके अतिरिक्त कोई अन्य वर माँगो जैसा कि आपको रुचि कर होता हो ॥१३॥ इसके उन समस्त दैत्यों ने परस्पर में भली-भाँति विचार पूर्वक निश्चय करके वे दैत्य जगत् गुरु ब्रह्माजी को प्रणाम करके व्रत से बोले । हम इस भूमण्डल में तीन पुर समास्थित करके हे लोकेश ! हे जगद्गुरो ! आपके प्रसाद से विचरण करेंगे । ॥१४॥१५॥

तथा वर्षसहस्त्रेषु समेष्याम: परस्परम् ।
एकीभावं गमिष्यंति पुराण्येतानि चानघ ॥१६

समागतानि चैतानि यो हन्याद्भगवंस्तदा।
एकेनैवेषुणा देवः स नो मृत्युर्भविष्यति ।। १७
एवमस्त्वति तान्देवः प्रत्युक्त्वा प्राविशद्दिवम् ।
ततो मयः स्वतपसा चक्रे वीरः ुराण्यथ ।।१८
कांचनं दिवि तत्रासीदंतरिक्षे च राजतम् ।
आयसं चाभवद्भूमौ पुरं तेषां महात्मनाम् ।।१६
एकैकं योजनशतं विस्तारायामतः समम् ।
कांचनं तारकाक्षस्य कमलाक्षस्य राजतम् ।।२०
विद्युन्मालेश्चायस वै त्रिविधं दुर्गमुत्तमम् ।
मयश्च बलवांस्तत्र दैत्यदानवपूजितः ।२१
हैरण्ये राजते चैव कृष्णायसमंये तथा ।
आलयं चात्मनः कृत्वा तत्रास्ते बलवांस्तदा ।।२२
एवं वभूवु दैंत्यानामतिदुर्गाणि सुव्रताः ।
पुराणि त्रीणि विप्रेंद्रास्त्रैलोक्यमिव चापरम् ।।२३
पुरत्रये तदा जाते सर्वे दत्या जगत्त्रये ।
पुरत्रयं प्रविश्यैव बभूवुस्ते वलाधिकाः ।।२४

हे अनघ ! तथा एक सहस्र वर्षों में परस्पर में आयेंगे और ये पुर एकी भाव को प्राप्त होंगे ।।१६।। समागत इनको हे भगवन् ! उस समय में जो कोई हनन करेगा वह देव हमारे एक ही वाण से मृत्युगत हो जायगा ।।१७।। "ऐसा ही होवे"—यह वरदान देकर देव दिव लोक को चले गये थे । इसके अनन्तर वीरमय ने अपने तपो बल से पुरों को किया था ।।१८।। उन महात्माओं के तीन पुर थे—सुवर्ण का पुर दिव लोक में था, अन्तरिक्ष में राजत अर्थात् चाँदी का पुर था और भूमि में उनका आयस अर्थात् लोह निर्मित पुर था ।।१६।। एक-एक विस्तार और आयाम में सौ योजन का समान था । जो काञ्चन पुर था वह तारकाक्ष का था, राजत कमलाक्ष का था और विद्युन्माली का आयस था ऐसे ये तीन प्रकार के सर्वोत्तम दुर्ग थे । बलवान् दैत्य और दानवों के द्वारा वन्द्यमान मय वहाँ पर रहता था ।।२०।।२१।। हैरण्य-राजत और कृष्णायस भय

पुर में अपना आलय बनाकर उस समय में वहाँ पर वह बलवान् रहा करता था ।।२२।। हे सुव्रत वालो ! इस प्रकार से दैत्यों के ये अतिदुर्ग थे । ये तीन पुर हे विप्रेन्द्रगण ! दूसरे त्रैलोक्य के समान थे ।।२३।। उस समय में इन तीन पुरों के हो जाने पर जगत् त्रय में समस्त दैत्यगण पुर त्रय में प्रवेश करके ही वे अत्यन्त अधिक बल वाले हो गये थे ।।२४।।

शास्त्रं च शास्ता सर्वेषामकरोत्कामरूपधृक् ।
सर्वसंमोहनं मायी दृष्टप्रत्ययसंयुतम् ।।२५
एतत्स्वांगभवायैव पुरुषायोपदिश्य तु ।
मायी मायामयं शास्त्रं ग्रंथषोडशलक्षकम् ।।२६
श्रौतस्मार्तविरुद्धं च वर्णाश्रमविवर्जितम् ।
इहैव स्वर्गनरकं प्रत्ययं नान्यथा पुनः ।।२७
तच्छास्त्रमुपदिश्यैव पुरुषायाच्युतः स्वयम् ।
पुरत्रयविनाशाय प्राहैनं पुरुष हरिः ।।२८
स्त्रीधर्मं चाकरोत्स्त्रीणां दुश्चारफलसिद्धिदम् ।
चक्रुस्ताः सर्वदा लब्ध्वा सद्य एव फलं स्त्रियः ।।२९
जनासक्ता बभूवुस्ता विनिंद्य पतिदेवताः ।
अद्यापि गौरवात्तस्य नारदस्य कलौ मुनेः ।।३०
नार्यश्चरंति सत्यज्य भर्तृन्स्वैरं वृथाधमाः ।
स्त्रीणां माता पिता बंधुः सखा मित्रं च बांधवः ।।३१
भर्ता एव न संदेहस्तथाप्यासहमायया ।
कृत्वापि सुमहत्पापं या भर्तुः प्रेमसंयुता ।।३२

तब भगवान् ने एक मायामय मनुष्य उन दैत्यों के विनाश के उद्देश्य से प्रकट किया । उसने दैत्यों के पास जाकर कहा कि अपनी इच्छा से रूप धारण करने वाले तथा माया से परिपूर्ण भगवान् सब के शासन करने वाले हैं । उन्होंने दृष्ट प्रत्यय (विश्वास) से संयुत अतएव सबको मोहन करने वाला शास्त्र बनाया था ।।२५।। इस शास्त्र का अपने अङ्ग से समुत्पन्न पुरुष को माया से भरा हुआ वह सोलह लक्ष वाला ग्रन्थ का उपदेश किया था ।।२६।। जिसमें प्रतिपादन किया गया था कि यहाँ पर

ही स्वर्ग और नरक है। इसके अतिरिक्त अन्य कुछ भी प्रत्यय नहीं हैं। यह शास्त्र श्रौत तथा स्मार्त्त धर्म के बिलकुल विपरीत था और वर्ण एवं आश्रम के नियमों से रहित था ।२७। इस शास्त्र का अच्युत भगवान् ने स्वयं ही उस पुरुष को पुर त्रय विनाश के लिए उपदेश किया था और फिर हरि भगवान् ने उस पुरुष से कहा था ।२८। तब माया से परिपूर्ण वह पुरुष वहाँ पहुँच कर त्रिपुर में अपने उपदेश से दुश्चार से फल की सिद्धि देने वाला स्त्रियों का धर्म कर दिया था और उन स्त्रियों ने सद्य एवं (तुरन्त ही) फल को प्राप्त कर वैसा ही किया था ।२९। वे अपने पति और देवता की बुराई कर जनों में आसक्त हो गईं थीं । अब भी कलियुग में उस मायी नारद मुनि के गौरव से अधम स्त्रियाँ अपने स्वामियों का त्याग कर स्वच्छन्दता से आचरण किया करती है। स्त्रियों का माता-पिता-बन्धु-सखा-मित्र और बान्धव भर्त्ता ही है। उस असह माया वसे वे महान् पाप कर्म करके अपने भर्त्ता के प्रेम संयुत रहा करती हैं ।३०।३१।३२।

पाषडे ख्यापिते तेन विष्णुना विश्वयोनिना ।
त्यक्ते महेश्वरे दैत्यैस्त्यक्ते लिंगार्चने तथा ।३३।
स्त्रीधर्मे निखिले नष्टे दुराचारे व्यवस्थिते ।
कृतार्थ इव 'देवेशो देवैः सार्धमुमापतिम् ।३४।
तपसा प्राप्य सर्वज्ञं तुष्टाव पुरुषोत्तमः ।
महेश्वराय देवाय नमस्ते परमात्मने ।३५।
नारायणाय शर्वाय ब्रह्मणे ब्रह्मरूपिणे ।
शाश्वताय ह्यनताय अव्यक्ताय च ते नमः ।३६।
एवं स्तुत्वा महादेवं दंडवत्प्रणिपत्य च ।
जजाप रुद्रं भगवान्कोटिवारं जले स्थित :।३७।
देवाश्च सर्वे ते देवं तुष्टुवुः परमेश्वरम् ।
सेंद्राः ससाध्याः सयमाः सरुद्राः समरुद्गणाः ।३८।

इस प्रकार से विश्व के योनि अर्थात् कारण विष्णु भगवान् के द्वारा हाँ पाषण्ड पूर्णतया स्थापित हो गया था और त्रिपुर वासियों ने सब

दैत्यों ने महेश्वर देव का त्याग कर दिया था तथा लिङ्गार्चन करना भी सर्वथा चोड़ दिया था ।३३। स्त्रियों का धर्म पूर्ण तथा नष्ट-भ्रष्ट हो गया था और दुराचर सर्वत्र छट गया था । ऐसा जब हो गया तो इसके होने पर देवेश विष्णु कृतार्थ जैसे हो गये थे और फिर वे समस्त देवों को साथ में लेकर भगवान् उमापति के प्रसन्न करने के कार्य में प्रवृत्त हो गये थे ।३४। तपस्या के द्वारा सर्वज्ञ महेश्वर को प्राप्त करके पुरुषोत्तम भगवान् ने उनका स्तवन किया था श्री भगवान् ने कहा—महेश्वर देव एवं परमात्मा आपके लिए नमस्कार है । आप साक्षात् नारायण हैं शर्व-ब्रह्म और ब्रह्म रूपी हैं । आप शाश्वत स्वरूप वाले हैं तथा अनन्त एवं अव्यक्त हैं ऐसे आपके लिए नमस्कार है ।३५।३६। सूतजी ने कहा—इस तरह से विष्णु ने स्तुति करके उनको दण्ड की भाँति भूमि पड़ कर प्रणाम किया था और इसके अनन्तर भगवान् ने जल में स्थित होकर एक करोड़ रुद्र मन्त्र का जप किया था ।३७। उन समस्त देव गण ने इन्द्र-साध्य-यम-रुद्र और मरुद्गण के सहित परमेश्वर शिव का स्तवन किया था ।३८।

स्तुतस्त्वेवं सुरैर्विष्णोर्जपेन च महेश्वरः ।
सोमः सोमामथालिंग्य नंदि दत्तकरः स्मयन् ।३९।
प्राह गंभीरया वाचा देवानालोक्य शंकरः ।
ज्ञातं मयेदमधुना देवकार्यं सुरेश्वराः ।४०।
विष्णोर्मायाबलं चैव नारदस्य च धीमतः ।
तेषामधर्मनिष्ठानां दैत्यानां देवसत्तमाः ।४१।
पुरत्रयविनाशं च करिष्येहं सुरोत्तमाः ।
अथ सब्रह्मका देवाः सेंद्रोपेंद्राः समागताः ।४२।
एतस्मिन्नंतरे तेषां श्रुत्वा शब्दाननेकशः ।
कुंभोदरो महातेजा दंडेनाताडयत्सुरान् ।४ ।
दुद्रुवुस्ते भयाविष्टा देवा हाहेतिवादिनः ।
अपतन्मुनयश्चान्ये देवाश्च धरणीतले ।४४।
अहो विधेर्बलं चेति मुनयः कश्यपादयः ।
दृष्ट्वापि देवदेवेशं देवानां चासुरद्विषाम् ।४५।

इस प्रकार से सुरगण के द्वारा स्तुत होने वाले तथा भगवान् विष्णु के द्वारा किये हुए जप से प्रसन्न महेश्वर उमा का आलिङ्गन करके उमा के सहित नन्दी के ऊपर अपने हाथ को रखकर मुस्कराते हुए आये ।३६। और वहाँ शङ्कर ने देवों को देखकर अत्यन्त गम्भीर वाणी से कहा—हे सुरोत्तमो ! अब मैंने देवों के कार्य को समझ लिया है ।४०। भगवान् विष्णु के तथा धीमान् नारद के माया के बल को भी मैंने जान लिया है । देव श्रेष्ठो ! वे अधर्म में निष्ठा रखने वाले जो दैत्य हैं उनके तीनों पुरों का विनाश मैं करूँगा ।४१। इसके अनन्तर ब्रह्मा और विष्णु के सहित देवगण आ गये थे ।४२ इसी बीच में उन देवगणों के शब्दों का श्रवण करके जो कि उनके मुख से शंकर भगवान् के स्तवन तथा प्रसन्न महेश्वर के आश्वासन से आनन्द के अनेक शब्द निकल रहे थे, कुम्भोदर महान् तेज से युक्त वहाँ आ गया था और दण्ड से उसने देवों को ताड़ित किया था ।४३। वे सब देवता सब हाहाकार करते हुए भय से आविष्ट होकर वहाँ से भाग गये थे और अन्य मुनिगण तथा देव भूमि पर गिर गये थे ।४४। तब कश्यप आदि मुनिगण कहने लगे कि विधाता का बल कैसा अद्भुत है । असुरों के शत्रु देवों को देवों के देव का दर्शन भी हो गया तो भी इनकी कैसी दुर्दशा है ।४५।

अभाग्यान्न समाप्तं तु कार्यमित्यपरे द्विजाः ।
प्रोचुर्नमः शिवायेति पूज्य चाल्पतरं हृदि ।४६।
ततः कपर्दी नंदीशो महादेवप्रियो मुनिः ।
शूली माली तथा हाली कुंडली वलयी गदी ।४७।
वृषमारुह्य सुश्वेतं ययौ तस्याज्ञया तदा ।
ततो वै नंदिनं दृष्ट्वा गणः कुंभोदरोपि सः ।४८।
प्रणम्य नंदिनं मूर्ध्ना सह तेन त्वरन्ययौ ।
नदो भाति महातेजा वृषपृष्ठे वृषध्वजः ।४९।
तुष्टुवुर्गणपेशानं देवदेवमिवापरम् ।
नमस्ते रुद्रभक्ताय रुद्रजाप्यरताय च ।५०।
रुद्रभक्तार्तिनाशाय रौद्रकर्मरताय ते ।

कूष्मांडगणनाथाय योगिनां पतये नमः ।५१।
सर्वदाय शरण्याय सर्वज्ञायार्तिहारिणे ।
वेदाना पतये चैव वेदवेद्याय ते नमः ।५२।

हे द्विजो ! अन्य कह रहे थे कि इनके अभाग्य से ही यह कार्य पूर्णतया समाप्त नहीं हुआ है । सब हृदय में थोड़ा समर्चन करके 'नमः शिवाय' अर्थात् शिव के लिए नमस्कार है—यह कहने लगे थे ।४६। इस के अनन्तर महादेव के प्रिय मुनि कपर्दी नन्दीश शूली-माली-हाली-कुण्डली वलयी गदी श्वेत वृष पर समारोहण करके उस समय में उसकी आज्ञा से गये थे । उस समय उस कुम्भोदर ने भी नन्दी को दखा था और उसने नन्दी को प्रणाम शिर से किया था और शीघ्रता करते हुए उसके साथ ही चला गया था । वृषध्वज नन्दी वृष के पृष्ठ पर महान् तेजस्वी विशेष रूप से दीप्तिमान् हो रहे थे ।४७।४८।४९। देवों ने स्तवन करते हुए कहा—रुद्र के जाप्य में रति रखने वाले रुद्र के भक्त आपको हमारा नमस्कार है ।५०। आप रुद्र के भक्तों की पीड़ा के नाश करने वाले हैं और रौद्र कर्म में रति रखने वाले हैं । कूष्माण्ड गण के स्वामी तथा योगियों के पति आपके लिए हमारा नमस्कार है ।५१। आप सब कुछ प्रदान करने वाले शरण में आये हुओं की रक्षा करने वाले-सभी कुछ के ज्ञाता और आर्त्ति के हरण करने वाले हैं । आप वेदों के पति और वेदों के द्वारा जानने के योग्य हैं ऐसे आपको नमस्कार है ।५२।

वज्रिणे वज्रदंष्ट्राय वज्रिवज्रनिवारिणे ।
वज्रालंकृतदेहाय वज्रिणाराधिताय ते ।५३।
रक्ताय रक्तनेत्राय रक्तांबरधराय ते ।
रक्तानां भवपादाब्जे रुद्रलोकप्रदायिने ।५४।
नमः सेनाधिपतये रुद्राणां पतये नमः ।
भूतानां भुवनेशानां पतये पापहारिणे ।५५।
रुद्राय रुद्रपतये रौद्रपापहराय ते ।
नमः शिवाय सौम्याय रुद्रभक्ताय ते नमः ।५६।
ततः प्रीतो गणाध्यक्षः प्राह देवांश्छिलात्मजः ।

रथं च सारथिं शंभोः कार्मुकं शरमुत्तमम् ।५७।
कर्तुमर्हथ यत्नेन नष्टं मत्वा पुरत्रयम् ।
अथ ते ब्रह्मणा सार्धं तथा वै विश्वकर्मणा ।५८।

आप वज्र धारण करने वाले हैं—वज्र के तुल्य दंष्ट्रा वाले हैं इन्द्र के वज्र को भी निवारण करने वाले वज्र से अलङ्कृत देह वाले हैं और वज्री (इन्द्र) के द्वारा आधारित हैं ऐसे आपको हमारा नमस्कार है ।५३। रक्त वर्ण से युक्त रक्त नेत्र वाले-रक्त वस्त्र धारण करने वाले आपको नमस्कार है । भव के चरण कमल में अनुराग करने वालों को रुद्र लोक प्रदान करने वाले आपको हमारा नमस्कार है ।५४। सेवा के अधिपति और रुद्रों के पति आपके लिए नमस्कार है । भूतों के तथा भुवनेशों के स्वामी और पापों के हरण करने वाले आपके लिए प्रणाम है ।५५। रुद्र-रुद्रों के पति तथा रौद्र पापों के हरण करने वाले आपको नमस्कार है । शिव सौम्य और रुद्र भक्त आपके लिए नमस्कार है ।५६। सूतजी ने कहा—इस प्रकार से स्तवन करने के अनन्तर गणाध्यक्ष बहुत ही प्रसन्न हुए थे और शिलात्मज देवों से बोले—शम्भु के रथ-सारथि-कार्मुक और उत्तम शर यत्न से करने के योग्य होते हैं और पुरत्रय को विनष्ट हुआ मान लो ।५७। इसके अनन्तर उन्होंने ब्रह्मा तथा विश्व कर्मा के साथ सुसंरब्ध होकर धीमान् देवों के देव के लिए रथ किया था ।५८।

।। १०५-शिवजी का युद्ध-अभिमान और त्रिपुर का ध्वंस ।।

अथ रुद्रस्य देवस्य निर्मितो विश्वकर्मणा ।
सर्वलोकमयो दिव्यो रथो यत्नेन सादरम् ।१।
सर्वभूतमयश्चैव सर्वदेवनमस्कृतः ।
सर्वदेवमयश्चैव सौवर्णः सर्वसंमतः ।२।
रथांगं दक्षिणं सूर्यो वामांगं सोम एव च ।
दक्षिणं द्वादशारं हि षोडशारं तथोत्तरम् ।३।
अरेषु तेषु विप्रेन्द्राश्चादित्या द्वादशैव तु ।
शशिनः षोडशारेषु कला वामस्य सुव्रताः ।४।

ऋक्षाणि च तदा तस्य वामस्यैत्र तु भूषगम् ।
नेम्यः षड्टतव श्चैव तयोर्वे विप्रपुंगवाः ।५।
पुष्करं चांतरिक्ष त्वैं स्थनीडश्च मंदरः ।
अस्ताद्रिरुदयाद्रिश्च उभौ तौ कूबरौ स्मृतौ ।६।
अधिष्ठ न महामेरुराश्रयाः केसराचलाः ।
वेगः संवत्सरस्तस्य अयने चक्रसंगमौ ।७।

इस अध्याय में महान् आरोप से शिव का यान त्रिपुर के नाश करने के लिए तथा कार्य की सिद्धि आदि का निरूपण किया जाता है । सूत जी ने कहा—इसके अनन्तर देवों के देव भगवान् रुद्र का सर्व लोकमय परम दिव्य रथ विश्वकर्मा के द्वारा आदर के साथ बड़े यत्न पूर्वक निर्मित किया गया था ।१। वह रथ सर्वभूतमय-समस्त देवों से नमस्कृत-सर्वदेव मय-सुवर्ण रचित और सर्व सम्मत था ।२। दक्षिण सूर्य रथाङ्ग है अर्थात् दाहिना रथ का चक्र सूर्य है और चन्द्र बाँया रथ का चक्र है । दक्षिण द्वादश अरों वाला है तथा बाम सोलह अरों से युक्त है ।३। हे विप्रेन्द्र वृन्द ! उन द्वादश अरों में द्वादश ही आदित्य हैं और चन्द्र के सोलह अरों से सोलह कलाएँ हैं ।४। नक्षत्र उस समय में उस वाम चक्र के ही भूषण थे । हे विप्रश्रेष्ठो ! उन दोनों की नेमियाँ षट् ऋतुएँ ही थीं ।५। अवकाश अन्तरिक्ष था और सारथि के स्थान में मन्दराचल था । पूर्व और अपर युगन्धर अस्ताचल और उदयाद्रि पर्वत कहे गये हैं ।६। उसका मुख्य स्थान पूज्य सुमेरु पर्वत था और मेरु के आश्रय केशराचल प्रत्यन्त पर्वत थे । उसका वेग सम्वत्सर था तथा उसके चक्र सङ्गम अयन थे ।७।

मुहूर्ता बंधुरास्तस्य शम्याश्चैव कलाः स्मृताः ।
तस्य काष्ठः स्मृता घोणा अक्षदडा क्षणाश्च वै ।८।
निमेषाश्चानुकर्षाश्च ईष चास्य लवाः स्मृताः ।
द्यौर्वरूथं रथस्यास्य स्वर्गमोक्ष वुभौ ध्वजौ ।९।
धर्मो विसर्गो दंडोस्य यज्ञा दंडाश्रयाः स्मृताः ।
दक्षिणाः संधयस्तस्य लोहाः पञ्चाशदग्नयः ।१०।
युगांतकोटी तौ तस्य धर्मकामावुभौ स्मृतौ ।

ईषादंडस्तथाऽव्यक्तं बुद्धिस्तस्यैव नड्वलः ।११।
कोणस्तथा ह्यहंकारो भूतानि च बलं स्मृतम् ।
इन्द्रियाणि च तस्यैव भूषणानि समंततः ।१२।
श्रद्धा च गतिरस्यैव वेदास्तस्य हयाः स्मृताः ।
पदानि भूषणान्येव षडंगा न्युपभूषणाम् ।१३।
पुराणन्यायमीमांसाधर्मशास्त्राणि सुव्रताः ।
वालाश्रयाः पटाश्चैव सर्वलक्षणसंयुताः ।१४।

उस रथ के तल्य मुहूर्त थे और उसकी वर्त्तुल पट्टिका तीस कला थीं। उसकी नासिका काष्ठा थी और क्षरण अक्षदण्ड थे। ।८। उसके अधःस्थदारु निमेष थे तथा अक्षियों के स्पन्दकाल ईषा एवं लव कहे गये हैं। इस रथ का वरुथ द्यौ था तथा स्वर्ग और मोक्ष ये इस रथ की ध्वजाऐं थीं ।९। धर्म विसर्ग इसका दण तथा यज्ञ दण्ड के आश्रय थे। दक्षिणा इसकी सन्धियाँ थीं और पचास अग्नियाँ आयस कीलक थे ।१०। उस रथ की दो युगान्त कोटि धर्म और काम ये दोनों कहे गये हैं। उसका ईषा दण्ड अव्यक्त था तथा बुद्धि नड्वल था ।११। अहङ्कार कोण था तथा गगनादि भूत उसका बल बताया गया है। उस रथ के भूषण इन्द्रियाँ थीं जो उसके चारों ओर हैं ।१२। श्रद्धा इस रथ की गति थी तथा वेद इसके अश्व बताये गये हैं। वेद के पद विभाग शिक्षादि षडङ्ग उपभूषण थे ।१३। पुराण न्याय मीमांसा और धर्म शास्त्र ये उसके बालाश्रय पट थे जो कि लक्षणों से संयुत थे ।१४।

मंत्रा घंटाः स्मृता स्तेषां वर्णा पादास्तथाश्रमाः ।
अवच्छेदो ह्यनंतस्तु सहस्रफणभूषितः ।१५।
दिशः पादा रथस्यास्य तथा चोपदिशश्च ह ।
पुष्कराद्याः पताकाश्च सौवर्णा रत्नभूषिताः ।१६।
समुद्रास्तस्य चत्वारो रथकंबलिकाः स्मृताः ।
गंगाद्याः सरितः श्रेष्ठाः सर्बाभरण भूषिताः ।१७।
चामरासक्तहस्ताग्राः सर्वाः स्त्रीरूपशोभिताः ।
तत्रतत्र कृतस्थानाः शोभयाचक्रिरे रथम् ।१८।

आवहाद्यास्तथा सप्त सोपानं हैममुत्तमम् ।
सारथिर्भगवान्ब्रह्मा देवाभीषुधराः स्मृताः ।१९।
प्रतोदो ब्रह्मणस्तस्य प्रणवो ब्रह्मदैवतम् ।
लोकालोका चलस्तस्य ससोपानः समंततः ।२०।
विषमश्च तदाबाह्यो मानसाद्रिः सुशोभनः ।
नासाः समंततस्तस्य सर्व एवाचलाः स्मृताः ।२१।

उस रथ के घण्टा मन्त्र थे । उसके वर्णकादि और पाद छन्द का चतुर्थ भाग आश्रम ये सब कम्बलों के घण्टा कहे गये हैं । उसका बन्धन रत्नु शेष था जो कि एक सहस्र फनों से भूषित है ।१५। दिशायें और उपदिशायें इस रथ के पाद थे । पुष्करादि जो मेघ थे वे ही इसके रत्नों से भूषित सुवर्ण की पताकाऐं थीं ।१६। चारों समुद्र उस रथ की वाह्य कम्बल थे । गङ्गा आदि श्रेष्ठ सरितायें समस्त आभरणों से भूषित हाथों के अग्र भाग में चमर लिए हुए सब स्त्री रूप में शोभित थीं । वहाँ-वहाँ अपना स्थान बनाकर उस रथ की शोभा को कर रहीं थीं ।१७।१८। आवहाद्य सात वायु नेमियाँ सुवर्ण की सोपान थीं । भगवान् ब्रह्मा इसके सारथि थे और देवता रथ की रश्मियों के ग्रहण करने वाले थे ।१९। उसका प्रतोद ब्रह्म दैवत ब्रह्मा का प्रणव था । सात वायु स्कन्धात्मक सोपान से समन्वित सम प्रमाण से विस्तृत लोका लोकाचल था ।२०। उस रथ का आभ्यन्तर विषम अर्थात् पाद न्यासाधोभाग सुन्दर मनसाद्रि था । उस रथ के चारों ओर समस्त पर्वत नासा कहे गये हैं ।२१।

तलाः कपोताः कापोताः सर्वे तलनिवासिनः ।
मेरुरेव महाछत्रं मंदरः पार्श्वडिडिमः ।२२।
शैलेंद्रः कार्मुकं चैव ज्या भुंजगाधिपः स्वयम् ।
कालरात्र्या तथैवेह तथेन्द्रधनुषा पुनः ।२३।
घंटा सरस्वती देवी धनुषः श्रुतिरूपिणी ।
इषुर्विष्णुर्महातेजाः शल्यं सोमः शरस्य च ।२४।
कालाग्निस्तच्छरस्यैव साक्षातीक्ष्णः सुदारुणः ।
अनीकं विषसंभूतं वायवो वाजकाः स्मृताः ।२५।

एवं कृत्वा रथं दिव्यं कार्मुकं च शरं तथा ।
सारथिं जगतां चैव ब्रह्माण प्रभुमीश्वरम् ।२६।
आरुरोह रथ दिव्यं रणमंडनधृग्भवः ।
सर्वदेवगणैर्युक्तं कपयन्निव-रोदसी ।२७।
ऋषिभिः स्तूयमानश्च वंद्यमानश्च वंदिभिः ।
उपनृत्यश्चाप्सरसां गणैर्नृत्यविशारदैः ।२८।

सातजल मज्ञन थे और सम्पूर्ण तलवासी कपोत पक्षियों के समान थे जो कि प्रायः कूपादि दरियों में रहा करते हैं । मेरु पर्वत ही इसका महान् छत्र है और मन्दर पर्वत इसका पृष्ठ वाद्य है ।२२। शैलों का स्वामेरु भुजङ्गों का प्रभु वासुकि इसका स्वयं धनुष की ज्या अर्थात् मौर्वी है जो कि कालरात्रि और इन्द्र के धनुष के साथ होती है ।२३। श्रुतियों के रूप वाली सरस्वती देवी धनुष के घण्टा हैं । महान् तेज वाले विष्णु बाण हैं और शर का शल्य अर्थात् आयस निर्मित अग्रभाग चन्द्र है ।२४। प्रलय की अग्नि उस शर का निशित अग्रभाग वाला कालकूट विष से समुत्पन्न अनीक अर्थात् बल है । आवहाद्य वायु उसके विच्छ कहे गये हैं ।२५। इस प्रकार से देवों के द्वारा परम दिव्य रथ धनुष शर और जगत् के प्रभु ब्रह्मा को सारथि बनाकर प्रस्तुत किया गया था । उस पर कवच-मुकुट आदि रण के मण्डन धारण करने वाले भव समस्त देवगणों से युक्त समग्र रोदसी को कम्पित करते हुए आरूढ़ हुए थे ।२६।२७। उस समय में शिव ऋषियों के द्वारा स्मृति किये गये थे और वन्हीं गण के द्वारा वन्द्यमान हुए थे । अप्सराऐं उनके समक्ष में नृत्य करती थीं जो कि कृत्य कला की महान् पण्डित थीं ।२८।

सुशोभमानो वरदः संप्रेक्ष्यैव च सारथिम् ।
तस्मिन्नारोहति रथं कल्पितं लोकसंभृतम् ।२९।
शिरोभिः पतिता भूमिं तुरगा वेदसंभवाः ।
अथाधस्ताद्रथस्यास्य भगवान् धरणीधरः ।३०।
वृषेन्द्ररूपी चोत्थाप्य स्थापयामास वै क्षणम् ।
क्षणांतरे वृषेंद्रोपि जानुभ्यामगमद्धराम् ।३१।

अभीषुहस्तो भगवानुद्यम्य च हयान् विभुः ।
स्थापयामास देवस्य वचनाद्वै रथं शुभम् ।३२।
ततोश्वांश्चोदयामास मनोमारुतरंहसः ।
पुराण्युद्दिश्य खस्थानि दानवानां तुरस्विनाम् ।३३।
अथाह भगवान् रुद्रो देवानालोक्य शङ्करः ।
पशूनामाधिपत्यं मे दत्तं हन्मि ततोऽसुरान् ।३४।
पृथक्पशुत्वं देवानां तथान्येषां सुरोत्तमाः ।
कल्पयित्वैव वध्यास्ते नान्यथा नैव सत्तमाः ।३५।

परम सुन्दर शोभा से सम्पन्न होते हुए वरद प्रभु शंकर सारथि को देखकर ही उस लोक संभृत कल्पित रथ पर आरोहण कर रहे थे । वेदों से सम्भूत तुरग शिरों से भूमि पर गिर गये थे । इसके अनन्तर भगवान् धरणी धर इस रथ के नीचे के भाग में थे उन वृषेन्द्र रूपी शेष ने रथ के नीचे से उठाकर क्षण में स्थापित किया था । एक क्षण के अन्तर में वृषेन्द्र भी जानुओं से धरा में चले गये थे ।२६।३०।३१। अभीषु हस्त वाले विभु भगवान् ने हयों को उद्यत करके देव के वचन से उस शुभ रथ को स्थापित किया था ।३२। इसके अनन्तर मन और वायु के समान वेग वाले उन अश्वों को संप्रेरित किया था और आकाश में स्थित परम तरस्वी दानवों के पुरों को उद्देश्य करके उसी ओर रथ प्रेरित किया गया था ।३३। इसके अनन्तर भगवान् रुद्र शङ्कर ने देवों को देखकर कहा था मैंने ही पशुओं का आधिपत्य दिया था अब मैं उन असुरों का हनन करता हूँ ।३४। अब हे सुरोत्तमो ! आप देवों का पृथक् पशुत्व कल्पित करके उनका वध किया जाना चाहिए । अन्य किसी प्रकार से उनका वध नहीं होगा ।३५।

इति श्रुत्वा वचः सर्वं देवदेवस्य धीमतः ।
विषादमगमन् सर्वे पशुत्वं प्रति शंकिताः ।३६।
तेषां भावं ततो ज्ञात्वा देवस्तानिदमब्रवीत् ।
मा वोस्तु पशुभावेस्मिन् भय विबुधसत्तमाः ।३७।
श्रूयतां पशुभावस्य विमोक्षः क्रियतां च सः ।

यो वै पाशुपतं दिव्यं चरिष्यति स मोक्ष्यति ।३८।
पशुत्वादिति सत्यं च प्रतिज्ञातं समाहिताः ।
ये च प्यन्ये चरिष्यन्ति व्रतं पाशुपतं मम ।३९।
माक्ष्यंति ते न संदेहः पशुत्वात्सुर सत्तमाः ।
नैष्ठिकं द्वादशाब्दं वा तदर्धं वर्षकत्रयम् ।४०।
शुश्रूषां कारयेद्यस्तु स पशुत्वाद्विमुच्यते ।
तस्मात्परमिदं दिव्यं चरिष्यथ सुरोत्तमाः ।४१।
तथेति चाब्रुवन्देवाः शिवे लोकनमस्कृते ।
तस्माद्वै पशवः सर्वे देवासुरनराः प्रभोः ।४२।

देवों के देव धीमान् भगवान् शङ्कर के इस समस्त वचन को सुनकर समस्त देवगण पशुत्व के प्रति शङ्कित होते हुए अत्यन्त विषाद से युक्त हो गये थे ।३६। इसके उपरान्त उन देवताओं के भाव को जानकर शङ्कर देव उनसे बोले—हे विवुध श्रेष्ठो ! इस पशुभाव में आपको भय नहीं करना चाहिये ।३७। अब पशुभाव का विमोक्ष आप लोग श्रवण करलो और फिर उसे करना चाहिये । जो पाशुपत दिव्य व्रत का चरण करेगा वह ही उसका भोग करेगा ।३८। पशुत्व से समाहित होकर सत्य की प्रतिज्ञा की गई है । अन्य भी जो कोई मेरे इस पाशुपत व्रत का चरण करेगा वे पशुत्व से मुक्त हो जायेंगे—इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है । वह नैष्ठिक द्वादश वर्ष का है उसका आधा और तीन वर्ष का भी है । जो सुश्रूषा करावेगा वह पशुत्व से मुक्त हो जायेगा । इसलिए हे देवों में श्रेष्ठो ! इस परम दिव्य का आप लोग समाचरण करेंगे ।३९। ।४०।४१। समस्त देवों ने ऐसा ही होगा–यह सर्व लोकों के द्वारा नमस्कृत शिव के विषय में यह कहा था । इससे प्रभु के समस्त देवता-असुर और नर पशु हैं ।४२।

रुद्रः पशुपतिश्चैव पशुपाशविमोचकः ।
यः पशुस्तत्पशुत्वं च व्रतेनानेन संत्यजेत् ।४३।
तत्कृत्वा न च पापीयानिति शास्त्रस्य निश्चयः ।
ततो विनायकः साक्षाद्बालोऽबालपराक्रमः ।४४।

अपूजितस्तदा देवैः प्राह देवान्निवारयन् ।
मामपूज्य जगत्यस्मिन् भक्ष्यभोज्यादिभिः शुभैः ।४५।
कः पुमान्सिद्धिमाप्नोति देवो वा दानवोपि वा ।
ततस्तस्मिन् क्षणादेव देवकार्ये सुरेश्वराः ।४६।
विघ्नं करिष्ये देवेश कथं कर्त्तुं समुद्यताः ।
ततः सेंद्राः सुराः सर्वे भीताः संपूज्य तं प्रभुम् ।४७।
अथ निरीक्ष्य सुरेश्वरमीश्वरं सगणमद्रिसुतासहितं तदा ।
त्रिपुररंगतलोपरि संस्थितःसुरगणोनुजगाम स्वयं तथा ।४८।
जगत्रयं सर्वमिवापरं तत् पुरत्रय तत्र विभाति सम्यक् ।
नरेश्वरैश्चैव गणैश्च देवैः सुरेतरैश्च त्रिविधैर्मुनींद्राः ।४९।

पशुपति रुद्र पशुपाश के विमोचन करने वाले हैं। जो पशु है वह इस पशुत्व को इस व्रत से त्याग देवे ।४३। इस करके वह पापीयान् नहीं रहा करता है-वह शास्त्र का निश्चय है। इसके अनन्तर बाल स्वरूप भी विनायक महान् पराक्रम वाले हैं ।४४। उस समय में देवों के द्वारा पूजित न होकर देवों को निवारण करते हुए विनायक ने कहा - श्री विनायक ने कहा—शुभ भक्ष्य और भोज्य आदि पदार्थों के द्वारा इस जगत् में मुझको न पूजकर कौन पुरुष देव हो या दानव हो सिद्ध को प्राप्त करता है। हे सुरेश्वरो! इसके पश्चात् क्षण भर में ही देव कार्य में विघ्न कर दूँगा! हे देवेश! आर लोग कैसे करने को समुद्यत हो गये हैं? इसके अनन्तर इन्द्र के सहित समस्त देवगण भयभीत हो गये थे और उस प्रभु की उन्होंने भली-भाँति पूजा की थी ।४५।४६।४७। इसके अनन्तर उस समय में गणों के सहित तथा अद्रि सुता पार्वती से युक्त सुरों के भगवान् ईश्वर को देखकर त्रिपुर के रङ्गतल के ऊपर स्थित देवों का गण स्वयं पीछे चला गया था ।४८। वह पुरत्रय वहाँ पर दूसरे सम्पूर्ण जगत् त्रय की ही भाँति अच्छी तरह से प्रकाशित हो रहा है। हे सुरेन्द्र गण! वहाँ नरेश्वर-गण-देव-तीनों प्रकार के असुर सभी से वह युक्त था ॥४९॥

अथ सज्यं धनुः कृत्वा शर्वः संधाय तं शरम् ।

युक्त्वा पाशुपतास्त्रेण त्रिपुरं समचिंतयत् ।५०।
तस्मिंस्थिते महादेवे रुद्रे विततकार्मुके ।
पुराणि तेन कालेन जग्मुरेकत्वमाशु वै ।५१।
एकीभावं गते चैव त्रिपुरे समुपागते ।
बभूव तुमुलो हर्षो देवतानां महात्मनाम् ।५२।
ततो देवगणाः सर्वे सिद्धाश्च परमर्षयः ।
जयेति वाचो मुमुचुः संस्तुवंतोष्टमूर्तिनम् ।५३।
अथाह भगवान्ब्रह्मा भगनेत्रनिपातनम् ।
पुष्ययोगेपि संप्राप्ते लीलावशमुमापतिम् ।५४।
स्थाने तव महादेव चेष्टेयं परमेश्वर ।
पूर्वदेवाश्च देवाश्च समास्तव यतः प्रभो ।५५।
तथापि देवा धर्मिष्ठाः पूर्वदेवाश्च पापिनः ।
यतस्तस्माज्जगन्नाथ लीलां त्यक्तुमिहार्हसि ।५६।

इसके अनन्तर भगवान् शर्व अपने धनुष को सज्य करके और उस पर शर को सन्धान करके पाशुपत अस्त्र से युक्त होकर त्रिपुर के विषय में विचारने लगे थे ।५०। उन महादेव के जो रुद्र हैं धनुष को खींचकर चढ़ा लेने पर वहाँ स्थित होने के पश्चात् वे पुर उस समय में शीघ्र ही एकत्व को प्राप्त हो गये थे ।५१। उस त्रिपुर के एकीभाव में प्राप्त हो ाने पर महात्मा देवताओं को तुमुल हर्ष हुआ था ।५२। फिर तो सम्पूर्ण देवगण-समस्त सिद्ध और परमर्षि गण अष्ट मूर्त्ति भगवान् की स्तुति करते हुए जय-जय कार के वचन बोलने लगे थे ।५३। इसके उपरान्त भगवान् ब्रह्मा जी के नेत्रों का निपातन करने वाले शिव से जो कि लीला के वश से उमापति हैं पुष्य नक्षत्र के योग प्राप्त होने पर बोले ।५४। ह महादेव ! हे परमेश्वर ! यह आप की चेष्टा बहुत ही समुचित है । हे प्रभो ! पूर्वदेव और देव आपके लिए सब समान हैं ।५५। तो भी देव धर्मिष्ठ हैं और पूर्व देव पापी हैं । इस कारण से हे जगत् के स्वामिन् ! यहाँ पर अपनी लीला का त्याग करने के योग्य होते हैं ।५६।

किं रथेन ध्वजेनेश तव दग्धुं पुरत्रयम् ।

इषुणा भूतसंघैश्च विष्णुना च मया प्रभो ।५७।
पुष्ययोगे त्वनुप्राप्ते पुरं दग्धुमिहार्हसि ।
यावन्न यांति देवेश वियोगं तावदेव तु ।५८।
दग्धुमर्हसि शीघ्रं त्वं त्रीण्येतानि पुराणि वै ।
अथ देवो महादेवः सर्वज्ञस्तदवैक्षत ।५९।
पुरत्रयं विरूपाक्षस्तत्क्षणाद्भस्म वै कृतम् ।
सोमश्च भगवान्विष्णुः कालाग्निर्वायुरेव च ।६०।
शरे व्यवस्थिताः सर्वे देवमूचुः प्रणम्य तम् ।
दग्धमप्यथ देवेश वीक्षणेन पुरत्रयम् ।६१।
अस्मद्धितार्थं देवेश शरं मोक्तुमिहार्हसि ।
अथ संमृज्य धनुषो ज्यां हसन् त्रिपुरार्दनः ।६२।
मुमोच बाणं विप्रेन्द्रा व्याकृष्याकर्णमीश्वरः ।
तत्क्षणात्त्रिपुरं दग्ध्वा त्रिपुरांतकरः शरः ।६३।
देवदेवं समासाद्य नमस्कृत्वा व्यवस्थितः ।
रेजे पुरत्रयं दग्धं दैत्यकोटिशतैर्वृतम् ।६४।

हे प्रभो ! हे ईश ! पुरत्रय को दग्ध करने के लिए आपको रथ और ध्वजा से क्या प्रयोजन है ! बाण से भूतों के संघों से-विष्णु से और मुझसे पुष्प नक्षत्र के योग अनुप्राप्त हो जाने पर इस पुर को आप दग्ध करने के लिए योग्य हैं। हे देवेश, जब तक वियोग नहीं होता है तभी तक आप शीघ्र इन तीन पुरों को दग्ध करने को योग्य होते हैं। इसके पश्चात् सर्वज्ञ महादेव देव ने उसे देखा था ।५७।५८।५९। विरूपाक्ष ने उसी क्षण में पुरत्रय को भस्म कर दिया था। सोम भगवान् विष्णु-कालाग्नि-वायु ये सब शर में व्यवस्थित थे। उन्होंने देव को प्रणाम करके कहा—हे देवेश ! यह पुरत्रय तो आपके वीक्षण से ही दग्ध हो गया है ।६०।६१। हे देवेश ! हमारे हित के लिए आप इस शर को मुक्त करने के योग्य होते हैं। इसके अनन्तर त्रिपुरार्दन ने धनुष को भली-भाँति शुद्ध करके हँसते हुए ज्या को चढ़ा कर हे विप्रेन्द्रगण ! भगवान् ईश्वर ने कर्ण पर्यन्त खींचकर बाण को छोड़ दिया था। उसी समय में त्रिपुरान्तक

के कर वाला शर त्रिपुर में पहुँचा और तुरन्त उसे दग्ध करके फिर वापिस देवेश के आ गया था और महादेव को नमस्कार करके स्थित हो गया था शत करोड़ दैत्यों से युक्त वह पुरत्रय दग्ध होकर दीप्ति वाला हुआ था ।६२।६३।६४।

इषुणा तेन कल्पान्ते रुद्रेणेव जगत्त्रयम् ।
ये पूजयन्ति तत्रापि दैत्या रुद्रं सबांधवाः ।६५।
गाणपत्यं तदा शभोर्ययुः पूजाविधेर्बलात् ।
न चिकिदब्रुवन्देवाः सेंद्रोपेंद्रा गणेश्वराः ।६६।
भयाद्देवं निरीक्ष्यैव देवीं हिमवतः सुताम् ।
दृष्ट्वा भीतं तदानीक देवानां देवपुंगवः ।६७।
किं चेत्याह तदा देवान्प्रणेमुस्तं समंततः ।६८।
ववंदिरे नंदिनमिंदुभूषणं ववंदिरे पर्वतराजसंभवाम् ।
ववंदिरे चाद्रिसुतासुतं प्रभु ववंदिरे देवगणा महेश्वरम् ।६९।
तुष्टाव हृदये ब्रह्मा देवैः सह समाहितः ।
विष्णुना च भवं देवं त्रिपुरारातिमीश्वरम् ।७०।

कल्पान्त में रुद्र से जगत त्रय की भाँति उस इषु से जो बान्धवों के सहित दैत्य वहां पर भी पूजा किया करते हैं उस समय शम्भु की पूजा विधि के बल से गाणपत्य पद को प्राप्त हो गये थे और इन्द्र तथा उपेंद्र के सहित गणेश्वर देव कुछ भी नहीं बोले ।६५।६६। इस प्रकार से देव पुङ्गम शिव ने देव को और हिमवान् की सुता को देखकर उस समय में देवों की अनीक को भीत देखा ।६७। और देवों से कहा, उन देवों ने उसको प्रणाम किया था ।६८। इन्दु भूषण वाले नन्दी की वन्दना की तथा पर्वत राज की पुत्री की वन्दना की थी । और अद्रि सुता के सुत प्रभु की वन्दना की थी तथा देवगणों ने महेश्वर की वन्दना की थी ।६९। देवताओं के सहित ब्रह्मा ने पूर्णतया समाहित होकर हृदय में स्तवन किया था और विष्णु ने भी त्रिपुर के आराति ईश्वर भव देव का स्तवन किया था ।।७०।।

।। १०५-लिंगार्चन और लिंग पूजा फल ।।

गते महेश्वरे देवे दग्ध्वा च त्रिपुरं क्षणात् ।
सदस्याह सुरेंद्राणां भगवान्पद्मसंभवः ।१।
संत्यज्य देवदेवेश लिंगमूर्ति महेश्वरम् ।
तारपौत्रो महातेजास्तारकस्य सुतो बली ।२।
तारकाक्षोपि दितिजः कमलाक्षश्च वीर्यवान् ।
विद्युन्माली च दैत्येशः अन्ये चापि सबांधवाः ।३।
त्यक्त्वा देवं महादेवं मायया च हरेः प्रभोः ।
सर्वे विनष्टाः प्रध्वस्ताः स्वपुरैः पुर सभवैः ।४।
तस्मात्सदा पूजनीयो लिंगमूर्तिः सदाशिवः ।
यावत्पूजा सुरेशानां तावदेव स्थितिर्यतः ।५।
पूजनीयः शिवो नित्यं श्रद्धया देवपुंगवैः ।
सर्वलिंगमयो लोकः सर्वं लिंगे प्रतिष्ठितम् ।६।
तस्मात्संपूजयेल्लिगं य इच्छेत्सिद्धिमात्मनः ।
सर्वे लिंगार्चनादेव देवा दैत्याश्च दानवाः ।७।

इस अध्याय में देवों को ब्रह्मा के द्वारा कहा हुआ लिंगार्चन की विधि और उसका फल निरूपित किया जाता है । सूतजी ने कहा—क्षण भर में त्रिपुर का दाह करके देव वर महादेव के चले जाने पर पद्म सम्भव भगवान् ब्रह्मा ने देवों की सभा में कहा था ।१। पितामह बोले—देवों के भी देवेश लिंग मूर्ति महेश्वर का त्याग करके तार का पौत्र महान् तेज वाला अति बलवान् तारक का पुत्र-दिति से जन्म लेने वाला तारकाक्ष और वीर्यवान् कमलाक्ष तथा दैत्येश विद्युन्माली और बांधवों के सहित अन्य भी प्रभु हरि की माया से महादेव देव का त्याग करके सब विनष्ट हो गये थे और पुर में होने वाले एवं पुरों के साथ पूर्णतया विध्वस्त हो गये थे ।२।३।४। इसलिए लिंग मूर्ति भगवान् सदा शिव का सर्वदा पूजन करना चाहिये । क्योंकि जब तक सुरेशों की पूजा का क्रम है तभी तक स्थिति है ।५। देव पुंगवों को अति श्रद्धा से शिव का नित्य ही पूजन करना चाहिये । यह लोक सर्व लिंगमय है और सब

लिङ्ग में ही प्रतिष्ठित है ।।६।। जो अपनी कोई सिद्धि की इच्छा करता है तो लिङ्ग की पूजा करे। लिङ्ग की पूजा से ही समस्त देव-दैत्य और दानव सिद्धि को प्राप्त हुए हैं ।।७।।

यक्षा विद्याधराः सिद्धा राक्षसाः पिशिताशनाः ।
पितरो मुनयश्चापि पिशाचाः किन्नरादयः ।।८
अर्चयित्वा लिंगमूर्ति संसिद्धा नात्र संशयः ।
तस्माल्लिंगं यजेन्नित्यं येन केनापि वा सुराः ।।९
पशवश्च वयं तस्य देवदेवस्य धीमतः ।
पशुत्वं च परित्यज्य कृत्वा पाशुपतं ततः ।।१०
पूजनीयो महादेवो लिंगमूर्तिः सनातनः ।
विशोध्य चैव भूतानि पंचभिः प्रणवैः समम् ।।११
प्राणायामैः समायुक्तैः पंचभिः सुरपुंगवाः ।
चतुर्भिः प्रणवैश्चैव प्राणायामपरायणैः ।।१२
त्रिभिश्च प्रणवैर्देवाः प्राणायामैस्तथाविधैः ।
द्विधा न्यस्य तथोंकारं प्राणायामपरायणः ।।१३
ततश्चोंकारमुच्चार्य प्राणापानौ नियम्य च ।
ज्ञानामृतेन सर्वांगान्या पूर्य प्रणवेन च ।।१४

यक्ष-विद्याधर-सिद्ध और मांस भोजी राक्षस-पितृगण-मुनि लोग-पिशाच और किन्नर गण आदि सब भगवान् शिव की लिङ्ग मूर्त्ति का अर्चन करके संसिद्ध हुए हैं—इसमें कुछ भी संशय नहीं है। इस कारण से सुरों में जिस किसी को भी नित्य ही लिङ्ग की समर्चना अवश्य करनी चाहिए ।।८।।९।। उस देवों के देव धीमान् के हम सब पशु हैं और पशुत्व का त्याग करके पाशुपत करना चाहिए। पाँच प्रणवों के द्वारा भूतों की विशुद्धि करके सनातन शिव की लिङ्ग मूर्त्ति की पूजा करनी ही चाहिए ।।१०।।११।। अब व्रत का प्रकार बताते हुए कहते हैं कि गगनादि जो पाँच महाभूत हैं उन्हें पाँच प्रणवों के समायुक्त प्राणायामों के द्वारा विशोधन करे। चार प्रणवों से युक्त प्राणायामों द्वारा-तथाविध तीन प्रणव युक्त प्राणायामों से-दो वार ही प्रणव सहित प्राणायाम से तथा ओङ्कार

का उच्चारण कर और प्राणापान को नियमित कर और ज्ञानामृत प्रणव से समस्त अङ्गों को आपूरित करे ॥१२॥१३॥१४॥

गुणत्रयं चतुर्धाख्यमहंकारं च सुव्रताः ।
तन्मात्राणि च भूतानि तथा बुद्धींद्रियाणि च ॥१५
कर्मेंद्रियाणि संशोध्य पुरुषं युगलं तथा ।
चिदात्मानं तनुं कृत्वा चाग्निर्भस्मेति संस्पृशेत् ॥१६
वायुर्भस्मेति च व्योम तथांभो पृथिवी तथा ।
त्रियायुषं त्रिसंध्यं च धूलयेद्भासतेन यः ॥१७
स योगी सर्वतत्त्वज्ञो व्रतं पाशुपतं त्विदम् ।
भवेन पाशमोक्षार्थं कथितं देवसत्तमाः ॥१८
एवं पाशुपतं कृत्वा संपूज्य परमेश्वरम् ।
लिंगे पुरा मया दृष्टे विष्णुना च महात्मना ॥१९
पशवो नैव जायंते वर्षमात्रेण देवताः ।
अस्माभिः सर्वकार्याणां देवमभ्यर्च्य यत्नतः ॥२०
बाह्ये चाभ्यंतरे चैव मन्ये कर्तव्यमीश्वरम् ।
प्रतिज्ञा मम विष्णोश्च दिव्यैषा सुरसत्तमाः ॥२१

तीनों गुण-चतुर्धाख्य अर्थात् मन, बुद्धि, अहङ्कार और चित्त को तथा अहङ्कार को-पञ्चतन्मात्रा-पञ्चभूत ज्ञानेन्द्रियाँ-कर्मेन्द्रियाँ इन सब का संशोधन करके तैजस प्राज्ञ दोनों प्रकार के युगल पुरुष का संशोधन करे। चैतन्य रूप तनु की भावना करके 'अग्नि'—इत्यादि मन्त्रों से भस्म का स्पर्श करना चाहिए ॥१५॥१६॥ वायु-व्योम-अम्भ और पृथ्वी को त्रियायुष जमदग्नेः-इत्यादि मन्त्रों के द्वारा तीनों सन्ध्या काल में भस्म से जो धूलित करता है वह सर्व तत्वज्ञाता योगी है-यह पाशुपत व्रत है। हे देव सत्तमो ! यह भव देव ने पाश के मोक्ष के लिये कहा है ॥१७॥१८॥ इस प्रकार से पाशुपत व्रत करके मेरे द्वारा और महात्मा विष्णु के द्वारा प्रथम दृष्ट लिङ्ग में परमेश्वर का पूजन करे तो एक वर्ष में देवता पशु नहीं होंगे। हम ब्रह्मा-विष्णु और रुद्रों के साथ वाह्य और आभ्यन्तर में ईश्वर की अभ्यर्चना करके समस्त कार्यों की कर्त्तव्यता होती है-यह

मानते हैं। हे सुरश्रेष्ठो ! मेरी और विष्णु की यह दिव्य प्रतिज्ञा है और मुनियों की भी ऐसी ही प्रतिज्ञा है। इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है। इससे शिव का पूजन करना ही चाहिए ।।१९।२०।।२१।।

मुनीनां च न संदेहस्तस्मात्संपूजयेच्छिवम् ।
सा हानिस्तन्महच्छिद्रं स मोहः सा च मूकता ।।२२
यत्क्षणं वा मुहूर्तं वा शिवमेकं न चिंतयेत् ।
भवभक्तिपरा ये च भवप्रणतचेतसः ।।२३
भवसंस्मरणोद्युक्ता न ते दुःखस्य भाजनम् ।
भवनानि मनोज्ञानि दिव्यमाभरणं स्त्रियः ।।२४
धनं वा तुष्टिपर्यंतं शिवपूजाविधेः फलम् ।
ये वांछंति महाभोगान् राज्यं च त्रिदशालये ।
तेऽर्चयंतु सदा कालं लिंगमूर्ति महेश्वरम् ।।२५
हत्वा भित्त्वा च भूतानि दग्ध्वा सर्वमिद जगत् ।।२६
यजेदेकं विरूपाक्षं न पापैः स प्रलिप्यते ।
शैलं लिंगं मदीयं हि सर्वदेवनमस्कृतम् ।।२७
इत्युक्त्वा पूर्वमभ्यर्च्य रुद्रं त्रिभुवनेश्वरम् ।
तुष्टाव वाग्भिरिष्टाभि र्देवदेवं त्रियंबकम् ।।२८
तदाप्रभृति शक्राद्याः पूजयामासुरीश्वरम् ।
साक्षात्पाशुपतं कृत्वा भस्मोद्धूलितविग्रहाः ।। २९

वह हानि है महान् छिद्र है वह मोह है और वह मूकता है जिस क्षण और मुहूर्त्त में एक शिव का चिन्तन नहीं करता है। जो भव की भक्ति में परायण हैं और भव के चरणों में जिनका चित्त प्रणव रहता है तथा भव के सदा संस्मरण में जो उद्युक्त रहते हैं वे कभी भी दुःख के भाजन नहीं हुआ करते हैं। भव भक्तों के भवन परम मनोज्ञ होते हैं— दिव्य आभरण स्त्रियाँ और तुष्टि पर्यन्त धन इन सब का होना शिव की पूजा का प्रत्यक्ष फल होता है। जो पुरुष महान् भोगों के प्राप्त करने की इच्छा रखते हैं तथा देवों के स्थान में राज्य की कामना करते हैं उन्हें सर्वकाल में लिङ्ग मूर्त्ति महेश्वर की पूजा करनी चाहिए ।।२२।२३।,२४।।

।२५। भूतों का हनन और भेदन करके और इस समस्त जगत् को दग्ध करके भी एक भगवान् विरूपाक्ष का जो यजन करता है वह कभी भी पापों से प्रलिप्त नहीं होता है । मेरा शिलामय सर्व देवों से नमस्कृत लिङ्ग है–यह कहकर पहिले त्रिभुवनेश्वर रुद्र की अभ्यर्चना करे और फिर इष्ट वाणियों के द्वारा त्रियम्बक देव का स्तवन करे । ब्रह्मा के इस उपदेश काल से आरम्भ करके इन्द्र आदि देवों ने ईश्वर की पूजा की थी और साक्षात् पाशुपत व्रत करके भस्म से उद्धूलित विग्रह वाले हुए थे । ।२६।२७।२८।२९।

।। १०६–वज्रवाहिनिका विद्या निरूपण ।।

निग्रहोऽघोररूपोयं कथितोऽस्माकमुत्तमम् ।
वज्रवाहनिकां विद्यां वक्तुमर्हसि सत्तम ।।१
वज्रवाहनिका नाम सर्वशत्रुभयंकरी ।
अनया सेचयेद्वज्रं नृपाणां साधयेत्तथा ।।२
वज्रं कृत्वा विधानेन तद्वज्रमभिषिच्य च ।
अनया विद्यया तस्मिन्विन्यसेत्कांचनेन च ।।३
ततश्चाक्षरलक्ष च जपेद्विद्वान्समाहितः ।
वज्री दशांशं जुहुयाद्वज्रकुंडे घृतादिभिः ।।४
तद्वज्रं गोपयेन्नित्यं दापयेन्नृपतेस्ततः ।
तेन वज्रेण वै गच्छञ्छत्रूञ्जीयाद्रणाजिरे ।।५
पुरा पिता महेनैत्र लब्धा विद्या प्रयत्नतः ।
देवी शक्रोपकारार्थं साक्षाद्वज्रेश्वरी तथा ।।६

ऋषियों ने कहा—हे श्रेष्ठतम ! आपने यह अघोर रूप निग्रह हम लोगों के समक्ष में बता दिया है जो कि अति उत्तम है । अब वज्रवाहनिका विद्या के बताने के आप योग्य होते हैं ।१। सूतजी ने कहा—वज्र वाहनिका विद्या समस्त शत्रुओं के लिये भय के उत्पन्न करने वाली है इसके द्वारा वज्र का सेचन करे तथा नृपों को उस प्रकार का वज्र समर्पित कर देना चाहिए ।२। विधि-विधान से वज्र की रचना कराकर

उस वज्र का अभिषेक करे फिर इस विद्या के द्वारा उस पर सुवर्ण से विन्यास करे अर्थात् लिखना चाहिए। ३। इसके अनन्तर वज्र से विशिष्ट विद्वान समाहित होकर अक्षर लक्ष जाप करे अर्थात् मन्त्र के जितने वर्ण हों उतने ही लाख संख्या वाला जप होना चाहिए। जप संख्या का दशवाँ भाग वज्र कुण्ड में घृत आदि से हवन करना चाहिए।४। फिर उसकी नित्य रक्षा करे और राजा को दिला देवे। उस वज्र को साथ लेकर जाने वाला राजा रण क्षेत्र में विजय प्राप्त किया करता है।५। अब इस विद्या के प्राप्त होने की प्रकार बताया जाता है-पहिले प्राचीन काल में यह वज्रेश्वरी महा विद्या पितामह ब्रह्मा ने भगवान् महेश्वर से बहुत प्रयत्न से प्राप्त की थी और इन्द्र के उपकारार्थ इस साक्षात् वज्रेश्वरी विद्या देवी का उपयोग किया गया था।६।

पुरा त्वष्टा प्रजानाथो हतपुत्रः सुरेश्वरात्।
विद्यया हरतः सोममिद्रवैरेण सुव्रताः।७।
तस्मिन्यज्ञे यथाप्राप्तं विधिनोपकृतं हविः।
तदैच्छत महाबाहुर्विश्वरूपविमर्दनः।८।
मत्पुत्रमवधीः शक्र न दास्ये तव शोभनम्।
भाग भागा र्हता नैव विश्वरूपो हतस्त्वया।९।
इत्युक्त्वा चाश्रमं सर्वं माहयामास मायया।
ततो मायां विनिर्भिद्य विश्वरूपविमर्दनः।१०।
प्रसह्य सोममपिबत्सगणैश्च शचीपतिः।
ततस्तच्छेषमादाय क्रोधाविष्टः प्रजापतिः।११।

पहिले समय में विश्वरूपोपदिष्ट विद्या से सोम के हरण करने वाले सुरेश्वर से हतपुत्र त्वष्टा प्रजानाथ उस सोमयाग में यथा प्राप्त विधि से उपकृत हवि महाबाहु विश्वरूप विमर्दन ने इच्छा की थी।७।८। हे शक्र! मेरे पुत्र का हनन किया है और आपके शोभन भाग को नहीं देगा। हे सुव्रतो! आपने विश्वरूप का हनन किया है। भाग के प्राप्त करने की योग्यता वाले ने नहीं—यह इन्द्र को वैर से कहकर माया से सम्पूर्ण आश्रम को मोहित किया था। इसके अनन्तर माया का भेदन

कर विश्वरूप के विमर्दन करने वाले शची के पति इन्द्र बलात् गणों के सहित सोम का पान किया था। उस शेष सोम को लाकर प्रजापति क्रोध में भर गये थे ।६।१०।११।

इन्द्रस्य शत्रो वर्धस्व स्वाहेत्यग्नौ जुहाव ह।
ततः कालाग्निसंकाशो वर्तनाद्वृत्रसंज्ञितः ।१२।
प्रादुरासीत्सुरेशारिदु द्राव च वृषांतकः।
ततः किरीटी भगवान्परित्यज्य दिवं क्षणात् ।१३।
सहस्रनेत्रः सगणो दुद्राव भयविह्वलः।
तदा तमाह स विभुर्हृष्टो ब्रह्मा च विश्वसृट् ।१४।
त्यक्त्वा वज्रं तमेतेन जहीत्यरिमर्रिंदमः।
सोऽपि सन्नह्य देवेंद्रो देदैः सार्धं महाभुजः ।१५।
निहत्य चाप्रयत्नेन गतवान्विगतज्वरः।
तस्माद्वज्रेश्वरीविद्या सर्वशत्रुभयंकरी ।१६।
मंदेहा राक्षसा नित्य विजिता विद्ययैव तु।
तां विद्यां संप्रवक्ष्यामि सर्वपापप्रमोचनीम् ।१७।
ॐ भूर्भुवस्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि।
धियो यो नः प्रचोदयात्।
ॐ फट् जहि हुं फट् छिंधि भिंधि जहि हनहन स्वाहा।
विद्या वज्रेश्वरीत्येषा सर्वशत्रुभयंकरी।
अनया संहृतिः शंभोर्विद्य या मुनिपुङ्गवाः ।१८।

फिर "इन्द्रस्य शत्रो वर्धस्य स्वाहा"—इस मन्त्र से अग्नि में होम किया था। इसके पश्चात् कालाग्नि के सदृश व्यवहार वाला होने से वृत्र संज्ञावाला देव शत्रु प्रादुर्भूत हुआ था। उस समय किरीटी वृषान्तक भगवान् तुरन्त स्वर्ग को छोड़कर भग से विह्वल होते हुए इन्द्र सहस्र नेत्र वाला गणों के सहित भाग खड़े हुए थे। उस समय में विश्व के स्रष्टा विभु ब्रह्मा ने प्रसन्न होकर उससे कहा था ।१२।१३।१४। इस वज्रेश्वरी मन्त्र से वज्र को त्याग कर अर्थात् वज्र में इस मन्त्र का प्रयोग कर इस शत्रु का वध करो। उस देवेन्द्र ने जिसकी बड़ी २ भुजायें थीं

देवों के साथ सन्नद्ध होकर उसका वध बिना ही विशेष प्रयत्न के करके दुःख रहित हुए थे। इससे यह वज्रेश्वरी विद्या समस्त शत्रुओं के लिए महा भयङ्करी है।१५।१६। मन्देह नाम वाले राक्षस इसी विद्या के द्वारा निहित एवं विजित हुए थे। अब मैं उसी सम्पूर्ण पापों के विमोचन करने वाली विद्या को भली-भाँति वर्णित करूँगा।१७। वह वज्रेश्वरी मन्त्र का आकार स्वरूप यह है—"ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्य भर्गो देवस्य धीमहि। धियो यो नः प्रचोदयात्। ॐ फट् जहि हुं फट् छिन्दि भिन्दि जहि हन हन स्वाहा" यही वज्रेश्वरी विद्या का मन्त्र है जो समस्त पशुओं को भय करने वाली है। इसी विद्या के द्वारा भगवान् शम्भु का संहार होता है। हे मुनिश्रेष्ठो! यही शम्भु की विद्या है जिस से प्रलय हुआ करता है।१८।

॥ १०७—गायत्री मन्त्र पूर्वक वज्रेश्वरी विद्या ॥

श्रुता वज्रेश्वरी विद्या ब्राह्मी शक्रोपकारिणी।
अनया सर्वकार्याणि नृपाणामिति नः श्रुतम्।१।
विनियोगं वदस्वास्या विद्याया रोम हर्षण।
वश्यमाकर्षणं चैव विद्वेषणमतः परम्।२।
उच्चाटनं स्तंभनं च मोहनं ताडनं तथा।
उत्सादनं तथा छेद मारणं प्रतिबंधनम्।३।
सेनास्तंभनकादीनि सावित्र्या सर्वमाचरेत्।
आगच्छ वरदे देवि भूम्यां पर्वतमूर्धनि।४।
ब्राह्मणेभ्यो ह्यनुज्ञाता गच्छ देवी यथासुखम्।
उद्वास्यानेन मन्त्रेण गन्तव्यं नान्यथा द्विजाः।५।
प्रतिकार्यं तथा बाह्यं कृत्वा वश्यादिकां क्रियाम्।
उद्वास्य वह्निमाधाय पुनरन्यं यथाविधि।६।
देवामावाह्य च पुनर्जपेत्संपूजयेत्पुनः।
होम च विधिना वह्नौ पुनरेव समाचरेत्।७।

ऋषियों ने कहा—हे सूतजी! हम लोगों ने इन्द्र के उपकार करने

वाली यह ब्राह्मी वज्रेश्वरी विद्या का भली-भाँति श्रवण कर लिया है और यह भी सुन लिया है कि इस विद्या के द्वारा नृपों के सम्पूर्ण कार्य सिद्ध हुआ करते हैं ।१। हे रोम हर्षण ! अब इस महा विद्या विनियोग किस तरह किया जाता है–यह कृपा करके बतलाइये । सूतजी ने कहा–वश्य अर्थात् किसी का भी वशीकरण (वश से कर लेना) आकर्षण (अपनी ओर खींचकर बुला लेना)–विद्वेषण अर्थात् किन्हीं दो में द्वेष भाव उत्पन्न करा देना–इसके आगे उच्चारन अर्थात् किसी के भी मनमें स्थिरता का नाश कर स्थान के त्याग की भावना उत्पन्न कर देना–स्तम्भन (जहाँ के तहाँ स्तम्भित कर देना अर्थात् क्रिया शून्य बना देना) मोहन अर्थात् मोहित बना देना ताडन-उत्सादन-छेदन मारण और प्रति-बन्धन तथा सेना का स्तम्भन आदि करना ये सम्पूर्ण कार्य सावित्री के द्वारा ही करने चाहिए । इस सावित्री के आवाहन करने का मन्त्र यह है "आगच्छ वरदे देवि भूम्यां पर्वत मूर्धनि" । अर्थात् हे वर देने वाली ! हे देवि ! भूमि में पर्वत के शिखर पर आओ । फिर इस देवी के विसर्जन कर देने का मन्त्र यह है–"ब्राह्मणेभ्यो ह्यनुज्ञाता गच्छ देवि यथा सुखम्" अर्थात् ब्राह्मणों के द्वारा अनुज्ञात होती हुई आप हे देवि ! सुख पूर्वक पधारो । हे द्विजगण ! इसी मन्त्र से देवी का उद्वासन करके जाना चाहिए अन्यथा नहीं जाना चाहिए । अर्थात् पूर्वोक्त शत्रु के वश्याकर्षण आदि क्रिया करके इस मन्त्र के द्वारा पूर्ण काम होते हुए जाना उचित है । प्रत्येक कार्य में अर्थात् वश्यादिक कार्य की क्रिया में देवी का विसर्जन करके फिर वह्नि में नित्य प्रति हवन करे । पुनः पुनः देवी का आवाहन पूजन हवन और अन्त में विसर्जन किया करे ।२।३।४।५।६।७।

सर्वकार्याणि विधिना साधयेद्विद्यया पुनः ।
जातीपुष्पैश्च वश्यार्थी जुहुय दयुतत्रयम् ।८।
घृतेन करवीरेण कुर्यादाकर्षणं द्विजाः ।
विद्वेषणं विशेषेण कुर्याल्लांगलकस्य च ।९।
तैलेनोच्चाटनं प्रोक्तं स्तंभनं मधुना स्मृतम् ।
तिलेन मोहनं प्रोक्तं ताडनं रुधिरेण च ।१०।

खरस्य च गजस्याथ उष्ट्रस्य च यथाक्रमम् ।
स्तंभनं सर्षपेणापि पाटनं च कुशेन च ।११।
मारणोच्चाटने चैव रोहोबीजेन सुव्रताः ।
बंधनं त्वहिपत्रेण सेनास्तभमतः परम् ।१२।

इसी विधि-विधान से इस विद्या के द्वारा समस्त कार्यों का साधन करना चाहिए। कामनाएें भिन्न २ प्रकार की हुआ करती हैं। अतएव उनके भेद के अनुसार हवन के द्रव्य भी भिन्न २ होते हैं। उन्हें अब बतलाते हैं–जो किसी को अपने वश में करना चाहता है वह उस बशी-करण के करने के लिए जाती के पुष्पों से तीन अयुत अर्थात् तीस हजार आहुतियाँ देवे ।८। हे द्विजो ! यदि आकर्षण करना है तो करवीर के पुष्प और घृत से हवन करे। अगर किन्हीं दो में विद्वेषण करना अभीष्ट हो तो लाङ्गल लता के पुष्पों से होम करना चाहिए ।९। उच्चाटन की क्रिया के लिए तल से और स्तम्भन के वास्ते मधु से आहुतियाँ देनी चाहिए–ऐसा बताया गया है। तिलों से हवन करने से मोहन होता है और रुधिर के द्वारा होम से ताड़न क्रिया सम्पन्न हुआ करती है ।१०। गधा-हाथी और ऊँट इन तीन के रुधिर से यथाक्रम हवन का क्रम बताया गया है। स्तम्भन सरसों के हवन से भी होता है और पाटन कुश के होम से सम्पन्न हुआ करता है ।११। हे सुव्रत वालो ! रोही अर्थात् रक्त रोहिड इस प्रसिद्ध औषधि के बीजों से हवन करने पर मारण तथा उच्चाटन हुआ करते हैं। नाग वल्ली के पत्रों से हवन करने से सेना का स्तम्भन हो जाता है अर्थात् सेना बिल्कुल निश्चेष्ट एवं क्रिया शून्य जैसी की तैसी रह जाया करती है ।१२।

कुनट्या नियतं विद्यात्पूजयेत्परमेश्वरीम् ।
घृतेन सर्वसिद्धिः स्यात्पयसा वा विशुद्धयते ।१३।
तिलेन रोगनाशश्च कमलेन धन भवेत् ।
कांतिर्मधूकपुष्पेण सावित्र्या ह्ययुतत्रयम् ।१४।
जयादिप्र तोन्सर्वान् स्विष्टांतं पूर्ववत्स्मृतम् ।
एवं संक्षेपतः प्रोक्तो विनियोगोतिविस्तृतः ।१५।

जपेद्वा केवलां विद्यां संपूज्य च विधानतः ।
सर्वसिद्धिमवाप्नोति नात्र कार्या विचारणा ।१६।

कुनटी अर्थात् मैनसिल के द्वारा हवन करने से भी सेना का स्तम्भन होता है। नियम पूर्वक परमेश्वरी का पूजन करे। उपर्युक्त कामनायें दूसरों का पीड़ा पहुंचाने वाली होने से असात्विक होती है। यदि सात्विक कामनायें ही हों तो केवल घृत से हवन करे। इससे सर्व सिद्धि होती है और पय (दूध) से विशुद्धि हुआ करती है।१३। तिलों से आहुतियाँ देने से रोग का नाश और कमला के दलों से हवन करने पर धन की वृद्धि होती है। तीन अयुत (दश हजार को अयुत कहते हैं) सावित्री मन्त्र के द्वारा अधूक के पुष्पों से हवन करने पर क्रान्ति की वृद्धि होती है।१४। जयादि प्रभृति सब को करके पूर्व की भाँति स्विष्टान्त अर्थात् स्विष्ट कृत् के अन्त तक अग्नि कार्य कहा गया है। इस प्रकार से इसका अति विस्तृत विनियाग भी मैंने संक्षेप से ही वर्णित किया है।१५। अथवा केवल विद्या का भली-भाँति पूजन करके विधान से जप करे तो समस्त सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं—इसमें कुछ भी विचार नहीं करना चाहिए। ६।

॥ १०८—मृत्युजय और त्र्यंबक महामन्त्र ॥

मृत्युंजयविधिं सूत ब्रह्मक्षत्रविशामपि ।
वक्तुमर्हसि चास्माकं सर्वज्ञोऽसि महामते ।१।
मृत्युंजयविधिं वक्ष्ये बहुना किं द्विजोत्तमाः ।
रुद्राध्यायेन विधिना घृतेन नियुतं क्रमात् ।२।
सघृतेन तिलेनैव कमलेन प्रयत्नतः ।
दूर्वया घृतगोक्षीरमिश्रया मधुना तथा ।३।
चरुणा सघृतेनैव केवल पयसापि वा ।
जुहूयात्काल मृत्योर्वा प्रतीकारः प्रकीर्तितः ।४।
त्रियंबकेण मन्त्रेण देवदेवं त्रियम्बकम् ।
पूजयेद्बाणलिङ्गे वा स्वयंभूतेऽपि वा पुनः ।५।

ऋषियों ने कहा—हे सूतजी ! आप तो महती मति वाले हैं और सभी कुछ के पूर्ण ज्ञाता भी हैं। ब्राह्मण-क्षत्रिय और वैश्यों के लिए मृत्युञ्जय की विधि हो उसे कृपाकर बतलाइये, हम वहुत इच्छुक हैं ।१। सूतजी ने कहा—हे द्विजोत्तमो ! अब मैं अधिक क्या बताऊँ आप लोगों के समक्ष में मृत्युञ्जय की विधि बतलाऊंगा रुद्राध्याय के द्वारा विधिपूर्वक क्रम से घृत से एक नियुन हवन करे। रुद्राध्याय का तात्पर्य शिव रहस्य दशमांशादि विधान से होता है ।२। घृत के सहित तिलों से-कमल के दलों से-दूर्वा (दूभ) से-घृत, गाय का दूध से मिश्रित मधु से-घृत के सहित चरु से और केवल दूध से हवन करने से काल मृत्यु का प्रतीकार कहा गया है। घृतादि का होम मृत्यु के निरास करने वाला और शिव तो तोष उत्पन्न करने वाला होता है। जप से अपवर्ग की प्राप्ति होती है और रुद्राध्याय से रक्षा होती है ।३।४। सूतजी ने कहा—त्रियम्बक मन्त्र से देवों के देव भगवान् त्रियम्बक का बाण लिंग में अथवा स्वयम्भू लिङ्ग में पूजन करना चाहिये ।५।

आयुवदविदैर्वापि यथावदनुपूर्वशः ।
अष्टोत्तरसहस्रेण पुंडरीकेण शंकरम् ।६।
कमलेन सहस्रेण तथा नीलोत्पलेन वा ।
संपूज्य पायसं दत्त्वा सघृयं चौदनं पुनः ।७।
मुद्गान्नं मधुना युक्तं भक्ष्याणि सुरभीणि च ।
अग्नौ होमश्च विपुलो यदावदनुपूर्वशः ।८।
पूर्वोक्तं रपि पुष्पैश्च चरुणा च विशेषतः ।
जपेद्वै नियुतं सम्यक् समाप्य च यथाक्रमम् ।९।
ब्राह्मणानां सहस्रं च भोजयेद्वै सदक्षिणम् ।
गवां सहस्रं दत्त्वा तु हिरण्यमपि दापयेत् ।१०।
एतद्वः कथितं सर्वं सरहस्यं समासतः ।
शिवेन देवदेवेन शर्वेणात्युग्रशूलिना ।११।
कथितं मेरुशिखरे स्कंदायामिततेजसे ।
स्कंदेन देवदेवेन ब्रह्मपुत्राय धीमते ।१२।

साक्षात्सनत्कुमारेण सर्वलोकहितैषिगा ।
पाराशर्याय कथितं पारंपर्यक्रम गतम् ।१३।

आयु वेद के ज्ञाता अर्थात् आयु के वर्धन के उपायों को जानने वाले द्विजों के द्वारा यथाविधि अनुपूर्वशः अष्टोत्तर सहस्र भगवान् शङ्कर के नामों से अष्टोत्तर सहस्र श्वेत कमलों से सहस्र पद्म ह्त्रों से अथवा अष्टोत्तर सहस्र नीलोत्पलों से भली-भाँति अर्चना करे। घृत के सहित पायस (खीर) ओदन-मधु के युक्त मुद्गान्न और अन्य लेह्य, चोष्य,पेय, भक्ष्य सुस्वादु एवं सुगन्ध समन्वित पदार्थ समर्पित करे। फिर पूर्वोक्त घृतादि द्रव्यों के क्रम से यथाविधि पुण्डरीक आदि पुष्पों के सहित चरु से होम करे तथा नियम पूर्वक नियुत जाप करे। इस तरह क्रम के अनुसार भली-भाँति समाप्त करके एक सहस्र ब्राह्मणों को दक्षिणा के सहित भोजन करावे। एक सहस्र गोदान करे और सुवर्ण का भी दान कराना चाहिये ।६।७।८।९।१०। यह सम्पूर्ण रहस्य के सहित संक्षेप में तुमको बता दिया है। यह उग्र शूली देवों के भी वन्दनीय देव शर्व शिव ने मेरु के शिखर पर अपरिमित तेज वाले स्कन्द को बताया था। देवदेव स्वामी स्कन्ध ने परम बुद्धिमान् ब्रह्मा के पुत्र से कहा था। सम्पूर्ण लोकों के हित की कामना से युक्त साक्षात् सनत्कुमार ने पाराशर्य को इसे बताया था। इस तरह से यह परम्परा से ज्ञान प्राप्त होता चला आय है ।११।१२।१३।

शुके गते परधाम दृष्ट्वा रुद्रं त्रियम्बकम् ।
गतशोको महाभागो व्यासः पर ऋषिः प्रभुः ।१४।
स्कंदस्य सभवं श्रुत्वा स्थिताय च महात्मने ।
त्रियम्बकस्य माहात्म्यं मन्त्रस्य च विशेषतः ।१५।
कथितं बहुधा तस्मै कृष्णद्वैपायनाय वै ।
तत्सर्वं कथयिष्यामि प्रसादादेव तस्य वै ।१६।
देवं संपूज्य विधिना जपेन्मंत्रं त्रियंबकम् ।
च्यत सर्वपापैश्च सप्तजन्मकृतैरपि ।१७।
संग्रामे विजयं लब्ध्वा सौभाग्यमतुलं भवेत् ।

लक्षहोमेन राज्यार्थी राज्यं लब्ध्वा सुखी भवेत् ।१८।

त्रियम्बक भगवान् रुद्र का दर्शन करके शुक्र मुनि के परम धाम चले जाने पर शोक को प्राप्त होने वाले परम ऋषि महाभाग व्यास मुनि ने स्वामी स्कन्द का जन्म श्रवण करके संस्थित महान् आतमा वाले कृष्ण द्वैपायन से त्रियम्बक का माहात्म्य विशेष रूप से मन्त्र कहा था। अब उन्हीं के प्रसाद से प्राप्त हुआ वह सब कुछ तुमको बतलाता हूँ।१४। ।१५।१६। इस तरह विधि के सहित देव का पूजन करके त्रियम्बक के मन्त्र का जप करना चाहिये। इसके जाप से सात जन्मों के किये हुये भी पापों से मुक्ति हो जाया करती है।१७। संग्राम में विजय प्राप्त करको इसके जप से मानव अतुल सौभाग्य की प्राप्ति किया करता है। त्रियम्बक मंत्र से एक लक्ष आहुतियाँ देने से राज्य प्राप्त करने की इच्छा वाल राज्य का लाभ कर परम सुख को प्राप्त करता है।।१८।

पुत्रार्थी पुत्रमाप्नोति नियुतेन न संशयः।
धनार्थी प्रयुतेनैव जपेदेव न संशयः।१९।
धनधान्यादिभिः सर्वैः संपूर्णः सर्वमंगलैः।
क्रीडते पुत्रपौत्रैश्च मृतः स्वर्गे प्रजायते।२०।
नानेन सदृशो मंत्रो लोके वेदे च सुव्रताः।
तस्मातत्रियम्बकं देवं तेन नित्यं प्रपूजयेत्।२१।
अग्निष्टोमस्य यज्ञस्य फलमष्टगुणं भवेत्।
त्रयाणामपि लोकानां गुणानामपि यः प्रभुः।२२।
वेदानामपि देवानां ब्रह्मक्षत्रविशामपि।
अकारोकारमकाराणां मात्राणामपि वाचकः।२३।
तथा सोमस्य सूर्यस्य वह्नेरग्नित्रयस्य च।
अंबा उमा महादेवो ह्यंबकस्तु त्रियम्बकः। ४।
सुपुष्पितस्य वृक्षस्य यथा गंधः सुशोभनः।
वाति दूरात्तथा तस्य गंधः शंभोर्महात्मनः।२५।
तस्मात्सुगंधो भगवान्गंधारयति शङ्करः।
गांधारश्च महादेवो देवानामपि लीलया।२६।

पुत्र की चाहना रखने वाला एक नियुत जाप करने से पुत्र की प्राप्ति करता है—इसमें कुछ भी संशय नहीं है। जो धन का अर्थी होता है उसको एक प्रयुत जप करने से ही निस्सन्देह उसकी प्राप्ति होती है। इस मन्त्र के जप करने वाला धन-धान्यादि समस्त मङ्गल पदार्थों से परिपूर्ण होकर पुत्र-पौत्रादि के सहित आनन्द क्रीड़ा करता है और अन्त में मर कर वह स्वर्ग को निवास पाता है ।१९।२०। हे सुव्रतो ! संसार में और वेद में इसके समान दूसरा कोई भी मन्त्र नहीं है। इसलिए त्रियम्बक देव को इस मन्त्र से नित्य ही पूजना चाहिए ।२१। इससे अग्निष्टोम यज्ञ का जो फल है उससे अठ गुना फल होता है। अब 'त्रियम्बक' इस पद के विभिन्न अर्थों को बताया जाता है–'त्रयाणां भूरादीनाँ लोकानां-सत्त्वादि गुणानां ऋगादि वेदानां ब्रह्मादि देवाना मम्बकः अतएव प्रभुः' अर्थात् भूर्भुव आदि तीनों लोकों के सत्व, रज घोर तम-इन तीनों गुणों के-ऋग्वेदादि समस्त वेदों के और सम्पूर्ण ब्रह्मा आदि देवों के अम्बक यह पिता हैं। 'त्र्यम्बक'—इस ब्द का दूसरा अर्थ यह होता है-अकार उकार और मकार ये तीन अम्ब अर्थात् शब्द जिससे होते हैं वह त्र्यम्बक हैं। इसमें 'क' संज्ञा में प्रत्यय होकर त्र्यम्बक शब्द की सिद्धि होती है। यह मात्राओं का भी वाचक होता है ।२२।२३। त्र्यम्बक—इस शब्द के अन्य अर्थ किये जाते हैं सोम सूर्य-वह्नि ते तीन अम्बक अर्थात् नेत्र जिसके हैं वह त्र्यम्बक शिव हैं। तीनों की अम्बा जननी जिसकी स्त्री है वह त्र्यम्बक शिव हैं–यह भी एक अर्थान्तर होता है ।२४। जिस प्रकार से सुन्दर पुष्पों से युक्त वृक्ष की बहुत अच्छी गन्ध होती है उसी भाँति उस महान् आतमा वाले शम्भु की गन्ध भी दूर से ही होती हैं। इसलिए भगवान् शम्भु सुगन्ध कहे जाते हैं ! इसकी व्युत्पत्ति यह होती है सुष्ठु तदूगं गीतं च सुगन्दधातीति-सुगन्ध। महादेव का नाम गान्धार होता है। इसकी व्युत्पत्ति यह है गां गायन रूपा वाणी को धारण करने वाले हैं इसे देवों की भी लीला से पोषित किया करते हैं। ।२५।२६।

सुगन्धस्तस्य लोकेस्मिन्वायुर्वाति नभस्तले ।

तस्म त्सुगंधिस्तं देवं सुगन्धि पुष्टिवर्धनम् ।२७।
यस्य रेतः पुरा शंभोर्हरेर्योनौ प्रतिष्ठितम् ।
तस्य वोर्यादभूदंडं हिरण्यमजोद्भवम् ।२८।
चन्द्रादित्यौ सनक्षत्रौ भूर्भुवःस्वर्महस्तपः ।
सत्यलोकमतिक्रम्य पुष्टिर्वीर्यस्य तस्य वै ।२६।
पंचभूतान्यहंकारो बुद्धिः प्रकृतिरेव च ।
पुष्टिर्बीजस्य तस्यैव तस्माद्वै पुष्टिवर्धनः ।३०।
तं पुष्टिवर्धन देव धृतेन पयसा तथा ।
मधुना यवगोधूममाषबिल्वफलेन च ।३१।
कुमुदार्कशमीपत्रगौरसर्षपशालिभिः ।
हुत्वा लिंगे यथान्यायं भक्त्या देवं यजामहे ।३२।

उस भगवान् शिव का सुगन्ध वायु इस लोक में और नभ स्तल में वहन करता है । इसलिए उस देव को सुगन्धि कहते हैं । इसमें इकार समासान्त हो जाता है । पहिले जिस शम्भु का वीर्य हरि की नाभि स्वरूप योनि में प्रतिष्ठित होता था । उसके वीर्य से अज का उत्पत्ति स्थान हिरणमय दण्ड हुआ था । नक्षत्रों के सहित चन्द्र और सूर्य्य-भू र्वः स्वर्महस्तप और सत्य लोक का अतिक्रमए करके उसके वीर्य की पुष्टि होती है । पाँच भूत-अहङ्कार-बुद्धि और प्रकृति सब उस शम्भु के ही वीर्य की पुष्टि है अतएव शिव का नाम पुष्टि वर्धन होता है ।२७।२८। ।२६।३०। अब 'यजामहे'—इस शब्द का अर्थ बतलाते हैं-उस पुष्टि के वर्धन करने वाले देव का घृत-दुग्ध-मधु-यब-गोधूम-माष-बिल्व फल-कुमुद-अर्क शमी पत्र-गौर सर्षय (सरसों) और शाली से लिङ्ग में हवन करके यथा न्याय भक्ति भाव के साथ यजन (अर्चना) करते हैं । ।३१।३२।

ऋतेनानेन मां पाशाद्बंधनात्कर्मयोगतः ।
मृत्योश्च बंधनाच्चैव मुक्षीय भव तेजसा ।३३।
उर्वारुकाणां पक्वानां यथा कालादभूत्पुनः ।
तथैव कालः संप्राप्तो मनुना तेन यत्नतः ।३४।

एवं मन्त्रविधिं ज्ञात्वा शिवलिङ्गं समर्चयेत् ।
तस्य पाशक्षयोऽतीव योगिनो मृत्युनिग्रहः ।३५।
त्रियंबकसमो नास्ति देवो वा घृणयान्वितः ।
प्रसादशीलः प्रीतश्च तथा मन्त्रोपि सुव्रताः ।३६।
तस्मात्सर्वं परित्यज्य त्रियंबकमुमापतिम् ।
त्रियम्बकेण मंत्रेण पूजयेत्सुसमाहितः ।३७।
सर्वावस्थां गतो वापि मुक्तोऽयं सर्वपातकैः ।
शिवध्यानान्न संदेहो यथा रुद्रस्तथा स्वयम् ।३८।
हत्वा भित्वा च भूतानि भुक्त्वा चान्यायतोऽपि वा ।
शिवमेकं सकृत्स्मृत्वा सर्वप पैः प्रमुच्यते ।३९।

अव 'ऋतादित्य' का अर्थ स्पष्ट किया जाता है–हे भव ! इस ऋत तेज से मुझ को कर्म योग के पाश वन्धन से-मृत्यु से और बन्धन से मुक्त करदो ।३३। अब 'उर्वारुकम्'—इस का अर्थ दिखाया जाता है—उर्वारुक पक्वों का जिस तरह काल से पुनः हुआ था उसी प्रकार का काल उस मनु ने यत्न से प्राप्त कर लिया है ।३४। इस तरह से मन्त्र की विधि को जान कर शिव लिङ्ग का यजन करे । मन्त्र आदि के योग से उसका मृत्यु निग्रह और अतीव पाप क्षय होता है ।३५। कोई भी देव कृपा से पूर्णतया समन्वित शिव के समान नहीं है । हे सुव्रतो ! त्रियम्बक प्रसन्न शीघ्र होने के स्वभाव वाले हैं । सर्वदा परय प्रसन्न देव हैं और मन्त्र स्वरूप भी हैं ।३६। अतएव सब का परित्याग करके अति समाहित होकर त्रियम्बक मन्त्र से उमा के स्वामी त्रियम्बक का पूजन करना चाहिए ।३७। यह त्रियम्बक का पूजक सभी अवस्थाओं में रहते हुए भी सम्पूर्ण पातकों से वियुक्त हो जाता है शिव के ध्यान से पूर्णतया छुटकारा हो जाया करता है । यह शिव के ध्यान की महिमा है । इसमें लेश मात्र भी सन्देह नहीं है, वह उसी भाँति हो जाता है जैसे स्वयं रुद्र होते हैं । हनन करके भेदन करके और भूतों को अन्याव से खाकर या भोग करके भी एक बार शिव का स्मरण करने से समस्त पापों से मुक्त हो जाता है ।३८।३९।

।। १०९–शिवार्चन में अहिंसा को महत्व ।।

वस्त्रपूतेन तोयेन कार्यं चैवोपलेपनम् ।
शिवक्षेत्रे मुनिश्रेष्ठा नान्यथा सिद्धिरिष्यते ।।१
आपः पूता भवंत्येता वस्त्रपूताः समुद्धृताः ।
अफेना मुनिशार्दूला नादेयाश्च विशेषतः ।।२
तस्माद्वै सर्वकार्याणि दैविकानि द्विजोत्तमाः ।
अद्भिः कार्याणि पूताभिः सर्वकार्यप्रसिद्धये ।।३
जंतुभिर्मिश्रिता ह्यापः सूक्ष्माभिस्तान्निहत्य तु ।
यत्पापं सकलं चाद्भिरपूताभिश्चिरं लभेत् ।।४
संमार्जने तथा नृणां मार्जने च विशेषतः ।
अग्नौ कंडनके चैव पेषणे तोयसंग्रहे ।।५
हिंसा सदा गृहस्थानां तस्माद्धिंसां विवर्जयेत् ।
अहिंसेयं परो धर्मः सर्वेषां प्राणिनां द्विजाः ।।६
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन वस्त्रपूतं समाचरेत् ।
तद्दानमभयं पुण्यं सर्वदानोत्तमोत्तमम् ।।७

इस अध्याय में वस्त्र से पवित्र किये हुए जल से समस्त क्रियाओं का तथा अहिंसा की भक्ति का महत्त्व निरूपित किया गया है। सूतजी ने कहा—हे मुनिश्रेष्ठो ! शिव के क्षेत्र में वस्त्र द्वारा पूत जल से उपलेपन करना चाहिए। अन्यथा सिद्धि इष्ट नहीं होती है ।।१।। हे मुनिशार्दूलो ! ये जल वस्त्र से पूत करके समुद्धृत किये हुए पवित्र होते हैं। जल फेन से रहित होने चाहिए नदी के जल विशेष पवित्र माने गये हैं ।२। इस कारण से दैविक समस्त कार्य्य सब प्रकार के कार्यों की सिद्धि के लिये परम पवित्र जल से ही करने चाहिए ।३। जल सूक्ष्म जन्तुओं से मिश्रित होते हैं उनको मारकर अपूत जल से सम्पूर्ण पाप प्राप्त होता है क्योंकि सूक्ष्म जन्तुओं की वहाँ हिंसा हो जाती है ।४। गृहस्थों को सम्मार्जन में तथा विशेष कर मार्जन में अर्थात् घर की सफाई करने में–अग्नि जलाने में–छड़ने में–पीसने में और जल के संग्रह करने में नित्य प्रति सदा हिंसा हुआ ही करती है अतएव इस हिंसा का त्याग करना चाहिए। हे द्विजो !

यह अहिंसा समस्त प्राणियों का परम धर्म होता है ।५।६। इसलिये सब प्रकार के प्रयत्न से जल को वस्त्र से छान कर पवित्र अवश्य ही कर लेना चाहिए। अभय का दान बड़ा भारी पुण्य होता है और अन्य सब तरह के दानों में यह उत्तम दान होता है । ७ ।

तस्मात्तु परिहर्तव्या हिंसा सर्वत्र सर्वदा ।
मनसा कर्मणा वाचा सर्वदाऽहिंसकं नरम् ।।८
रक्षति जंतवः सर्वे हिंसकं बाधयंति च ।
त्रैलोक्यमखिलं दत्त्वा यत्फलं वेदपारगे ।।९
तत्फलं कोटिगुणितं लभतेऽहिंसको नरः ।
मनसा कर्मणा वाचा सर्वभूतहिते रताः ।।१०
दयादर्शितपंथानो रुद्रलोकं व्रजंति च ।
स्वामिवत्परिरक्षंति बहूनि विविधानि च ।।११
ये पुत्रपौत्रवत्स्नेहाद्रुद्रलोकं व्रजति ते ।
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन वस्त्रपूतेन वारिणा ।।१२
कार्यमभ्युक्षणं नित्यं स्नपन च विशेषतः ।
त्रैलोक्यमखिलं हत्वा यत्फलं परिकीर्त्यते ।।१३
शिवालये निहत्यैकमपि तत्सकलं लभेत् ।।१४

इसलिये सर्वत्र और सर्वदा हिंसा का परिहार करना चाहिए। मन से-कर्म से और वचन से जो मनुष्य अहिंसक होता है उसकी सभी जन्तु रक्षा किया करते हैं और जो हिंसा करने वाला होता है उसको सभी बाधा पहुंचाया करते हैं । किसी वेद के पारगामी विद्वान् को सम्पूर्ण त्रैलोक्य का दान करके जो फल प्राप्त होता है उस फल से भी कोटि गुना फल सदा अहिंसक मानव प्राप्त किया करता है। अतएव मन के द्वारा-वचन से तथा कर्म से सदा समस्त प्राणियों के हित में अनुराग रखने के अनुराग वाले पुरुष सद्गति को प्राप्त किया करते हैं। ८। ९।१०। दया से मार्ग को दिखलाने वाले लोग सीधी रुद्र लोक में जाया करते हैं। जो पुरुष बहुत और अनेक प्रकार के प्राणियों की एक सच्चे स्वामी की भाँति रक्षा किया करते हैं और जो अपने पुत्र तथा पौत्रों के समान स्नेह का

सब प्राणियों में व्यवहार करते हैं वे पुरुष सीधे रुद्र लोक को चले जाते हैं। इसलिये सभी प्रयत्नों से वस्त्र द्वारा छाने हुए जल से अभ्युक्षण तथा विशेष रूप से नित्य स्नपन करना चाहिए । समस्त त्रैलोक्य का हनन करके जो बुरा फल कहा जाता है वह शिवालय में एक के हनन करने से पूर्ण बुरा फल मिला करता है ॥११॥१२॥१३॥१४॥

शिवार्थं सर्वदा कार्या पुष्पहिंसा द्विजोत्तमाः ॥१५
यतस्तस्मान्न हतव्या निषिद्धानां निषेवणात् ।
सर्वकर्माणि विन्यस्य संन्यस्ता ब्रह्मवादिनः ॥१६
न हंतव्याः सदा पूज्याः पापकर्मरता अपि ।
पवित्रास्तु स्त्रियः सर्वा अत्रेश्च कुलसंभवाः ॥१७
ब्रह्महत्यासमं पापमात्रेयीं विनिहत्य च ॥१८
स्त्रियः सर्वा न हंतव्याः पापकर्मरताः अपि ॥१९
मलिना रूपवत्यश्च विरूपा मलिनांबराः ।
न हंतव्याः सदा मर्त्यैः शिववच्छकया तथा ॥२०
वेदबाह्यव्रताचाराः श्रौतस्मार्तबहिष्कृताः ।
पाषंडिन इति ख्याता न सभाष्या द्विजातिभिः ॥२१

हे द्विज श्रेष्ठो ! शिव के लिये सर्वदा पुष्प हिंसा करनी चाहिए ॥१५॥ इसलिये किसी की भी हिंसा नहीं करनी चाहिए। निषिद्ध वस्तुओं के निषेवण से समस्त कर्मों को विशेष रूप से त्याग करके ब्रह्मवादी लोग संन्यस्त हो जाते हैं ।१६। स्त्रियाँ पाप कर्मों में रत भी हों तो भी वे सदा पूज्य होती हैं। इनको नहीं मारना चाहिए स्त्रियाँ अत्रि के कुल में समुत्पन्न हैं और सब परम पवित्र हुआ करती हैं ।१७। एक स्त्री का वध करने से ब्रह्महत्या के समान ही पाप होता है। इसलिये सभी स्त्रियों का, चाहे वे पाप कर्म में भी रति रखने वाली होवें, कभी हनन नहीं करना चाहिए ।१८। मलिन और रूप-लावण्य से युक्त-विरूप तथा मलिन वस्त्र धारण करने वाली इन सभी को सदा शिव के समान शङ्का से मनुष्यों को कभी भी हनन नहीं करना चाहिए ॥१९॥२०॥ जो वेद से वाह्य व्रत तथा आचार वाले पुरुष हैं तथा श्रौत एवं स्मार्त कर्मों से भी बहिष्कृत हैं

और पाषण्डी कहे जाते हैं इनके साथ द्विजातियों को कभी भी सम्भाषण नहीं करना चाहिए ॥२१॥

न स्पृष्टव्या न द्रष्टव्या दृष्ट्वा भानुं समीक्षते ।
तथापि तेन वध्याश्च नृपैरन्यैश्च जंतुभिः ॥२२
प्रसंगाद्वापि यो मर्त्यः सतां सकृदहो द्विजाः ।
रुद्रलोकमवाप्नोति समभ्यर्च्य महेश्वरम् ॥२३
भवंति दुःखिताः सर्वे निर्दया मुनिसत्तमाः ।
भक्तिहीना नराः सर्वे भवे परमकारणे ॥२४
ये भक्ता देवदेवस्य शिवस्य परमेष्ठिनः ।
भाग्यवंतो विमुच्यंते भुक्त्वा भोगानिहैव ते ॥२५
पुत्रेषु दारेषु गृहेषु नृणां भक्तं यथा चित्तमथादिदेवे ।
सकृत्प्रसंगाद्यतितापसानां तेषां न दूरः परमेशलोकः ॥२६

यदि पाखण्डी पुरुष का दर्शन भी कहीं हो जाता है तो भी उसका प्रायश्चित्त करना चाहिए और वह सूर्य दर्शन करना ही अति सरल होता है। तो भी वे पाखण्डी पुरुष राजाओं के द्वारा या अन्य पुरुषों के द्वारा वध करने के योग्य नहीं हैं ॥२२॥ सत्पुरुषों के प्रसङ्ग से जो कोई पुरुष एक वार भी महेश्वर की अभ्यर्चना करके रुद्र लोक की प्राप्ति कर लेता है। यह महेश्वर की पूजा की महा महिमा है। ॥२३॥ हे मुनि सत्तमो ! दया रहित और भव की भक्ति से हीन पुरुष सब दुःखित रहा करते हैं। भगवान् भव तो सब के परम कारण होते हैं ॥२४॥ देवों के भी देव परमेष्ठी शिव के जो भक्त होते हैं वे बड़े ही भाग्यशाली हुआ करते हैं और वे यहाँ पर ही समस्त सुखद भोगों का उपभोग करके अन्त में मुक्त हो जाया करते हैं ॥२५॥ जिस तरह मनुष्यों की भक्ति यहाँ संसार में अपने पुत्रों में-स्त्रियों में और गृह आदि में होती है उसी प्रकार की भक्ति आदि देव भगवान् भव में होनी चाहिए और चित्त शिव भक्ति में लगाना चाहिए। जो यति और तपस्वी हैं वे एक बार के प्रसङ्ग से ही परमेश के लोक को प्राप्त कर लेते हैं और वह उनको कुछ भी दूर नहीं रहता है ॥२६॥

११०-योगमार्ग से त्र्यंबक ध्यान-लिंगपुराण श्रवण पठनफल

कथं त्रियम्बको देवो देवदेवो वृषध्वजः ।
ध्येयः सर्वार्थसिद्धयर्थं योगमार्गेण सुव्रत ।१।
पूर्वमेवापि निखिलं श्रुतं श्रुतिसमं पुनः ।
विस्तरेण च तत्सर्वं संक्षेपाद्वस्तुमर्हसि ।२।
एवं पैतामहेनैव नंदी दिनकर प्रभुः ।
मेरुपृष्ठे पुरा पृष्टो मुनिसंघैः समावृत्तः ।३।
सोऽपि तस्मै कुमाराय ब्रह्मपुत्राय सुव्रताः ।
मिथः प्रोवाच भगवान्प्रणताय समाहितः ।४।
एवं पुरा महादेवो भगवान्नीललोहितः ।
गिरिपुत्र्यांबया देव्या भगवत्यैकशय्यया ।५।
पृष्टः कलासशिखरे हृष्टपुष्टतनूरुहः ।
योगः कतिविधः प्रोक्तस्तत्कथं चैव कीदृशम् ।६।
ज्ञानं च मोक्षद दिव्यं मुच्यते येन जंतवः ।
प्रथमो मन्त्रयोगश्च स्पर्शयोगो द्वितीयकः ।७।
भावयोगस्तृतीयः स्यादभावश्च चतुर्थकः ।
सर्वोत्तमो महायोगः पञ्चमः परिकीर्तितः ।८।

ऋषियों ने कहा—हे सुव्रत ! देवों के देव वृषध्वज त्रियम्बक देव सम्पूर्ण सिद्धियों के लिए योग के मार्ग से किस प्रकार ध्यान करने के योग्य होते हैं अथवा कैसे उनका ध्यान किया जाता है-कृपा कर यह हम को आप बताइये ।१। मैंने पहिले ही श्रुति के समान सब श्रवण किया है किन्तु उस सब के सार को विस्तार पूर्वक संक्षेप आप फिर कहने में समर्थ हैं । सूतजी ने कहा—इस प्रकार से सूर्य के समान प्रभा वाले भगवान् नन्दी से पहिले मेरु के पृष्ठ पर जब कि वह अनेक मुनियों के समुदाय से समावृत थे पैतामह सनत्कुमार ने पूछा था ।२।३। हे सुव्रतो ! उन भगवान् नन्दी ने परम प्रणत उस ब्रह्माजी के पुत्र सनत्कुमार से पूर्ण समाहित होकर कहा था ।४। नन्दिकेश्वर ने कहा—इसी तरह का

प्रश्न पहिले नील लोहित भगवान् महादेव से उनकी शय्या में एक ही साथ स्थित होकर गिरिजा भगवती जगदम्बा देवी ने पूछा था जब कि कैलास पर्वत पर भगवान् शिव परम प्रसन्न विराज रहे थे। श्री देवी ने कहा है—भगवान्! योग कितने प्रकार का कहा गया है और वह किस प्रकार का होता है तथा कैसा है ? जो योग ज्ञान परम दिव्य-ज्ञान तथा मोक्ष के प्रदान करने वाला कहा जाता है जिसको प्राप्त कर जीवात्मा मुक्त हुआ करते हैं। श्री भगवान् ने कहा—पहिला तो मन्त्र योग होता है और दूसरा स्पर्श योग है ।५।६।७। भाव योग तीसरा है और चौथा अभाव योग होता है। सबसे अत्युत्तम महायोग होता है जो पाँचवाँ होता है ।८।

ध्यानयुक्तो जपाभ्यासो मन्त्रयोगः प्रकीर्तितः ।
नाडीशुद्ध्यधिको यस्तु रेचकादिक्रमान्वितः ।९।
समस्तव्यस्तयोगेन जयो वायोः प्रकीर्तितः ।
बलस्थिरक्रियायुक्तो धारणाद्यैश्च शोभनैः ।१०।
धारणात्रयसंदीप्तो भेदत्रयविशोधकः ।
कुंभकावस्थितोऽभ्यासः स्पर्शयोगः प्रकीर्तितः ।११।
मन्त्रस्पर्शविनिर्मुक्तो महादेवं समाश्रितः ।
बहिरंतर्विभागस्थस्फुरत्संहरणात्मकः । २।
भावयोगः समाख्यातश्चित्तशुद्धिप्रदायकः ।
विलीनावयवं सर्वं जगत्स्थावरजंगमम् ।१३।
शून्य सर्वं निराभास स्वरूपं यत्र चिंत्यते ।
अभावयोगः संप्रोक्तश्चित्तनिर्वाणकारकः ।१४।

ध्यान से युक्त और जिसमें जप करने का अभ्यास किया जाता है वह मन्त्र योग कहा गया है। अब स्पर्श योग को बताते हैं—जिसमें विशेष रूप से सुषुम्ना नाडी की शुद्धि होती है और जिसमें समस्त और व्यस्त योग से वायु का प्रधान रूप से जप किया जाता है तथा वज्री आदि साधनों के द्वारा बल के स्थिर करने की क्रिया होती है जो परम शोभन धारणा आदि अंगों से युक्त है एवं सात्त्विकादि तीन धारणाओं से संदीप्त

है और विश्व-प्राज्ञ तैजस इन तीनों का विशोधक है अर्थात् कुम्भक में निर्मलता का करने वाला ध्यान का अभ्यास होता है वह स्पर्श योग कहा जाता है ।९।१०।११।मन्त्र योग और स्पर्श योग इन तीनों से अतीत जो कि केवल महादेव के ही समाश्रित होता है। बाहिर तथा अन्दर स्फुर भाग मन में विलसमान भावों के संहार करने के स्वरूप वाला भाव योग कहा गया है जो चित्त की शुद्धि करने वाला है। अब अभाव योग को बतलाया जाता है–जिस में समस्त अवयव विलीन होने वाला सम्पूर्ण स्थावर जङ्गम यह जगत् सम्पूर्ण शून्य विश्वरूप निराभास अर्थात् भेदाभास से रहित चिन्तन किया जाता है वह अभाव योग होता है और यह चित्त के निर्वाण का करने वाला होता है ।१२।१३।१४।

नीरूपः केवलः शुद्धः स्वच्छंदं च सुशोभनः ।
अनिर्देश्यः सदालोकः स्वयवेद्यः समंततः ।१५।
स्वभावो भासते यत्र महायोगः प्रकीर्तितः ।
नित्योदितः स्वयंज्योतिः सर्वचित्तसमुत्थितः ।१६।
निर्मलः केवलो ह्यात्मा महायोग इति स्मृतः ।
अणिमादिप्रदाः सर्वे सर्वे ज्ञानस्य दायकाः ।१७।
उत्तरोत्तरवैशिष्टयमेषु योगेष्वनुक्रमात् ।
अहं संग विनिर्मुक्तो महाकाशापमः परः ।१८।
सर्वावरणनिर्मुक्तो ह्यचिंत्यः स्वरसेन तु ।
ज्ञयमेतत्समाख्यातमग्राह्यमपि दैवतैः ।१९।
प्रविलीनो महान्सस्यक् स्वयवेद्यः स्वसाक्षिकः ।
चकास्त्य नंदवपुषा तेन ज्ञेयमिदं मतम् ।२०।
परोक्षिताय शिष्याय ब्राह्मणायाहिताग्नये ।
धार्मिकायाकृतघ्नाय दातव्यं क्रमपूर्वकम् ।२१।

अब महायोग का निरूपण किया जाता है–जिसमें रूप से शून्य-अद्वितीय-निर्मल-स्वच्छन्दता के सहित परम शोभन अर्थात् अत्यन्त रमणीय श्रुतियों के द्वारा भी जिस का स्वरूप निर्देश नहीं किया जा सकता है ऐसा अप्रमेय-सर्वदा प्रकाशमान-स्वयं ही जानने के योग्य-समानता के साथ

विस्तृत अर्थात् सर्व व्यापी-अपनी आत्मा की पूर्व निशेषण विशिष्ट सत्ता अव भासित होने वाला हो वह महायोग कहा गया है। पुनः उसी महा-योग प्रकारान्तर से बताते हैं कि वह नित्य प्रकाश मान-स्वयमेव प्रकाश मान सम्पूर्ण चित्तों के उत्थापित करने वाला और निर्मल केवल आत्मा पर शिव ही महायोग कहा गया है। ये समस्त योग अणिमा-महिमा आदि अष्ट सिद्धियों के प्रदान करने वाले और सभी ज्ञान के देने वाले होते हैं।१५।१६।१७। इन योगों में क्रम से उत्तरोत्तर विशेषता होती है। मोक्षद ज्ञान अहं शब्द से विनिर्मुक्त सबसे पर महाकाश की उपमा वाला होता है।१८। याथ्य तथ्य रूप से चिन्तन न कर सकने के योग्य ज्ञान वाला है। सर्व आवरणों से विनिर्मुक्त होता है। यह मैंने समाख्यात कर दिया है जो कि देवों के द्वारा भी ग्रहण करने के योग्य नहीं है। प्रविलीन-महान् सम्यक् स्वयं ही जानने के योग्य और अपने से ही साक्षी वाला है। आनन्द के स्वरूप वाले शरीर से प्रकाशित होता है। इसी से ज्ञेय यह माना गया है।१९।२०। इसके ज्ञान को पूर्णतया परखे हुए ब्राह्मण शिष्य को जो कि आहिताग्नि हो तथा परम धार्मिक एवं अकृतघ्न हो उसे ही क्रम पूर्वक देना चाहिए।२१।

गुरुदवतभक्ताय अन्यथा नैव दापयेत्।
निंदितो व्याधितोल्पायुस्तथा चैव प्रजायते।२२।
दातुरप्येवमनघे तस्माज्ज्ञात्वैव दापयेत्।
सर्वसंगविनिर्मुक्तो मद्भक्तो मत्परायणः।२३।
साधको ज्ञानसंयुक्तः श्रौतस्मार्तविशारदः।
गुरुभक्तश्च पुण्यात्मा योग्या योगरतः सदा।२४।
एव देवि समाख्यातो योगमार्गः सनातनः।
सर्ववेदागमांभोजमकरन्दः सुमध्यमे।२५।
पीत्वा योगामृतं योगी मुच्यते ब्रह्मवित्तमः।
एवं पाशुपत योगं योगश्वर्यमनुत्तमम्।२६।

जो शिष्य अपने गुरु का तथा देवता का भक्त हो उसे ही देवे। अन्यथा इसे किसी को भी नहीं देना चाहिए। यदि किसी इसके अनधि-

कारी को दे दिया जाता है तो वह देने वाला संसार में अत्यन्त निन्दित और रोग सम्पन्न तथा अल्प आयु वाला हो जाया करता है ।२२। इस प्रकार से देने वाले को भी इसका दण्ड भोगना होता है । अतएव जो निष्पाप हो उसे ही भली-भाँति समझ बूझ कर ही इस विद्या को देना चाहिए । मेरा जो भी कोई भक्त होता है वह समस्त प्रकार के संसर्गों से विनिर्मुक्त होता है और केवल मुझ में ही परायण रहा करता है ।२३। ज्ञान से संयुत रहने वाला साधक श्रौत एवं स्मृति वर्णित धर्म तथा ज्ञान का परम पण्डित तथा गुरु के चरणों में प्रगाढ़ भक्ति-भाव रखने वाला-पुण्यात्मा अत्यन्त योग्य तथा योग में सर्वदा रति रखने वाला हुआ करता है ।२४। इस प्रकार से हे देवि ! परमेश शम्भु ने जगज्जननी गौरी से कहा कि मैंने यह योगों का मार्ग जो कि सर्वदा से चला आ रहा है वह तुम्हारे सामने कह दिया है । हे सुन्दर मध्यभाग वाली ! यह योग मार्ग सम्पूर्ण वेद और आगम स्वरूप कमलों का मकरन्द है ।२५। योगाभ्यासी पुरुष इस मकरन्द का पान करके अर्थात् इस योगात्मक अमृत को पीकर ब्रह्म के वेत्ता समस्त बन्धनों से छुटकारा पा जाया करता है । इस तरह से यह पाशुपत-योग योग रूपी सर्वश्रेष्ठ ऐश्वर्य होता है ।२६।

अत्याश्रममिदं ज्ञेयं मुक्तये केन लभ्यते ।
तस्मादिष्टैः समाचारैः शिवार्चनरतैः प्रिये ।२७।
इत्युक्त्वा भगवान्देवीमनुज्ञाप्य वृषध्वजः ।
शंकुकर्णं समासाद्य युयोजात्मानमात्मनि ।२८।
तस्मात्त्वमपि योगींद्र योगाभ्यासरतो भव ।
स्वयंभुव परा मूर्तिर्नूनं ब्रह्ममयी वरा ।२९।
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन मोक्षार्थी पुरुषोत्तमः ।
भस्मस्नायी भवेन्नित्यं योगे पाशुपते रतः ।३०।
ध्येया यथाक्रमेणैव वैष्णवी च ततः परा ।
माहेश्वरी परा पश्चात्सैव ध्येया यथाक्रमम् ।३१।
योगेश्वरस्य या निष्ठा सैषा संहृत्य वर्णिता ।३२।

एवं शिलादपुत्रेण नंदिना कुलनन्दिना ।
योगः पाशुपतः प्रोक्तो भस्मनिष्ठेन धीमता ।३३।
सनत्कुमारो भगवान्व्यासायामिततेजसे ।
तस्मादहमपि श्रुत्वा नियोगात्सत्रिणामपि ।३४।
कृतकृत्योऽस्मि विप्रेभ्यो नमो यज्ञेभ्य एव च ।
नमः शिवाय शांताय व्यासाय मुनये नमः ।३५।

इस प्रकार से यह पूर्व वर्णित योग रूपी वैभव आश्रमों की अपेक्षा न करते हुये जानने के योग्य होता है इसलिए इष्ट समाचरण वाले सम्पूर्ण प्राणियों के हितों के सम्पादक विश्वेश्वर की समार्चना में सदा तत्पर रहने वाले व्यक्तियों से ही हे प्रिये ! यह किसी अनिर्वचनीय भाग्योदय के प्रभाव से ही मुक्ति के लिए प्राप्त किया जाया करता है ।२७। इस तरह से भगवान् शम्भु वृषभध्वज ने देवी जगदम्बा पार्वती को अनुज्ञापित करके शंकुकर्ण नाम वाले गण को द्वारदेश में निवेशित कर अपने आपको आत्मा नन्दानुभव करने में युक्त कर दिया था अर्थात् ध्यानावस्थित हो गये थे ।२८। शैलादि ने कहा—हे योगीन्द्र ! अतएव तुम भी योग के अभ्यास करके में रत हो जाओ । स्वयम्भू की परामूर्त्ति निश्चय ही परम श्रेष्ठ एवं ब्रह्ममयी है ।२९। इसलिए परम प्रयत्नों से मोक्ष की इच्छा रखने वाला श्रेष्ठ पुरुष को नित्य ही भस्म से स्नान करने वाला अर्थात् शरीराङ्गों पर भस्म लगाने वाला होना चाहिए तथा पाशुपत योग में रति रखने वाला रहना चाहिए ।३०। क्रम के अनुसार ही वैष्णवी का ध्यान करे इसके अनन्तर परा माहेश्वरी का ध्यान करे । योगेश्वर की जो निष्ठा है वह मैंने संहृत करके भली-भाँति वर्णित कर दी है ।३१।३२। सूतजी ने कहा—कुल को आनन्द देने वाले शिलाद के पुत्र भगवान् नन्दी ने जो कि भस्म में परम निष्ठा रखने वाला और परम धीमान् थे यह पाशुपत योग मार्ग बतलाया था ।३३। फिर इस योग मार्ग के ज्ञान को भगवान् सनत्कुमार ने अपरिमित तेज वाले महा मुनीन्द्र व्यास जी को बतलाया था । उन्हीं व्यास देव से इसका श्रवण मैंने किया था । अब इन सत्र धारियों के नियोग से अर्थात् आप सब लोगों को इसे

बताकर मैं परम कृत कृत्य हो गया हूँ। अब आप सम्पूर्ण विप्रों को तथा यज्ञों को मेरा बारम्बार प्रणाम है। मैं शान्त मूर्त्ति भगवान् शिव के लिए नमस्कार करता हूँ तथा गुरुदेव महा मुनीन्द्र व्यास देव के लिए मेरा प्रणाम है ।३४।३५।

ब्रह्मा स्वयंभूर्भगवानिदं वचनमब्रवीत् ।
लैंगमाद्यंतमखिलं यः पठेच्छृणुयादपि ।३६।
द्विजेभ्यः श्रावयेद्वापि स याति परमां गतिम् ।
तपसा चैव यज्ञेन दानेनाध्ययनेन च ।३७।
या गतिस्तस्य विपुला शास्त्रविद्या च वैदिकी ।
कर्मणा चापि मिश्रेण केवलं विद्ययापि वा ।३८।
निवृत्तिश्चास्य विप्रस्य भवेद्भक्तिश्च शाश्वती ।
मयि नारायणे देवे श्रद्धा चास्तु महात्मनः ।३९।
वंशस्य चाक्षया विद्या चाप्रमादश्च सर्वतः ।
इत्याज्ञा ब्रह्मणस्तस्मात्तय सर्वं महात्मनः ।४०।
ऋषेः सूतस्य चास्माकमेतेषामपि चास्य च ।
नारदस्य च या सिद्धिस्तीर्थयात्रारतस्य च ।४१।
प्रीतिश्च विपुला यस्मादस्माकं रोमहर्षण ।४२।
सा सदास्तु विरूपाक्षप्रसादात्तु समंततः ।
एवमुक्तेषु विप्रेषु नारदो भगवानपि ४ ।
कराभ्यां सुशुभाग्राभ्यां सूतं पस्पर्शिवांस्त्वचि ।
स्वत्यस्तु सूत भद्रं ते महादेवे वृषध्वजे ।४४।
श्रद्धा तवास्तु चास्माकं नमस्तस्मै शिवाय च ।४५।

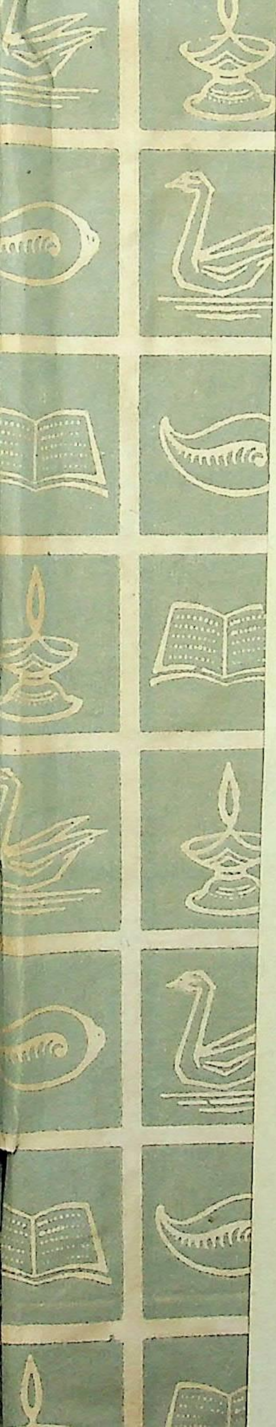
स्वयम्भू भगवान् ब्रह्मा ने यह वचन कहा था कि जो भी कोई इस लिङ्ग महा पुराण को आदि से अन्त तक सम्पूर्ण का श्रवण करता है या इसका पूर्ण पाठ किया करता है अथवा द्विजातियों को श्रवण कराता है वह परम गति को प्राप्त किया करता है। तप-से यज्ञों के यजन से दान देने से जो गति होती है वही उसको जो इसका श्रवण या श्रावण

करने वाला है, विपुल वैदिकी शास्त्र विद्या होती है और मिश्रित कर्म से अथवा केवल उस विद्या से ही शाश्वती शिव की भक्ति और निवृत्ति अर्थात् मुक्ति हो जाती है। और उस महान् आत्मा वाले पुरुष की मुझ नारायण देव में परम श्रद्धा हो जाया करती है।३६।३७।३८।३९। उस पुरुष के वंश में यह विद्या अक्षय होकर रहती है और किसी प्रकार की किसी भी ओर से प्रमाद नहीं हुआ करता है। यह महात्मा ब्रह्मा की आज्ञा है।४०। ऋषियों ने कहा—परमर्षि सूत देव की और तीर्थों की यात्रा में रति रखने वाले भगवान् नारद की जो सिद्धि है और अति विपुला प्रीति है हे रोमहर्षण ! वह भगवान् विरूपाक्ष के प्रसाद से हम सबको भी सर्वदा होवे। विप्रों के ऐसा कहने पर भगवान् नारद देवर्षि ने अपने परम शुभ करों के अग्र भागों से सूत की त्वचा पर स्पर्श किया था और उनने कहा था—हे सूत ! तुम्हारा स्वस्ति अर्थात् कल्याण होवे-भद्र हो और वृषध्वज महादेव में तुम्हारी श्रद्धा होवे। हम सब का उन परम मङ्गल स्वरूप भगवान् शिव के लिए बारम्बार नमस्कार है।४१।४२।४३।४४।४५।

।। श्री लिङ्ग पुराण (द्वितीय खण्ड) समाप्त ।।

मुद्रकः--श्री हर्षगुप्त, राष्ट्रीय प्रेस, डेम्पियर नगर, मथुरा।





भारतीय संस्कृति के श्रेष्ठतम धर्मग्रन्थ

वेदमूर्ति तपोनिष्ठ पं० श्रीराम शर्मा आचार्य द्वारा सम्पादित

१-चारों वेद ८ जिल्दों में—

ऋगवेद ४ खण्ड	...	२७)
अथर्व वेद २ खण्ड	...	१३)५०
यजुर्वेद १ खण्ड	...	६)७५
सामवेद १ खण्ड	...	६)७५

२-१०८ उपनिषद् (ज्ञान, ब्रह्म विद्या, साधना) (३ खण्ड) २३)२५

३-षट् दर्शन (६ जिल्दों में

वेदान्त दर्शन	...	४)
सांख्य दर्शन	...	४)
योग दर्शन	...	४)
बैशेषिक दर्शन	...	४)
न्याय दर्शन	...	४)
मीमांसा दर्शन	...	५)

४-२० स्मृतियां २ खण्ड ... १५)

पुराण

५-शिव (२ खंड)	१५)	वायु (२ खंड)	१४)
विष्णु (२ खंड)	१४)	अग्नि (२ खंड)	१४)
मार्कण्डेय (२ खंड)	१४)	गरुड़ (२ खंड)	१५)
हरिवंश (२ खंड)	१५)	भविष्य (२ खंड)	१५)
पद्म (२ खंड)	१५)	देवीभागवत (२ खंड)	१५)
लिङ्ग (२ खंड)	१४)	वामन (२ खंड)	१५)
मत्स्य (२ खंड)	१५)	ब्रह्मवैवर्त (२ खंड)	१५)
कूर्म (२ खंड)	१५)	कल्कि (१ खंड)	७)७५
स्कन्द (२ खंड)	१५)	ब्रह्म (२ खंड)	१५)

६-विष्णु रहस्य ७)५०

७-तन्त्र महाविज्ञान २ खंड १५)

संस्कृति संस्थान, ख्वाजा कुतुब बरेली।